

ब्रह्मसूत्र, उपनिषद् एवं श्रीमद्भागवत

डॉ० वासुदेवकृष्ण चतुर्वेदी

ब्रह्मसूत्र उपनिषद्
एवं
श्रीमद्भागवत

(आगरा विश्वविद्यालयसे डी. लिट्. उपाधिके लिये स्वीकृत शोध प्रबन्ध-
उपनिषदों और ब्रह्मसूत्रोंके परिप्रेक्ष्यमें श्रीमद्भागवतका तुलनात्मक अध्ययन)

★

सप्ताचार्य

डा. वासुदेव कृष्ण चतुर्वेदी

एम. ए. (हिन्दी-संस्कृत) पी-एच. डी., डी. लिट्.,
रीडर एवं अध्यक्ष संस्कृत विभाग
प्राच्यदर्शन महाविद्यालय, वृन्दावन (मथुरा)

★

प्रकाशक :—

श्रीकृष्ण सत्संग भवन प्रकाशन

मथुरा (उ०प्र०)

लेखक :

डॉ० वासुदेवकृष्ण चतुर्वेदी

★

प्रकाशक :

श्रीकृष्ण सत्संग भवन प्रकाशन

९६६ गतश्रम टीला, मथुरा (उ० प्र०)

★

प्रथम संस्करण ११०० प्रतियाँ

★

वर्ष १९८४-८५

★

★

मूल्य—१२५)

★

मुद्रक :

मयूर प्रेस, ३७१/५ बद्रीनगर डीगगेट, मथुरा

BRAHMSUTRA UPNISHAD
&
SHREEMADBHAGWAT

[Awarded D. Litt. on submission of Research Thesis—on Comperative study with reference to Upnishad and Brahmsutra on Shree Mad Bhagwat., by Agra University.]

★

by

Saptacharya

Dr. V. K. Chaturvedi

M. A. (Hindi Sanskrit) Ph. D., D. Litt.

Reader and Head of the Sanskrit Department

INSTITUTE OF ORIENTAL PHILOSOPHY

Vrindaban (Mathura)

★

Publisher

SHREE KRISHNA SATSANG BHAWAN PRAKASHAN

MATHURA (U. P.)

by :

Dr. V. K. Chaturvedi

★

Publisher :

Shree Krishna Satsang Bhawan Prakashan

966-Gatashram Tila

Mathura (U. P.)

★

First Edition :-1100 Copies

★

Year :-1984-85

★

★

Price-125 Rupees

★

Printed by :

Mayur Press, 371/5 Badri Nagar

Deeg gate Mathura (U. P.)

॥ श्रीद्वारकेशो विजयते ॥

भूमिका

श्रीमद्भागवत पुराणको पुराणोंका तिलकराज कहा जाता है। सत्रह पुराणोंकी रचनाके पश्चात् श्रीवेदव्यासने इस पुराणकी रचनाकी है, वैष्णवोंका कण्ठहार है श्रीमद्भागवत, श्रीशुकदेवजीके मुखारविन्दसे निःसृत इस पुराणकी महिमाका गान जितना संस्कृत साहित्यमें हुआ है, किसी अन्य पुराणका नहीं। श्रीमद्भागवत पुराणकी जितनी टीकायें विभिन्न भाषाओंमें उपलब्ध हैं उतनी किसी अन्य पुराणकी नही हैं। भारतवर्षके चारों प्रमुख सम्प्रदायोंमें श्रीमद्भागवतका अत्यन्त समादर है। भक्ति-ज्ञान-वैराग्यकी त्रिवेणीके कारण इसका अवगाहन परम पुण्य फलदायक एवं शान्तिप्रद है। इस एक ग्रन्थमें वेद-उपनिषद् और ब्रह्मसूत्रका जैसा समन्वय हुआ है अन्यत्र दुर्लभ है। श्रीमद्भागवत पुराणका श्रवण एक जन्मके पुण्यसे तो सम्भव ही नहीं है, ऐसा श्रीव्यासका कथन है। पद्मपुराणका मत है—

"जन्मान्तरे भवेत्पुण्यं तदा वै भागवतं लभेत्"—

यहाँ तक लिखा है कि कोटि जन्मके पुण्यसे यह पुराण सुननेको मिलता है। मनुष्योंकी तो बात ही क्या? यह तो देवों को भी दुर्लभ माना गया है।

"श्रीमद्भागवती वार्ता सुराणामपि दुर्लभा"।

आचार्योंने इसे ब्रह्म सूत्रोंका अकृत्रिम भाष्य माना है—

अर्थोऽयं ब्रह्मसूत्राणां भारतार्थ विनिर्णयः।
गायत्री भाष्यरूपोऽसौ वेदार्थ उपबृंहितः॥

अर्थात् यह पुराण ब्रह्मसूत्रोंका अर्थ बतलाने वाला भाष्य है, भारत अर्थका निर्णायक है, गायत्रीका भाष्य है, वेदार्थका बिस्तार है। अन्य किसी पुराणके सम्बन्धमें ऐसा वाक्य नहीं मिलता अतः यही सर्वोत्कृष्ट प्रमाण इसे गौरव पद प्रदान करता रहा है। **"श्रुत्यर्थस्तु पदे-पदे"** श्रुतियोंका अर्थ तो पद-पद पर है श्रीमद्भागवत में अतः यह ग्रन्थ भारतीय वाङ्मयका कण्ठहार है। श्रीचैतन्यमहाप्रभुने ब्रह्मसूत्रोंपर भाष्य नहीं लिखा उनकी मान्यता रही कि जिस ऋषि व्यासने ब्रह्म सूत्रोंकी रचना की है, उन्हींकी वाणी द्वारा श्रीमद्भागवतका प्रणयन हुआ है अतः प्रामाणिक ही है, फलतः उन्होंने अन्य आचार्योंकी भाँति भाष्य नहीं किया वे इसे—'अकृत्रिम भाष्य' मानते हैं। ऐसे महनीय ग्रन्थके विषयकी ओर प्रवृत्तिका भी एक इतिहास है—

श्रीभक्तिहृदय वन महाराज जो विश्व विश्रुत दार्शनिकों विद्वानों में B. H. वन महाराजके नामसे विख्यात थे ने वृन्दावनकी पावन भूमिमें एक "पारमार्थिक वैष्णव विश्वविद्यालयकी" स्थापनाकी जिसमें भारतीय दर्शनके अध्ययन अध्यापनकी व्यवस्था अंग्रेजी माध्यमसेकी गई थी, हजारों रुपयेकी राशि देशके राजा महाराजाओंने उदारतापूर्वक इसमें प्रदानकी थी और एक समृद्ध पुस्तकालय भी स्थापित किया गया था। इस विश्वविद्यालयके दीक्षा समारोहमें मैं दर्शकके रूपमें प्रथम उपस्थित हुआ था। भारतके राष्ट्रपति श्रीसर्वपल्ली राधाकृष्णनजीने दीक्षान्त भाषण दिया था। तदनन्तर समाजकल्याण समितिके द्वारा आयोजित विश्रामघाट मथुरा के समारोह में श्री B. H. वन महाराज को आमन्त्रित करनेका अवसर मिला उन्होंने तत्कालीन संस्थानके संस्कृतके विद्वान् श्रीतात्याचार्य एवं श्रीनीलमेघाचार्यजीको भेजनेकी अनुमति प्रदानकी और मुझे प्रोत्साहित किया। द्वितीय दर्शनसे मैं वन महाराजजीके परिचयमें आया। १९६० ई० में मैंने वन महाराजजीके ही शोध विभागसे अन्वेषण कार्यकी इच्छा प्रकटकी, श्रीमैत्रा साहबने अपनी स्वीकृति मुझे प्रदानकी तथा श्रीमद्भागवतपर योजना सूत्र तैयार करके आगरा विश्वविद्यालय प्रेषित किया गया। कुछ मास उपरान्त वि० वि० से ज्ञात हुआ कि श्रीमैत्रा साहब सस्कृतके विद्वान् नहीं हैं दर्शन के विद्वान् हैं अतः अनुमति प्राप्त नहीं हुई।

१९६३ ई० में श्रीकिशोरीरमण महाविद्यालय में संस्कृत परिषद्के उद्घाटन हेतु श्री B. H. वन महाराज पधारे और मुझे संस्कृत वक्ताके लिये आमंत्रित किया गया। मैं उन दिनों मथुराके सुप्रसिद्ध श्रीद्वारकेशसंस्कृतमहाविद्यालयका प्राचार्य था और आचार्यके छात्रोंको व्याकरण तथा साहित्य पढ़ाता था। स्वामीजी मेरे संस्कृत वक्तव्य को सुनकर प्रभावित हो गये और सम्बद्धताके लिये उनके संकल्पको बल मिला उन्होंने एकान्तमें मुझसे सब जानकारी लेकर कहा कि यदि आप वृन्दावन में अध्यापन कर सकें तो हम एक संस्कृतका कालेज खोल देवें। शोधमात्रके कार्यसे सन्तुष्टि नहीं है, छात्र संख्या नगण्य है. एम. ए. के पठन-पाठनसे हमारी शोध छात्र संख्याका अनुपात ठीक रहेगा। मैंने पूज्यस्वामीजीको अपनी विवशता बतलाई कि इस विद्यालयकी वृद्धि मेरे पूज्यपितृ चरण (पं श्री श्रीवरजी महाराज) ने की है आजीवन उन्होंने इसी विद्यालय में पढ़ाया, नगरका आचार्य तक स्वीकृत यह प्रथम महाविद्यालय है, मैं भी १९५९ से यहाँ प्राचार्य हूँ, आदि-आदि, पूज्यस्वामीजीने छोटे-बड़ेकी व्याख्या समझाते हुए और विद्यालयमें कार्य करते समय ही यहाँ कार्य करने पर मुझे अपनालिया और ३ छात्रोंसे संस्कृत एम. ए. की पढ़ाई यहाँ प्रारम्भकी, ३ छात्र ही दर्शन एम. ए. में थे, कुल संख्या ६ छात्रोंकी थी, शोधके कतिपय छात्र पृथक् थे जिनमें ३-४ विदेशी भी थे।

आंग्ल महाविद्यालयके अनुभव प्रारम्भ हुए और शोधकी प्रवृत्ति बढ़ी तथा 'श्रीमद्भागवतके टीकाकार' विषयपर पी-एच. डी. की उपाधि आगरा विश्वविद्यालयसे मुझे प्रदानकी गई। पू० स्वामीजीने उत्साह प्रदान करने हेतु एक स्वागत समारोहका आयोजन किया तथा समग्र प्राध्यापकोंके समक्ष मेरे कार्यकी प्रशंसा करते हुए, 'अर्थोऽयं ब्रह्मसूत्राणाम्' भागवत पुराण ब्रह्मसूत्रोंका अर्थ है, विषयपर कार्य करनेके लिये प्रोत्साहित किया और यह भी कहा कि भागवतमें कुछ सूत्र तो मिलते हैं जैसे प्रथम श्लोकमें 'जन्माद्यस्ययतः' आदि परन्तु सब सूत्र कहीं नहीं मिलते यदि इन्हें ढूंढ लिया जाय तो चैतन्य महाप्रभुकी धारणा की भी पुष्टि हो जायगी और मुझे बड़ी प्रसन्नता होगी। मैंने विषय गम्भीरताको न समझकर प्रतिज्ञाकी कि में इस महनीय क्षेत्रमें अवश्य अनुसन्धान करूँगा। १९६८ के पश्चात् मैं इस कार्यमें दिन-रात जुट गया और अनेक आभ्यन्तर-बाह्य-बाधाओंके १९७३ ई० में मुझे डी. लिट्की उपाधि मथुरा जनपदमें संस्कृतमें प्रथम प्राप्त करनेका भी गौरव मिल गया। पूज्य स्वामीजीको जो प्रसन्नता हुई उसे शब्दोंमें व्यक्त करना कठिन है वे मेरे देशमें और विदेशमें जैसे प्रशंसक बन गये हों सर्वत्र मुझे वे स्मरण करते और अपने भाषणोंमें मुझे शुभाशीष प्रदान करते। डी. लिट्. के विषयकी चर्चा आवश्यक थी क्यों कि इस कार्यमें पूज्य स्वामीजी ही सब कुछ रहे हैं।

प्रकाशनकी बात—पी-एच. डी. का मेरा शोध प्रबन्ध प्रकाशित हुआ तो हाथों-हाथ बिक गया, तब मुझे ज्ञात हुआ कि इसमें मुझे द्रव्य कुछ भी नहीं मिला सब प्रकाशकके पास पहुंच गया है, मैंने स्वतः प्रकाशनकी योजना बनाई और चि० सहदेवकृष्णने उसमें पूरी शक्ति विनिमयकी है, अनेक ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं। इस ग्रन्थके प्रकाशनमें पर्याप्त द्रव्यकी आवश्यकता थी अतः प्रकाशन सम्भव नहीं हुआ। एक बार **पूज्यपाद स्वामी अखण्डानन्दजी सरस्वती महाराजजीने** इस ग्रन्थका अवलोकन किया और इसके शीघ्र प्रकाशनकी आज्ञा दी मैंने द्रव्यकी व्यवस्थाकी ओर जब ध्यान आकृष्ट किया तो पूज्य स्वामीजीने अविलम्ब सहायताकी व्यवस्था कर दी शेषके लिये पं० देवधरजी शास्त्रीजीने विरला बान्धवोंसे सहयोगका वचन दे दिया। आज इसके प्रकाशन का सारा श्रेय पूज्य **स्वामी श्रीअखण्डानन्दजी महाराजको** ही है जो ऐसे सत्कार्योंमें, विद्वानोंकी सहायताको सर्वज्ञ सन्नद्ध रहते हैं। में उनके लिए तथा ट्रष्टके लिए धन्यवाद प्रदान करता हूँ।

जिन विद्वानोंने मुझे प्रत्यक्ष-परोक्ष सहायता दी है अपनी सम्मतियाँ प्रदानकी हैं उनके प्रति आभार प्रकट करता हूँ—सन्त बाबा श्रीकिशोरीदासजी महाराज; गौड़ीय

वैष्णवाचार्य श्रीरसिकानन्दजी वन-महाराज, (वर्तमान संस्थानके अध्यक्ष) श्रीप्रभाकर नारायण कवठेकर अध्यक्ष केन्द्रीय संस्कृत बोर्ड डा. मण्डन मिश्र, प्राचार्य लालबहादुर शास्त्री विद्यापीठ, डा. सी. आर. स्वामीनाथन उपपरामर्शदाता—शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार का विशेष आभारी हूँ जिन्होंने अपने परामर्श एवं शुभाशिषोंसे मेरा उत्साह-वर्धन किया है।

विद्वज्जन यदि अलभ्य एवं अनुपम शोधसे सन्तुष्ट हुए तो श्रम सफलता निश्चित ही है। मैं इस ग्रन्थ के प्रशंसक परीक्षकोंका भी आभारी हूँ जिन्होंने मुक्त कण्ठसे इसकी प्रशंसाकी ओर श्रमकी सराहना की। अन्तमें मैं अपने पूज्य पितृ चरणोंको नमन करता हूँ जिनकी कृपासे ही यह दुस्तर पारावार पार कर सका। मेरे जन्मदाता और विद्यादाता होनेके नाते मेरे पास कुछ लिखनेको शब्द भण्डार भी नहीं है अतः हृदयसे चरणोंमें पुनः प्रणामाञ्जलि समर्पित है। श्रीकृष्ण सतसंग भवन प्रकाशनने इसके प्रकाशनका भार ग्रहण कर वस्तुतः मेरा भारतो लघु कर ही दिया इसके वितरण और अन्य ग्रन्थोंके प्रकाशनके लिए भी पथ-प्रशस्त किया है।

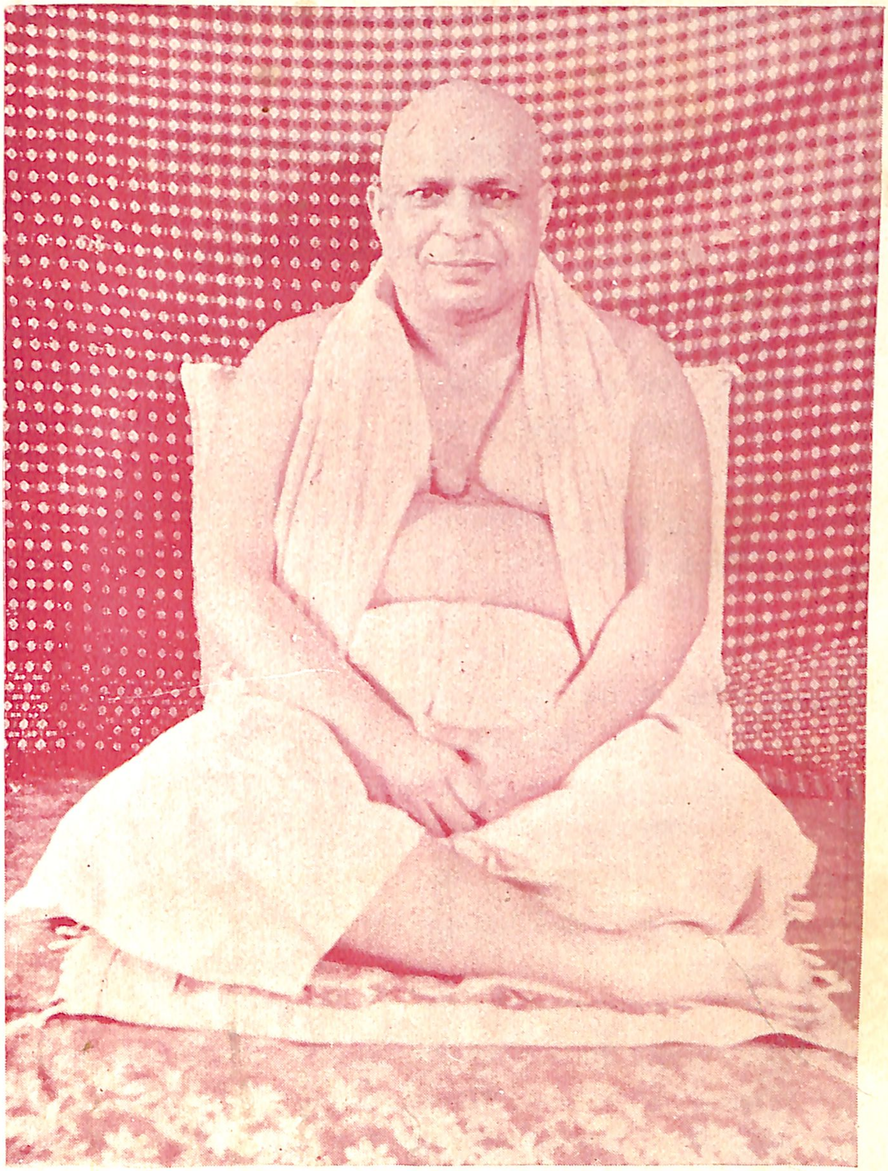
मैं मयूर प्रेसके अधिपति श्रीराजेन्द्रसिंह एवं मुद्रकगणों को भी धन्यवाद प्रदान करता हूँ जिनकी कुशल कलाके कारण यह ग्रन्थ सुन्दर और नयनाभिराम बन सका है।

गंगादशहरा २०४१

विद्वदाश्रव :

—वासुदेवकृष्ण चतुर्वेदी





स्वामी श्रीअखण्डानन्द सरस्वती

केन्द्रीय संस्कृत मण्डल शिक्षा मन्त्रालय नईदिल्लीके
अध्यक्ष
डा० प्रभाकरनारायण कवठेकरकी-
शुभसम्मति

मथुरा निवासी डा० वासुदेवकृष्ण चतुर्वेदी द्वारा लिखित ब्रह्मसूत्र, उपनिषद् एवं भागवत नामक ग्रन्थको पढ़ा। इसमें विद्वान् लेखकने भागवत तत्वके श्रुतिसङ्गत अर्थका संशोधन किया है। ब्रह्मसूत्रके भाष्योंकी परम्परा दिव्य रही है किन्तु चैतन्य प्रभुके अनुसार श्रीमद्भागवत ग्रन्थ स्वयं ही श्रुतिके भाष्यके रूपमें अवतरित हुआ है। डा० चतुर्वेदीजीने इस मर्मको आत्मसात् करनेके उपरान्त ही ग्रन्थकी रचनाकी है।

प्राक्कथनमें किसी लौकिक पीड़ा-बाधादिसङ्कटका पारम्परिक पारायण लेखकने नहीं किया प्रत्युत उपनिषद्के पर्याय, वेदके पर्याय आदिकी गवेषणात्मक चर्चा साधार दी गई है, भागवतमें ऋग्वेदका प्रभाव परिलक्षित किया गया है।

श्रीमद्भागवत ब्रह्मसूत्रोंका अकृत्रिम भाष्य है, इस उक्तिसे मैं अत्यन्त प्रभावित हुआ। वेद स्वयं अकृत्रिम हैं। उनका ऐसा उत्स्फूर्त तथा अकृत्रिम भाष्य भागवतके रूपमें प्रकट हुआ। इसीलिए किसी मौलिक ग्रन्थके रूपमें ही उसकी प्रतिष्ठा है। क्योंकि ग्रन्थ अकृत्रिम है तो वह स्वयं भगवान्की अभिव्यक्ति ही है। अपौरुषेय वेदका भाष्य पुरुषोत्तमीय अभिव्यक्ति है।

डा० चतुर्वेदीने इस दिव्यज्ञानकी परम्पराको सरल भाषामें व्यक्त कर दिया है। उपनिषद्की परम्पराका विकास भागवतके रूपमें देखकर लगता है कि ब्रह्मसूत्रकी गङ्गाका ही यह प्रवाह विभिन्न धाराओंके रूपमें दर्शन साहित्यके क्षेत्रमें प्रवाहित है।

इस ग्रन्थके द्वारा नये रूपमें दार्शनिक परम्पराको हम समझ सकेंगे और इस तथ्यकी ओर उन्मुख होंगे कि अपौरुषेय वेदोंके प्रतिपाद्य श्री पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्णका वह तत्त्व है जो लोक मङ्गलकारी ही सिद्ध हुआ है। मुझे विश्वास है, इस विशाल परम्पराके 'दर्शन' से पाठक लाभान्वित होंगे तथा उत्तम ग्रन्थकी कोटिमें इसे विद्वान् लोग रखेंगे।

दि० १३-१०-१९८३ —प्रभाकर नारायण कवठेकर

प्राच्यदर्शन महाविद्यालय, वृन्दावनकी प्रबन्ध समितिके अध्यक्ष, गौड़ीय वैष्णवाचार्य १०८ श्री स्वामी रसिकानन्द वनमहाराज की—

शुभसम्मति

A few words of appreciation

Dr. V. K. Chaturvedi. a widely reputed scholar in Sanskrit and Hindi, is the Author of the work which is unique in the sense that so far no one has so lucidly and scholaıly interpreted the Bhagavatam as the true meaning of the aphorisms of the Brahma Sutra. Ho was led to this path of Scholasticism. so far practically untouched, by the self realised Saint Dr. Swami B. H. Bon Dev Goswami Maharaj. He was the fiıst torch bearer of the Divine Love of Sri Krishna Chaitanya in particular together with the Spiritual heritage of India in general to the cultured Section of the people of Europe and America. Dr. Chaturvedi's scholasticism has turned a wonderful turn with the blessings of Swamiji which has been clearly vivid in this wonderful work of his, which, I believe, will attruct the admirable attention of those who have so far felt the want of interpretation of the Bhagvatam in the line as stated above. Dr. Chaturvedi's outlook is based on Bhakti cult and the followers of the Bhakti school will find a long felt want removed in this most valuable treatise.

I do feel that his is a work which will certainly bespeak of its merit and the author willadue have appreciation from the clite of the Society. I do hope the other valuable products from the vare capacities, he is possessed of.

—Swami Rasikanand Vana

व्रजके प्रसिद्ध गौड़ीय सन्त, भागवतके मर्मज्ञ विद्वान्, दार्शनिक बाबा श्रीकिशोरीदासजी महाराजकी-
शुभसम्मति

मैंने डाक्टर श्रीवासुदेव कृष्ण चतुर्वेदीजी द्वारा लिखित एवं डी. लिट्. की उपाधिके लिए स्वीकृत शोध प्रबन्धकी पाण्डुलिपिका आद्योपान्त अवलोकन किया। आपने अपने शोध प्रबन्ध "उपनिषदों और ब्रह्मसूत्रोंके परिप्रेक्ष्यमें श्रीमद्भागवतका अध्ययन" विषयक सामग्रीका जो गवेषणात्मक सङ्कलन एवं समालोचन प्रस्तुत किया है वह निःसन्देह आपकी सर्वातिशायिनी शेमुषीका परिचायक है। प्रस्तुत शोध प्रबन्धका प्रकाशन न केवल संस्कृत वाङ्मयके उत्थानमें सहयोगी होगा अपितु सम्पूर्ण विश्वका सम्पूर्ण साहित्य इससे लाभान्वित एवं गौरवान्वित होगा।

दि० १५-५-१९७७ ई०

—*बाबा किशोरीदास*

राधामाधव कुटीर, पुराना कालीदह,

वृन्दावन

परम भागवत पं० कृष्णशंकरजी शास्त्री भागवत विद्यापीठ, अहमदाबादकी
शुभसम्मति

परम सारस्वत शास्त्रिवर्य श्रीवासुदेवजी चतुर्वेदीजी,

"उपनिषदों और ब्रह्मसूत्रोंके परिप्रेक्ष्यमें श्रीमद्भागवतका अध्ययन" प्रबन्धका आलेखन कर आपने श्रीमद्भागवतकी दिव्य उपासना की है। भाष्यकारोंने तत्वपूर्ण विवेचनोंसे ब्रह्मसूत्रोंके और उपनिषदोंके तात्पर्यका यद्यपि निरूपण किया है और लोकोत्तर चिन्तन दर्शाया है परन्तु जो प्रतिपाद्य अर्थ श्रीवादरायणजीको अभीष्ट है वह तो—स्वयं व्यास महर्षिजीने श्रीमद्भागवतजी द्वारा दर्शाया है।

आपने इस क्षेत्रमें स्तुत्य अध्ययन-चिन्तन और निदिध्यासन करके सर्वोपभोग्य और माधुर्य पूर्ण चिन्तन अभिव्यक्त किया है। ऐसे चिन्तनशील ग्रन्थको पुस्तकालय अवश्य संग्रह करके आदर करें। मैं आपके श्रमकी सफलता चाहता हूँ।

आपका

—कृष्णशंकर

-: विषय सूची :-

शुद्धि पत्र

पृष्ठ	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	अशुद्ध	शुद्ध
१	मुह	मुहु	१५४	अन्यार्थ	अन्यार्थं
२	वश	वंश	१५७	दुदुभूतं	उद्भूतं
८	ऋग	ऋग्	१५८	चन्द्रमभः	चन्द्रमसः
१०	मध्यो	मेध्यो	१५९	न्यस्पेद	न्यस्येद
१५	वत	बत	१५६	नृमेय	नुमेय
२५	जायगी	जाँयगी	१५६	असन्निबाताद्— यन्त्व	यन्त्य
३१	त–द्	तावद			
३२	पट्टम	पट्टम्	१६१	इतरख्य	इतरव्य
३२	वर्ण	चर्ण	१६४	तैपसेब	तपसेव
६८	कुत	कुतः	१६५	तवापि	तत्रापि
६९	कार्य	कार्यं	१६५	कमं	कर्म
६६	पूवं	पूर्वं	१६७	एव	एवं
८२	वृंहितः	बृंहितः	१६७	महतोस्त्व	महतस्त्व
८४	ब्रह्म विद्	विद् विभुः	१६८	यदा	यहा
८७	मैव	शैव	१६६	कूटस्थ	भा० ११-३-३६५
९४	निष्पन्तेः	निष्पत्तेः		दृष्टय	दृष्टचा
१०१	रूपः	रूपाः	१७०	वधर्म्याच्च	वैधर्म्याच्च
१०५	श्रया	श्रयाः	१७०	स्त्ध्य	स्तयध्य
१११	वंघ्रि	वँघ्रि	१७२	शक्ति	शक्तिः
१११	सूर्यो	सूर्यो	१७८	लब्धि	लब्धि
११३	बभूवु	बभूवु	१८७	मन्नसो	मम्भसो
११५	सूर्यं	सूर्य	१८९	मुक्पासते	मुपासते
११६	खल्विद	खल्विदं	१८६	त्यक्त्या	त्यक्त्वामृतंस
११७	अश्	अश्व	१९२	भारोहा	मारोहा
१२०	बबन्ध	ववन्ध	१९५	योगोऽष्य	योगोऽथ
१३२	तान्निष्ठस्य	तन्निष्ठस्य	२०६	नन्तन	नन्तेन
१३६	दृट्ष्या	दृष्टचा	२०७	तेजत्वात्	
१३७	कर्त	कर्तॄ	२१०	प्रशिष्या	प्रतिष्यै

पृष्ठ	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	अशुद्ध	शुद्ध
२१२	नान्त	नान्तं	३१३	सदैव	सदेव
२२२	प्रियान्	प्रेयान्	३३७	बस्त्व	वस्त्व
२३३	परमार्शं	परामर्शं	३४५	भक्तेख्छो	भक्तेच्छो
२३३	नितः	निलः	३४५	नमोऽस्तते	नमोऽस्तुते
२४१	आत्मनं	आत्मानं	३५०	भव	न्नव
२४१	प्रनुपादि	प्रभुपाद	३५१	कलेर्रोष	कलेर्दोष
२४४	प्रतिष्ठाद्य	प्रतिष्ठाप्य	३५३	वाः	वा
२४६	स्यप्येव	स्याप्येव	३५४	सृग	मृग
२४७	वद्यें:	वधेः	३५५	पादानाम्	पादानम्
२५३	प्राह्वः	प्राह्णः	३५९	गुहामये	गुहाशये
२५५	च्छुतंः	च्छ्रुते	३६०	कृत्स्नय	कृत्स्नम्
२५५	तद्वयदेशः	तद्व्यपदेशः	३६१	ग्राह्य	ग्राह्या
२७८	वसिण्ठ	वसिष्ठ	३६७	निगाम	निगम
२८७	मवकृत्रिम	मकृत्रिभ	३८२	तात्वविदस्तावं	तत्त्वविस्तत्त्वं
२८७	विस्तीर्णत्व	विस्तीर्णत्वे	३८४	तोषिण	तोषणी
२८७	पृंहणात्मकं	बृंहणात्मकं	३८४	विद्वान्	विद्वान्,
२८७	मूलं	मलं	३८४	प्रहर्षषी	प्रहर्षणी
३०६	प्रतिष्ठ्या	प्रतिष्ठया	३८५	भगवत्	भगवल्
३०६	मुवन	भुवन	३८५	रामानुजीव	रामानुजीय
३०७	निर्गण	निर्गुण			

मंगलाचरणम्

जन्माद्यस्य यतोऽन्वयादितरतश्चार्थेष्वभिज्ञः स्वराट्
तेने ब्रह्म हृदा य आदिकवये मुह्यन्ति यत्सूरयः ।
तेजोवारिमृदां यथा विनिमयो यत्र त्रिसर्गोऽमृषा
धाम्ना स्वेन सदा निरस्तकुहकं सत्यं परं धीमहि ।।

कस्मै येन विभासितोऽयमतुलो ज्ञानप्रदीपः पुरा
तद्रूपेण च नारदाय मुनये कृष्णाय तद्रूपिणा ।
योगीन्द्राय तदात्मनाथ भगवद्राताय कारुण्यतः-
तच्छुद्धं विमलं विशोकममृतं सत्यं परं धीमहि ।।

धर्मः प्रोज्झित कैतवोऽत्र परमो निर्मत्सराणां सताम्-
वेद्यं वास्तवमत्र वस्तु शिवदं तापत्रयोन्मूलनम् ।
श्रीमद्भागवते महामुनि कृते किं वा परैरीश्वरः
सद्यो हृद्यवरुध्यतेऽत्र कृतिभिः शुश्रूषुभिस्तत्क्षणात् ।।

श्रीमद्भागवतं पुराणममलं यद् वैष्णवानां धनम्
यस्मिन् पारमहंस्यमेकममलं ज्ञानं परं गीयते ।
तत्र ज्ञान-विराग-भक्तिसहितं नैष्कर्म्यमाविष्कृतम्
तच्छृण्वन् विपठन् विचारणपरो भक्त्या विमुच्येन्नरः ।।

निगमकल्पतरोर्गलितं फलं शुकमुखादमृतद्रवसंयुतम् ।
पिबत भागवतं रसमालयं मुहुरहो रसिका भुवि भावुकाः ।।

卐

समर्पण

बाल्यत्वमें हार्दिक स्नेह रससे सम्पुष्ट कर, किशोरत्वमें कटु प्रतीयमान नव्यव्याकरणकी अक्षर सम्पत्तिका दानकर, यौवनारम्भमें गार्हस्थ्य सौख्य व्यवस्थित कर, लघुवयमें जीविका हेतु आचार्य पर्यन्त विद्यालयके प्रधानाचार्यका पद प्रदानकर निकुंज लीलामें प्रविष्ट मथुरास्थ विद्वन्मुकुट पं० बन्नाजी पौराणिक सूनु श्रीद्वारकेश संस्कृत महाविद्यालय मथुराके प्रधानाचार्य प्रातःस्मरणीय पितृचरण स्व० गुरुवर श्री **श्रीवरजी शास्त्रीके** चरण पंकजोंमें उन्हींकी दीहुई ज्ञान पंकज मालाका एक पंकज—

डी० लिट्-शोधप्रबंध

सादर

समर्पित

"त्वदीयं वस्तुगोविन्द तुभ्यमेव समर्पये"

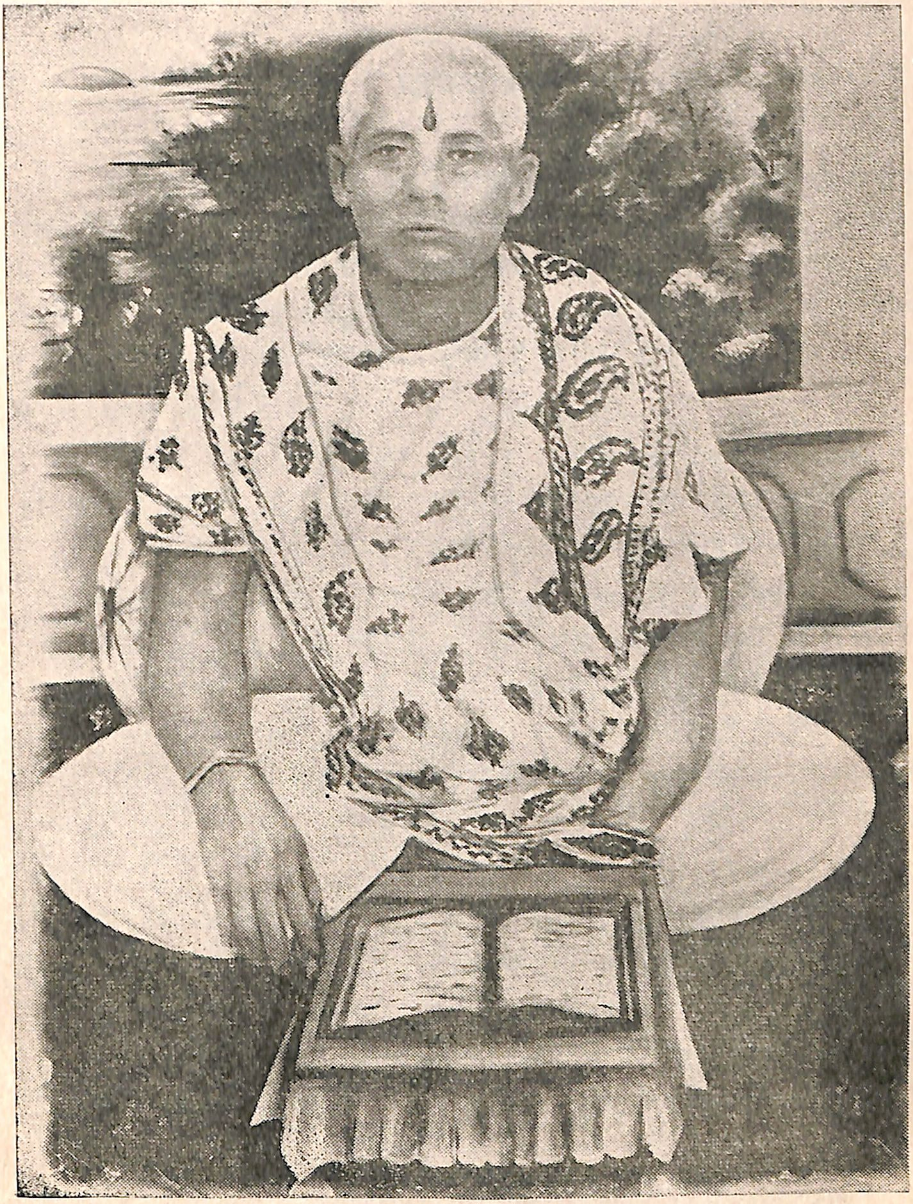
यस्यास्ये निगमागमादिविषयाः सांगाः सदैव स्थिताः
मीमांसे खलु सेविके इव सदाधीते च यस्य स्थिते ।
न्यायव्याकरणादिशास्त्रनिचया यत् मित्रभावं गताः
तस्य श्रीवरशास्त्रिणश्चरणयोर्ज्योतिस्तमो हन्तु मे ॥

⊙ ⊙

न्यायव्याकृतिधर्मशास्त्रगहनज्ञानप्रभावार्जित—
प्राज्यख्यातिबुभुत्सुबोधपटुतादीव्यन्मनीषाजुषाम् ।
श्रीमन्माथुरविप्रवंशजलधीन्दूनां गुरूणां स्मृतौ
विद्वच्छ्रीवरशास्त्रिणां शुभतनुर्ग्रन्थो मुदा प्रार्प्यते ॥

विनीत :

वासुदेवकृष्ण चतुर्वेदी



स्व० पं० श्री श्रीवरजी चतुर्वेदी

प्राक्कथन

श्रीमद्भागवतमें वेद एवं उसके नामोंका विविध प्रकार उल्लेख उपलब्ध होता है। 'श्रुति शब्द' बहुधा वेदका वाचक है किन्तु कहीं-कहीं श्रुति शब्द 'उपनिषद्' के लिये भी आया है।[1] 'वेद शब्द' उपनिषद्के लिये भी भागवतमें पठित है।[2] वेदगीतसे यहाँ सद्योमुक्ति क्रममुक्तिका निरूपण है वह उपनिषदोंमें उपलब्ध है। भागवतकार ने जिन अन्य शब्दोंका उल्लेख किया है वे निम्न हैं।

उपनिषद् के पर्याय :—

नैगम—"ज्ञाने च नैगमम्" भा० ३, ७, ३८ इस श्लोकमें नैगमका अर्थ औपनिषद अर्थ है।[3] वैसे वेद और उपनिषद्का भेद स्पष्ट है **"वेदान् सांगोपनिषदः"** भा० १०, ४५, २३ में स्पष्ट है कि वेद और उपनिषद् दोनों शब्द साथ-साथ पढ़े हैं।

वैसे 'वेद' अपराविद्या है और उपनिषद् पराविद्या है। उपनिषद्के लिए 'रहस्य शब्द' का प्रयोग मनुने किया है।[4] मीमांसाके दो भेद हैं पूर्व और उत्तर। पूर्वमीमांसाकार तो अक्रियार्थक होनेसे उपनिषद्को वेदही नहीं मानता। उत्तर मीमांसाके अनुसार उपनिषद् वेदका अन्तिम भाग है। सायणने भी उपनिषद्को ज्ञान काण्डमें माना है साथही संहिता ब्राह्मणोंको कर्मकाण्डमें। पुराणोंने तो उपनिषद् और वेदकोपृथक्ही माना है।[5] विषयभेदकी दृष्टिसे त्रयी और उपनिषद् दोनोंमें भेद किया गया है।

"त्रय्याचोपनिषद्भिश्च" १०, ८, ४५ इसकी व्याख्या करते हुये श्रीधर स्वामीने कहा है कि कर्मकाण्ड रूपी त्रयीमें इन्द्रादि देवकी पूजा तथा उपनिषद् प्रतिपाद्य विषय 'ब्रह्म' है।

सार—भागवतकारने उपनिषद्का अर्थ 'सार' भी किया है : **"इति मन्त्रोपनिषदंव्याहरन्तम्"** भा० ८, १, १७ यहाँ उपनिषद् 'सारके' अर्थ में है।

१—श्रुति से माण्डूक्योपनिषद् का बोध शिव पुराण ६, १६, ५२

२—भा० २, २, ३७ एते सृती ते नृप वेदगीते

३—भा० दी० ३, ७, ३८ **४—मनु० २, १६५**

५—पुराणगत वेद विषयक सामग्री का समीक्षात्मक अध्ययन

—ले० रमाशंकर भट्टाचार्य

वेद के पर्याय :—

अनुश्रव—यह शब्द केवल भागवतमें वेदके लिये आया है अन्य किसी पुराणमें नहीं। **"गुरोरुच्चारणमनुश्रूयते इत्यनुश्रवोवेदः"** (भावार्थ दी० ३, २५, ३२)

पतञ्जलिने भी अनुश्रव का अर्थ वेद किया है।[1] सांख्यकारिकाकारने भी "दृष्टवदानुश्रविकः" कहा है, जो वेदके अर्थमें है।[2]

आम्नाय—यह शब्द वेद सामान्यके लिये भागवतमें प्रयुक्त है।

"भारत व्यपदेशेनह्याम्नायार्थश्च दर्शितः" (भा० १, ४, २९) तथा **'सर्वाग-माम्नाय महार्णवाय"** (भा० ८, ३, १५) में भी आम्नाय शब्द वेदके लिये है। आम्नायका द्वितीय अर्थ कर्मकाण्ड परक वेदभागके लियेभी आया है—

"मुह्यन्त्याम्नायवादिनः" (भा० ११, ५, ५)

सर्वत्र मन्त्र-ब्राह्मणभागको ही आम्नाय कहा जाता है। अन्य पुराणोंमें यह शब्द क्वचित् ही प्रयुक्त है। किसी किसी विद्वान्ने आम्नायका अर्थ वेद और वेदका अर्थ स्मृति किया है। नागेशभट्टने आम्नयाका अर्थ संप्रदाय किया है।[3]

ऋषि—यह शब्द वेदके लिये प्रयुक्त किया गया है—

"बोध्यमानस्य ऋषिभिः" (भा० २, १०, २२)

पतञ्जलिने गद्य भागको भी ऋषि कहा है। ऋषि शब्दसे मन्त्रका ग्रहण 'परम्परा'से चला आरहा है। शब्दात्मक वेद ऋषि शब्द वाच्य है।

उशती—"उशतीगिरम्"[4] शब्दका प्रयोग भागवतमें है इसका अर्थ करते हुए श्रीश्रीधर स्वामीने 'उशती वेदलक्षणाम्' अर्थ किया है। "श्रुताःगीः" शब्दका प्रयोग केवल भागवतमें ही है अन्यत्र नहीं है।

छन्दः—यह शब्द वेदके लिये प्रयुक्त कियागया है।[5] छन्दःपदसे केवल मन्त्रही गृहीतहो ऐसी सार्वत्रिक विवक्षा पुराणोंमें नहीं है। स्मृतियोंमें भी मन्त्र ब्राह्मण समुदाय अर्थमें छन्दः पद प्रयुक्त हुआ है। मनुस्मृतिके "छन्दांसि" पदकी व्याख्यामें मेधातिथि नामक टीकाकार ने ब्राह्मण समुदायात्मकवेद अर्थ किया है।

मन्त्रार्थक छन्दः शब्दका प्रयोग अष्टाध्यायीमें "छन्दो ब्राह्मणानि" (४, २, ७६ अष्टाध्यायी) में उपलब्ध है। वेदके अर्थमें छन्दः शब्द भागवतमें क्वचित् है।[6]

१—योग सू० १, १५ **२—सांख्य कारिका २**

३—अष्टाध्यायी वार्तिक ४, ३, १२९

४—भा० (४, २, १३) (४, १३, १७) (२, १, ३१) (२, ७, ११)

५—महाभाष्य पृष्ठ २६ **६—पदानिच्छन्दसामहम् भा० ११, १६, १२**

त्रयी—त्रयी विद्या और त्रयी शब्द वेदके लिये भागवतमें प्रयुक्त हुआ है। **प्राणान्मेहृदयात् त्रयी** (भा० ११, १७, १२) **त्रय्या च विद्यया** (भा० १०,-४०, २) **त्रयी प्रोक्तैः** (भा० ४, ३१, १०) **त्रयीमयं** (भा० ४, १४, २१) त्रयी यज्ञ प्रतिपादक है। त्रयीके इस कर्मकाण्डात्मक[1] स्वरूप के कारण ही ज्ञानकाण्डप्रतिपादक उपनिषद् भागसे पृथक् कर—त्रयीका उल्लेख किया गया है। पराविद्यासे पृथक् कर 'त्रयी' का उल्लेख कदाचित् हेयदृष्टिसे भाग० ५, ६, ८ में है। वैसे 'त्रयी'का अर्थ सम्पूर्ण वेद है—

"स्त्री शूद्र द्विजबन्धूनां त्रयी न श्रुतिगोचरा" (भा० १, ४, २५) इसमें अथर्व वेदका भी अन्तर्भाव है।

त्रैवेद्य—पदभी वेदके लिए है।

निगम 'निगमकल्पतरोर्गलितं फलम्' (भा० १, १, ३) में निगम पदका अर्थ वेद है। भाग० ११, २८, ६ मेंभी वेदके अर्थमें है परन्तु 'नैगम' पद उपनिषद्का वाचक है।

पुराण—यद्यपि भागवत में पुराण शब्द से वेद का बोध नहीं है तथापि गरुड़पुराण[2] हरिवंशपुराण[3] में पुराण शब्द का अर्थ वेद किया गया है।

ब्रह्म—वेदके अर्थमें ब्रह्मन् शब्दका पुराणोंमें प्रयोग मिलता है **"पुराणं ब्रह्मसम्मितम्"** (भा० २, १, ८) श्लोकमें ब्रह्मका अर्थ मन्त्र है भागवतमें १, ११, १६ ६, १, १७ में भी मन्त्रके लिये शब्दका प्रयोग प्राप्त होता है।

मन्त्र—मन्त्र शब्दभी वेदवाचक है। **"कविर्भवति मन्त्रज्ञो"** (६, ४,१२)।

बह्वृच्—**बह्वृचैर्गीतम्** (भा० ८, १६, ३८) यह पद केवल ऋग्वेदके लिये आया है।

यजुः—यह पद यद्यपि यजुर्वेदका वाचक है तथापि श्रीधरस्वामीने इसे वेदपरक स्वीकार करते हुए व्याख्यान किया है **"यज्ञोपयोगित्वरूप योगात् सर्वोऽपि वेदो यजुर्वेद इत्युच्यते"**।[4] यज्ञकारक मन्त्र भी कभी कभी यजुः पदसे अभिहित होता है।

वाक्—भागवतमें वाक्तन्त्री शब्दका प्रयोग वेदके लिये है। श्रीधरने वाक् का अर्थ वेद किया है।[5] यह शब्द अन्य पुराणोंमें वेदके लिये प्रयुक्त नहीं है। वैदिक-

---

१—भावार्थ दी० ७ ८ ४५ तथा ६, २, २४

२—गरुड़ पुराण १, ५०, ३४

३—हरिवंश पु० २, २३, १३ पुराणशब्देनात्र वेदोऽभिधीयते 'नीलकण्ठ'

४—भावा० दी० ३, ४, ११ तथा ३, १४, ८, भा० ४, १, ६

५—१,१३,४१

साहित्यमें इसका प्रयोग वेदके अर्थमें है। [१]वैदिक श्रुति शब्दका प्रयोग बहुधा मिलता है।

शब्द—वेदपरक यह शब्द तृतीय स्कन्धमें है।[२] शब्दयोनि पदका अर्थ वेदकर्ता है। ब्रह्मसूत्रोंमें वेदान्त वचनोंको लक्ष्यकर शब्दपद बहुधा प्रयुक्त है। "**शब्दादेव-प्रमितः**" आदि।[३]

शब्द ब्रह्म—का प्रयोगभी भागवतमें है "**शाब्दस्यहि ब्रह्मण एषपन्थाः**" यह पद वेद और ब्रह्मपरक अर्थमें आया है।[४]

शिव—शिव पदका अर्थ प्रायः कल्याण या महादेवके लिये आता है किन्तु वेदपरक भी है "**शिवशूला द्विजातयः**" भा० मा० १, ३६ अन्यपुराणोंसे भी इसकी पुष्टि होती है।[५]

श्रुति—शब्द सर्वत्र वेदके लिये हैं। यह शब्द उपनिषद्के लियेभी हैं। लोकप्रचलित प्रवाह या परम्पराके लियेभी यह शब्द प्रचलित है।

समाम्नाय—वेद मंत्रका लक्ष्य करके प्रयुक्त है।[६]

वेदसंख्या—भागवतमें वेदका एकवचनमें प्रयोग है और वेदके चार भागोंका भी उल्लेख है जहाँ एकवचन प्रयोग है वहाँ आध्यात्मिक भावना है :—"**एकएव-पुरावेदः**। (भा० ६, १४, ४८)। वेद के ४ भाग हैं—

"**व्यदधात् यज्ञसन्तत्यै वेदमेकं चतुर्विधम्**" (भा० १, ४, १६)। वेदका विभाजन यज्ञकी परिपूर्णताके लिये हुआ। भागवतकारने इस विभागका यह क्रम रखा है "**ऋग्-अथर्व-यजुः और साम**"(१२, ६, ५०)। आश्रम चार हैं, धर्मके पादभी चार हैं, अतः वेदभी चार हैं।

विषय—भागवत के अनुसार वेद में प्रमुख विषय निम्न हैं—

शास्त्र, इज्या, स्तुति, प्रायश्चित्त।[७] इस श्लोकमें ऋग यजुः साम अथर्वका क्रम उपलब्ध है जो पूर्वसे भिन्न है।

१—बृहदा० ५, ८ तथा शा० पर्व ४, ७, २६ २—भा० ३, ४, ३२

३—ब्र० सू० ३,१, २५ ३,४, ३१ ४—भा० १०,२०,४ २,२, २ ११,३, २१।

५—(क) ब्रह्म २, ३०, ११ (ख) मत्स्य ४७, २२५ (ग) हरिवंश ३, ३, १२ (घ) कूर्म १, २६, १२ (च) भा० ३, २२, १५

६—१०, २५, ३२ १०, ८७, ४३ में समाम्नाय और उपनिषद् का एकत्र पाठ है। समाम्नाय—वैदिक शब्द समुदाय (यास्क निरुक्त)

७—भा० ३, १२, ३७

शास्त्र—जो मन्त्र 'होता' द्वारा उच्चारित किया जाता है जिसका गान नहीं किया जाता है वह 'शास्त्र' कहलाता है।

इज्या-यज्ञकर्म, प्रायश्चित्त-ब्रह्मचर्य, स्तुतिस्तोम-स्तुतिमय मंत्रोंके विशिष्ट समुदाय स्तोम कहलाते हैं। भागवत ने इस कारणही दोनोंमें समास कर दिया है।

ज्ञाता—भागवतके अनुसार ऋग्वेदके ज्ञाता शौनक[१] और सौभरि[२] ऋषि थे। ऋग्वेदका उपवेद 'आयुर्वेद' है।[३]

यजुर्वेद—यजुष् का अर्थ 'यज्ञ' है।[४] भागवतमें निगदाख्य यजुर्गणका[५] उल्लेख है परन्तु निगद यजुःका उल्लेख क्यों है यह चिन्त्य है।

पूर्वमीमांसा के २, १, ३८ सूत्रमें निगदके यजुर्मयत्वका विचार किया है। यजुर्वेदका सम्बन्ध इज्यासे है[६]। यजुः वाक्य पाँच प्रकारके हैं। आश्रावय आदिका उल्लेख श्रीधर स्वामीने किया है।[७] ये तैत्तरीय संहितामें भी है। (तै० १, ६, ११, १)

यज्ञानुष्ठान सम्बन्धी विवरण अन्य स्थलों पर भी है[८]—

यजुर्वेदका वेत्ता "वैशम्पायन" था। इन्हींका शिष्य "याज्ञवल्क्य" था यह भी इसका ज्ञाता था और गुरु शिष्यके झगड़ेके फलस्वरूपही कृष्ण-शुक्ल भेद हुआ।

उपवेद—यजुर्वेदका उपवेद 'धनुर्वेद' है।[९]

सामवेद—के लिये भागवतमें छन्दोगसंहिता शब्द मिलता है।[१०] स्तुति-स्तोम भी साम वाचक है। (६।८।२९)

ज्ञाता—इसका ज्ञाता जैमिनि मुनि था। **"जैमिनेः सामगस्यासीत्"** (भा० १२, ६, ७५)। **विषय**—सामवेदका गान देवोंको प्रसन्न करनेके लिये किया जाता है।

उपवेद—साम का उपवेद 'गान्धर्ववेद' है।

अथर्ववेद—भा० १२।६।५३ में आंगिरसी संहिताका उल्लेख हैं। ज्ञाता—**"अथर्ववित् सुमन्तुश्च"** (भा० १२, ७, १) के अनुसार "सुमन्तु ऋषि" इस वेदका ज्ञाता था।

विषय-ब्रह्मत्वसम्पादन ३।१२।३७। शान्ति कर्मकेलिये अथर्ववेदकी आवश्यकता है। (भा० ३।२४।२४)

१-२—भा० १, ४, १ तथा भा० ९, ६, ४५
३—भा० ३, १२, ३८ ४—भा० दी० ३, ४, ८ ५—भा० १२, ६, ५२
६—भा० ३, १२, ३७ ७—भा० दी० ४, ७, ४१ ८—भा० १०, ७५, ८, १९
९—भा० ३, १२, ३८, ४, ५, १४–१५
१०—भा० १२, ६, ५३ ९, १, १५–१७
११, १८, ७–८

उपवेद—'स्थापत्यवेद' अथर्ववेद का उपवेद है ।[१]

भागवतमें विभिन्न सूक्त

पूरूरवा उर्वशी सूक्त—ऋग्वेदके १०, ९५ में है इसकी प्रतिध्वनि श्रीमद्-भागवतमें है । राजा पुरूरवा उर्वशीके प्रेममें व्याकुल होकर उसका पीछा करता है । **"अहो जाये तिष्ठतिष्ठ"** श्लोक ज्योंका त्यों वेद और भागवत दोनों स्थानोंमें उपलब्ध है ।

यज्ञघ्न यजुः सूक्त—**"अपहृतं रक्ष"** मंत्र यज्ञघ्न यजु है जो भागवत ४, ४, ३२ में है तथा माध्यन्दिन संहिता १, १६ में पठित है ।

वार्तघ्न लिंग मन्त्र—भागवत ६, १२, ३४ में है तथा माध्यन्दिन संहिता १८, ६८ में है । प्रत्यंगिरससूक्त, पौष्टिक सूक्तभी भागवतमें उपलब्ध हैं, अघोरमंत्र, ईशानमंत्र, तत्पुरुषमंत्रभी भागवतमें हैं ।

वैश्वदेव सूक्त—यह ऋग्वेदका सूक्त है ।[२] भागवत के कथानकके साथ यह ज्योंका त्यों मिलता है । भागवतके अनुसार नाभागको पिताने विभाजनमें कुछ नही दिया किन्तु वैश्वदेव सूक्तके मन्त्र कंठस्थ कराकर यज्ञमें भेजा वहाँ यज्ञके अवशेष द्रव्य को लेनेके लिये आगे बढ़ा और समस्त द्रव्य बांधकर चलने लगा तथा तब एक काला पुरुष आया और उसे रोककर पूछा । नाभागने अपना परिचय दिया और अपने पिताके पास लौटकर उस काले पुरुषका परिचय दिया । पिता समझ गये और उन्होंने कहाकिवे रुद्र भगवान् हैं उन्हीका अधिकार यज्ञकी वस्तुओं पर होता है । वह लौटकर गया और समग्र वस्तु वहाँ रखदीं, रुद्रने प्रसन्न होकर उसे लौटादीं और आशीर्वाद दिया ।[३]

हरिश्चन्द्रोपाख्यान—इस भागवत कथाका मूल ऐतरेयमें है । आचार्य विजयध्वजने उसका तारतम्य वर्णित किया है । राजा हरिश्चन्द्रके पुत्रको वरुण लेने आता है, राजाका उसमें मोह पड़ता है वह वरुणसे प्रार्थना करता है कि—

"यदापशुर्निर्दशःस्यादथ मध्यो भवेदिति"[४]

जब पशु दश दिन पूरे करले तभी बलिके योग्य होगा । वरुण दस दिन बाद आते हैं तब राजा प्रार्थना करता है कि बच्चेके दाँत निकलने पर बलियोग्यता होगी, वरुण चला जाता है दाँत निकलने पर पुनः वह आता है और 'बलि' माँगता है, राजा प्रार्थना करता है—कि दाँत गिरने पर बलि दूँगा । काल बीतता गया जब

१—भा० ३, १२, ३८

२—ऋग्वेद १०, ६१, ६३ तै० सं० ३, १, ६

३—भा० ६, ४, १, १४

४—भा० ६, ७, १०

राजाका पुत्र किशोरावस्थामें आया और उसे ज्ञात हुआ कि मुझे 'बलि' दिया जायगा तो वह वनमें भागगया। पश्चात् शुनःशेप नामक मुनिपुत्रको लेकर आया और विश्वामित्र के कथनानुसार शुनःशेपने मंत्र पढ़ा और वरुणने प्रसन्न होकर उसे वरदान दिया और राजा हरिश्चन्द्रका शरीरभी स्वस्थ कर दिया।

विष्णु सूक्त—भागवतमें विष्णु सूक्तकी ऋचा मिलती है—

विष्णोर्नु कं वीर्याणि प्रवोचम् यः पार्थिवानि विममे रजांसि।[1]

भागवतमें इस प्रकार है—

विष्णोर्नु वीर्यगणनांकतमोऽर्हतीह
यः पार्थिवान्यपि कविर्विममे रजांसि।[2]

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचनसे यह स्पष्ट है कि "श्रीमद्भागवत" मात्र पुराण नहीं है अपितु वह वेदकी उपनिषदोंकी गूढ़ता एवं दुरूहता दूर करने वाली कुञ्जिका है। वैदिक राशिकी जैसी मीमांसा इस ग्रन्थमें उपलब्ध है, अन्यत्र दुर्लभ है तभी श्रीमद्भागवत को 'श्रुत्यर्थस्तुपदेपदे' का गौरव प्राप्त है।

श्रीमद्भागवत में ब्रह्मसूत्र—

श्रीमद्भागवत ब्रह्मसूत्रोंका अकृत्रिम भाष्य है तथापि ब्रह्मसूत्रोंकी क्रमबद्ध अध्याय, पाद या अधिकरणक्रमसे यह व्याख्या भागवत में उपलब्ध नहीं है। नियमतः अद्यावधि 'भाष्य' सूत्रोंके क्रमसेही लिखे प्राप्त होते हैं किन्तु श्रीमद्भागवतमें ऐसी आशा सर्वथा व्यर्थ है। ब्रह्मसूत्रोंके तात्पर्यका बोध भागवतमें उपलब्ध होगा वह कहीं अध्यायमें सीमित है, कहीं भागवतकी श्लोकांशकी व्याख्यामें ही परिपूर्ण है, कहीं ब्रह्मसूत्रका नाम्ना निर्देश है, कहीं सूत्रका पर्यायवाची शब्द है अतः इसका अध्ययन अत्यन्त ही जटिल समस्याके रूपमें सामने आता है। संक्षेपमें इस ग्रंथमें ब्रह्मसूत्र निम्नलिखित रूप में प्राप्त हैं—

१—अविकल रूप में—अर्थात् ब्रह्म सूत्र ज्योंके त्यों श्रीमद्भागवतके श्लोकों में प्राप्त हैं जैसे "**जन्माद्यस्य यतः**" ब्रह्मसूत्र १, १, २ और "**जन्माद्यस्य यतः**" भा० १, १, १। **शास्त्रयोनित्वात्** ब्रह्मसूत्र १, १, ३ और भागवत "**शास्त्र योनिः**" आदि।

२—ब्रह्मसूत्रों का ईषत्परिवर्तन—कहीं कही ब्रह्मसूत्रोंके शब्दोंमें थोड़ा परिवर्तन किया गया है जैसे "**ज्योतिश्चरणाभिधानात्** ब्र० सू० (१, १, २४)" "**त्वं हि ब्रह्म परं ज्योतिः**" भा० १, २, २६। **अत एव प्राणः ब्र० सू० १, १, २३, प्राणाः भा० २, १०, १६** आदि।

१—ऋग्वेद वि०सू० १ २—भा० २, ७, ४०

३—क्वचित् ब्रह्म सूत्रके पदोंमें पर्याय या परिवर्तनभी है यथाः—

ईक्षतेर्नाशब्दम् १, १, ५-भा० १०, ८७, ५० में ईक्षतेके स्थानपर "**योऽस्योत्प्रेक्षक**" शब्द मिलता है। आकाशके स्थानपर पर्यायवाची शब्द 'सम्' का प्रयोग है जैसे—"**आकाशस्तल्लिंगात्**" ब्र० सू० १, १, २२ और भा० १०, ४०, २ में "खमादिः"। 'अदन' के लिए पर्यायवाची शब्द 'खादति' प्रयोग—,

स्थित्यदनाभ्यां च ब्र० सू० १, ३, ७ "**खादति पिप्पलान्नम्**" भा० ११, १२, ६

४—क्वचित् शब्द साम्य मात्र ही है—"वैश्वानरः साधारण शब्द विशेषात् ब्र० सू० १, २, २५ तथा भागवत "**वैश्वानरं याति**" भा० २, २, २४ में वैश्वानर शब्द साम्य है। भूमा प्रसादात् ब्र० सू० १, ३, ८' भूमापरमेष्ठिनां भा० १०, २६, ५६ में भूमा का प्रयोग है।

५—क्वचित् सूत्रांशोंका प्रयोग है—

"अन्तर्याम्यधिदेवादिषु" ब्र० सू १, २, १८ का कई श्लोकोंमें प्रयोग उपलब्ध है, **'अन्तःपुरुषरूपेण'** भा० ३, २६, १८ में अन्त शब्दका "**योऽसावेवाधिदैविकः**" में आधिदेवका और आदि शब्दसे अध्यात्मका प्रयोग "**योऽध्यात्मिकः**" में उपलब्ध होता है। इस प्रकार शब्द साम्य का निर्देश तो भागवत में उक्त सूत्रमें प्राप्त होता है अर्थविस्तारमें प्रायः सभी ब्रह्मसूत्रों का अध्याय पाद एवं सत्रानुसारी अर्थ 'उपनिषदों की अर्थराशि और भागवत' खण्डमें द्रष्टव्य है। शब्द साम्य और अर्थसाम्यको देखकर कोई विद्वान् यह ज्ञात कर सकेगा कि श्रीमद्भागवत वस्तुतः उपनिषदोंके सारभूत ब्रह्मसूत्रोंका भाष्य है। अतः "**अर्थोऽयं ब्रह्मसूत्राणाम्**" यह कथन सर्वथा उपयुक्त है।

भागवतमें औपनिषदिक तत्व

उपनिषदोंकी व्याख्या भागवतमें दो प्रकारकी प्राप्त होती हैं, क्वचित् सामान्य पदोंका परिवर्तन हुआ है। क्वचित् पर्यायवाची स्थूल शब्दोंका प्रयोग हुआ है जैसे—"**ईशावास्यमिदं सर्वं**" यह माध्यन्दिन शाखाका मंत्र है भागवत में "**आत्मावास्यमिदं सर्वं**" (भा० ८, १, १०) रूपमें उपलब्ध होता है। इसी प्रकार "**भिद्यते हृदयग्रन्थिः**" मुण्डको (२, २, ८) मन्त्रके परावरेके स्थान पर भागवतमें—"**दृष्ट एवात्मनीश्वरे**" श्लोकमें आत्मा और ईश्वर स्पष्टार्थक है। शुक्लयजुर्वेद प्रवर्तनकी कथा भागवत में है। "**दशपंचशतैः**" का अभिप्राय अपरिमित है। चरणव्यूह टीकाकार "महिदासने" इस विषय पर भागवत श्लोक पर कुछ नहीं लिखा यह आश्चर्य है। (१) केवल याज्ञवल्क्यके पन्द्रह शिष्य लिखे हैं। (भा० १२, ६, ७४) अन्य व्याख्याका ढंग यह है कि—विशद व्याख्याके साथ मंत्रोंमें आते विशिष्ट पदोंके लक्षण भी दिये हैं। पर ऐसे उदाहरण कम हैं।

१—वृ० वेद वि० सा०—डा० रमाशंकर पृ० ३५

तीसरी व्याख्या—इनमें मन्त्रार्थ अविकृत रहता है। जैसे श्वेताश्वतर उप० ४, ५—"अजामेकां लोहित शुक्ल कृष्णां गुर्णैविचित्रां सृजतीं सरूपाम्।" भागवत ३, २६, ५ में यह ज्योंकी त्यों है।

चतुर्थ प्रकारकी व्याख्या साम्प्रदायिक दृष्टिसे है। ऋग्वेदके १, १५०, ६ **"तावांवास्तून्युश्मसि गमध्यै"** मंत्रकी व्याख्या विभिन्न पुराणोंमें भी उपलब्ध होती है।

पंचम प्रकारकी व्याख्याके अनुसार नामान्तर है। ऋग्वेद—**"चत्वारि शृंगा त्रयो अस्यपादाः"** मन्त्र (४, ५८, ३) की यज्ञपरक व्याख्या भागवत (८, १६, ३१) में उपलब्ध है।

छठी प्रकारकी व्याख्या में—भागवतकार वेद वाक्योंको लेकर भागवतको वैदिक सिद्ध करना चाहते हैं। अतः वैदिक वाक्यकी पूर्ण व्याख्या कहीं भी नहीं मिलती। कहीं-कहीं मन्त्रानुक्त भावका समावेश भी पुराणगत व्याख्यानों में मिलता है। **"आत्मानं रथिनं विद्धि"** (कठो० १, ३, ४) श्रीमद्भागवतमें सप्तमस्कन्धमें पन्द्रहवें अध्याय कें ४१-४३ श्लोक में प्राप्त होता है—**"आहुः शरीरं रथमिन्द्रियाणि"** ४२वें श्लोकका उत्तरार्ध मुण्डक २, २ पर आधारित है।

ब्राह्मण वचन—भागवतमें ब्राह्मण ग्रन्थोंकी नामपूर्वक व्याख्या क्वचित् ही मिलती है। भागवत में **"बह्वृचैर्गीतम्"** (८, ११, ३८-४०) में आया है इसमें ऐतरेय ब्राह्मण २, ३, ६ की संक्षिप्त व्याख्या है, ब्राह्मणोक्त मतोंका उपन्यास कहीं मतके विशदीकरण में है, पुराणोंकी व्याख्या प्रतिज्ञापूर्वक नहीं है अपितु शब्दार्थ सन्दर्भको देखकर यह अनुमान किया जाता है। **"बह्वृचैर्गीतं"** भागवतमें है। यह ऐतरेय आरण्यक २, ३, ६ का वाक्य है। **"ओमिति सत्यम् नेत्यनृतम् "अनृतं नावदत्" "अथादिविधम् आचार्यः पूर्वरूपम्"** इस वाक्य की व्याख्या भागवत ११, १०, १२ में मिलती है। कहीं वैदिक शब्दोंकी वैदिकता स्पष्ट कही है। कहीं वेदोक्त श्रुति आदि शब्द व्यवहृत हैं। अर्वाचीन उपनिषदोंसे भागवत वचनोंकी तुलना अनावश्यक है क्योंकि ये उपनिषद् सांप्रदायिक दृष्टिसे ही रचे गये हैं एक प्रकारसे वे पुराणजातीय हैं। कुछ समूल शब्द भागवतमें हैं यथा 'अध्न्या'। ऋत-सत्य, (१, ७, ३, ११) भा० में ऋत सत्य नेत्रम् (१०, २, १) है। मरुत्का वर्णन ताण्ड्य ब्राह्मणमें (१४,१२, ६) है। मरुतोपाख्यान भागवत (६, १८) में है। **"पाप्मावैवृत्रः"** से वृत्रका उल्लेख शतपथ ब्रा० में है **"स वै वृत्र इति प्रोक्तः पापः परमदारुणः"** (भा० ६, ६, २८) भागवतका प्रोक्त शब्द ब्राह्मण वचनको लक्ष्य करता है।

रुद्र का अर्थ प्राण है—**"प्राणा वै रुद्राः"** जै० उप० ब्रा० ४, २७, ६ भागवत में रुद्रका निर्वचन ३, १२, १० में है।

वेदमें कर्दम शब्द छायावादी है पर **"छायायाः कर्दमोजज्ञे"** भा० ३, १२, २७ के अनुसार पुराणमें ऋषि है।

पुलह—वेदमें तपवाची पुल शब्द है ह–का अर्थ अस्फुट है। भा० में ऋषिके लिये पुलह है। कहीं-कहीं भागवतमें 'अस्पष्टार्थक शब्दोंके स्थान पर स्पष्टार्थक शब्द प्रयुक्त किये हैं—

वैदिक—	अग्नि	अजायत	अतिरोदति	अति
भागवतमें—	पावक	अभ्यजायत	अत्यगात	खादति
वैदिक	अन्तरिक्ष	अभय	आत्महन्	आत्मा
भागवत—	गगन	ध्रुव	आत्मवात्	जीव

वैदिक	**भागवत**	**वैदिक**	**भागवत**
इन्द्र	महेन्द्र	ब्रह्म	परम
ईश	आत्मा	रक्षांसि	दैत्याः
जहाति	त्यजति	शरीर	देह
दशांगुल	वितस्ति	सयुजा	सदृशैः
परावरे	आत्मनीश्वरे	सालावृकौ	वृक
पुरुष	अमृत	स्वः	स्वर्लोक
पुरुष	पुरुषोत्तम		

"असुर" तैत्तरीय ब्राह्मण २; ३, ८, २ तथा भागवतमें ज्योंका त्यों है। रुद्र—शतप० ब्रा० ६; १, ३, १० भागवतमें ३, १२, ८ **"यदरोदीः अतः रुद्रः"** लिखा है।

पुत्र—की परिभाषा बोधायन गृह्यसूत्रमें है (बो० १, २, ५) **"पुंनाम्नो नरकः"** "भागवतमें है, उसका अर्थ है पुंनामक नरकसे वचाने वाला पुत्र।

ब्रह्म "**बृहत्या बृंहयति तस्मादुच्यते परं ब्रह्म** (अथर्व शि०) **बृहत्वात् बृंहणत्वाच्च** भा० में है।

विष्णु—**"यज्ञो वै विष्णुः"** (शत० ब्रा० १, १, २, १३) एवं कौषीतकि ब्राह्मण ८, २ में है भागवतमें अनेक स्थानों पर है।

पुरुष—यह शब्द शतपथब्राह्मणमें है (१३, ६, २, १) और पुरुष तथा **'पुरिशेते'** भागवतमें अनेक स्थलों पर है[1]

यज्ञवराह—का वर्णन सिद्ध करता है कि यज्ञ ही वेद का मुख्य प्रतिपाद्य है। भागवत में वदोद्धारक भी है ३, १३, ३५-३९। वेद का प्रयोग भा० १, १०, २४। २, २, ३१। ११, ३, ३५। में मिलता है। वैदिक शब्द का प्रयोग भा० ७,

---

१. भा० ४, २७, १५ पुरंजन ४, २८, ३। ६, १३, १८। ८, १६, ५८।

१५, ४२ में प्रयुक्त है। संक्षेपमें भागवतमें वैदिक व्याख्याकी निम्नविधायें उपलब्ध हैं।

१—वेदमतका यथावत् निर्देश

२—वेदमतका आंशिक परिवर्तन

३—सांप्रदायिक दृष्टिके अनुसार वेदमत निर्देश

४—स्वपरंपरागत आचारके वैदिकत्व का निर्देश

५—वेदसे संबद्ध मतका वेदवतके रूप में उल्लेख

भागवतमें वेदवादकी निन्दाकी गई है। **"कर्मतन्त्रं वितनुते वेदवादविपन्नधीः"** (११, १८, ३०) इस प्रकार वेद वाक्यकी विविध प्रकारकी मीमांसा भागवतमें उपलब्ध है।

पुराणोंका महत्व

प्राचीन धर्म ग्रन्थोंमें ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य ही यज्ञादिके अधिकारी थे। शूद्रोंको हीन दृष्टिसे देखा जाता था। परन्तु पुराणोंने सर्वसामान्य एवं सामञ्जस्य प्रणाली के प्रचलनका श्रीगणेश किया। सभी वर्णोंको एक सूत्रमें बांधनेके प्रयत्नमें अनेक कथाओंका सृजन हुआ। श्रीमद्भागवत[1] एवं पद्मपुराणमें पुल्कस और चाण्डाल भी वैष्णव हों तो श्रेष्ठ हैं। **"अहोवतश्वपचोऽतो गरीयान् यज्जिह्वाग्रे वर्तते नाम तुभ्यम्।** भा०। पुराणोंके प्रमुख देव शिव-विष्णुके भेद भावको कहीं भी स्थान नहीं दिया। दो हजार वर्षसे भी अधिकका हिन्दू धर्मका इतिहास पुराणों पर ही आधारित है। पुराणोंने भक्ति मार्गकी स्थापनाकी ओर उन्हींके कारण भक्ति मार्गका उदय हुआ। भारतीय कला एवं साहित्यके अस्तित्वका श्रेय भी मुख्य रूपसे रामायण महाभारतादिको प्राप्त है।

प्राचीनता—पुराणोंका स्वरूप[2] अथर्ववेद काल तक सुस्थिर हो चुका था अथर्ववेदमें कहा है कि ऋग्वेद, सामवेद, पुराणोंके साथ यजुर्वेद तथा छन्द ब्रह्मदेवसे उत्पन्न हुए थे।

शतपथ[3] ब्राह्मणमें भी पुराणोंका उल्लेख प्राप्त होता है तथा अश्वमेध यज्ञमें पुराण पाठकी व्यवस्था भी की गई है।

छान्दोग्योपनिषद् में—नारद द्वारा अधीत विद्यामें पुराणका भी उल्लेख है[4] उपर्युक्त ग्रन्थोंमें पुराण शब्दका उल्लेख एकवचनसे प्राप्त होता है परन्तु आश्वलायन के गृह्य सूत्रमें बहुवचनका उल्लेख प्राप्त होता है—**"मांगल्यानीतिहासपुराणानि।"**

---

१. श्रीमद्भागवत ७, ६, १० **२. अथर्ववेद ११, ७, २४**

३. शतपथब्राह्मण १३, ४, ३, १३ **४. छान्दोग्य० ७, १, २**

आपस्तम्ब[1] सूत्रोंमें पुराण; आदिसे एकवचन ही नहीं मान लेना चाहिये। इनसे इतना तो निश्चय हो ही जाता है कि पुराणोंका अस्तित्व ये सूत्र मानते थे। याज्ञवल्क्यस्मृति ३, १८९ आदि[2] प्राचीन ग्रन्थोंमें पुराणोंका निर्देश बहुवचनमें किया गया है। महाभारतमें १८ पुराणोंके श्रवण फलका उल्लेख किया गया है।[3]

आश्वलायन गृह्य सूत्रका समय बुद्धसे पूर्व है इस सूत्रमें पुराणोंके लिये बहुवचनका निर्देश है अतः इनका अस्तित्व बुद्धसे पूर्व ही माना जाना उचित है। अनेक विद्वानोंका कथन है कि—वैदिक कालसे लेकर ईसाकी १९वीं शताब्दीके प्रारम्भ काल तक पुराण साहित्यमें अनेकों परिवर्तन हुए और उसमें वृद्धि भी हुई। "सुत्त निपात" में भी पुराणोंका बहुवचनमें उल्लेख प्राप्त होता है। अतः पुराणोंकी अति प्राचीनताके साथ-साथ आधुनिकता भी सिद्ध हो जाती है।

पुराण निर्माण का हेतु—

अश्वमेध यज्ञमें अश्वको छोड़नेके बाद ऋत्विज वेदीके चारों और बैठ जाते थे एवं वर्ष पर्यन्त विभिन्न 'अर्थ' अर्थात् इतिहास कहते थे। वीणा पर श्लोकात्मक गीत गाये जाते थे। इतिहासकी पुनरावृतिको 'परिप्लव' कहते थे। इस पारिप्लवमें पुराणोंके सर्व विषय आ जाते थे। वैदिकोंने अवैदिक परम्पराको निःसंकोच भावसे स्वीकार किया। शतपथ ब्राह्मणमें प्रमाण प्राप्त हैं। यज्ञमें वेदोंके अनभिज्ञ युवक-युवतियाँ, वृद्ध, नाग जातिके व्यक्ति, जंगलके आखेटक, साहूकार, धीवर आदि सभी उपस्थित होते थे। इनके मनोरंजनोंके लिये कथाओं गीतों तथा नृत्योंके कार्यक्रम रहते थे। अतः वैदिक संस्कृतिसे ही उस पौराणिक संस्कृतिका जन्म हुआ जो सब लोगोंके लिये समान और भेद भावोंसे रहित है।

शैव और वैष्णव धर्मोंका वेदोंसे सम्बन्ध—

नारायणीय धर्म और रुद्र-शिव दोनोंका सम्बन्ध वेदों में पाया जाता है। मूर्ति पूजा वेदोंसे ही चली आई अथवा वेदोंने अवैदिकोंसे उसको स्वीकार किया। वेदोंमें मूर्ति पूजाका अस्तित्व अग्नि चयनसे ही सिद्ध होता है। वेदों द्वारा मूर्ति पूजाकी स्वीकृतिका कारण है ईश्वरका पुरुष रूप जो वेदोंके द्वारा ही निर्धारित हुआ है। ईश्वरके पुरुष रूपकी कल्पनाका उदय 'पुरुष सूक्त' से हुआ। यजुर्वेदमें अग्नि-चयनका प्रतिपादन है यही रुद्र शिवकी पूजा एवं अभिषेकका मूल स्रोत है। ऋग्वेदके हिरण्यगर्भ सूक्तसे हिरण्मय पुरुषकी स्थापना होती है। ईटोंका चयन गरुड़के आकारका होता है, जिससे विष्णुके वाहनकी कल्पना होती है। हिरण्मय पुरुष ही आदित्यमें स्थित पुरुष तत्व है सूर्यको विष्णुका परम स्थान मानने वाली कल्पना भी

---

१. आपस्तम्ब आश्वलायनगृह्य सू० ४, ६ ३. महाभारत १९-६-९५
२. ऋग्विधान (२१)

वेदोंमें विद्यमान है (ऋ १, २२, २०) छान्दोग्योपनिषद् (८, १२, ३) का कथन है कि पुरुष ही पुरुषोत्तम है। देवकी पुत्र कृष्णसे घोर आंगिरस ऋषिने कहा है कि पुरुष (मनुष्य) ही यज्ञ है और इस उपासनासे कृष्ण वासनाके बन्धनसे मुक्त हुआ। अतः यह अनुमान करनेमें कोई आपत्ति नहीं कि भागवत धर्मकी (पुरुषोत्तम की) उपासनाका उदय अग्निचयनकी उपासनासे ही हुआ। अन्य वैदिक ग्रन्थोंमें भी पुराण कथाओंके वीज हैं यथा—शतपथ ब्राह्मण में—मनु का वर्णन १, ८१, तैत्तरीय संहिता आरण्यकमें—कूर्मका वर्णन, तैत्तरीय आरण्यकमें—वराहावतार, तैत्तरीय ब्राह्मणमें—प्रल्हाद हिरण्याक्षका उल्लेख, शतपथ ब्राह्मण में—वामनावतार, अथर्ववेदमें--अप्रत्यक्ष परशुराम ५, १६, १, ११। मैत्रायणीय संहिता, नारायणोपनिषद्में केशव, वासुदेव-नारसिंह, नामोल्लेख हैं। पौराणिक धर्मकी विशेषतासे यज्ञ संस्था पीछी पड़ गई। सृष्टिके आरम्भसे ही इतिहास कथन करनेकी पुराणोंकी पद्धति है। प्रायः सभी पुराणोंमें स्वायम्भुव मनुकी उत्पत्तिके कथनोपरान्त उसके वंशके कर्तव्य तथा वंशवृक्षका प्रतिपादन किया गया है। वैवस्वतमनुसे महाभारतके युद्धों तकके वंशों एवं महापुरुषोंका वर्णन किया जाता है। इसमें भूगोल-देवासुरयुद्ध-सात द्वीप सात समुद्रों का वर्णन भी होता है। देवताओंकी महिमा-चरित्र, व्रज सम्बन्धी कथा-स्मृति-धर्मशास्त्र तीर्थस्थानोंके वर्णन आदि भी प्रत्येक पुराणमें उपलब्ध हैं।

श्रीमद्भागवतकी सार्वभौमता

भागवत मूर्तिमान् रस है, मूर्तिमान् कृष्ण विग्रह है, सम्पूर्ण वेदोंका सार तथा पुराणोंमें सर्वश्रेष्ठ पुराण है। सात्वततन्त्रोंमें पारमहंसी संहिताके नामसे अभिहित है, यह शास्त्र ज्ञान वैराग्य-भक्ति समन्वित नैष्कर्म्य का आविष्कारक है है यह साहित्यका भी मुकुट एवं कल्पतरुका अंकुरप्रणव है। इसके आविर्भावका क्षेत्र भगवान्का मुख कमल एवं ब्रह्मा-नारद-व्यास-शुक-सूत प्रमुख महानुभावोंका हृदय-सरोरुह है।

इस कल्प वृक्षमें द्वादशस्कन्ध हैं, ३३५ अध्याय तथा १८ सहस्त्र श्लोक हैं भक्तिरूप आलवालके द्वारा परिपुष्ट है।[१]

भागवतमें एक ओर लोकोत्तर और 'लोकवस्तु लीला कैवल्य" माधुरी, दिव्यादिव्य क्रीडा-कौतुक, ऐश्वर्य और माधुर्य वैदग्धी है तो दूसरी ओर अनिर्वाच्य ब्रह्मानन्द, अनिर्वाच्यतर भजनानन्द, अनिर्वाच्यतम प्रेमानन्द और महा निर्वाच्यतम

---

(१) **श्रीमद्भागवताभिधः सुरतरुस्तारांकुरः सज्जनिः**
स्कन्धैर्द्वादशभिस्तथा प्रविलसद्भक्त्यालवालोदयः।
द्वात्रिंशत् त्रिशतं च यस्य विलसत् शाखाः सहस्राण्यलं
पर्णान्यष्टदशेष्टदोऽति सुलभो वर्वर्ति सर्वोपरि॥ भावार्थ दीपिका मंग० १। १। १

विप्रलम्भ रस वैचित्री प्रकाश है। यह द्वैविध्य अप्राकृत रसिक-वृन्दको विशुद्ध सत्वके रसार्णवमें निमज्जित कर देता है। "विद्या भागवतावधि' उक्तिके आधार पर विद्या परिसमाप्ति इसी ग्रन्थमें है।

भागवत अभक्त विद्वानोंको मोह कराने वाली, आध्यात्मिक अनूचान मानी, ज्ञान-लव-दुर्विदग्ध (प्राकृत ज्ञान और जड़ विज्ञानकी कणिका मात्र लाभसे दुष्ट पंडित) व्यक्तियोंको महा दुर्गम तथा शरणागत व्यक्तियोंको अत्यन्त सरल, सहजवत्सल, महाकरुण और निगूढ तात्पर्य प्रकाशक है। 'भागवत' महाजन सदोपास्य है। अनेक सज्जन तपस्वियोंने इस ग्रन्थके भाव लिखकर अपनेको पवित्र किया है।

माध्वाचार्यने—भागवतको वैखरी द्वारा वर्णित सच्चिदानन्द घन, परम तत्व, जगल्लय समर्थ ईश्वरका साधन और वेद राशिका फल लिखा है।

शंकराचार्यने—भक्ति और भगवद्विग्रहके नित्यत्व संस्थापक इस ग्रन्थका कहीं भी खण्डन नहीं किया अपितु अपने ग्रन्थ 'प्रबोध सुधाकर' 'गोविन्दाष्टक' 'यमुनाष्टक' आदिमें भागवत वर्णित लीलाओंका समादर किया है। आचार्य शंकरने पद्म पुराणीय श्रीविष्णुसहस्त्र नामके भाष्यमें भागवतका नामोल्लेख किया है और वाक्योंको उद्धृत किया है। (विष्णु० १ श० पंचमनाम)

(१) यथा—"**स आश्रयः परं ब्रह्म परमात्मेति शब्द्यते ॥**" ऐसा भागवतमें है यह पद्य भागवतमें २, १०, ७ सख्या का है।

(२) भागवतके—**पश्यन्त्यदो रूपमदभ्र चक्षुषा ।**
सहस्त्र पादोरु भुजाननाद्भुतम् ॥

इत्यादि भागवते १, ३, ४, १ श्लोकका उल्लेख है।

आचार्य शंकरने चतुर्दशमतविवेकमें भी भागवतका उल्लेख किया है। सनातन गो० ने इसके विषयमें ठीक ही लिखा है········कि यह सर्वशास्त्रोंका सार, वेदका फल, सिद्धान्तोंका सम्राट् भक्तोंका प्राण है—

(३) **सर्व शास्त्राब्धि-पीयूष सर्व-वैदिक-सत्फल ।**
सर्व-सिद्धान्त-रत्नाढ्य सर्व लौकैक दृक्फल ॥
सर्व-भागवत-प्राण श्रीमद्भागवत प्रभो ! ।
कलि-ध्वान्तोदितादित्य श्रीकृष्ण परिवर्तित ॥
परमानन्दपाठाय प्रेम वर्षाक्षरायते ।
सर्वदा सर्वसेव्याय श्रीकृष्णाय नमोस्तुते ॥

---

(१) **बिष्णुसहस्रनाम भाष्य, १ शतक, पांचवां नाम**
(२) **" " ५५ संख्याके भाष्यमें**
(३) **कृष्णलीलास्तव ४१२-४१६ श्लोक**

मदैकबन्धो ! मत्संगिन् ! मद्गुरो ! मन्महाधन !

मन्निस्तारक ! मद्भाग्य ! मदानन्द ! नमोस्तु ते ।।

असाधु साधुतादायिन्नति नीचोच्चताकर ।

हा न मुञ्च कदाचिन्मां प्रेम्णा हृत्कण्ठयोः स्फुर ।

भागवतमें भी इस ग्रन्थको हरिकी मूर्ति कहा है—

(४) **तेनेयं वाङ्मयी मूर्तिः प्रत्यक्षावर्तते हरेः ।।**

भागवतके षट् सम्वाद—

भागवतमें षट् सम्वाद एक महत्वपूर्ण वस्तु है। समस्त भागवत इन्हींके उत्तर स्वरूपमें है। वे प्रश्न भी बड़े महत्वपूर्ण हैं—शौनकों द्वारा सूतसे ये प्रश्न, नैमिषारण्यमें दीर्घसत्रमें किये गये हैं।

प्रथम प्रश्न—पुरुषका ऐकान्तिक श्रेय किसमें है ?

द्वितीय—आत्माकी प्रसन्नताका साधन क्या है ?

तृतीय—देवकी गर्भसे अवतारका प्रयोजन क्या है ?

चतुर्थ—कृष्णकी लीला कितने प्रकारकी हैं ?

पंचम—उन कृष्णके अवतार कौन-२ हैं ?

षष्ठ प्रश्न—कृष्णके अन्तर्द्धान हो जाने पर धर्म किसकी शरणमें गया ?

श्रीमद्भागवतमें इनके उत्तर इस प्रकार दिये गये हैं—

प्रथम स्कन्धके द्वितीयाध्यायमें प्रथम ४ प्रश्नोंके उत्तर हैं, तृतीयाध्यायमें पांचवें प्रश्नका उत्तर है तथा छठे प्रश्नके उत्तरमें समग्र भागवतका विवरण है। आशय यह है कि कृष्णका प्रतिनिधि भागवत ही है। इस पुराणमें १० विषयोंका वर्णन है—

सर्ग (मूल सृष्टि), विसर्ग (प्रलय), स्थान (सृष्टि पदार्थके उत्कृष्ट विधान), पोषण (भक्तजनों पर अनुग्रह), ऊति (कर्मवासना), मन्वन्तर (मन्वन्तरोंकी कथा), ईशानुकथा (हरि और तद्भक्तोंके चरित), निरोध (स शक्तिशयन), मुक्ति (स्वरूप अवस्थिति), आश्रय (श्री हरिः)।

भागवतवाद—

भागवतमें ब्रह्मवाद परमात्मवादका अनेक स्थलों पर वर्णन है परन्तु भागवतवादका विशिष्ट स्थान है जो पूर्वोक्त दोनों वादोंसे बढ़कर है। भक्त और भगवान्के विविध लीला-विलासका नाम ही भागवत है। भगवदवतार असख्य हैं—

(१) पुरुषावतार, गुणावतार, लीलावतार, युगावतार, शक्त्यावेशावतार, मन्वन्तरावतार, कल्पावतार आदि ये समस्त अवतार नित्य, चिन्मय, अप्राकृत,

---

(४) भाग० मा० ३·६२

१—लीलास्तव १८-२४

परमानन्द स्वरूप, हानोपादानरहित ज्ञानमात्र और सर्वगुण पूर्ण हैं । इनमें कृष्णका भी उल्लेख है पर वे अवतार नहीं अपितु अवतारी हैं, सर्वविध ऐश्वर्य-माधुर्य-परिपूरित पर तत्व हैं, लीला, प्रेम, वेणु, रूप माधुर्यका जैसा समन्वय कृष्णमें है वैसा अन्यत्र कहीं भी नहीं है । उनके चरित्र प्राधान्यके कारण ही तो भागवत अतुलनीय रस ग्रन्थ है और दार्शनिकोंका शिरोमणि है । एक ही ग्रन्थमें-भावुक-दार्शनिक-रसिक, साहित्यिककी सर्वथा परितृप्ति विश्व साहित्यमें अतुलनीय है । भागवतका यही अनन्य सुलभ गौरव है कि वह एकाधार पर ही रसिक और भावुकगणोंको प्रत्येकको रसास्वादनके लिये आह्वान करता है । जिस जीवमें दोनों योग्यताएँ हों वही भागवतका सर्वश्रेष्ठ आस्वादक है । कलियुगारम्भमें शुक और वर्तमानमें महाप्रभू के पार्षदगण इसी कोटिके जीव हुए हैं । भागवत एक महापुराण है । पुराणोंकी उपयोगिताको सभी विद्वानोंने एक स्वरसे स्वीकार किया है । पुराणोंके सम्बन्धमें संक्षिप्त चर्चा भी आवश्यक है—

पुराणोंमें श्रेष्ठ भागवत पुराण—

भागवत टीकाओंके अध्ययनके साररूपमें यह कहा जा सकता है कि सभी टीकाकारोंने श्रीमद्‌भागवतको ही महापुराण माना है—

१—इसका उद्‌देश्य भक्तिका प्रतिपादन है ।

२—ग्रन्थका प्रतिपाद्य "आश्रय तत्व" का विवेचन है । वह आश्रयतत्व साक्षात् कृष्ण है ।

३—सगुण आश्रयका निरूपण दशमस्कन्धमें है तो निर्गुणका द्वादशस्कन्धमें है ।

४—ब्रह्मके विषयमें अधिष्ठानता-साक्षिता-निरपेक्षिताको प्रधानता दी गई है ।

५—ब्रह्मके आध्यात्मिक-आधिभौतिक रूप भी माने गये हैं ।

६—ब्रह्मसूत्रका प्रतिपाद्य ब्रह्म, गीताका परमात्मा, भागवतका भगवान् कृष्ण ही हैं ।

वदन्तितत्तत्वविदस्तत्वं यज्ज्ञानमद्वयम् ।
ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानितिशब्द्यते ।। भा० १।२।११

७—सभी टीकाकारोंने, ईश्वर, जीव, जगत् एवं मायाकी विस्तृत व्याख्या की है ।

८—भागवतमें महाभारत, गीता तथा पुराणोंके कृष्ण मिला दिये हैं ।

९—कृष्ण स्वयं भगवान् हैं "**कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्**"

१०—भागवतके आदि-मध्य-अन्तमें भक्तिका ही प्रतिपादन है ।

११—भक्तिकी पराकाष्ठा 'ज्ञान' है, ज्ञानकी पराकाष्ठा 'भक्ति' है ।

१२—साध्य और साधन दोनों ही भक्ति हैं । साधना भक्तिके वैधी और रागानुगा दो भेद हैं ।

१३—प्रेमलक्षणा भक्तिका सुन्दर विवेचन है ।

१४—रस प्रधान भक्ति काव्योंमें भागवत मूर्धन्य है ।

१५—अलंकार प्रधान ऊहात्मक शैली अलंकार प्रधान भावात्मक शैली प्रसादपूर्ण भावात्मक शैली, इतिवृत्तात्मक शैलीके कारण यह दिव्य काव्य भी कहा जा सकता है ।

१६—इस काव्यमें भावकी प्रधानता है ।

१७—साहित्यिक दृष्टिसे गीत अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं ।

१८—सभी वैष्णव संप्रदायोंके सिद्धान्त भागवतमें हैं पर टीकाकार अपने-२ सिद्धान्त ही व्यक्त करते हैं ।

१९—आचार्य मध्वने भागवतके रहस्योंका सांगोपांग विवेचन किया । रामानुज पर भागवत का स्पष्ट प्रभाव था फलतः वीरराघवने इसे पंचम वेद कहा है ।

निम्बार्क सम्प्रदायमें भी भागवतको मूल ग्रन्थ मानकर प्रेम-लक्षणा भक्तिका प्रतिपादन किया है ।

चैतन्य सम्प्रदायमें तो भागवत ही सर्वस्व है—"**श्रीमद्भागवतं प्रमाणममलम्**"

वल्लभ सम्प्रदायका प्रेरणा स्रोत भागवत ही है श्री वल्लभाचार्य सबसे पहिले आचार्य हैं जिन्होंने इसे समाधि भाषाके नामसे पुकारा है एवं प्रस्थान चतुष्टयी की संज्ञा दी है ।[1]

उपनिषदों और ब्रह्मसूत्रोंके परिप्रेक्ष्यमें श्रीमद्भागवतका
तुलनात्मक अध्ययन संक्षिप्त-सार

'श्रीमद्भागवत' वेदव्यासकी समाधि भाषाका ग्रन्थ है, निगम कल्पतरुका परिपक्व फल है, जिसमें आमूलाग्र रस परिपूरित है । यह रस, गृहस्थ एवं सन्यासी, बालक तथा स्त्री, वृद्ध सभीको सद्यः वशीभूत करने वाला अनुपमेय पदार्थ है । जिन्होंने एक बार इस अलौकिक रसका आस्वादन किया वे इसे कभी त्याग नहीं सके । वेद, वेदान्तोंके सार श्रीमद्भागवतको ब्रह्मसूत्रोंका अकृत्रिम भाष्य कहा है, प्रस्तुत शोध प्रबन्धमें इन्हीं ब्रह्मसूत्रोंकी संगति, शब्द साम्य तथा अर्थसाम्य द्वारा सुस्पष्ट करनेकी पूर्ण रूपसे चेष्टाकी है । ब्रह्मसूत्रोंको उपनिषदोंका सार कहा गया है अतः उपनिषदोंका साम्य एवं औपनिषदिक तत्वोंका विवेचन भी किया गया है । समग्र शोध प्रबन्ध तीन खण्डोंमें विभक्त किया है ।

---

१. तत्वार्थदीप निबन्ध भाग प्र० ५० ४—

"समाधि भाषा व्यासस्यप्रमाणं तच्चतुष्टयम्" ।

प्रथम खण्ड

यह खण्ड चार अध्यायमें है।

प्रारम्भमें मंगलाचरणमें श्रीमद्भागवतका स्तवन है तथा समर्पण पत्र है। कृतज्ञता ज्ञापन, प्राक्कथनके पश्चात् वेद, उपनिषदोंके भागवत द्वारा निर्देश हैं, जितने भी वैदिक शब्द श्रीभागवतमें व्यवहृत हैं उनका उल्लेख सप्रमाण प्रस्तुत किया है। भागवतमें औपनिषदिक तत्व विवेचनके साथ भूमिका भागकी पूर्णता है।

अध्याय प्रथम—इसमें उपनिषदोंके सम्बन्धमें विचार प्रस्तुत करते हुए उनका अपौरुषेयत्व रूप ही सिद्ध किया है। अल्पज्ञात उपनिषदोंका साम्य श्रीमद्भागवतसे है, भले ही कतिपय उपनिषद् श्रीमद्भागवतके परवर्ती ही हैं किन्तु विषय वस्तुके साम्य वाले स्थल मण्डूकप्लुतिन्यायसे दिग्दर्शित किये हैं। यदि प्रत्येक उपनिषद्की सर्वात्मना व्याख्या भागवत पुराणके साथकी जाती तो पृथक् शोधकार्य हो जाता। कतिपय उपनिषद् तो निश्चित पठनीय हैं क्योंकि श्रीमद्भागवतकी आध्यात्मिक विवेचना उनके बिना अपूर्ण ही है। भागवतकी कृष्ण लीलाको अध्यात्म रूप देने वाला कलिसंतरण या कृष्णोपनिषद् इस सन्दर्भमें सर्वोत्कृष्ट ग्रन्थ माना जा सकता है अन्य उपनिषदोंमें भागवतकी विभिन्न स्कन्धोंकी विषय वस्तु प्राप्त है उसे प्रदर्शित किया है प्रसिद्ध उपनिषद् और भागवत—इस वर्गमें ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक आदि एकादश उपनिषदोंकी संक्षिप्त कथावस्तुके साथ भागवतकी विषय वस्तु प्रस्तुत करते हुए इनका प्रभाव स्पष्ट दिखलाया है।

रचना कालः—उपनिषदोंके रचनाकालमें भारतीय विद्वानोंके तथा पाश्चात्य विद्वानोंके मत प्रस्तुत करते हुए प्राचीन भारतीय मतकी श्रेष्ठता सिद्धकी है। उपनिषदोंकी तालिका तथा उपनिषदोंके भाष्यकारोंकी तालिकाके साथ यह अध्याय पूर्ण हुआ है।

अध्याय द्वितीय—ब्रह्मसूत्र और भागवतकार-उपशीर्षकके (वर्ग क) में ब्रह्मसूत्र कर्ता बादरायण और भागवत पुराणके रचयिता बादरायण या वेद व्यासकी भिन्नताका खण्डन किया है तथा दोनोंका ऐक्य सिद्ध किया है।

(वर्ग ख) में चार सम्प्रदायके प्रसिद्ध आचार्योंके प्रमाण प्रस्तुत किये हैं जो भागवत और ब्रह्मसूत्र दोनों ग्रन्थोंको व्यासकी कृति मानते हैं। मेरा अपना विश्वास है एवं सप्रमाण मत है कि इन ग्रन्थोंके कर्तृत्व विचारमें परम वैराग्यशील, विद्वान् सम्प्रदाय प्रवर्तक आचार्योंके मत ही प्रामाणिक हैं। कतिपय आधुनिक विद्वान् एवं शोधकर्ता महानुभावोंका खण्डन भी इसमें किया है।

ब्रह्मसूत्रोंकी रचना कब हुई? इसके उत्तरमें पूर्वपक्षमें पाश्चात्य विद्वानोंके मत प्रस्तुत करते हुए भारतीय मतके अनुसार भागवत रचनाकालसे पूर्व इन

रचनाकाल सिद्ध किया है अर्थात् द्वापर युगके अन्तिम—चरण तथा कलियुगके प्रारम्भमें । ब्रह्मसूत्रोंके टीकाकारोंकी तालिकाके साथ यह अध्याय पूर्ण हुआ है ।

अध्याय तृतीय—सृष्टिवादमें विविध सर्गोंकी सृष्टि कारणतावादकी व्याख्याकी है तथा जगत्के एवं माया या शक्तितत्वके सम्बन्धमें उपनिषदों और ब्रह्मसूत्रोंके प्रमाण प्रस्तुत करते हुए इनका गम्भीर विवेचन किया है । उपनिषदों और ब्रह्म-सूत्रोंमें उक्त विषय विवेचनमें जहाँ वैमत्य है वह भी सुस्पष्ट किया है और भागवतकारने जो मार्ग अपनाकर दोनोंको सूत्रमें बाँधनेका प्रयास किया है वह भी प्रदर्शित किया है ।

अध्याय चतुर्थ—उपनिषदों और ब्रह्मसूत्रोंमें प्रतिपादित साधना एवं मुक्ति· उपशीर्षकके वर्ग (क) में कर्मका, वर्ग (ख) में ज्ञानका तथा वर्ग (ग) में भक्तिके स्वरूपका विवेचन है, श्रीमद्‌भागवतके साथ उनके स्वरूपका निरूपण है ।

द्वितीय खण्ड

'उपनिषद्-ब्रह्मसूत्र एवं भागवत, उक्त उपशीर्षकके (क वर्ग) में उपनिषदोंके पद और पदांश श्रीमद्‌भागवतमें हैं उन्हें स्पष्ट प्रस्तुत किया है । वर्ग (ख) में उपनिषदोंकी अर्थर।शिसे भागवत साम्यका विवेचन प्रस्तुत किया है । वर्ग (ग) में ब्रह्मसूत्रोंके पद और पदांशोंको भागवतमें ढूंढकर रखा गया है तथा वर्ग (घ) में ब्रह्मसूत्रोंकी अर्थराशिको भागवतके श्लोकों तथा उनके अर्थों द्वारा प्रस्तुत किया है । यहाँ यह आवश्यक निवेदन है कि ब्रह्मसूत्रोंका भाष्य "भागवत पुराण" है । इसका आशय अन्य भाष्योंकी भांति विद्वज्जन देखना चाहेंगे तो उन्हें निराशा ही होगी । अन्य 'भाष्य' सूत्रानुसारी क्रमबद्ध हैं किन्तु श्रीमद्‌भागवत वैसा नहीं है, यह तो अलौकिक है । प्रारम्भमें **"जन्माद्यस्य यतः"** सूत्र भागवतमें भी उपलब्ध है किन्तु ऐसे सूत्र नाममात्र हैं, यद्यपि मैंने प्रत्येक अध्यायके सूत्रोंको भागवतमें द्वादशस्कन्धोंमें जहाँ भी शब्द साम्यसे प्राप्त हुए रखा है किन्तु उनका कोई क्रम होगा, ऐसा नहीं है । यही बात ब्रह्मसूत्रोंके अर्थमें है, ब्रह्मसूत्रोंकी अर्थसंगति जहाँ भी बैठी है उसे स्पष्ट करनेका प्रयास मैंने पूर्ण अध्ययन एवं शक्तिसे किया है । इतना अवश्य है कि मैंने ब्रह्मसूत्रके अध्यायके पादके अनुसार व्याख्याकी है जिससे किसी ब्रह्मसूत्रकी संगति तत्काल भागवतमें देखी जा सकती है, पाठकोंको कोई कठिनाई इससे न हो सकेगी ।

इस अंशमें मैंने (बंगला) 'सिद्धान्त कण' भाष्यका आश्रय लिया है । यह टीका वेदान्त सूत्रोंके भाष्यके साथ प्रकाशित है । मुख्य आधार हस्तलिखित "भागवतानुसारि ब्रह्मसूत्र भाष्य" भी रहा है तथा दोनोंमें मुझे जहाँ उपयुक्त **अर्थ**

जंचा है उसे रखा है किसी एकका पूर्ण अवलम्बन न लेकर बुद्धि विचारको एवं अपने भागवत अध्ययनको प्राधान्य दिया है। विद्वज्जन इस अर्थ संगतिके अवलोकनसे अवश्य प्रसन्न होंगे। **"अर्थोऽयं ब्रह्मसूत्राणाम्"** तो बहुतोंसे सुना जाता था किन्तु प्रत्यक्ष विवेचन इस शोध ग्रंथमें है और यही मुख्य शोधका प्रयोजन भी रहा है। उपनिषदोंके कथा भाग ऋग्वेद और भागवतके साम्य विवेचनके साथ यह अध्याय पूर्ण हुआ है।

अध्याय द्वितीयमें—उपनिषदोंके मुख्य पात्र और भागवत वर्गमें प्रमुख पात्रोंका विवेचन है तथा ख वर्गमें प्रसिद्ध भू-भाग या स्थल विशेषोंका दोनोंमें कहाँ संकेत है स्पष्ट किया है। ब्रह्मसूत्रके पात्र तो नगण्य है तथापि उनको भागवतके साथ सम्बद्ध दिखाया है और घ वर्गमें ऋग्वेदके पात्रोंके साथ भागवतका विवेचन है। दशमण्डलके ऋषियोंको इसमें उल्लिखित किया है। अत्यन्त विस्तृत होनेके कारण इनमें दो अध्याय ही हैं जो ग्रंथका अर्ध भाग है।

तृतीय खण्ड

अध्याय प्रथम—इसमें भागवतका आविर्भाव, भागवतकर्ता व्यास एवं व्यासके सम्बन्धमें उपलब्ध विभिन्न कथा तथा व्यासोंका युग-भेदसे सम्बन्ध तथा व्यासका परिचय प्रस्तुत किया है।

ख-वर्गमें भागवतके निर्माणका हेतु, वर्ग (ग) में भागवत रचनाकाल तथा वर्ग (घ) में भागवत-संप्रदाय परंपरा, संक्षेपमें विषय बोधके लिए प्रस्तुत की है।

अध्याय द्वितीय—"उपनिषदों और ब्रह्मसूत्रोंमें प्रतिपादित ब्रह्म उपशीर्षकमें वर्ग (क) में ब्रह्मका व्यापक स्वरूप, (ख) में साकार, निराकार ब्रह्म, सविशेष-निर्विशेष, तटस्थ लक्षण, जैसे दार्शनिक विषयोंका प्रामाणिक रूपसे विवेचन प्रस्तुत किया है।

(ग) वर्गमें ब्रह्म-परमात्मा और भगवान्‌की व्याख्याकी है।

(घ) वर्गमें श्रीकृष्ण और ब्रह्मका ऐक्य प्रस्तुत किया है।

(ङ) वर्गमें भागवत-प्रतिपाद्य भक्ति और भगवान् तत्व तथा अवतार होनेका प्रयोजन सिद्ध करते हुए भक्तिके राजसी सात्विकी एवं निर्गुणादि भेद तथा भक्ति तत्वका विवेचन प्रस्तुत किया है।

अध्याय तृतीय—इसमें सृष्टि, तन्मात्रसर्ग, भौतिकसर्ग, वैकृत सृष्टि, प्रलयका विवेचन, उपनिषद्-ब्रह्मसूत्र और भागवतके अनुसार किया है। जीव कर्तृत्ववाद, परतत्व, जीवतत्व, तथा जीवात्माका बन्धन, मुक्ति और मुक्त जीवके विवेचनके साथ यह अध्याय पूर्ण हुआ है।

अध्याय चतुर्थ—इसमें कर्म, ज्ञान, भक्तिका विचार किया है साधन भक्ति एवं साध्य भक्ति तथा साधन भक्तिके ६४ भेद प्रस्तुत करके भक्तिके अंगोंका विवेचन किया है और नवधा भक्तिको भागवतके अनुसार रखा है।

अध्याय पंचम—इसमें भक्तियोग एवं ज्ञानयोगका स्वरूप विचार करते हुए भागवत (वर्ग क) में भक्तियोगमें ज्ञानमार्गके अंतरंग श्रवण-मनन और निदिध्यासनका निरूपण है। (ख) वर्गमें भक्ति मार्गके त्रिवर्ग श्रवण-कीर्तन और स्मरणका निरूपण है। ज्ञानमार्ग और भक्तिमार्ग दोनोंमें उक्त स्थलों पर साधारणीकरणकी स्थिति आ जाती है, उसका विवेचन किया है।

वर्ग (ग) में भागवतकारकी अध्यात्मराशिकी विशिष्ट देनका निरूपण है। उपसंहारमें **"अर्थोऽयं ब्रह्मसूत्राणां"** के विवेचनमें वेदान्त दर्शन की संक्षिप्त भूमिका ब्रह्मसूत्रके प्रधान विषय प्रस्तुत किये हैं।

वर्ग (ख) में श्रीमद्भागवतका उत्तरवर्ती संस्कृत साहित्य पर प्रभाव है इसके संदर्भमें लगभग २०० ग्रन्थोंकी तालिका प्रस्तुत की है। विशिष्ट संस्कृतके निबन्ध आदि जो भागवत पर लिखे गये उपलब्ध हैं उनका निर्देश भी इसमें किया है। इतने ग्रंथोंकी संख्यासे ही भागवतका उत्तरवर्ती संस्कृत साहित्य पर प्रभाव परिलक्षित हो जाता है।

यदि भागवतानुप्राणित साहित्य भारतवर्षसे दूर कर दिया जाय तो वाङ्मयमें कुछ भी द्रष्टव्य नहीं रहेगा ऐसा मेरा दृढ़ विश्वास है क्योंकि न केवल संस्कृत भाषाको ही इसका वरदान है, अपितु विभिन्न भाषाओंके साथ आजकी राष्ट्रभाषा हिन्दी जिसमें सूरदास, नंददास आदि अष्टछापके कवि हैं "की रचनाएं पृथक् हो जायगी" क्योंकि ये सभी भागवताश्रित हैं तो हिन्दीमें शेष ही क्या रह जायगा।

भागवत गौरवमानके साथ यह ग्रन्थ परिपूर्ण है साथमें परिशिष्टमें सहायक ग्रंथोंकी तालिका दी गई है, इस प्रकार यह लगभग ५०० पृष्ठोंके कलेवरमें शोध प्रबन्ध लिखा गया है, आशा है विद्वज्जन, मानव सुलभ भूलोंको क्षमा प्रदान करते हुए तथा परिस्थितिको दृग्गोचर करते हुए उक्त शोध कार्यको देखकर प्रसन्नताका अनुभव कर कृतार्थ करनेकी कृपा करेंगे।

विज्ञ पाठकोंके आग्रह पर—मन्त्रोपासना प्रयोग एवं श्रीमद्भागवतका स्वरूप भी प्रबन्धके साथमें दिया जा रहा है।

श्रीमद्भागवतमें मन्त्रोपासना प्रयोग

(पूरा मंत्र भागवतमें तालिकानुसार देखें)

१.	दाम्पत्य प्रीति तथा काम शान्तिके लिए— हृषीकेशोपासना	" ओं ह्रां ह्रीं ह्रूं । "	५।१८।१८
२.	आत्मशान्त्यर्थ	" ओं नमो महामत्स्याय····।	५।१८।२५
३.	धारणार्थ कूर्मोपासना	" ओं नमो भगवते अकूपाराय··।	५।१८।३०
४.	जीवनोद्धाहार्थ-वाराहो०	" ओं नमो भागवते········।	५।१८।६०
५.	संकल्पसिद्ध्यर्थ—मत्स्यो०	" अवतारो हरेर्योयं········।	८।२४।६०
६.	महाविपत्ति दूर करनेके लिए	" तमूचुः·········।	८।२०।४३
७.	उल्लासप्राप्त्यर्थ	"अथेशमाया०········।	६।६।४७
८.	मायामोहनिवृत्यर्थ	" संसार सागरे मग्नं····।	महा० ६।२७
९.	अहंतलनिवृत्यर्थ	" यत्कीर्तनं०········।	२।४।१५-१७
१०.	पुत्रप्राप्त्यर्थं	" सत्वयाराधितः०........।	३।२४।४
११.	अभयप्राप्त्यर्थ	" मा मात्मानं०	३।२४।३६
१२.	गायत्री	" ओं परो रजः०········।	४।७।१४
१३.	नेत्ररोगनाशार्थ	" देवतिर्यङ्०········।	५।२०।४६
१४.	यज्ञविघ्ननाशार्थ	" स प्रसीद त्वमस्माकम्········।	४।७।४७
१५.	आत्मकल्याणार्थ	" जितं त आत्मविद्धुर्य०········।	४।२४।३३
१६.	अन्नवृद्ध्यर्थ	" स्व गोभिः पितृदेवेभ्यो०········।	५।२०।१२
१७.	स्वर्गप्राप्त्यर्थ	" परस्य ब्राह्मणः········।	५।२०।१७
१८.	धान्यवृद्ध्यर्थ	" आपः पुरुषः········।	५।२०।२३
१९.	आभ्यन्तर शुद्ध्यर्थ	" अन्तः प्रविश्य भूतानि०········।	५।२०।२३
२०.	पुंसवनव्रत	" अलंतेनिरपेक्षाय०········।	६।१९।४
२१.	पयोव्रत	' अन्ववर्तन्त यं देवताः०········।	८।१६।३७
२२.	ज्वर शान्त्यर्थं	" नमामित्वानन्त········।	१०।३३।२५-२८
२३.	दुःखनाशार्थं	" अहं हरे तव········।	१२।१३।२२
२४.	भगवत्प्रेमार्थ	" नाम संकीर्तनं······ ।	६।११।२४-२७
२५.	आदर्शपत्नाप्राप्त्यर्थं	" तथा सचाहं········।	३।२१।१५
२६.	ब्रह्मतेजप्राप्त्यर्थ	" त्वत्तः सनातनो धर्मो········।	३।१६।१७
२७.	लक्ष्मी प्राप्त्यर्थ	" श्रियाविलोकिता········।	८।८।२८
२८.	अभय प्राप्त्यर्थ	" ओं नमो भगवते नरसिंहाय····	।५।१८।८

२९.	निष्काम भक्ति०	" यदि रासीश मे०........।	७।१०।१०
३०.	विश्वशान्त्यर्थ पुत्र-मनो०	" यज्ञेश०........।	८।१७।८
३१.	बंधन मुक्त्यर्थ	" भूत भावन०........।	४।२२।२९
३२.	व्रतपूर्त्यर्थ	" मन्त्रतस्तन्त्र०........।	८।२३।१६
३३.	चरित्र शुद्ध्यर्थ	" ओं नमोभगवते०........।	९।११।६
३४.	अज्ञाननाशार्थ	" अप्रमत्तं........।	१०।२०।१४
३५.	वर प्राप्त्यर्थ	" व्यसनं ते०........।	१०।६२।१८
३६.	अभिचारशान्त्यर्थ	" कृत्यानलः प्रतिहतः........।	१०।६७।४०
३७.	बंधन मुक्त्यर्थ	" कृष्ण कृष्णाप्रमेयात्मन्........।	१०।१०।२५
३८.	सर्वापन्निवारणार्थ	" वासुदेवाय........।	१०।७३।१६
३९.	दारिद्रनाशार्थ	" ध्येयं सदा०........।	११।५।३३
४०.	दुखः शान्त्यर्थ	" नामसंकीर्तनं........।	१२।१३।२३
४१.	विषनिवारक (१)	" देवदेव महादेव....।	८।७।२१
४२.	विद्या प्राप्त्यर्थ	" नमः शिवाय........।	१२।१०।१७
४३.	पति प्राप्त्यर्थ (२)	" कात्यायनि........।	१०।२२।४
४४	एकाग्रतार्थ	" प्रसन्न वदनाम्भो........।	३।२८।१३
४५.	ब्रह्मदर्शनार्थ	" येन चेतयते विश्वं........।	८।१।९
४६.	भवनाशार्थ	" कृष्ण कृष्ण........।	१।७।२२
४७.	गर्भ रक्षार्थ	" पाहि पाहि........।	१।८।९
४८.	आपत्तिमें प्रसन्नतार्थ	" कृष्णाय वासुदेवाय........।	१।८।२१
४९.	भक्ति पुष्ट्यर्थ	" त्वयि मेऽनन्य........।	१।७।४२
५०.	देश विकासार्थ	" इमेजनपदा........।	१।८।४०
५१.	मृत्यु समय दर्शनार्थ	" स देव देवो........।	१।९।२४
५२.	आत्म निवेदनार्थ (३)	" प्राणा दारासुता ब्रह्मन्....।	४।२२।४४
५३.	मृत्यु विजयार्थ	" मर्त्यो मृत्यु........।	१०।३।२७
५४.	बालरोग निवृत्यर्थ	" अव्यादजोंघ्रि....।	१०।६।२२
५५.	पतिकी बीमारीसे रक्षार्थ	" अनुगृह्णी........।	१०।११।५२
५६.	संसार नाशर्थ	" कृष्ण कृष्ण महावीर....।	१०।१९।९
५७.	कृष्णदर्शनार्थ	" हा नाथ रमण प्रेष्ठ....।	१०।३०।४०

---

१. यहाँसे शिवोपासना मन्त्र हैं। **२. देवीके मन्त्र।**

३. पुष्टि सम्प्रदाय ब्रह्म सम्बन्ध।

५८.	प्रेम प्राप्त्यर्थ	" अप्यङ्घ्रि मूले·········।	१०।३८।१६
५९.	प्रेम प्राप्त्यर्थ	" नमस्ते वासुदेवाय·········।	१०।४०।३०
६०.	पति पुनर्मिलन (१)	" तासामाविरभूच्छौरि·····।	१०।३२।०
६१.	संकटनाशार्थ	" हे नाथ हे रमानाथ···।	१०।४७।५३
६२.	मस्तकपीड़ा	" दर्शयस्व महाभाग···।	१०।५७।३९

विभिन्न कामनाओंकी पूर्तिके लिए भागवतके चरित्र एवं मन्त्र*

निम्नलिखित सिद्ध प्रयोग अनेक महापुरुषों द्वारा अनुभूत एवं सफल हैं। भागवतमें स्वयं इनकी प्रामाणिकताका वर्णन है, अदितिने पयोव्रत आदिके द्वारा मनःकामनापूर्ण की थी। यहाँ केवल विवरणके लिए संक्षिप्त संकेत लिखा जा रहा है—

हेतु	चरितादि	स्कन्ध अध्याय श्लोक	फल श्रुतिके श्लोकांक
पितृ तृप्त्यर्थ	आत्मदेव	माहात्म्य–४-५	माहा–५।९०
हरिभक्ति	पाण्डव निर्वाण	१।१४-१५	१।१५।५२
सर्वसिद्धि	देवोपासना	२।३।२	२।३।२-१०
भगवत्प्रसन्नता	ब्रह्म स्तुति	३।९।१-१५	३।९।४०
आयुष्य	हिरण्याक्ष वध	३।१३-१९।	३।१३।४८
भगवत्प्रीति	सांख्य तत्वदर्शन	३।२५-३३	३।३३।३७
पापनाशार्थ	सती चरित	४।२-७।	४।६।६१
सर्वश्रेय	ध्रुव चरित	४।८।१२	४।१२।४५
भगवत्प्रेम	पृथु चरित	४।१५·२३	४।२३।३९
कर्म बन्धनाश	रुद्रगीत	४।२४।३३	४।२४-७८
जीवन्मुक्ति	पुरंजन चरित	४।२५-२९।०	४।२९।८३
ऐश्वर्यलाभ	क–विदुर मैत्रेय संवाद	४।३-४।०	४।३१।३१
	ख–भरत चरित	४।७-१४।०	४।१४।४६
स्थूलमें सूक्ष्मदर्शन	भूलोकादि चरित	५।१६-२६।०	५।२६-३९
पापनाशार्थ	शिशुमार	५।२३-४-८	५।२२-९
आपद्विनाशार्थ	नारायण कवच	६।८	६।८।३६-४२
शत्रुविजयार्थ	इन्द्र विजय	६।७-१३।०	६।१३।२३
बन्धन मुक्ति	चित्रकेतु चरित्र	६।१४-१७।०	६।१७।४०-४१
स्त्री सुख	पुंसवन व्रत	६।१९।०	६।१९।२५-२८

---

१. ३१वें अध्यायका सम्पुट : १९ दिन पाठकी विधि है।

*गुजराती—रमणलाल शा० भागवत तत्व चिन्तामणि।

अभय प्राप्ति	प्रल्हाद	७।१-१०।०	७।१०।४६-४७
दुःस्वप्ननाश तथा	गजेन्द्र मोक्ष	८।२-३।०	८।४।१४-१५
संसारदुःख निवृत्ति	अमृत मन्थन	५।८-१२।	८।१२।४६
परमगति	वामना०	८।१५-२३।	८।२३।३०-३१
संकल्पसिद्धि	मत्स्यावतार	८।२	८।२४।६०
कवि बननेके लिए	नाभाग	९।४।१-९२	९।४।९२
भक्ति	अम्बरीष	९।४-५।	९।५।२७
कर्मबन्ध मोचन	रामचरित	९।१०-१९।०	९।११।१३
भगवत्प्रेम	पूतनामोक्ष	१०।६	१०।६-४४
पराभक्ति	रासक्रीडा	१०।२९।३३	१०।३३।४०
कलंक निवृत्त्यर्थ	स्यमन्तकोपाख्यान	१०।५६-५७	
पराजय निवृत्ति	अनिरुद्ध	१०।६२-६३।०	१०।६३।५३
पापमुक्ति	पौण्ड्रक वध	१०।६६	१०।६६।४३
भगवद्मुक्ति	कृष्ण गार्हस्थ्य	१०।१९।०	१०।२९।४५
पापमुक्ति	शिशुपाल वध	१०।७४	१०।७४।५४
विष्णु प्रीति	बलराम	१०।७९	१०।७९।३४
कर्मबन्ध मुक्ति	सुदामा	१०।८०-८१।	१०।८१।४१
पापनिवृत्ति	देवकी पुत्रानयन	१०।८५	१०।८५।५९
काम निवृत्ति	श्रुतिगीत	१०।८७	१०।८७।४४
शत्रु पराभव	शिव मुक्ति	१०।८८	१०।८८।४०
ईश्वर प्राप्ति	भागवत्त धर्म	११।२-५।	११।५।५२
द्वन्द्व निवृत्ति	भिक्षु गीत	११।२३	११।२३।६२
मुक्ति संग	यदु संवाद	११।७-९।	११।७-९।
मोह निवृत्ति	ऐल गीत	११।२६	११।२६।२६
मुक्ति	कृष्णोद्धव संवाद	११।७-२९	११।२९।४८
उत्तमगति	श्रीकृष्ण निर्याण	११।३१	१५।३१।१४
कर्माशय तथा	मार्कण्डेय चरित्र	१२।८-१०।	१२।१०।४२
ब्रह्म ज्ञान प्राप्ति	महापुरुष लक्षण	१२।४।४-२६	१२।११ २६
सर्वसिद्धि	भागवत फल श्रुति	१२।१२।	१२।१२।५८-६४
नरनारायण मंत्र	५।१९।११	**स्तव समावेश**	**भागवतकी स्तुतियाँ**
नारायण मंत्र	५।१९।११	१. कुन्तीकृत स्तव	१।८।१८।४३
नारायण मन्त्र	६।८।६।१०	२. भीष्मकृत स्तव	१।९।३२-४२

६।५।२८
विष्णु मन्त्र ६।१९।७-८।
वासुदेव मन्त्र १।५।३७।
४।८।५३,
८।३।२
रुद्र गीत ४।२४
रक्षाबन्धन मन्त्र १०।६।२२-२९
कवच-नारायणवर्म ६।८।१२-३४
रक्षा कवच १०।६।२२-२९

३. ऋषिकृत ३।१३।३४-४५
४. गर्भस्थ जीवकृत ३।३१।१२-२१
५. दक्षादि कृत ४।१।२६-४७
६. ध्रुव कृत ८।३।२-२९
७. भवकृत ५।१७।१८-२४
८. प्रजापतिकृत ७।८।४०।५६
९. प्रहलाद कृत ७।९।८-५०
१०. गजेन्द्र कृत ८।३।२-२९
११. ब्रह्म स्तव ८।५।२६-५०
१२. प्रजापतिगणकृत ८।७।२१-३५
१३. अदिति कृत ८।१७।८-१०
१४. गर्भ स्तुति १०।२।२६-४१
१५. देवकीकृत १०।१४।१-१०
१६. नागपत्नी कृत १०।१६।३३-५३
१७. इन्द्र कृत १०।२७।४-१३
१८. अक्रूर कृत १०।४०।१-३०
१९. मुचुकुन्द कृत १०।५१-३६-५८
२०. श्रुति स्तुति १०।८७।१४-४१
२१. मार्कण्डेकृत १२।८।४०-४९

इन स्तुतियोंमें वेदस्तुति 'वेदनामपरिपूर्ण सर्वोत्कृष्ट स्थान पर' टीकाकार भक्तवृन्दोंने स्थापित की है। मुचुकुन्दस्तुतिमें मायामुग्ध जीवनके स्वरूपका महत्व समझाया है।

श्रीमद्भागवत स्वरूप

राजन्ते त द्न्यानि पुराणनि सतां भवे।

यावद्भागवतं नैव श्रूयतेऽमृत सागरं ।। (अ० १२, १३, १४)

श्रीमद्भागवतका प्रारम्भ स्वरूप—निगम कल्पतरोर्गलितं फलं शुक-मुखादमृत-द्रव-संयुतम् ।। (मा० १, १, ३) में समझाया है। भागवत वेद रूपी वृक्षका रसमय फल है। वृक्षकी परिणति फलोत्पत्ति है, फलोत्पादनके लिए ही बीज एवं वृक्षकी सार्थकता है। वेदार्थकी चरम परिणति श्रीमद्भागवतके आविर्भावमें ही है। भागवतीय तत्व और रस सिद्धान्त प्रकरण ही वेदार्थकी चरम सार्थकता है।

वृक्ष और फलके दृष्टान्त द्वारा अति गम्भीर सत्यकी चेष्टाको अन्तर्निहित किया है। समग्र वेदका सार है प्रणव, प्रणवकी मूर्ति है ब्रह्म गायत्री। ब्रह्म गायत्री ही फलवन्त होकर भागवतके प्रत्येक अक्षरमें विद्यमान है[२]।

(क) जन्माद्यस्ययतः—यह समग्र ग्रन्थमें बीज-स्वरूप है। गायत्रीके सहित इसी श्लोककी एक वाक्यता है। गायत्रीमें आने वाली क्रियार्हपद—इस श्लोकमें धीमहि है। गायत्रीका प्रचोदयात् ही 'तेन' शब्द द्वारा वर्णित है[३]। गायत्रीके **'वरेण्यं'** व **'भर्गः'** पद ही भागवतमें—**'सत्यं'** परम कहे हैं। गायत्रीके **'सवितुर्देवस्य'** का तात्पर्य ही भागवतमें-जन्माद्यस्ययतः में हैं। (१।१।१)

अतः यह श्लोक गायत्रीका भाष्य स्वरूप कहा जाता है। अतः इसकी प्रामाणिकता भी सिद्ध हो गयी, क्योंकि श्रीमद्भागवतके प्रमाणके निमित्त मत्स्यपुराण के श्लोककी संगति भी यहाँ पूर्णरूपेण घटित हो जाती हैं—

यत्राधिकृत्य गायत्रीं वर्ण्यते धर्म विस्तरः।

वृत्रासुर कथोपेतं तद्भागवतमिष्यते ।। (मत्स्य ५३, २०)

ग्रन्थोऽष्टादश साहस्त्रो द्वादश स्कन्ध संमितः।

गायत्र्या च समारम्भस्तद्वै भागवतं विदुः ।। (अग्नि २७२, ६-७)

श्रीमहाप्रभुने भी अपनी वाणीमें इसे प्रमाण कहा है—

गायत्रीर अर्थ पई ग्रन्थ आरम्भ न।

सत्यं परं धीमहि—साधन प्रयोजन ।। (चै० च० २५, १४०)

(ख) श्रीमद्भागवतके (२।९।३०-३६) श्लोकमें ज्ञान—विज्ञान—रहस्य—और तदंग ये ४ विषय आलोच्य कहे हैं। यही चतुःश्लोकी है—ज्ञान—शास्त्रार्थावबोधका—

---

१. अभिधान कोष पृ० ५४५ (गौ० मठ)।

२. वेदः प्रणव एवाग्रे। (भा० ११।१।११) प्रणवः सर्व वेदेषु (गीता ८।७) प्रणव ब्रह्मका वाचक है उसका वाचक प्रणव है—पतञ्जलि—प्रणव ब्रह्मके अति निकट है—"ओमित्येतदेव ब्रह्मणो नेदिष्ठं नाम—श्रुतिः" (अ० १।२।६।४)

३. "अनेक बुद्धि वृत्ति प्रवर्त्तकत्वेन गायत्र्यर्थोपिदर्शित" (श्री० भा० १।१।१)।

नाम ज्ञान है। विज्ञान—तत्त्वानुभूतिका नाम विज्ञान है। रहस्य—प्रेम भक्ति ही रहस्य है। तदंग–साधनभक्ति ही तदंग है।यही चार भागवतके अनुबन्ध चतुष्टय हैं। इन्हींमें समग्र शास्त्र द्वारा वर्णनीय विषयोंका प्रतिपादन है। यही चतुःश्लोकी भागवत भगवानने ब्रह्माको उपदेश की। प्रणवका अर्थ गायत्रीसे जाना जाता है।

इसी प्रकार गायत्रीका ज्ञान श्रीमद्‌भागवत चतुःश्लोकीसे जाना जा सकता है[1]। ब्रह्माने यही चतुःश्लोकी भागवत नारद नामक पुत्रको दी। नारदने वेद व्यासको दी, वेदव्यासने वर्तमान भागवतकी भित्ति रची।अतएव गायत्री एवं चतुःश्लोकीका प्रतिपाद्य भिन्न नहीं अपितु अभिन्न है। भागवत चतुःश्लोकी की परिणति है, अतएव वेदका परिपक्व फल है।

(ग) सत्यके २ स्वरूप हैं—१. अमूर्त्त, २. मूर्त्त। श्रीमद्‌भागवत ब्रह्मसूत्रोंका अकृत्रिम भाष्य है–वेदके ज्ञान काण्डात्मक उपनिषद्‌में प्रधानतः ब्रह्मतत्व ही प्रतिपादित है। एवं उपनिषदोंके सिद्धान्त समूह ब्रह्मसूत्रके अल्पाक्षरोंमें समुद्दिष्ट हैं। ब्रह्मसूत्रकी कदर्चनाको देखकर व्यासदेवने स्वयं उसके भाष्यकी रचना की[२]।

भागवतमें प्रधानतः ३ विषय परिवेशित हैं—सम्बन्ध, अभिधेय, प्रयोजन। मूल वाच्य तत्त्व ही—सम्बन्ध है। मूल प्राप्त तत्त्व ही—प्रयोजन हैं। प्रयोजन प्राप्तिसे जन्य कर्त्तव्य तत्त्वका निर्धारण ही—अभिधेय है।

ब्रह्मसूत्रके प्रथम सूत्र—'अथातो ब्रह्म जिज्ञासा' इसकी भूमिकामें श्रीबलदेव लिखते हैं कि—सर्वदोष वर्जित, प्राकृतादि स्पर्श शून्य, अनन्तगुणगणालंकृत सच्चिदानन्द विग्रह श्रीकृष्ण ही ब्रह्मसूत्रके प्रतिपाद्य हैं।

श्रीमद्‌भागवतके **"वेद्यं वास्तवमत्र वस्तु शिवदं"** के अनुसार पारमार्थिक वस्तु ही प्रतिपाद्य है। भागवतके १।२।११ श्लोकमें परमतत्त्वको अद्वय एवं अखण्ड ज्ञान कहा है, परन्तु उसका प्रकाश तीन रूपमें होता है—"ब्रह्म—परमात्मा और भगवान।" यह अखण्ड तत्त्वका त्रिविध प्रकाश है, वहीं स्वयं भगवान श्रीकृष्ण ही भागवतके मुख्य प्रतिपाद्य वस्तु हैं।

---

१. "प्रणवेर येई अर्थ गायत्री ते सेई ह्य सेई अर्थ चतुःश्लोकी ते विवरियाय" (चैं० म० २५।९२)

२. श्रीमद्‌भागवत करिवसूत्रेर भाष्य स्वरूप। उपनिषद केई एक अर्थ (चैं० च० २५।९५-९८)

पादौ यदीयौ प्रथमद्वितीयौ तृतीय तुर्यौ कथितो यदूरू। नाभिस्तथा पंचम एवं षष्ठो भुजान्तरं दोर्युगलं तथा न्यौ। कण्ठस्तु राजन् नवमो यदीयो मुखारविन्दं दशमं प्रफुल्लम्। एकादशो यस्य ललाट पट्टम शिरोऽपि यद् द्वादश एव भाति॥ तदादिदेवं करुणा निधानं तमालवर्ण सुहितावतारम्। अपार संसार समुद्र सेतुं भजामहे भागवत स्वरूपम्।

प्रथम खण्ड

प्रथम अध्याय

ब्रह्मसूत्र, उपनिषद् एवं श्रीमद्भागवत

(क) उपनिषद् रचयिता और अल्पज्ञात उपनिषद्—

बह्वृच,० सौभाग्य लक्ष्मी०, कौषीतकि ब्राह्मण, महोपनिषद्, वासुदेव,० नारदपरिव्राजक,० रामपूर्वतापनीय० गोपालपूर्वतापनीय० गोपालोत्तरतापनीय,० नृसिंहोत्तरतापनीय,० त्रिपाद्विभूतिमहानारायण०, मुक्तिक०, राधिका-तापनीय०, श्रीराधा०, ब्रह्मविन्दु०. नारायण०, कृष्ण०, कैवल्य०, कठरुद्र०. रुद्रहृदय०, नीलरुद्र०, गर्भ० ।

(ख) प्रसिद्ध उपनिषद् :—

ईश०, केन०, कठ०, प्रश्न०, मुण्डक०, माण्डूक्य०, तैत्तरीय०, ऐतरेय०, छान्दोग्य० बृहदारण्यक,० श्वेताश्वतर० ।

(ग) उपनिषद् रचना काल :—

भारतीय मत

पाश्चात्य मत

उपनिषदों की तालिका और भाष्यकार

उपनिषद् रचयिता :

जिस प्रकार वेदोंको अपौरुषेय माना जाता है और वे ईश्वरकी निःश्वास हैं उसी प्रकार उपनिषद् भी वेदके ही भाग हैं अतः इसके रचयिताका कोई पता नहीं है। ईश्वर ही इनका रचयिता है। विभिन्न उपनिषदोंमें ब्रह्मवाद-जीववाद का वर्णन है किन्तु रचयिताकी चर्चा कहीं भी उपलब्ध नहीं है, अतः इस प्रसंगमें विचार प्रवाह प्राचीन परम्पराका अनुसरण ही आवश्यक समझता है। जैसे वेदके सूक्तों के ऋषि मन्त्र द्रष्टा हैं उसी प्रकार उपनिषद् वाङ्मय के भी द्रष्टा ऋषि हैं। वेदान्त शब्द समासान्त है। वेद और अन्त इन दो शब्दों के योग से वेदान्त शब्द निष्पन्न होता है, अतः इस शब्दका वाच्यार्थ वेद अथवा वेदोंका अंतिम भाग है। वैदिकोंने वैदिक साहित्यको दो भागोंमें विभक्त किया है कर्मकाण्ड और ज्ञानकाण्ड। कर्मकाण्ड—वेदका वह भाग है जिसका साक्षात् सम्बन्ध कर्मसे है। ज्ञानकाण्डमें ज्ञान ही मुक्तिका कारण सिद्ध किया है। मन्त्र भाग और ब्राह्मण ग्रन्थोंके वे भाग जिनका सम्बन्ध यज्ञोंसे है कर्मकाण्ड भाग कहलाता है और वे ग्रन्थ उपनिषद्के नामसे प्रसिद्ध हैं **"ज्ञानकाण्ड"** कहे जाते हैं।

वेदान्त शब्दका वाच्यार्थ वेदोंका ज्ञानकाण्ड है वेद भाग होनेसे वेदान्त शब्द से "श्रुति" समझा जाता है। वेदान्त-श्रुति और उपनिषद् एकार्थक हो गये हैं श्रीशङ्कराचार्यने वेदान्तका प्रयोग उपनिषदोंके लिये किया है, परन्तु यह अर्थ स्थायी नहीं रहा। अन्त शब्दका अर्थ तात्पर्य, सिद्धान्त तथा आन्तरिक अभिप्राय अथवा मन्तव्य भी होने लगा। इसके अनुसार वेदका अन्त अर्थात् पर्यवसान ब्रह्म-ज्ञान में है। वेदान्त का सिद्धान्त यह है कि इस संसार में जो कुछ पशु-पक्षी, जलचर-थलचर आदि हैं, सभी ब्रह्म हैं। मनुष्यका एकमात्र कर्त्तव्य ब्रह्मज्ञान प्राप्ति है। इस अर्थमें वेदान्त शब्दसे उपनिषद् ग्रन्थोंका साक्षात् बोध होता है, परन्तु यह अर्थ भी स्थायी न रह सका, क्रमशः इसमें भी परिवर्तन हुआ। उपनिषदोंमें तो सब वाद उपलब्ध हैं तो कौन-सा मत वेदमूलक माना जाय और कौन-सा नहीं? वेदान्त शास्त्रसे या दर्शन शब्दसे लोग ब्रह्मसूत्रोंको लेते हैं। वेदान्त शास्त्र से ही ब्रह्मसूत्र का तात्पर्य ग्रहण किया जाता है।

वेदान्तके मौलिक तीन ग्रन्थ हैं :—

१. उपनिषद् ।

२. वेदान्त सूत्र ।

३. भगवद्गीता ।

वेदान्त शास्त्रवेत्ता इन तीनोंको समुच्चय परिभाषामें "प्रस्थानत्रयम्" अथवा प्रस्थानत्रयी कहते हैं ।

प्रथम प्रस्थानका नाम—श्रुति प्रस्थान है, इसमें १२ उपनिषद् प्रधान हैं ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, तैतरीय, ऐतरेय-छान्दोग्य, वृहदारण्यक-कौषीतकि, श्वेताश्वतर ।

द्वितीय प्रस्थान-ब्रह्मसूत्र हैं । इन्हें न्याय प्रस्थानमें रखा गया है । जो पापों तापोंका नाश करे, सच्चा ज्ञान दे, आत्माको प्राप्त करावे और अविद्याको शिथिल करे वह उपनिषद् है ।

अमरकोषमें लिखा है **"धर्मे रहस्युपनिषद् स्यात्"** अर्थात् उपनिषद् शब्द गूढ धर्म एवं रहस्यके अर्थमें प्रयुक्त होता है । उपनिषदोंमें जो ज्ञान अभिप्रेत है वह निःसन्देह ऐसा ही है उसे सब दृष्टियोंसे परिपूर्ण एवं सत्य ज्ञान ही कहा जा सकता है । भारतीय तत्वज्ञानका जितना उत्कृष्ट विवेचन उपनिषदोंमें मिलता है उतना अन्यत्र नहीं ।

स्वामी विवेकानन्दने अपने एक भाषणमें कहा था—मैं उपनिषदोंको पढ़ता हूँ तो मेरे आँसू बहने लगते हैं‥‥ ‥उपनिषदें ही शक्तिकी खान हैं । उनमें ऐसी शक्तियाँ भरी पड़ी हैं जो समस्त विश्वको बल, शौर्य एवं नवजीवन प्रदान कर सकें । उपनिषदें किसी भी देश जाति, मत, सम्प्रदायका भेद किये बिना प्रत्येक हीन, दुर्बल, दुःखी और दलित प्राणीको पुकारकर कहती हैं "अपने पैरोंपर खड़े होओ और बन्धनोंको काट डालो, शारीरिक स्वाधीनता, मानसिक स्वाधीनता और आध्यात्मिक स्वाधीनता यही उपनिषदोंका मूल मन्त्र है ।"[१]

प्रो० मैक्समूलर ने अपनी पुस्तक "इण्डिया ह्वाट कैन इट टीच् अस्" में लिखा है—"एक न एक दिन भारतकी यह श्रेष्ठविद्या समस्त योरोपमें प्रकाशित होगी और तब हमारे ज्ञान एवं विचारोंमें महान् परिवर्तन होगा—"मेरी आत्मा

---

१. १०८ उपनिषद्-ज्ञानखण्ड—श्रीराम शर्मा भूमिका पृष्ठ ८

को इस जीवनमें उपनिषदोंसे ही शान्ति मिली है। पाश्चात्य देशके दार्शनिकोंने मुक्तकण्ठसे उपनिषदोंकी महत्ताको स्वीकार किया है। प्रो० पालने ठीक ही लिखा है—"उपनिषदें मनुष्यकी महान् मेधाका अमूल्य फल है·········मैं भारतकी यात्रा पर गया था वहाँ मैंने बहुत कुछ पाया पर सबसे बहुमूल्य जो मैंने वहाँसे प्राप्त की वह हैं "पवित्र संस्कृत भाषामें ऋषियोंके दिव्य ज्ञानसे ओतप्रोत उपनिषदें।"

प्रो० ह्यूमने लिखा है कि—सुकरात, अरस्तु, अफलातून आदि कितने ही दार्शनिकोंके ग्रन्थ मैंने ध्यानपूर्वक पढ़े हैं, पर जैसी शान्तिमयी आत्मविद्या मैंने उपनिषदोंमें पाई वैसी और कहीं देखनेको नहीं मिली।

प्रो० पाल डामसनने लिखा है कि—उपनिषदोंका ज्ञान भारतमें प्राप्त माना जाता है वस्तुतः वह सारे संसारके लिये अनुपम है। आत्मविद्याके सिद्धान्तोंका ऐसा मार्मिक विवेचन है जैसा संसार में अन्यत्र शायद ही कहीं हो।

प्रो० जी० आर्कका भी यही कथन है—"जब मनुष्य सांसारिक दुःखों और चिन्ताओंसे घिरा हो तो उसे शान्ति और सहारा देनेके अमोघ साधनके रूपमें उपनिषदें ही सहायक हो सकती हैं।"

औरंगजेबके बड़े भाई दाराशिकोहको उपनिषद् ज्ञानकी महत्ता मालूम हुई तो उसने पण्डितोंको बुलाकर उन्हें सुना, सुननेके बाद वह इतना प्रभावित हुआ कि उनका मर्म समझनेके लिये संस्कृत भाषा ही पढ़नी आरम्भ कर दी। उसने सं० १६५७ से लेकर १६७४ तक सत्रह वर्ष संस्कृत पढ़ी और साथ ही उपनिषदों का फारसी भाषामें अनुवाद भी करता रहा। "आत्म-विद्या के मैंने बहुत-से ग्रन्थ पढे पर परमात्माकी खोजकी प्यास कहीं न बुझी। हृदयमें ऐसी अनेक शङ्कायें और समस्यायें उठती थीं जिनका समाधान ईश्वरीय ज्ञानके अतिरिक्त और किसी प्रकार सम्भव न था। मैंने कुरान, तोरेन, इन्जील, जवूर आदि अनेक ग्रन्थ पढ़े उनसे जब मनकी प्यास न बुझी तो हिन्दुओं की ईश्वरीय पुस्तकें पढ़ी इनमें उपनिषदोंका ज्ञान ऐसा है जिससे आत्माको शाश्वतशान्ति तथा सच्चे आनन्दकी प्राप्ति होती है। हजरतनवीने भी एक आयतमें इन्हीं प्राचीन रहस्यमय पुस्तकोंके सम्बन्धमें संकेत किया है।

औरंगजेबकी बेटी ज़ेवुन्निसाने एक दिन अपने चचा दाराशिकोहको एक अनौखी मस्तीमें झूमते देखा तो उसका कारण पूछा। दाराने बतलाया कि यह उपनिषद् ज्ञानसे प्राप्त हुई मस्ती है उसने उपनिषद् सुने और वह भी प्रभावित हुई।

---

* शोपनहार।

सन् १७५७ में बंगालमें फ्रांसके राजदूत श्रीजाटियलने उपनिषदोंकी प्रशंसा अपने देशमें की तो उससे अनेक विद्वान् प्रभावित हुए।

पादरी डयून्स—इसी उद्देश्यसे भारत आया और उसने १४ वर्ष रहकर संस्कृतका अध्ययन किया और सन् १८०१ में फ्रेंचमें उपनिषदोंका अनुवाद किया।

सन्त विनोबाने लिखा है कि—"उपनिषदोंकी महिमा अनेकोंने गाई है एक कविने कहा कि—'हिमाचल जैसा पर्वत नहीं और उपनिषदों जैसी पुस्तक नहीं है।* परन्तु मेरी दृष्टिमें उपनिषद् पुस्तक है ही नहीं वह तो एक दर्शन है। उस दर्शनको यद्यपि शब्दोंमें अङ्कित करनेका प्रयत्न किया गया है फिर भी शब्दोंके कदम लड़खड़ा गये हैं। उपनिषद् मेरी माँ (गीता) की माँ है। उसी श्रद्धासे मेरा मनन, निदिध्यासन पिछले बत्तीस वर्षोंसे चल रहा है।

उपनिषदोंकी एक-एक पंक्तिमें अमृत भरा पड़ा है। इनमें उल्लिखित ज्ञानको पढ़ने विचारने और मनन करनेसे मनःक्षेत्रमें श्रेयस्कर प्रकाशकी दिव्यकिरणें परिलक्षित होती हैं। इन मन्त्रोंमें प्रयुक्त हुए कठिन शब्दोंको देखकर ऐसा लगता है कि यह ज्ञान केवल एकान्तसेवी सन्त-महात्माओंके लिये ही व्यवहारमें आने योग्य है, पर बात ऐसी नहीं है। जिस प्रकार जलमें तैरना कठिन दिखाई पड़ता है, उसमें दुर्घटनाकी आशङ्का भी बनी रहती है, किन्तु जब सच्ची लगन होती है और प्रयत्नपूर्वक अभ्यास किया जाता है तो कठिन कार्य भी सहज बन जाता है।

इसी प्रकार उपनिषदोंमें जिस ब्रह्मविद्याका उल्लेख हुआ है वह भी सरल है, कठिन तो वह उन्हें दीखता है जो उससे दूर रहते हैं, दूर से देखते हैं। भीतर प्रवेश करने का साहस करने पर वह सरल ही है। और जितनी सरल है उतनी कल्याणकारक भी है।

अल्पज्ञात उपनिषद्—

शोध प्रबन्धकी रूप रेखाका विचार करते समय श्रीमद्भागवत निःसन्देह इन अल्पज्ञात उपनिषदोंसे प्रभावित होगी ऐसी सम्भावना थी और इस कारण ही भागवतके साथ इनका तुलनात्मक अध्ययन रखा गया; किन्तु अध्ययनकालमें निष्कर्ष यह निकाला कि कतिपय उपनिषदोंका प्रभाव तो भागवत में है शेषको भागवतसे अनुप्राणित भी कहा जा सकता है। इस पक्षको उपनिषदोंको आधुनिक कालकी कृति मानने वाला विद्वानों का मत भले ही स्वीकार करले; किन्तु

*१०८ उपनिषद्-ज्ञानखण्ड पृ० १३

सर्वात्मना उपनिषदोंको प्राचीन माननेवाले विद्वान् इसे स्वीकार नहीं कर सकते। उनकी दृष्टिमें तो भागवतसे पूर्व उपनिषदोंकी रचना हो चुकी थी। श्रीमद्भागवतके टीकाकार—जीवगोस्वामी, विश्वनाथ चक्रवर्ती, विजयध्वज एवं सनातन गोस्वामी प्रभृति महानुभावोंने अपनी टीकाओंमें इन उपनिषदोंके वाक्योंको उद्धृत किया है। हाँ भागवतके साथ इनका किसी-न-किसी प्रकार सम्बन्ध अवश्य सिद्ध है अतः यहाँ यह प्रकरण असंगत न होकर सुसंगत ही सिद्ध है।

बह्वृचोपनिषद्—

यह ऋग्वेदकी उपनिषद् है। देवी ही कामकला है, इसीका दूसरा नाम शृङ्गार कला है, ब्रह्मा-विष्णु-शिव इन्हींसे प्रकट हुए हैं। जाग्रत्-स्वप्न और सुषुप्ति इन तीनों पुरों तथा स्थूल, सूक्ष्म और कारण इन तीनों प्रकारके शरीरोंको व्याप्त करके बाहर भीतर प्रकाश फैला रही है अतः इस कलाकानाम त्रिपुरसुन्दरी है, ब्रह्म-विद्या है। इसमें देवीका नाम ललिता है और षोडशी तथा श्रीविद्या भी। चामुण्डा, मातङ्गी, धूमावती, अश्वारूढा, सरस्वती, सावित्री, बाला इसके नाम हैं। तत्वमसि महावाक्यका उपदेश भी बीचमें दिया गया है।

श्रीमद्भागवतमें योगमायाने मथुरामें जन्म लेकर देवीका रूप धारण किया। तथा गोपियोंने कात्यायनीकी पूजा की थी। रुक्मिणीने दुर्गा पार्वतीका पूजन किया था। भगवान् कृष्ण, ग्वाल-बालोंको साथ लेकर अम्बिका वन गये थे। शक्ति तत्वका भागवतमें कई प्रसङ्गोंमें वर्णन मिलता है।

सौभाग्य लक्ष्म्युपनिषद्—

श्रीसूक्तके मन्त्रोंका इसमें ध्यान वर्णित है और इन्दिरा एवं उसके पुत्र कर्दम आनन्द चिक्लीत इसमें ऋषि हैं। प्रथम खं०में यंत्र बनाकर पूजनकी विधि लिखी गई है। द्वितीय खण्डमें—योगका और उसके अङ्ग प्राणायाम, अभ्यास आदिका भी वर्णन है। निर्विकल्पक समाधिका भी वर्णन इसमें दृष्टव्य है।

तृतीय खण्डमें—नवचक्रोंका विवेचन है। प्रथम, मूलआधार चक्र, छःदलोंका—स्वाधिष्ठान चक्र, फिर नाभिचक्र, (मणिपूरचक्र) है। इसमें ८ दलपदम है। मणिपूरमें श्रीवल्लभाचार्यने भी अष्टदल चक्रमाना है।* कण्ठचक्र, अनाहत चक्र, तालुचक्र इसमें १० अथवा १२ दल लिखे हैं। भूचक्र द्विदल है। यह आज्ञाचक्र—

*** सुबोधिनी २.२.१९**

इसे ब्रह्मरंध्र अथवा निर्वाह चक्र भी कहते हैं। नवम—आकाश चक्र है। इसमें १६ दल पद्म ऊपरकी ओर मुख किये स्थित है।

प्रायः तन्त्रमें स्वाधिष्ठान, मूलाधार, मणिपूर, अनाहत विशुद्ध, आज्ञाचक्र छः चक्रोंके नाम प्रसिद्ध हैं। भागवतमें भी "स्थानेषुषट्सून्नमयेत् जितवलमः' (२.२.१६) में छः चक्रोंका ही वर्णन है।

कौषीतकि ब्राह्मणोपनिषद्—

इस उपनिषद्के प्रथम अध्यायमें पर्यंक विद्याका विवेचन है। उद्दालक मुनि एवं चित्रराजाके कथोपकथनसे इसका आरम्भ है। अग्निहोत्र कर्म करनेवाला क्रमशः धूम-रात्री, कृष्णपक्ष और दक्षिणायनके अभिमानी देवताओंके अधिकारमें होते हुए चन्द्रलोक अर्थात् स्वर्ग जाता है। चन्द्रमा स्वर्गलोकका द्वार है। 'स्वर्ग' चंद्रलोकसे ऊपर है चन्द्रलोकमें आसक्त प्राणी पुण्य क्षीण होनेपर वर्षाके रूपमें परिणत होकर भूमिके अन्नमें आकर पुनः देह धारण करते हैं।

देवयान मार्गसे उपासक अग्निलोक, वायुलोक, सूर्यलोक वदनलोक, इन्द्रलोक, प्रजापतिलोक होता हुआ ब्रह्मलोकमें पहुँचता है। इस उपनिषद्में ब्रह्मलोकका भव्य वर्णन है। भागवतमें भी इन लोकोंके भव्य वर्णन हैं। प्राण ही ब्रह्म है यह पैङ्ग्य ऋषिका मत है।

मनोरथ सिद्धिके उपाय, धन प्राप्तिकी विधि, हन्नकर्म, वशीकरण विधि, पाप निवृत्तिके उपाय तथा सन्यास विधिका वर्णन भी इसमें है।[1] भागवतमें भी अनेक अनुष्ठानोंका वर्णन है जिनसे पुत्र प्राप्ति, धन प्राप्ति एवं पाप नाश होते हैं।[2] अजात शत्रु और गार्ग्यके सम्वादमें पुरुषको अँगुष्ठ मात्र आकारका सिद्ध किया है। भागवतमें इसका अनेकशः उल्लेख है।

महोपनिषद्—

यह सामवेदके उपनिषदोंमें गिना गया है। भागवतके सप्ताह वक्ता शुकदेवका वर्णन इसमें श्रोताके रूपमें वर्णित है। यह इसकी विशेषता है। प्रारम्भमें सृष्टिका वर्णन है। नारायणके ध्यानसे २५ तत्वोंका विराट् उत्पन्न हुआ। उनके

---

१. कौ० उप० २

२. भागवत स्क० २, अ० ३, श्लोक १-१०

ललाटसे ३ नेत्रवाला महादेव उत्पन्न हुआ उनके ललाटके स्वेदसे एक जाल बन गया और उससे एक अण्ड बना, उसमें-से ब्रह्माका जन्म हुआ द्वितीय अध्यायमें शुकदेवका वर्णन है—शुक नामक एक महातेजस्वी मुनीश्वर थे उन्होंने उत्पन्न होते ही सत्यकी तत्त्वज्ञानकी प्राप्तिकी। शुकदेव मुनिको अपनी ही बुद्धि सूक्ष्मताके कारण सब कुछ ज्ञात होगया था।

एक बार शुकदेवने अपने पिता कृष्णद्वैपायन व्याससे प्रश्न किया कि यह जगत् प्रपंच कैसे उत्पन्न हुआ और किस प्रकार विलीन होता है। जब व्यासने इस तत्त्वको समझाया तो शुकदेवने कहा कि यह तो मुझे ज्ञात था, फलतः उनके कथनपर विशेष ध्यान न दिया। व्यासने शुकदेवका अभिप्राय समझ लिया और कहा कि तत्त्वतः इन बातोंको कोई नहीं जानता, मिथिलापुरीमें एक जनक नामके राजा हैं वे इन बातोंको भली-भाँति जानते हैं, तुम उनसे कुछ प्राप्त कर सकते हो। शुकदेव सुमेरुपर्वतसे उतरकर विदेहनगरीमें जा पहुँचे, जब राजा जनकके द्वारपर शुकदेव पहुँचे तो जनकने उनकी परीक्षा लेनेके लिए द्वारपालोंसे अवज्ञा हेतु द्वारपर ही ७ दिन रुकवा दिया। इसके बाद राजाने शुकदेवजीको प्रांगणमें बुलवाया और वहाँ भी ७ दिन चुप रहे। अन्तःपुरके आँगनमें भी उन्हें ७ दिन रोके रखा पर वहाँ भी प्रत्यक्ष दर्शन न किये। जनकने अन्तःपुरमें युवती स्त्रियों, नानाप्रकारके भोजनों तथा भोग्यपदार्थोंके द्वारा सौम्यवदन शुकदेवजीका आदर-सत्कार किया। वे भोग और भोज्य पदार्थ व्यासपुत्र शुकदेवके मनको न हर सके। राजाने स्वभावकी परीक्षाकर प्रसन्नचित्त होकर उन्हें प्रणाम किया और कहा कि आपने अपने सांसारिक कृत्योंको निःशेष कर दिया है आपको सारे मनोरथ प्राप्त हैं, ऐसी परिस्थितिमें आपकी क्या अभिलाषा है। शुकदेवने कहा कि गुरुदेव ! मुझे यह बतलाइये कि यह जागतिक प्रपंच कैसे उत्पन्न होता है और कहाँसे उत्पन्न होता है और कैसे विलीन होता है जो वेदव्यासने बतलाया था वही राजा जनकने बतलाया तब शुकदेव चौंके कि यह तो मैं पहिले भी सुन चुका हूँ। जनकने कहा कि—दृश्य जगत् है ही नहीं यह बोध हो जानेपर मनकी दृश्य विषयसे शुद्धि हो जाती है। जब यह बोध परिपक्व हो जाता है, तब उससे निर्वाणरूपी परमाशान्ति प्राप्त होती है। वासनाओंका जो निःशेष परित्याग होता है वही श्रेष्ठ त्याग है उसी विशुद्ध अवस्थाको साधुजनोंने 'मोक्ष' कहा है। शुकदेव राजा जनकसे ज्ञान प्राप्तकर सुमेरुपर्वत लौटकर चले गये। वहाँ सहस्त्रों वर्षोंतक निर्विकल्प समाधि द्वारा शान्तिलाभ किया। इसमें अज्ञान और ज्ञानकी ७ भूमिकाओंका भी वर्णन है।

वासुदेव उपनिषद्—

इसमें देवर्षि नारद और वासुदेवका सम्वाद है। इस उपनिषद्में गोपीचन्दनके

तिलक धारणका माहात्म्य है। नित्य गोपीचन्दन धारणसे एकाग्र भक्ति प्राप्त होती है। गोपीचन्दनके अभावमें तुलसीकी जड़की मिट्टीका भी विधान है। गोपीचन्दनसे हड्डी दृढ़ होती है और विष्णुकी सायुज्य मोक्षका अधिकारी हो जाता है। भागवतमें **"वासुदेव परावेदा वासुदेव परामखाः"** आदि द्वारा वासुदेवका माहात्म्य लिखा है।

नारद परिव्राजकोपनिषद्—

इस उपनिषद्में नैमिषारण्यका भी उल्लेख मिलता है।[1] यहाँ यह ज्ञातव्य है कि नैमिषारण्यका स्थल समस्त पुराणोंके पाठके लिये प्रसिद्ध रहा है। यहाँके प्रमुख वक्ता सूत एवं श्रोता शौनकका नाम सर्वविदित है। श्रीमद्भागवत पारायणका भी प्रसार इसी स्थानसे हुआ है। अन्य उपनिषदोंमें इस प्रकारकी चर्चा कम है। यह ९ उपदेशवाली बड़ी उपनिषद् है एवं इसमें संन्यासका विस्तारपूर्वक विवेचन है।

रामपूर्वतापनीयोपनिषद्—

राम शब्दके विभिन्न अर्थके साथ-साथ इस उपनिषद्की विशेषता यह है कि 'ब्रह्म' निराकार होता हुआ भी साकार रूपमें परिणत हो जाता है। भागवत भी निराकारके साथ साकारका प्रतिपादन करता है। श्रीराम-सीता और लक्ष्मणका ध्यान इसमें वर्णित है। श्रीरामकी, खरवध, सीताहरण आदि लीलाओंका संक्षेपमें वर्णन है। भागवतमें भी अति संक्षेपसे रामकी लीलाओंका वर्णन है।

गोपाल पूर्वतापनीयोपनिषद्—

यह उपनिषद् श्रीमद्भागवतके अत्यन्त निकट है। इसमें भगवान् श्रीकृष्णका गुणानुवाद है। भगवान् श्रीकृष्ण परब्रह्म हैं। जीवगोस्वामी, विश्वनाथ चक्रवर्ती आदि वैष्णव टीकाकारोंने श्रीमद्भागवतकी टीकामें इस उपनिषद्का बहुधा उल्लेख किया है। ब्रह्मा द्वारा भगवान् श्रीकृष्णका ध्यान वर्णन और उनके द्विभुज स्वरूपका वर्णन है भागवतकी ब्रह्म स्तुतिमें भी कृष्णके द्विभुज स्वरूपका वर्णन है।[2] कृष्णोपासनाकी विधि तथा यन्त्रके निर्माण विधिका भी वर्णन है। सुप्रसिद्ध श्रीकृष्णके अष्टादशाक्षर मन्त्र तथा गोलोक धामका उल्लेख प्रथम इसीमें प्राप्त होता है। कृष्ण स्वरूपका स्तवन एवं भगवान् श्रीकृष्णके प्रिय मयूर पंखके मुकुटका उल्लेख भी

---

१. ना० परि० १ उपदेश–१

२. भागवत १०, १४

प्रथम इस उपनिषद्‌में देखने योग्य है। भागवतमें—**"बर्हापीडं नटवर वपुः"** (भा० १०, २१, ५) श्लोकमें मोरमुकुटधारी रूप पठनीय है। इस प्रकार उपनिषद्‌में वर्णित तथ्य भागवतमें सम्यक्तया उपलब्ध हैं।

गोपालोत्तरतापनीयोपनिषद्—

भागवतमें गोपियोंकी लीलाओंका बड़े विस्तारसे वर्णन है परन्तु किसी गोपीका कथानक उसके नामके साथ जोड़ा नहीं गया है। एका—काचित् पदों द्वारा कहीं-कहीं संकेतमात्र दे दिये गये हैं। कृष्णके साथ सर्वाधिक चर्चा राधाके नामकी होती है परन्तु भागवतमें संकेत तो है किन्तु स्पष्ट उनका उल्लेख किसी कथाके द्वारा नहीं दिया है। इन उपनिषद्‌में राधाका केवल उल्लेख ही नहीं अपितु उनकी विभिन्न कथा वर्णित हैं। राधा-दुर्वासाका संवाद भी इसमें है और दुर्वासा द्वारा श्रीकृष्णके स्वरूपका वर्णन भी है। भगवान कृष्ण मथुरामें नित्य विराजमान हैं इस उपनिषद्‌के साथ भागवतमें भी इस तथ्यको देखा जा सकता है—

"मथुरा भगवान् यत्रनित्यंसन्निहितो हरिः"[1]

सत्ययुगमें श्वेतवर्ण, त्रेतामें रक्तवर्ण एवं कलियुगमें कालेवर्ण वाले श्रीकृष्णके अवतारका उल्लेख है। भागवतकारने भी युगके अनुसार कृष्णके स्वरूपको देखकर कहा कि "शुक्लो रक्तस्तथा पीत इदानीं कृष्णतांगतः" ये इस समय काले रंगके हैं अतः इनका नाम 'कृष्ण' होगा। भागवतके एकादशस्कन्धमें स्पष्ट युगानुसार वर्णोंका ध्यान है। 'रुक्मिणी' मूलप्रकृति हैं, अंतरंगा शक्ति है। रुक्मिणी भगवान्‌की पटरानी हैं, यह भागवतमें भी स्पष्ट है।

नृसिहोत्तरतापनीयोपनिषद्—

इस उपनिषद्‌में नरसिंहके मन्त्रका वर्णन है। भागवत पंचम स्कन्धमें मन्त्रराजका वर्णन है। ब्रह्माकी उत्पत्ति भगवान्‌की नाभि कमलसे है भागवतमें भी यही उल्लेख है। इसके चतुर्थाध्यायमें नृसिंहकी स्तुतिकी है जो भागवतके सप्तमस्कन्ध नवमाध्यायसे मेल खाती है। सुदर्शन चक्रका वर्णन इसके मन्त्रका निरूपण एवं जपसे होने वाले फलकी ओर उपासकोंका ध्यान आकृष्ट किया है। 'षोडशारे' 'पद' भा० ७, ६, १२ में एवं इसके पंचम अध्यायमें प्राप्त है।

नृसिंहोत्तरतापनीयोपनिषद्—

ओंकारका निर्वचन, कण्ठसे आकारका निकलना इसके प्रारम्भमें वर्णित है। **"ओंकारश्चाथशब्दश्च द्वावेतौ ब्रह्मणः पुरा। कण्ठं भित्वा विनिर्यातौ तस्मान्—**

---

१. भा० १०, १, २८ २. भा० १०, ८, १३

मांगलिकाविमौ" श्लोक बहुचर्चित है 'ओंकार' और 'अथ' शब्द कण्ठ फाड़कर निकले हैं। अत: मंगलवाची माने गये हैं। ब्रह्मरूप होनेकी विधि एवं आत्माका नृसिंह रूपसे ध्यान भी वर्णित है।[१]

त्रिपाद् विभूतिमहानारायणोपनिषद्—

ब्रह्माने देवोंकी गणना वाले सहस्त्रों वर्ष तपस्यामें व्यतीत किये विष्णुके प्रकट होते ही उन्होंने परमतत्वका प्रश्न किया, श्री विष्णु ही जगत्में ओतप्रोत हैं इसे भी सिद्ध किया है। श्रीमद्भागवतमें दशमस्कन्धमें ब्रह्मा द्वारा श्रीकृष्णकी स्तुति में भी ब्रह्माने विष्णुका परात्परत्व सिद्ध किया है एवं तृतीयस्कन्धमें कमलसे निकलनेके पश्चात् उन्हें जल ही जल दिखाई देता है और वे भगवान्‌की सैकड़ों वर्ष तपस्या करते हैं।[१] इसमें ब्रह्मके चार पादोंकी कल्पनाकी है, अविद्यापाद, सुविद्यापाद, आनन्दपाद, तुरीयपाद।

"पादोऽस्यविश्वाभूतानि त्रिपादस्यामृतन्दिवि" (ऋग्वेद पु० सू०)

इस मन्त्रका व्याख्यान उक्त उपनिषद्‌की दृष्टिसे होगा कि प्रथम पादमें अविद्या और तज्जन्य संसार एवं अन्य तीन पादमें अमृत है। श्रीकृष्णके परम ब्रह्मत्वकी चर्चा भी इसमें है।[२] दशमस्कन्धमें श्रीकृष्णके स्तवनमें कहा गया है कि तुम्हारे रोम-रोममें ब्रह्माण्ड हैं,[३] इस उपनिषद्‌में भी कहा गया है। एक-एक रोमकूप छिद्रमें अनन्तकोटि ब्रह्माण्ड हैं।[४]

"नारायणपरावेदा नारायण परा मखाः" से भागवतमें नारायण महिमा है। नारायणकी महिमाका ज्ञान इसमें भी पर्याप्त है। सहस्त्र युगका ब्रह्माका एक दिन होता है—[५]

"सहस्त्रयुगपर्यन्तमहर्यद् ब्रह्मणो विदुः ; भागवतमें भी कहा है।

कालपरिमाण तृतीयस्कन्धमें जैसा वर्णित है इसमें भी है। महाविष्णुका दिन और ब्रह्माकी १०० वर्ष, एक बराबर हैं। एक अरब वर्ष बाद प्रलय होती है। ऊपर लोकोंके गमनके समय जैसा वर्णन श्री भागवतमें है वैसा ही इसमें है। विष्णुके पार्षदोंका आगमन और विमान पर बैठकर दिव्य लोकोंका गमन सुन्दर ढंगसे निरूपित है।[६] यह 'ब्रह्माण्ड' खेलनेकी गेंदके समान है। ४, ५, ६, ७, ८ मुख वाले

---

१. नृसिंह उ० ता० ६, ७, ८

१. भाग० ३, १०, ४ "विरिंचोपितथा चक्रे दिव्यं वर्षशतंतपः"

२. त्रि० उ० २, १३ ५. त्रि० उ० ३, ४

३. भाग० १०, १४, ११ ६. त्रि० उ० ५, १३, १४

४. त्रिया० २, १६

ब्रह्मा अनेक ब्रह्माण्डोंमें है।[१] **'ओं नमो नारायणाय'** यह मन्त्र भी इसी का है और यह नारायण कवच विद्यामें भागवतमें भी उपलब्ध है। नारायण कवचमें सुदर्शन चक्रका वर्णन है और इसमें भी। 'ओं नमो भगवते वासुदेवाय' मन्त्रका न्यासध्यान इसमें वर्णित है और भागवतमें भी इसके न्यासकी विधिका उल्लेख है।

"करन्यासंततः कुर्यात् द्वादशाक्षर विद्यया
प्रणवादि यकारान्तमङ्गुल्यङ्गुष्ठ पर्वसु" । (भा० ६।८)

भगवान्के आयुधोंका वर्णन भी इसमें है तथा श्रीवत्स, कौस्तुभ एवं सुप्रसिद्ध 'वनमाला' जिसे श्रीकृष्ण प्रायः धारण करते हैं का वर्णन है। ब्रह्माजीके ब्रह्मलोक एवं विष्णुके अन्तर्दर्शन होनेका उल्लेख है। महानारायण मन्त्रके निर्माण एवं पूजनकी विधिका भी इसमें सविस्तार वर्णन है।[२]

मुक्तिकोपनिषद्—

इस उपनिषद्के श्रोता हनुमान् और वक्ता श्रीराम हैं। इस उपनिषद्में वेदान्तकी महिमाका गान किया गया है एवं १०८ उपनिषदों की तालिका भी इसमें दी गई है। जो वेदोंकी शाखायें लिखी गई हैं भागवत सम्मत नहीं हैं। ऋग्वेदकी २१ एवं सामवेदकी १००० शाखाओंका उल्लेख तो अन्यत्र भी है किन्तु यजुर्वेदकी इसमें १०६ शाखा लिखी हैं जबकि "एकशतमध्वर्यु शाखा" का उल्लेख सर्वत्र उपलब्ध है। अथर्ववेदकी इसमें ५० शाखाओंका उल्लेख है जबकि भागवतमें केवल ६ शाखा लिखी हैं। मुक्तिका स्वरूप बतलाते हुए कहा गया है कि 'कैवल्य' नामक एक ही मुक्ति कही गई है तथापि उसके सालोक्य, सारूप्य, सामीप्य, सायुज्य, भेद-मात्र हैं। भागवत में इन चारोंका उल्लेख है। संसारमें आना ही बन्धन है, इससे मुक्त होना ही मुक्ति है। इसमें ऋग्वेदके उपनिषद्, शुक्ल यजुर्वेदके १६ उपनिषद, कृष्णयजुर्वेदके ३१ उपनिषद्, सामवेदके १६ उपनिषद्, अथर्ववेदके ३१ उपनिषद् लिखे हैं। उपासना द्वारा मुक्तिका इसमें निषेध है।[३]

जीवनमुक्ति—मैं भोक्ता हूं, मैं कर्ता हूँ, मैं सुखी हूँ और मैं दुखी हूँ इत्यादि जो ज्ञान होता है वह चित्तका धर्म है। यही ज्ञान क्लेश रूप होनेके कारण उनके लिये बन्धनका कारण हो जाता है इस प्रकारके ज्ञानका विरोध ही जीवन्मुक्ति है।[४]

विदेहमुक्ति–घटरूप उपाधिसे मुक्त घटाकाशकी भाँति प्रारब्धरूप उपाधिके नष्ट होने पर यह जीव विदेह मुक्त हो जाता है। कर्तापन और भोक्तापन आदि दुःखोंकी निवृत्तिके

---

१. त्रि० उ० ६, ७   ३. मुक्तिकोप० १, ५६
२. त्रि० ७, ५०   ४. मुक्तिको० २, २

द्वारा नित्यानन्द प्राप्ति ही इनका प्रयोजन है । वेदान्तके श्रवण-मनन और निदिध्यासनसे उत्पन्न हुई समाधिसे जीवन्मुक्ति आदिकी सिद्धि होती है और वह सारी वासनाओंके नाश होने पर प्राप्त होती है । जीवन्मुक्तका चित्त "नाश स्वरूप" होता है और विदेह मुक्तका "अरूप'। अर्थात् जीवन्मुक्तका चित्त स्वरूपसे रहता तो है पर वह अचित्त हुआ रहता है, विदेह मुक्त होने पर उसका स्वरूपतः नाश हो जाता है । जीवन्मुक्तका मन आवागमनसे मुक्त हो जाता है अतः उसका देहमनोनाश स्वरूप कहलाता है । विष्णुके परमपदका भी उल्लेख इस उपनिषद्में कहा है ।

राधिकातापनीयोपनिषद्—

श्री राधिकाकी स्तुति वेदकी ऋचाएं कर रही हैं । श्री राधिकाकी कान्तिसे श्रीकृष्णचन्द्रका शरीर भी गौर जान पड़ता है । यह भाव बिहारी कविके इस दोहेमें द्रष्टव्य है—

मेरी भव बाधा हरौ राधा नागरि सोय ।
जा तनकी झाईं परैं स्याम हरित दुति होय ।।[१]

राधा श्रीकृष्णकी प्राणप्रिया है ।[२] वृन्दावनकी अधिष्ठात्री देवी है । श्रीकृष्ण, राधिकाके चरणोंकी धूलि अपने मस्तक पर धारण करते हैं और क्रीतकी भाँति उनके साथ रहते हैं । कविवर रसखानकी आत्मा भी इसका साक्षात्कार करती है—

"बैठो पलोटत राधिका पायन"

इस उपनिषद्में ललितासखी, रासमण्डप, छः मासकी रात्रीका विस्तार राधिकाका श्रीकृष्णस्वरूप होना, तथा दोनोंका अभेदत्व सिद्ध किया है जिसे साहित्यमें—

गौरतेजोविनायस्तु श्यामतेजः समर्चयेत्" (गो० स०) द्वारा भी स्पष्ट किया गया है । वसिष्ठने यह उपनिषद् बृहस्पतिको दिया था अतः इसका नाम 'बार्हस्पत्य' पड़ गया । भागवत दशमस्कन्धमें २९वें अध्यायसे रासलीलाका आरम्भ है । एका, काचित् पद गोपियोंके लिये हैं एवं "**अनयाराधितो नूनम्**" श्लोकमें 'राधा' शब्दको माना है । छः मासकी एक रात्रीका उल्लेख इस उपनिषद्में है जो भागवत कथाके साथ संयुक्त है ।

श्रीराधोपनिषद्—

इस उपनिषद्में सनकादिके सर्वश्रेष्ठ देवविषयक प्रश्नका उत्तर देते हुए कहा है कि भगवान् श्रीकृष्ण ही परमदेव हैं । आल्हादिनी, सन्धिनी, ज्ञान, इच्छा, क्रिया, ये भगवान्‌की पुरातन शक्तियाँ हैं इनमें राधा 'आल्हादिनी शक्ति स्वरूपा' हैं । कृष्ण इनकी आराधना करते हैं अतएव इनका नाम राधा है । भागवतमें "**अनयाऽऽराधितो नूनम्**" श्लोकको व्याख्यामें सनातन प्रभृति वैष्णव

---

१. विहारीसतसई दोहा १   २. रा० ता० ६

टीकाकारोंने 'राधा' नामकी पुष्टिकी है। राधाके २८ नाम इस उपनिषद्‌में हैं। इन नामों में राधिका, रुक्मिणी, सत्यभामा, वृन्दाराध्या भी हैं।

राधा रासेश्वरी रम्या कृष्णमन्त्राधिदेवता।
सर्वाद्या सर्ववन्द्या च वृन्दावन विहारिणी ॥
वृन्दाराध्या रमा शेष गोपीमंडलपूजिता।
सत्या सत्यपरा सत्य भामा श्रीकृष्णवल्लभा ॥
वृषभानु-सुतागोपी मूलप्रकृतिरीश्वरी।
गान्धर्वा राधिका रम्या रुक्मिणी परमेश्वरी ॥
परात्परतरा पूर्णा पूर्णचन्द्र निभानना।
भुक्ति मुक्ति प्रदा नित्यं भव-व्याधिविनाशिनी ॥

जड़ प्रकृति ही माया और अविद्या रूपसे जीवका बन्धन करती है। इन नामोंमें भागवतमें रमा, गोपी, सत्यभामा, रुक्मिणी, वृन्दा, नाम आये हैं अतः राधाके पर्यायवाची नामोंका उल्लेख किसी न किसी प्रकार है। भागवतमें राधा नाम न होने पर भी कृष्णकी कथा राधाके अभावमें पूर्ण नहीं है।

ब्रह्मबिन्दूपनिषद्—

इस उपनिषद्‌में मनके लयका साधन आत्माका स्वरूप तथा ब्रह्मकी प्राप्तिका उपाय कहा है:—**"मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः"** गीताकी पूर्ण व्याख्या है। शब्दब्रह्म और परब्रह्म दोनोंका निरूपण इसमें किया गया है। वासुदेव सर्वात्मा हैं। भागवतमें भिक्षुगीतमें मनको ही सब सुख दुःखोंका मूल माना है—

"मनः परं कारणमामनन्ति संसार चक्रं परिवर्तयेत्तत्" भा० ११।२३।४३

ध्यानबिन्दु, तेजोबिन्दु, नादविन्दूपनिषद् और अमृतनादोपनिषद्‌में वर्णित ध्यान, नाद आदिका वर्णन भागवत एकादशस्कन्धमें विस्तारसे है। 'सहस्त्रशीर्षा' इसकी प्रथम ऋचा है। इसमें विष्णु भगवान्‌की कालतः व्याप्ति कही है। इसमें सिद्ध किया है कि भगवान् विष्णु मोक्षदाता हैं। चतुर्थ मंत्रका आशय है कि हरिका वैभव अपार है। ५ प्रथम तीन मन्त्रोंके द्वारा चतुर्व्यूहके अनिरुद्ध स्वरूपका वैभव वर्णन है। पंचम—"तस्मात् विराडजायत" मन्त्रसे हरिकी स्वरूपभूता माया और पुरुष (जीव) की उत्पत्ति बतलाई गई है। भागवतमें भी विराट् पुरुषसे सृष्टिका उल्लेख है। षष्ठमें सृष्टिस्वरूप यज्ञका वर्णन है। सप्तममें यज्ञके लिये समिधाओंका वर्णन है। सात मन्त्रोंमें जगत्‌की सृष्टि कही गई है "यज्ञेनयज्ञ' में सृष्टि एवं मोक्षके वर्णनका उपसंहार किया है। द्वितीय खण्डमें—चतुर्व्यूह "वासुदेव-संकर्षण"-आदिका उल्लेख है। तृतीयमें—आत्मतत्वभावना तथा चतुर्थमें ब्रह्मका स्वरूप तथा उपनिषद्‌के अध्ययनके माहात्म्यका

वर्णन है। चतुर्व्यूहकी कल्पना प्रथम इसी उपनिषद्में दृष्टिगोचर होती है। भागवतमें चतुर्व्यूहका स्पष्ट विवेचन है।

नारायणोपनिषद्—

इस उपनिषद्में नारायणको सर्वश्रेष्ठ सिद्ध किया है। भागवतमें—"**नारायण परा वेदा नारायण परामखाः**" स्क० २।५।१५ द्वारा नारायणकी महिमा गाई है। 'ओं नमो नारायणाय' मन्त्र भागवतमें व्याख्यात है। विश्वरूपने "ओं नमोनारायणाय" का 'न्यास' इन्द्रके लिये वतलाया था। भागवतमें तो सुप्रसिद्ध "नारायणकवचविद्या"[१] नारायण नामसे सम्बद्ध है। (भा० ६, ८)

कृष्णोपनिषद्—

इस उपनिषद्में श्रीकृष्णके सम्पूर्ण परिवारके जन्मका निरूपण है भगवान्का परमानन्द अंश ही नन्दरायको माना है—

यशोदा	मुक्तिदेवी हैं;	वासुदेव	निगम हैं
कृष्ण-बलराम	वेदकी ऋचा	उद्धव	दम
लकुटी	ब्रह्मा	शंख	विष्णु, लक्ष्मीरूप भी
वंशी	रुद्र	दूधदही	क्षीरसागर
सींग	इन्द्र	चक्र	ब्रह्म
गोकुल	वैकुण्ठ	चंवर	धर्म
वृक्ष	तपस्वी	वैजयन्तीमाला	वायु
बलराम	शेषनाग	खल	महेश्वर
रानियाँ	वेदकीऋचायें १६१०८	ऊखल	कश्यप
चाणूर	द्वेष है	रज्जु	अदिति
मुष्टिक	मत्सर	छत्र	आकाश
हाथी	दर्प	गदा	कालिका
बकासुर	गर्व	धनुष	वैष्णवीमाया
रोहिणी	दया	कमल	जगत्का बीजरूप
सत्यभामा	पृथिवी	भाण्डीरवट	गरुड़
अघासुर	महाव्याधि	सुदामासखा	नारद
सुदामा	शम	वृन्दा	भक्ति
अक्रूर	सत्य	क्रियाशक्ति	बुद्धिको लिखा है।
		कंस	साक्षात् कलि है

यह उपनिषद् अथर्ववेदकी है।

कृष्ण-लीलाके पात्रोंका और उपकरणोंका आध्यात्मिक विवेचन इस उपनिषद्‌में है अतः यह भागवतका परम उपयोगी है। सभी पात्र भागवतके प्रमुख प्रतिपाद्य हैं।

कैवल्योपनिषद्—

इस उपनिषद्‌के वक्ता ब्रह्मा एवं श्रोता आश्वलायन ऋषि हैं। ब्रह्म विद्याका प्रश्न आश्वलायनने किया है और उसका ब्रह्माने दिया। ज्ञानके अन्तरंग साधन श्रवण-मनन निदिध्यासन द्वारा परमतत्त्वकी उत्तर प्राप्तिका उपदेश किया है। यह उपनिषद् शिवमहिमासे ओतप्रोत है और शिवको ही ब्रह्म सिद्ध करनेकी चेष्टाकी है। शिवकी जैसी प्रशंसा इसमेंकी गई है वैसी ही दक्षयज्ञ विध्वंस प्रकरणमें भागवतमें है। देवोंने इस स्तुतिमें शिवको अचिन्त्यशक्ति परब्रह्म कहा है। कैवल्यपद प्राप्तिके कारण ही इसका नामकरण हुआ है।

कठरुद्रोपनिषद्—

इसमें संन्यासकी विधिका वर्णन है। आत्माकी व्यापकता एवं कर्मोंकी प्रमुखताका इसमें निरूपण किया है। श्रीमद्भागवतके सप्तमस्कन्धमें सन्यासियोंका वर्णन भी इससे साम्य रखता है।

रुद्रहृदयोपनिषद्—

शुक्र-व्यासके संवादसे यह उपनिषद् प्रारम्भ होता है। शुक्रदेवके तीन प्रश्नोंका उत्तर हैं—१. सब वेदोंमें किस देवका प्रतिपादन है और २. किसमें समस्त देवोंका निवास है, एवं ३. किसकी सेवापूजासे देव प्रसन्न होते हैं; इन तीनोंका उत्तर व्यासने दिया है। भगवान् रुद्रको सर्वदेवमय कहा है। इस उपनिषद्‌में हरिहर दोनोंको एकरूप कहा गया है। "जो गोविन्दको नमस्कार करते हैं वे शंकरको नमस्कार करते हैं और जो विष्णु भगवान्‌की अर्चना करते हैं वे वृषभध्वजकी पूजा करते हैं। जो विरूपाक्ष अर्थात् भगवान् आशुतोषसे द्वेष करते हैं वे जनार्दनसे द्वेष करते हैं। जो रुद्रको नहीं जानते वे केशवको भी नहीं जानते। 'रुद्र' बीजसे उत्पन्न होता है और इस बीजकी योनि (अर्थात् क्षेत्र) विष्णु भगवान् हैं। "विष्णुको" उमा-महेश्वरका योग लिखा है।प्रणव धनुष है, आत्मा बाण है और ब्रह्म लक्ष्य है, उसको प्रमादरहित होकर बींधना (चिन्तन) करना चाहिए तथा लक्ष्यमें घुसे हुए बाणकी भाँति ही उस ब्रह्ममें तन्मय हो जाना चाहिये। यह रूपक भागवतमें भी उपलब्ध होता है।

नीलरुद्रो०—

नीलकण्ठ भगवान् रुद्र अपने गगनव्यापी स्वरूपसे दिव्यधामसे पृथिवी पर

अवतीर्ण होकर दुष्टोंका नाश करके पृथिवीकी रक्षा करते हैं । रुद्रको क्रोधस्वरूप कहा है । कैलासवासीकी कल्पना इस उपनिषद्में मिलती है । श्रीभागवतमें भी इन्हें क्रोधका देव एवं कैलासवासी कहा है । आश्चर्यकी बात यह है कि इसमें रुद्रको मयूरपिच्छधारी भगवान् श्रीकृष्ण कहा है तथा गोप-गोपियों द्वारा सेव्य इन्हें लिखा है । भागवतमें रुद्रका 'हालाहलविष पान' लिखा है और उसके कारण ही उनका कण्ठ नीला पड़ गया तब उनका नामकरण "नीलकण्ठ" हुआ । इस उपनिषद्में भी यह उल्लेख है ।[१] घोड़ोंके साथ गधोंके जन्मदाता भी ये रुद्र लिखे हैं ।

गर्भोपनिषद्

शरीर पञ्चात्मक है अर्थात् पृथिवी-जल-तेज-वायु-आकाशयुक्त है । छः आश्रय वाला हैं । छः रस ही आश्रय हैं सप्त धातुओंसे निर्मित है । भागवतके **'पञ्चविधः षडात्मा, सप्तत्वग्'** १०, २, २७ श्लोकमें यह भाव देखा जा सकता है । पुरुषके शुक्र और स्त्रीके रक्तसंयोगसे गर्भके निर्माणका विधान जैसा इसमें वर्णित है, भागवत तृतीय स्कन्धमें कपिलदेवने भी अपनी माताके सम्मुख वर्णित किया है । एक रात्रिमें दोनों (वीर्य-रज) के संयोगसे 'कलल' बनता है भागवतमें लिखा है **"कललं त्वेक रात्रेण"**[२] अर्थात् दोनोंमें एक ही बात कही गई है । सात रात्रीमें वुद्-वुद् (बबूला) बनता है । भागवतमें '५ रात्रीमें बुद्बुद' लिखा है और १० दिनमें 'कर्कन्धू' आकार लिखा है जो इसमें नहीं है । इसमें दो मासमें जीवको सिर युक्त लिखा है । तीन महीनेमें पैर, चतुर्थमें टकने, पेट तथा कटि प्रदेश, पंचम मासमें मुख, नासिका, नेत्र, और श्रोत्र बनते हैं तथा सातवें मासमें जीवसे युक्त होता है । अष्टममास समस्त—लक्षणोंसे युक्त होकर पिताके शुक्राधिक्यसे पुत्र, माताके रुधिरकी अधिकतासे पुत्री तथा दोनोंके तुल्य होनेसे नपुंसक संतान उत्पन्न होती है । व्याकुल चित्त होकर समागम करनेसे अंधी, कुबड़ी, तथा बौनी संतान उत्पन्न होती है । परस्पर वायुके संघर्षमें शुक्र दो भागों में बंटकर सूक्ष्म हो जाता है तो जुड़वां सन्तान पैदा होती है । यह प्रकरण भागवतमें नहीं है । माताके खाये हुए अन्न एवं पिये हुए जलका नाड़ी द्वारा गर्भस्थ शिशुओं तक पहुँचना दोनोंमें समान है ।[३] नवें मासमें पूर्वजन्मके स्मरणकी बात भी दोनोंमें है । जीव अपने पूर्व जन्मोंकी, यहाँ तक कि १०० जन्मोंकी बात भी याद करता है। उसके शुभ-अशुभ 'कर्म भी उसके सामने आ जाते हैं । गर्भस्थ जीवकी स्तुति पद्धति भागवतमें भी देखने योग्य है ।

ईशादि प्रसिद्ध उपनिषदोंका अध्ययन—

ऋग्वेदका प्रमुख और प्रथम उपनिषद् 'ईशावास्य' उपनिषद् है, इसमें १८ श्लोक हैं । इसकी प्रथम ऋचामें कहा गया है कि यह दृश्यमान जगत् ईश्वरसे

---

१. नील रुद्रो० ३। २. भा० ३, ३१, १। ३. भाग० ३, ३१, ५

आच्छादित है, ईश्वरसे वसने योग्य है उसमें ईश्वर विद्यमान है इस भावमय त्यागसे पदार्थोंको भोगो। भगवान्‌की देन जानो । किसका धन है । सब पदार्थ परमेश्वरके हैं ।

'ईशावास्यमिदं सर्वं यत् किंच जगत्यां जगत् ।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः मागृधः कस्यस्विद्धनम् ।।'' (ई० उ०)

भागवतमें उक्त तथ्य तो सर्वत्र निरूपित है ही उपनिषद् वाक्य ज्योंका त्यों है—

आत्मावास्यमिदं विश्वं यत् किञ्चिज्जगत्यां जगत् ।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मागृधः कस्यस्विद्धनम् ।। भा० ८, १, १०

ईशके स्थान पर आत्मा शब्द है शेष दोनोंमें एक-सा है । मनुकी इस स्तुतिमें यह भी कहा गया है कि यह मन्त्र-उपनिषद् है जिसे मनुने पढ़ा है स्पष्ट ही उपनिषद् प्रभावकी ओर ध्यानाकृष्ट करता है—**''इतिमन्त्रोपनिषदं व्याहरन्तं समाहितम्''** भा० ८, १, १७

ईशोपनिषद्‌के आरम्भमें परमेश्वरको पूर्ण कहा है—**''ओऽम्पूर्णमदः पूर्णमिदम्''** भागवतमें **पूर्णम्-अनन्य चोदितम्''** भा० ८, १, १६ में पूर्ण कहा है। वह ईश्वर अचल है, एक है, अखण्ड है[१] ये भाव इसमें वर्णित हैं भागवतमें भी हैं। **'भस्मान्तं शरीरम्'** शरीरकी संज्ञा भस्मका निरूपक है भागवतमें इसकी तीन अवस्था कही हैं कृमि-विट्-भस्म[२] । अविद्यासे मृत्यु तथा विद्यासे अमृतकी प्राप्ति भी दोनोंमें वर्णित है—

''विद्ययाऽमृतमश्नुते'' (ईशा ११)

भगवान्‌ने उद्धव को **''विद्याविद्ये ममतनू विद्धयुद्धव शरीरिणाम् ।**
मोक्षबन्ध करी आद्ये मायया मे विनिर्मिते ।।'' ११, ११, ३

जीवका बन्धन अविद्यासे ही है मुक्ति, विद्यासे है श्रवण कराया है ।

ईशोपनिषद्‌में—

विद्याञ्चाविद्याञ्चयस्तद्वेदोभयं सह ।
अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययाऽमृतमश्नुते ।। ईशा० ११

विद्या और अविद्या दोनोंका वर्णन हैं और भागवतकारने जहाँ मुक्ति लिखा है 'विद्या' से वहां उपनिषद् अमृत प्राप्ति लिखता है जो मुक्तिसे कहीं बढ़कर है। भोगपरायण लोगोंका अंधकारमें जाना लिखा है[३] भागवतमें भी योगियोंकी

---

१. ईशावास्यो ४ ३. ईशो १२
२. भा० ६, १८, २५ कृमि विट् भस्म निष्ठान्तं क्वेदं तुच्छ कलेवरम् ।

दुरवस्थाओंका वर्णन है ।[१] भक्तवर्गमें नमस्कारका अत्यधिक महत्व है, इस उपनिषद्में इस नमस्कारका मूल्य उपलब्ध है ।

"भूयिष्ठां ते नम उक्तिं विधेम" ईशो० १८

हे परमात्मन् ! हम तेरे उपासक तुझे बहुत बार नमस्कार वचन समर्पण करते हैं । भागवतमें तो सर्वत्र स्तुतियोंमें नमस्कार ही किया गया है । फलतः मूलरूपमें ईश्वरकी सर्वत्र महिमा एवं उसकी पूर्णताका मूल इस उपनिषद्का ही भागवतमें पूर्ण प्रतिफलित है ऐसा समझा जा सकता है ।

२. केनोपनिषद्

चतुर्थ खण्डके इस उपनिषद्का आरम्भ 'प्रश्न' से होता है । शिष्य-गुरुके संवाद रूपमें इसका आरम्भ इस प्रकार है—शिष्यने पूछा—यह मन इष्ट वस्तुके प्रति किससे प्रेरित होकर जाता है ? मुख्य प्राण किससे जुड़ा हुआ विशेषतासे चलता है इस वाणीको किसकी प्रेरणासे जन बोलते हैं और आँख-कानको कौन देवकार्योंमें जोड़ता है—

"केनेषितंपततिप्रेषितं मनः केन प्राणः प्रथमः प्रैतियुक्तः ।
केनेषितांवाचमिमां वदन्ति चक्षुः श्रोत्रं क उ देवो युनक्ति ।।" (केनो० १)

श्रीमद्भागवतमें अष्टमस्कन्धमें अदितिके मुखसे यह 'केन' शब्द निकला है—**"केनाहं विधिना०"** (भा० ८, १६, २२) अर्थात् मैं किस विधिसे जगत्पतिकी उपासनां करूँ, जिससे मेरा मनोरथ पूर्ण होवे । **"केनेषितंपततिप्रेषितं मनः"** अर्थात् किसके द्वारा प्रेरित मन होता है का भाव भागवतमें इस प्रकार है—

"कोनु मे भगवान् कामो न सम्पद्येत मानसः" भा० ८, १६, १३

राजा परीक्षितके प्रश्नमें भी 'केन' शब्द है पर वह द्वितीय अर्थमें है—**"केनोपायेन भगवान् कलेर्दोषान् कलौजनः"** (भा० १२, ३, १६) इसके अतिरिक्त और कई श्लोकोंके पाद केनसे प्रारम्भ हैं ।[२] ब्रह्मके निरूपणमें कहा गया है कि वह मन द्वारा पकड़नेमें नहीं आता । **"यन्मनसा न मनुते"** केनो० ५

भागवतके—**यं वै नगोभिर्मनसाऽसुभिर्वा हृदा गिरा वासुभृतोविचक्षते ।**
आत्मानमन्तर्हृदि सन्तमात्मनां चक्षुर्यथैवाकृतयस्ततः परम् ।।

भा० ६, ३, १६

यमका और दूतोंका संवाद है यमकी उक्ति है कि—हे दूतो ! जिस प्रकार घट, पट आदि रूपवान् पदार्थ अपने प्रकाशक नेत्रको नहीं देख सकते—वैसे ही अन्तः

---

१. भा० ११, १०, २६ **"किं सुखे मर्त्य धर्मिणः"**

२. **भा० में केन पद—११।२३।५, ६।१८।५६, १।१८।४०, ८।१।२८ १०।२४।३, ११।२८।३०, १०।५१।३३, ८।१५।२५, ८।१६।२२**

करणमें अपने साक्षी रूपसे स्थित परमात्माको कोई भी प्राणी इन्द्रिय, मन, प्राण, हृदय या वाणी आदि किसी भी साधनके द्वारा नहीं जान सकता। केनोपनिषद्में जिस ब्रह्मके लिये **"न तत्र चक्षुर्गच्छति न वाग्गच्छति"** केनो० १, ३ कहा है एवं जिसे **"यद् वाचानुदितम्"** १, ४ तथा **"यन्मनसा न मनुते"** १, ५ एवं **यच्चक्षुषा न पश्यति** १, ६ जो आँखसे नहीं देखता **"यच्छ्रोत्रेण न शृणोति"** जो सांससे नहीं जीता उसे 'ब्रह्म' जानो। इस पूरे प्रकरणको भागवतमें एक श्लोकमें ही बाँध दिया गया है। जो भागवतकारकी अपूर्व कौशलताका दिग्दर्शक है। इस उपनिषद्के द्वितीय खण्डमें लिखा है कि "मैं न तो उसे जानता हूं और न उस ब्रह्मको नहीं जानता हूँ—**"नो न वेदेति वेद च"** भागवतमें लिखा है कि जगत् उसे नहीं जानता, किन्तु वह जानता है **"नायं तं वेद वेदसः"** भा० ८, १, १६

अग्नि और वायु दो प्रबल तत्त्वोंका निरूपण भी इस उपनिषद्में है। इनमें जो शक्ति है वह परमेश्वरकी है। 'यक्षका रूपक' भागवतमें नहीं है। किन्तु उपासना करनेकी प्रेरणा इस उपनिषद्में मिलती है और फलस्तुति भी जो भागवतमें सर्वत्र विद्यमान है। **"तद्ध तद्वनं वाम तद्वनमित्युपासितव्यम् स य एतदेवं वेदामिहैनं सर्वाणि भूतानि संवाञ्छन्ति"** वह 'ब्रह्म' उपासकका प्यारा नाम है। प्रियरूप जानकर उसकी आराधना करनी चाहिये। जो इस प्रियरूपको इस प्रकार जानता है सब प्राणी प्यार करते हैं उसे सब जन चाहते हैं। यह ब्राह्मी उपनिषद् है ऐसा भी कहा है।

३. कठोपनिषद्—

यजुर्वेदीय इस कठोपनिषद्में ६ बल्ली हैं। यम-नचिकेताके संवादमें इसकी कथा आगे बढ़ती है। मृतप्राय गायोंको दान देते देखकर उद्दालकसे उसके पुत्र नचिकेताने विरोध किया था। पुत्रके धाष्र्ट्य भावसे खिन्न होकर पिताने उसे यम-लोक जानेका शाप दिया। यमकी अनुपस्थितिमें नचिकेता तीन दिन तक वहीं रहा और जब उससे यमकी भेंट हुई तो तीन वर नचिकेता को दिए। वरोंमें भोगोंकी ओर यमने उसे आकृष्ट किया किन्तु नचिकेताने दीर्घ आयु, ऐश्वर्य, धन एवं सुन्दरी स्त्री इनकी नश्वरता सिद्ध करते हुए श्रेय मार्ग अर्थात् ब्रह्म तत्त्वको जानना चाहा। भोगोंसे इन्द्रियोंकी शक्ति क्षीण हो जाती है भोग नाशवान् हैं।[१] नचिकेताका एक वाक्य अत्यन्त प्रसिद्ध है **"नवित्तेनतर्पणीयो मनुष्यः"** मनुष्यकी तृप्ति धनसे कभी नहीं हो सकती। भागवतका वाक्य कामोंकी शान्तिके लिये कहता है कि भोगोंके भोगनेसे भोगोंका शासन नहीं होता—रन्तिदेव ने कहा है—**"न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति"**[२] दोनों वाक्य एक तथ्यकी ओर अपना अभिमत प्रकट करते हैं। **"अतिदीर्घे जीविते को रमेत।"**[३]

---

१. कठो० १, २६। २. भाग० ९, १९, १४। ३. कठो० १, २८

मुक्तात्मा पुरुषको दीर्घजीवन अच्छा नहीं लगता। "**एकस्तथासर्वभूतान्तरात्मा**" कठो० ५, ९ में सम्पूर्ण भूतोंका अन्तरात्मा लिखा है भागवतमें—"**एकएवपरोह्यात्मा**" ११, १८, ३२ में भी वही भाव है। परमेश्वर एक है कठो० ५, १२ भागवतमें एक नारायण देवही प्रमुख है।[1] "**एकएवाद्वितीयोऽभूत्**" भा० ११, ९, १७ में उसे अद्वितीय कहा है। उपनिषद्में इसे सर्वत्र अद्वितीय कहा है, एक कहा है। भागवतमें उसके नानारूप कहे हैं—"**एतन्नानावताराणाम्**" भा० १, ३, ५ वह एक ही लोकोंका रचयिता है।[2] भूतोंका वही रचयिता है।[3] जगत् रचनाकी बात उस एकके हृदयमें ही उठी।[4] भगवान् अपनी आत्मशक्तिसे सबकी रचना करते हैं।[5] ईश्वर एक है।[6] वह एक ही द्वैतरूपमें परिणित हो जाता है—

"**एकस्त्वमेवसदसद् द्वयमद्वयंच**" भा० ८, १२, ८

कठोपनिषद्में अग्नि-वायु-सूर्यके एक दृष्टान्तसे उसकी अनिरूपता कही है—

"**अग्निर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रतिरूपोबभूव**" कठो० ५, ९

वह एक परमात्मा ही सबके कामोंकी पूर्ति करता है।[7] परमेश्वरके भयसे अग्नि जलती है, सूर्य उदय होता है, इसके भयसे इन्द्र, मेघ, वायु और मृत्यु दौड़ते हैं—

भयादस्याग्निस्तपति भयात्तपतिसूर्यः ।
भयादिन्द्रश्चवायुश्च मृत्युर्धावतिपञ्चमः ॥[8]

भागवतमें लिखा है—

यद्भयात् वाति वातोऽयं सूर्यस्तपति यद्भयात् ।
यद्भयात् वर्षते देवो भगणो यति यद्भयात् ॥[9]

भागवत पुराणमें जन्मान्तर पर अत्यधिक बल दिया है। अनेक विद्वान् उपनिषदोंका आत्मवाद ग्रहण करते हुए लिखते है कि जन्मान्तरकी कल्पना केवल पुराणोंकी है। उपनिषद् इसे स्वीकार नहीं करते, किन्तु यह बात ऐसी है नहीं। प्रसिद्ध कठोपनिषद्में केवल जन्मान्तरकी ही नहीं, या केवल मनुष्य बनता हो, इतना ही नहीं अपितु मनुष्य अपने कर्मोंसे स्थावर (वृक्षादि) की योनिमें भी पहुँचता है ऐसा स्पष्ट लिखा है—

हन्त त इदं प्रवक्ष्यामि गुह्यं ब्रह्म सनातनम् ।
यथा च मरणं प्राप्य आत्मा भवति गौतम ॥

---

१. भा० ११, ९, १६। २. भा० १२, ११, ३०। ३. भा० ६, १७, २१।
४. भा० ३, २१, १९। ५. भा० ४, ९, ४७। ६. भा० ८, ६, १७।
७. कठो० ५, १३। ८. क० उ० ६, ३। ९. भा० ३, २९, ४०।

योनिमन्येप्रपद्यन्ते शरीरत्वायदेहिनः ।
स्थाणुमन्येऽनुसंयन्ति यथाकर्म यथाश्रुतम् ॥ कठो० ५, ६, ७

भागवतमें नलकूबर, मणिग्रीवकी कथा है । वे कुबेरके पुत्र थे और नारदके शापसे वृक्षयोनिमें पड़े थे । श्रीकृष्णने उनका उद्धार किया था[१] । भगवान् श्रीकृष्णने यमुना तटवर्ती वृक्षोंको देखकर उन्हें ऋषियोंके तुल्य बतलाया था[२] । इस उपनिषद्से अहल्याका पाषाण रूप और भागवतमें वर्णित भगवान्की मुरली, लकुट, वेन, शृंगी आदिके पूर्वजन्मोंकी कथायें भी सुसंगत हो जाती है । परमात्माकी अनिर्बचनीयताका वर्णन जैसा इस उपनिषद्में वर्णित है वह तो भागवतमें विभिन्न स्थलोंमें वर्णित है ।

४. प्रश्नोपनिषद्—

प्रश्नोपनिषद्में छः प्रश्न हैं । ये छः प्रश्न ऋषियोंने सामूहिक बैठकर पिप्पलाद ऋषिसे किये हैं और उनका उत्तर दिया गया है । ये प्रश्न ही इसमें अध्याय रूपमें या खण्ड रूपमें माने जा सकते हैं । जिन ब्रह्मवादी ऋषियोंके इनमें नाम हैं वे भागवतमें भी उपलब्ध हैं, आश्वलायन, भृगु, भरद्वाज, पिप्पलाद ऐसे ही नाम हैं । भागवतका प्रारम्भ शौनकोंके षट्-प्रश्नोंसे है । वे षट् प्रश्न इस उपनिषद्की स्मृति दिलाते हैं, यद्यपि उनमें जो प्रश्न हैं वे दूसरे ढंगके हैं और इस उपनिषद्में तो सभी प्रश्न ब्रह्म सम्बन्धी हैं । प्रथम प्रश्नमें यह पूछा गया कि ये प्रजा कैसे उत्पन्न होती है ? नानाविध सृष्टिका रचयिता कौन है ? पिप्पलादने गम्भीर प्रश्नकर्ताओंको तत्काल उत्तर नहीं दिया जिस प्रकार कि पौराणिक कथाओंमें प्रश्न करते ही उत्तर प्रारम्भ हो जाता है अपितु उन श्रोताओंको एक वर्ष पर्यन्त अपने निकट रहकर तप करनेका सुझाव दिया[३] ।

श्रीमद्भागवतमें सृष्टि उत्पत्तिकी कथामें प्रजापतिके तप करनेकी कथा है "प्रजापतिने प्रथम तप किया"[४] तदनन्तर उससे एक मिथुन (स्त्री-पुरुषका जोड़ा) उत्पन्न हुआ । इस कथाका मूल इस उपनिषद्में देखने योग्य है और युगलसे यहाँ प्रकृतिका विकार 'रयि' और जीवन शक्ति रूप 'प्राण' है ।

"प्रजाकामो वै प्रजापतिः" "स तपोऽतप्यत" "सतपस्तप्त्वा समिथुन-मुत्पादयते"[५] प्रजापतिने सृष्टि रचनेका संकल्प किया । और उसने तप करके जोड़ा पैदा किया रयि, और प्राण ।

'रयि' से तात्पर्य अभिव्यक्त स्फुरित प्रकृतिसे है और प्राण "जीवन शक्ति"

---

१. भाग० १०, १० २. भा० १०, २० ३. प्रश्नो० १, २
४. भा० ३, १०, ४—**विरिञ्चोऽपि तथा चक्रे दिव्यं वर्षशतं तपः ।**
भा० २, ६, १६ २१
५. प्रश्नो० १, ४

को कहा है। यह "प्राण" भी सूक्ष्म प्राकृत विकार है। इसमें यह भी कहा है कि 'सूर्य' प्राण है और 'चन्द्रमा' रयि है। जो जगत् नहीं दिखाई देता वह भी 'रयि' है। 'सूर्य' प्रजाओंका प्राण है, सबका प्रकाशक है, ज्योति रूप है, सहस्त्रकिरणों वाला है—

विश्वरूपं हरिणं जातवेदसं।
परायणं ज्योतिरेकं तथान्तम्॥ प्रश्नो० १, ८

भागवतमें भी सूर्योपासनाका श्लोक है जिसमें जातवेदा, आदि पद भी समाविष्ट है—

"परोरजः सवितुर्जातवेदो" भा० ५, ७, १४

सूर्यकी बारह आकृति हैं। सात किरणोंका चक्र है, छः ऋतुरूप अरोंके रथमें बैठा हुआ दृष्टा बताते हैं।[1]

भागवतमें लिखा है कि सूर्यके कारण ही दिशाओंका विभाजन है स्वर्ग-अपवर्ग, नरक, रस आदिका विभाजक सूर्य ही है।[2]

उपनिषद्में सात किरणोंका चक्र लिखा है। भागवतमें एक चक्र, द्वादश अर लिखे हैं। छः नेमिवाला संवत्सरात्मक सूर्य लिखा है।[3] इस प्रकार इस उपनिषद्की 'सूर्य विद्या' का उल्लेख भागवतमें विभिन्न स्थानों पर है।

एक एव हि लोकानां सूर्य आत्माऽऽदि कृद्धरिः।
सर्व वेदक्रिया मूलमृषिभिर्बहुधोदितः॥

मध्वादिषु द्वादशसु भगवान् काल रूपधृक्।
लोकतन्त्रायचरति पृथग् द्वादशभिर्गणैः ॥ भा० १२, ११, ३२

'भार्गवके' प्रश्नोंका उत्तर देते हुए 'पिप्पलाद' ने प्राणोंकी महिमाका गान किया है। तृतीय प्रश्न-आश्वलायनने किया है। इनके प्रमुख प्रश्न अतिगूढ थे, जिन्हें सुनकर पिप्पलाद भी प्रसन्न हुए हैं।

१—प्राणकी उत्पत्ति।
२—शरीरमें प्रवेशकी प्रक्रिया।
३—विभाजित करके शरीरमें कैसे रहना।
४—प्रथम शरीरसे बाहर कैसे आना।
५—पाँच भौतिक जगत्को वह धारण कैसे करता है।
६—मन-इन्द्रियादि आन्तरिक जगत्को धारणकी प्रक्रिया।

---

१. प्रश्नो० २, ११।
२. भा० ५, २०, ४५।
३. भा० ५, २१; १३

पिप्पलादने कहा—१—परमात्मासे प्राण उत्पन्न हुआ है। परमात्मा ही उपादान कारण है निमित्त भी।

२—मन द्वारा किये हुए संकल्पसे 'प्राण' किसी शरीरमें प्रवेश करता है।

३—सम्राट् जैसे अपने अधीनस्थों को विभिन्न स्थानोंमें नियुक्त करता है। ऐसे ही प्राण भी—अपान, समान, उदान आदिको विभिन्न स्थानोंमें नियुक्त करता है।

४—पुण्यसे ऊँचे लोक प्राप्त होते हैं, पापसे नीचेके लोक, दोनोंसे मनुष्यलोक।

५—सूर्य ही बाह्य प्राण है।

६—'मुख्यप्राण' तेजसे युक्त होकर इन्द्रियों युक्त जीवात्माको उसके संकल्पानुसार विभिन्न लोकोंमें ले जाता है।[1]

भार्गवके उत्तरमें पिप्पलादने रूपक खींचा है। ऐसे रूपक भागवतमें पुरंजनोपाख्यानमें तथा 'भवाटवी' में द्रष्टव्य हैं। सुकेशने षोडश कला वाले पुरुषको जानना चाहा। पिप्पलादने प्राण, श्रद्धा, पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश, मन, इन्द्रिय, अन्न, वीर्य, तप, मन्त्र, कर्म लोक, नाम वाले कलात्मक ब्रह्माण्डकी चर्चा की।

इस उपनिषद्में जिस प्रकारकी प्रश्नोत्तर शैली है वह भागवतमें नवयोगीश्वरोंके संवादकी ओर हठात् ध्यानाकृष्ट करती है वहाँ भी, कवि, हरि, अन्तरिक्ष प्रबुद्ध, पिप्पलायन नामक ऋषियोंने विभिन्न प्रश्नोंके उत्तर दिये हैं।[2]

५. मुण्डकोपनिषद्—

अथर्ववेदकी इस उपनिषद्में दो खण्ड हैं। प्रथम खण्डमें तीन मुण्डक हैं। इसमें उत्तम कोटिकी पराविद्याका वर्णन है अथवा इस उपनिषद्का 'मुण्डक' नाम इसलिए पड़ा है कि यह विद्या पाप-तापको 'मूड़ने वाली' है अथवा जन्म बन्धका नाश करने वाली है। इस उपनिषद्की विद्याका उपदेष्टा 'अंगिरा ऋषि' है। इस उपनिषद्का प्रश्नकर्ता 'शौनक' है। यहाँ यह भी स्मरणीय है कि 'शौनक मुनि' प्रसिद्ध भागवत पुराणका श्रोता है। यह अन्य अठारह पुराणोंका भी श्रोता है। सर्वप्रथम प्रसिद्ध उपनिषदोंमें शौनक श्रोताके रुपमें यहाँ देखे गये हैं। 'अंगिरा नामक' ऋषिका उपाख्यान भागवतके षष्ठ स्कन्धमें है, वे नारदके साथ चित्रकेतु राजाके पास जाते हैं और उसे पुत्र प्राप्तिके लिये वर प्रदान करते हैं। इसके अतिरिक्त उनका उल्लेख अन्य स्थलों पर भी हुआ है। इसमें यह लिखा है कि ब्रह्मा ही सबसे पहला देव है—

१. भागवतमें ऊँचे नीचे लोकोंके जाने आनेके बहुविध वर्णन हैं।—स्कन्ध ५/२६

२. भा० ११, ५, ३३

ब्रह्मा देवानां प्रथमः सम्बभूव"[१]

भागवतमें भी ब्रह्मा प्रथम देव है। इस उपनिषद्में विद्याके दो विभाग लिखे हैं परा-अपरा। 'अपरा विद्या' के अन्तर्गत ऋग्वेद-यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद चारों वेद हैं तथा शिक्षा-कल्प-व्याकरण-निरुक्त-ज्योतिष और छन्द जिन्हें 'षडङ्ग' कहा जाता है, आते हैं। पराविद्याके अन्तर्गत अविनाशी आत्मा तथा ब्रह्मका ज्ञान है। व्यावहारिक ज्ञानका नाम 'अपरा विद्या' है और पारमार्थिक ज्ञान 'पराविद्या' है। पराका अर्थ है 'सर्वश्रेष्ठविद्या' वह भगवान्की भक्ति तथा आराधना है इसीसे अक्षर-अविनाशी पदकी प्राप्ति होती है[२]।

भागवतमें सर्वत्र यह निरूपण है कि इस जगत्का कर्ता-हर्ता-धर्ता परमेश्वर[३] के अतिरिक्त और कोई नहीं है। जिस विराट्की कल्पना इस उपनिषद्में की गई है उसे भागवतमें तृतीय स्कंधमें पल्लवित रूपमें देखा जा सकता है। द्वितीय स्कन्धमें भी वैसे विराट् स्वरूपका वर्णन है। इस उपनिषद्का "**भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः**" २ मुण्डको २, ८ भागवतमें भी उपलब्ध है। ब्रह्मका व्यापकत्व जैसा इसमें है भागवतमें अनेक स्थलों पर दृष्टव्य है। इस मुण्डकोपनिषद्की अन्य ऋचा भी रूपान्तरित होकर भागवतमें है (मु० उ० १, १) एक साथ रहने वाले परस्पर सखा भाव रखने वाले दो पक्षी जीवात्मा और परमात्मा एक ही वृक्ष (शरीर) का आश्रय लेकर रहते हैं। उन दोनोंमें एक तो वृक्षके 'कर्म रूप' फलोंका स्वाद लेकर उपभोग करता है दूसरा 'न खाता हुआ' उसे केवल देखता है। भागवतसे मिलाइये (भा० ११, ११, ६) अर्थ दोनोंका समान है अधिकांश शब्द (**सुपर्णौ, सखायौ वृक्ष, पिप्पलान्नं**) भी एकसे हैं। स्पष्ट ही मुण्डकका प्रभाव यहां परिलक्षित है। खग की चर्चा तो भागवतमें अन्यत्र भी है[४]। इस उपनिषद्में उपेन्द्रवज्रा और इन्द्रवज्राके भेदवाला उपजाति नामक छन्द भी है।

अक्षर ब्रह्मकी उपासना यहाँ वर्णित है। अक्षर ही अदृश्य, अजन्मा, रंगरूपरहित, आँख, कान, रहित तथा हाथ-पांवसे ऊपर, नित्यसमर्थ, सर्वत्र विद्यमान, अत्यन्त सूक्ष्म तथा अपरिवर्तनशील और सारे जगत्का कारण है। ऐसा धीर जन जानते हैं—

"**नित्यं विभुं सर्वगतं सुसूक्ष्मं तदव्ययं तद्....परिपश्यन्तिधीराः**" मु० उ० २, ६

भागवतमें—**तमक्षरं ब्रह्मपरं परेशमव्यक्तमाध्यात्मिक योगगम्यम्।**

अतीन्द्रियं सूक्ष्ममिवातिदूरमनन्तमाद्यंपरिपूर्णमीडे ॥ भा० ८, ३, ११

इस श्लोकमें प्राप्त है। अतीन्द्रिय शब्दमें उपनिषद्के अचक्षुः अश्रोत्र,

---

१. मु० उ० १। २. मु० उ० २, ५।
३. मु० द्वितीय खण्ड १, ४। ४. भाग० १०, २, २७।

अपाणिपादका सार है, 'सूक्ष्म' शब्द दोनोंमें है। विश्व रचनाके सम्बन्धमें उपनिषद्‌में कहा गया है कि—जैसे मकड़ी जालेको रचती है और निगल जाती है जैसे भूमिमें वनस्पतियाँ उत्पन्न होती हैं और जैसे जीवित पुरुषसे शिर तथा शरीरके बाल निकलते हैं ऐसे ही 'अक्षरहरि' से यह विश्व प्रकट होता है। इसमें भगवान् की इच्छा ही बीज है।

"यथोर्णनाभिः सृजते गृह्णते च यथापृथिव्यामोषधयः सम्भवन्ति"

भागवत—**"यथोर्णनाभिर्हृदयादूर्णामुद्वमते मुखात्"** भा० ११, २१, ३८

तथा— **यथोर्णनाभिर्हृदयादूर्णा सन्त्यस्य वक्त्रतः।**
तथा विहृत्य भूयस्तां ग्रसत्येवं महेश्वरः॥ भा० ११, ६, २१

यह श्लोक उपनिषद् वाक्यसे पूर्ण साम्य रखता है, शब्द भी वही हैं और भाव भी वहीं है कि 'मकड़ी' जाला बुनती है और ग्रस जाती है, 'परमेश्वर' भी जगत्‌को उत्पन्न करते हैं, उसमें जीव रूपसे विहार करते हैं और फिर उसे अपनेमें लीन कर लेते हैं।

"भिद्यतेहृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे॥" मु० ३, २, ८

यह भागवत १, २, २१ तथा ११, २०, ३० में उपलब्ध है। इस उपनिषद्‌के द्वितीय खण्डमें एक विलक्षण वाक्य है—

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन।
यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैव आत्मा विवृणुते तनूस्वाम्॥ मु० २, ३

'भगवान्' प्रवचन, बुद्धि या शास्त्रसे नहीं मिलते वे जिस पर कृपा करते हैं उसे ही वे मिलते हैं। भक्तको भगवान् अपना तेजोमयरूप दिखा देते हैं। **'यमेवैष वृणुते'** वाक्यके आधार पर विभिन्न सम्प्रदायोंके आचार्योंने अपना 'भक्त हृदय' खोल दिया है उनका कथन है कि बिन हरि कृपाके व्यक्ति कुछ नहीं कर सकता।

भागवतमें—**"अहं हरे तवपादैकमूल"** (६, ११, २४) हे हरे। मैं आपके चरणोंके दासोंका भी दास बनूं। यह वृत्रासुरने कहा है, भक्तोंकी भावना है और यह भी कि भगवान्‌की कृपासे ही सब कुछ प्राप्त होता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि इस उपनिषद्‌का पर्याप्त प्रभाव भागवतके 'ब्रह्मवाद' पर पड़ा है।

६. माण्डूक्योपनिषद्—

यह भी अथर्ववेदकी उपनिषद् है। इसमें वाच्य-वाचककी एकता प्रदर्शितकी है और यह भी बताया है कि ईश्वर ही जगत्‌का कर्ता, पालक और संहारक है। यह जो भी कुछ है ब्रह्म है—

"सर्वं ह्येतद् ब्रह्म, अयमात्मा ब्रह्म ।"

भागवतमें—**"अहं ब्रह्म परंधाम ब्रह्माहं परमंपरम् ।"** १२।५।११

"न दृक्ष्यसि शरीरं च विश्वं च पृथगात्मनः ।" भा० १२. ५, १२

शरीरको और विश्वको पृथक् न देखना ही सर्व ब्रह्मकी अभिव्यक्ति है। **"पातालमेतस्य हि पादमूलं पठन्ति पार्ष्णिप्रपदे रसातलम्"** भा० २, १, २६ भगवान्का 'स्थूलरूप' यह जगत् है। श्री शुकने प्रारम्भमें परीक्षितको यही उपदेश दिया कि पातालसे लेकर सत्यलोक पर्यन्त भगवान्का शरीर है। १६-३९ श्लोकोंके मध्य इस **"सर्वं ह्येतत्ब्रह्म"** की बड़ी ही मनोरम व्याख्या है। देवधारी आत्माकी जागरित, स्वप्न और सुषुप्ति अवस्थायें होती हैं और उन अवस्थाओंमें आत्मा स्थूलमें तथा 'स्थूल' सूक्ष्ममें और 'सूक्ष्म' शरीरमें काम करता है उसकी चेतनाका उनमें प्रकाश होता है। इस उपनिषद्में ओंकारकी विस्तृत व्याख्या है जो भागवतमें अत्यन्त सूक्ष्म रूपमें है।

"ओंकाराद्व्यञ्जित स्पर्शस्वरोष्मान्त:स्थभूषिताम्" भा० ११, २१, ३९

स्पर्श वर्ण 'क' से 'म' तक तथा स्वर वर्ण, ऊष्मा (श ष स ह) अन्तस्थ वर्ण (यर लव) सबका व्यञ्जक ओंकार ही है।

७. तैत्तरीयोपनिषद्—

यह तैत्तरीय उपनिषद् तैत्तरीय आरण्यकका भाग है। यह आरण्यक कृष्ण यजुर्वेदीय तैत्तरीय शाखाका है। उसके दस प्रपाठक हैं। पहले छः तो कर्मकाण्डके हैं और सातवां और नवां प्रपाठक तैत्तरीय उपनिषद् है। दसवां प्रपाठक महानारायण उपनिषद् है। प्रसिद्ध तीन व्याहृतियाँ **'भूः भुवः स्वः'** इसमें वर्णित हैं[1]। भागवतमें भी उन व्याहृतियोंका उल्लेख मिलता है[2]—परमेश्वरके पैरमें भूलोक एवं नाभिमें भुवः लोक तथा हृदयमें स्वः लोक, वक्षस्थलमें महः लोक, ग्रीवामें जनलोक, स्तनद्वयमें तपः लोक, मूर्धामें सत्यलोकको स्थिति है। २, ५, ४२वें श्लोकमें **भूः, भुवः, स्वःलोक** की कल्पनाकी है। इसमें केवल व्याहृतियोंका ही उल्लेख है **"भूरिति वा अयं लोकः। भुव इत्यन्तरिक्षम्। सुवरित्यसौलोकः"**[3]। **भूः, भुवः, स्वः** अग्नि, वायु और आदित्यसे सम्पृक्त भी यहाँ कहे गये हैं। ब्रह्मवल्लीमें सृष्टिका क्रम है ईश्वरकी इच्छासे जगत्के कारण आकाशकी अभिव्यक्ति हुई, आकाशसे वायु उत्पन्न हुआ, वायुसे अग्नि

---

१. तै० उ० ५, १। २. २, ५, ३८। ३. तै० उ० ५, १।

उत्पन्न हुई, अग्निसे जलकी उत्पत्ति और जलसे पृथिवी उत्पन्न हुई[१]। यह क्रम भागवतमें भी देखा जा सकता है। "**भगवद्वीक्षितं नभः**"[२] भगवान्‌के चितवन मात्रसे आकाश हुआ, आकाशसे वायु, वायुसे तेज, तेजसे जल और जलसे पृथिवी हुई। इस उपनिषद्‌की व्याख्यासे भागवतकी व्याख्या अत्यन्त स्पष्ट है, क्योंकि इसमें भूतोंकी मात्राओंका भी निरूपण है। समस्त वर्णन उपनिषद्‌के आधार पर है। (भा० ३, ५।३२-३६) अन्नको इस उपनिषद्‌में सर्वश्रेष्ठ कहा है। भागवतमें उसे उसी रूपमें लिया है—उपनिषद्‌में कहा है— "**अन्नाद् भूतानि जायन्ते**"[३] तो भागवतमें कहा है—**अन्नं हि प्राणिनां प्राणः**[४] अन्न ही रेत है[५]। अन्नही चर जीवोंका भोजन है[६]। मनुष्यका लय भी अन्नमें होता है—"**अन्नेप्रलीयते मर्त्यम्**"[७]। अन्नका विभाग[८], एवं अन्नकी कामनाके लिये अदितिकी उपासनाका महत्व भी इसमें घोषित किया है "**अन्नाद्यकामस्त्वदितिम्**"[९]। उपनिषद्‌में प्राणकी महिमा गाई गई है—"**प्राणोहि भूतानामायुः**"[१०] आदि तो भागवतमें भी उसका वर्णन है। भागवतमें भी प्राणकी मुक्तकण्ठसे प्रशंसाकी है—प्राणकी भार्याका नाम ऊर्जस्वती है[११]। अपने प्राणोंसे ही प्राणोंकी रक्षाकी जाती है[१२]। प्राण-बुद्धि-मनमें प्राण श्रेष्ठ है[१३]। प्राणके मार्गका शोधन करना चाहिये[१४]। प्राणसे ही चराचर जीवित हैं[१५]।

८. ऐतरेय—

ऐतरेय उपनिषद् ऐतरेय आरण्यकके अन्तर्गत है। ऐतरेय उपनिषद् ऐतरेय ऋषिकृत है, इसके तीन अध्याय हैं इनमें आत्मविद्याका वर्णन किया है। सृष्टिकी रचनाके पूर्व केवल एक ही आत्मा-परमेश्वर था। वह भगवान् ही ज्ञानसे ज्वलन्त रूपमें विद्यमान था। भगवान्‌से भिन्न सम्पूर्ण जगत् अकम्प, अव्यक्त था। उस आत्माने इच्छाकी कि लोकोंको कर्मफल भोगके स्थानोंको रचूं—

"**ओम्। आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीत्। नान्यत् किंचन मिषत्। स ईक्षत लोकान्नु सृजा इति**[१६]।

इसमें 'आत्मा' शब्द परमात्माका वाचक है। आत्मा शब्दका अर्थ है जो प्राप्त हो विद्यमान हो। यह शब्द उन आत्माओंके लिए भी प्रयुक्त होता है जो

---

१. तै० उ० ब्रह्मवल्ली १ २. भा० ३, ५, ३२ ३. तै० उ०
४. भा० ११, २६, ३३ ५. भा० ७, १५, ५१ ६. भा० ६, ४, ९
७. भा० ११, २४, २२ ८. भा० ७, ११, १० ९. भा० २, ३, ४
१०. तै० उ० ३, ३ ११. भा० ६, ६, १२ १२. भा० ८, ७, ३९
१३. भा० १०, २३, २७ १४. भा० ३, २८, ९ १५. भा० ८, ५, ३७
१६. ऐ० उ० १, १, १ ११, १४, ३३

कर्मफलों, जन्म जन्मान्तरों तथा कर्मानुसार लोक-लोकान्तरोंको पाते हैं। भगवान् स्वसत्तासे सदा सर्वत्र प्राप्त तथा विद्यमान हैं। जैसे बीजमें उत्पादिनी शक्ति होती है ऐसे ही भगवान्‌का वह संकल्प कारण जगत्‌में प्रविष्ट होकर नाना सृष्टियों, आकृतियों और विकासोंका साधन बना। परमेश्वरने वाष्पमय लोक, प्रकाशरूप-अन्तरिक्ष लोक पार्थिव लोक और जलमय लोक बनाये, तदुपरान्त लोकपालोंकी रचनाकी। उस परमात्माने जलोंसे सूक्ष्म तत्वोंसे ही पुरुषको निकालकर मूर्छित किया विराट् पुरुषको बनाया। विराट्‌की रचना पुरुषाकार होनेसे उसे पुरुष कहा है[1]।

श्रीमद्भागवतमें भी विराट् पुरुषका वर्णन है किन्तु यह तथ्य सम्यक् विवेचनीय है कि विराट्‌की आकृतिका साम्य 'पुरुष' से रचा हुआ माना है। विराट्‌से मनुष्यादि देह बन गये और उसमें मुख खुल गया। मुखसे वाणी हुई और वाणीसे उसका देवता अग्नि प्रकट हुआ। दोनों नासिकाओंसे प्राण भीतर प्रविष्ट हुआ और प्राणसे उसके देव वायुकी सिद्धि हुई। दोनों आँखें खुलीं और आँखोंसे चक्षु देखनेकी शक्ति प्रकट हुई और चक्षुसे सूर्य देवता प्रकट हुए। विराट्‌के दोनों कान खुले और कानोंसे सुननेकी शक्ति प्रकट हुई और श्रोत्रसे उसकी देवता दिशाऐं हुई। त्वचासे लोम हुए, स्पर्श शक्तिके केन्द्र प्रकट हुए। फिर लोमसे अन्न और वनस्पतियाँ उत्पन्न हुई। अर्थात् लोमसदृश ये वस्तुएं भूमिमें प्रकट हुईं। हृदय खुला तो हृदयसे मन प्रकट हुआ और मनसे चन्द्रमा हुआ। नाभि खुली नाभीसे अपान हुआ और अधोभाग प्रकट हुआ और अधोभागके चक्रसे मल त्याग हुआ। जनन इन्द्रिय खुली, उससे उत्पादन शक्ति प्रकट हुई और उत्पादन शक्तिसे जल उत्पन्न हुए।

श्रीमद्भागवतमें द्वितीय स्कन्धके दशमाध्यायमें इस विराट् और अधिष्ठातृ देवोंका निरूपण है। **पुरुषोऽण्डं विनिर्भिद्य यदासौ स विनिर्गतः** २, १०, १० से लेकर "**एतद्भगवतो रूपं स्थूलं ते व्याहृतं मया**" २, १०, ३३ पर्यन्त ऐतरेयमें नहीं है। यह वैष्णवतत्त्व प्राधान्य प्रभाव कहा जा सकता है[2]।

भगवान्‌ने लोकपालोंके लिये अन्नकी रचना की, इसके लिये उसने जलोंको तपाया फिर उन्हें पृथिवी पर स्थूल रूप दिया। जलोंके तपनेसे उनमेंसे मूर्ति उत्पन्न हुई। स्थूल जगत् बना। जो वह मूर्ति उत्पन्न हुई वह ही अन्न है। भोगके योग्य पदार्थ मूर्तिमन्त ही हैं। जब विधाताने अन्नको रचा तो वह अन्न देवोंको देखकर

१. ऐ० उ० १, १, ३।

२. भा० ३, ६ में भी विराट्‌के अङ्ग प्रत्यंगोंका निरूपण है।

दूर भाग गया । उस समय उसको देवदलने वाणीसे पकड़ना चाहा परन्तु वह वाणी की पकड़में न आ सका, यदि बाणीसे अन्न ग्रहण कर लेता तो निश्चय अन्नको कहकर अन्नका नाम लेकर ही तृप्त हो जाता । अन्नको सांससे, आँख, क्षोत्र, त्वचा, मन, । जननेन्द्रियसे ग्रहण करना चाहा किन्तु नहीं कर सका, परन्तु मुखसे ग्रहणकर लिया अन्न खानेकी शक्तिके साथ ही आयु रहती है । इन्द्रियोंमें उनकी शक्तियोंमें भोगोंके नियमोंमें नियन्ताकी नियति काम कर रही है । आत्माका प्रवेश आँख, कान द्वारा नहीं हुआ अपितु कपाल द्वारा उसने इस भौतिक शरीरमें प्रवेश किया ।

"स एतमेवसीमानं विदार्य्यैतयाद्वारा प्रापद्यत"[1] ।

उस मस्तकमें ठहरने वाले आत्माकी तीन अवस्था है वे तीन निवास स्थान स्पष्ट हैं, मस्तक, कण्ठ, हृदय इन तीनों स्थानोंमें आत्मा रहता है । गर्भवती स्त्रियोंको इस उपनिषद्के द्वितीयाध्यायके सुननेका अधिकार नहीं है **"अपक्रामन्तुगर्भिणः"** गर्भवती हट जायें यह ऋषि वाक्य है । इस उपनिषद्की मान्यता है कि गर्भ जनन बीज निश्चित ही पुरुषमें है । रेतस् समस्त पुरुष अंगोंके तेजसे स्तर रूपमें प्रकट होता है । पुरुष अपने आत्मामें अपने तेजको धारण करता है जब भार्यामें सींचता है तब उसको अपनेसे बाहर जन्म देता है वह इसका पहला जन्म है, वह गर्भकी पहली अवस्था है । जब वह रेतस स्त्रीमें जाता है उसका अपना अङ्ग बन जाता है । इसी कारण वह स्त्रीको दुःख नहीं देता, स्त्री अपने आहार, विचार तथा पथ्यादिसे उसको बढ़ाती है ।गर्भसे बाहर आना इसका दूसरा जन्म है वह इसका यह आत्मा, 'पुत्र' पुण्य कर्ममें पिताका प्रतिनिधि बनाया जाता है, तब इसका यह दूसरा आत्मा पिताका अपना आत्मा अपने कर्तव्योंको करके बूढ़ी आयुको प्राप्त हुआ, शरीर छोड़ जाता है वह इस लोकसे जाते ही कर्मानुसार फिर जन्म लेता है, यह इसका तीसरा जन्म है । संक्षेपमें इस उपनिषद्में जन्म-मरणका चित्रण किया है इसे अत्यन्त विस्तारसे भागवतके तृतीय स्कन्धमें कपिल देवहूति संवादरूपमें भागवतकारने चित्रित किया है—

"कललं त्वेकरात्रेण पंचरात्रेण बुद्बुदम्" भा० ३, ३१, २

गर्भमें कलल (छोटी बूंद) के आकारसे आने और ५ रात्री, १० रात्री, मास एवं १० मास तककी इसकी अवस्था और माताके भुक्त-पीत अन्न-जलकी नाड़ियों द्वारा संस्पृष्ट आदि का विस्तारपूर्वक वर्णित है[3] । परन्तु वीर्यकी स्थितिके बारेमें वहाँ कुछ स्पष्ट नहीं है, वह इस उपनिषद्में वर्णित है ।

---

१. ऐ० उ० ३, १२। २. ऐ० उप० २, १, २। ३. भाग० ३, ३१।

महर्षि कपिलदेवने अपनी माता देवहूतिको गर्भका वर्णन ऐसे किया है जैसाकि उन्होंने स्वयं अनुभव किया है। ऐतरेय उपनिषद्में वामदेव ऋषिका ऐसा वर्णन आया है "वामदेवने कहा—मैंने गर्भावस्थामें सारे लोकोंको जान लिया था।" इतना ही नहीं इसमें यह लिखा है कि वामदेवने गर्भमें ही यह कहा था—

"गर्भ एवैतच्छयानो वामदेव एवमुवाच"[1]

जिस प्रकार 'वामदेव' गर्भावस्थामें सब कुछ जान गये थे वैसे ही भक्तवर प्रह्लाद भी जानते थे। भागवतमें वर्णित प्रह्लादचरित्रमें यह स्पष्ट है कि प्रह्लाद गर्भावस्थामें थे। प्रह्लादकी माँ कयाधुके केश पकड़कर घसीटे जाने पर इन्द्रसे नारदने कहा कि देवराज इन्द्र! इसे व्यर्थ कष्ट न दो, क्योंकि इसके गर्भमें भगवान्का भक्त है। नारद उस हिरण्यकशिपुकी पत्नीको एक आश्रममें ले गये और वहीं रहने की व्यवस्था कर दी। वे कयाधुके लिये उपदेश देते थे, जिन्हें गर्भस्थित 'प्रह्लाद' श्रवण करते और आत्मसात् करते थे[2]। तृतीय स्कन्धमें "कपिलदेव" ने भी यह तो लिखा है कि जीवात्मा गर्भमें स्थित होकर अपने सैकड़ों जन्मोंकी घटनाओंको प्रत्यक्ष-सा देखता है और इस गर्भके कष्टसे मुक्ति पानेके लिये भगवान्से प्रार्थना करता है[3]। सब कुछ ब्रह्म है इसका निरूपण इस उपनिषद्में किया गया है।

"कर्णौ च निरभिद्येतां दिशः श्रोत्रं गुण ग्रहः" २।१०।२२

भागवतके इस श्लोक और ऐतरेयमें निरभिद्येताम् क्रिया दोनोंमें एक-सी ही हैं और प्रक्रिया भी लगभग एक-सी ही है। ऐतरेयोपनिषद्में जिस विराट्का वर्णन है वही तृतीय स्कन्धमें वर्णित है।

६. छान्दोग्योपनिषद्—

प्रथम खण्डमें उपासनाका विवेचन है। आत्मा और परमात्माका भी इसमें अद्भुत प्रकारसे वर्णन है। नामजाप, नामचिन्तन तथा नामध्यानका बड़ा माहात्म्य है। प्राचीनकालमें सन्त, नामको गाया करते थे। भगवान्का नाम ऊँचे स्वरसे गाया जाय तो उसे उद्‌गीथ कहते थे। 'ओउम्' का अर्थ है रक्षा करने वाला परमेश्वर, वही उद्‌गीथ है।

भागवत पुराणमें नामका अत्यधिक महत्व वर्णित है। 'अजामिल' महान् पापी था, वह भगवान्का 'नारायण' नाम लेकर नरकोंसे छूट गया और भगवान्के धाममें चला गया[4]। अन्य प्रसंगोंमें भी भगवान् नामकी अपूर्व महिमा है।

---

१. ऐ० उ० २, १, ५।

२. भा० ७, ७, १६ ऋषिणानुगृहीतं मां नाधुनाप्यजहात् स्मृतिः"।

३. भा० ३, ३१, १२-२१। ४. भा० ६, २।

इस उपनिषद्में नाम महिमाका विवेचन इस प्रकार है—"पाँच महाभूतोंका सार पृथिवी है। पृथिवीका सार जल है। जलोंका सार अन्नादि औषधियाँ हैं। औषधियोंका सार पुरुष है, मनुष्य देह है, पुरुषका सार उसकी वाणी है वाणीका सार भगवान्‌की स्तुति है, ऋग् है, ऋग्‌का सार साम है, स्तुतिका सार स्वरमें गाना है, सामका सार भगवान्‌का नाम गायन है, सब सारोंका सार भगवान्‌का नाम है।

"एषां भूतानां पृथिवी रसः पृथिव्या आपोरसोऽपामोषधयोरसः साम्न उद्गीथो रसः"[1] "स एव रसानां रसतमः परमः परर्ध्योऽष्टमोयद् दगीथः"[2]

आठवां सार भगवान्‌का नाम है, यह सारोंका सार है। परम सार है परमानन्द है, परम धाम है, सबसे उत्कृष्ट स्थान है।

छान्दोग्योपनिषद्—

सकाम कर्म करने वाले रात्रिको प्राप्तकर कृष्णपक्ष प्राप्तकर मासोंको प्राप्त कर वर्षको प्राप्त करते हैं। सकाम कर्म करने वाले उपासक वर्षको प्राप्त नहीं करते। वे सकाम कर्म कर्ता माससे पितृलोक फिर आकाश, चन्द्रमाको प्राप्त करते हैं। यही सोम राजा है देवोंका अन्न है। अवधि भोगकर जीव वायुमें आते हैं, वायुसे धूप बने बादल फिर मेघसे चावलादिधान्यमें जीवनरूपमें आता है, रेतस् सींचता है उससे दुबारा गर्भ हो जाता है। गर्भ ही चन्द्रसे लौटते प्राणीके जन्मका स्थान है और वह गर्भ अन्नसे उत्पन्न हुए रेतस्‌से बनता है[3]।

सार यह है कि जब गर्भ बन जाता है तो वायु द्वारा ही जीव शरीरमें सांसके साथ प्रवेश करता है। शुभ आचरण करने वाले ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य योनिको प्राप्त करते हैं, निन्दित आचरण करने वाले कुत्ते-सूकर, चाण्डाल आदिके जन्मको प्राप्त करते हैं। श्रीमद्भागवतमें शुभाचरण करनेके लिए अनेक प्रेरक कथायें हैं। नीच आचरणसे धुन्धकारीकी प्रेतावस्था[4] भरतका मृगयोनिमें गमन[5], आदि कथानक इसी प्रकारके हैं। जो जीव इन दोनों मार्गोंमें से किसी भी मार्गसे नहीं जाते वे क्षुद्र बराबर मरने जन्मने वाले जीव हैं। इनसे यह लोक भरने नहीं पाता। ध्यानका वर्णन भा० में[6]—**"ध्येयं सदापरिभवघ्नमभीष्टदोहम्"**[7] भा० ११।५।३३ आदिमें है।

---

१. भा० ६, २।
२. छा० उ० १; ३।
३. छा० उ० प्रपा ५।खण्ड १०, ६।
४. भा० माहात्म्य अ० ५।
५. भा० ५, ८।
६. छा० उ० ७, ६, १।
७. छा० उ० ८, १, १।

दहर ही ब्रह्म है—"**अथ यदिदमस्मिन् ब्रह्मपुरेदहरं पुण्डरीकं**" इससे दहर विद्याका वर्णन है[१]। भागवतमें वेदस्तुतिमें इसकी ओर स्पष्ट संकेत है—अरुण[२] उपासकोंको विभिन्न लोकोंकी प्राप्ति होती है। पितृलोककी कामना वाला पितृलोक जाता है। मातृलोककी कामना वालेके सम्मुख माताएं उपस्थित हो जाती हैं जिस लोकमें कामना होती है उपासकोंको वह लोक हो जाता है—

"**यं कामं कामयते सोऽस्य संकल्पादेवसमुत्तिष्ठति**"[३]

श्रीमद्भागवतमें विभिन्न देवताओंकी उपासनासे विभिन्न लोकोंकी प्राप्ति कही है। भागवतमें अधिकांश कथाओंका नेतृत्व इन्द्रादिदेवगण तथा बलि प्रभृति असुर करते हैं। छान्दोग्यो० में भी इन दोनों प्रमुख नायकोंका वर्णन है और देव-असुरोंका भी—"**तद्धोभये देवासुरा अनुबुबुधिरे**"।

इन्द्रोहैव देवानामभिप्रवव्राज, विरोचने सुराणाम्[४]।।

इन देव-असुरोंका विवाद यहाँ आत्मतत्वमें वर्णित किया है। भागवतमें अमृतका रूपक है[५]। इस उपनिषद्में वे आत्म तत्त्वरूपी अमृतकी प्राप्तिमें सचेष्ट देखे जा सकते हैं। देव-असुर प्रजापतिकी शरणमें जाते हैं और वे ३२ वर्षका ब्रह्मचर्य धारण करा कर उन्हें विविध प्रकारसे आत्मतत्वका उपदेश देते हैं।

१०. बृहदारण्यकोपनिषद्—

प्रथमाध्यायमें यजनीय अश्वका आलंकारिक वर्णन है। अश्वका सिर उषा है, सूर्य चक्षु है, वायु प्राण है, मुख अग्नि वैश्वानर है, संवत्सर आत्मा है, द्युलोकपीठ, अन्तरिक्ष पेट है, पृथिवी पैर है[६], मुखमें अग्नि, चक्षुमें सूर्य, नासिकामें वायु, पैरमें पृथिवी आदिका रूपक भागवतमें भी दृष्टव्य है[७]। इसमें पुरुषका वर्णन है तथा सविस्तार वर्णन महापुरुष संस्था प्रथमाध्यायमें दृष्टव्य है[८]।

ईश्वरने मनस्वी होनेकी इच्छाकी और प्रकृतिमें क्षोभ उत्पन्न किया उसके संचालनसे सूक्ष्म जल प्रकट हुए। घनी भूत जल ही पृथिवी बन गया उस श्रान्त और तपे हुए पार्थिव पदार्थका तेजोरस रूप अग्निपिण्ड बन गया[९]। यह सृष्टिक्रम है जो भागवतमें भी है[10]। ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य-शूद्रमें ब्राह्मणकी श्रेष्ठताका वर्णन दोनोंमें है किन्तु राजसूययज्ञमें ब्राह्मण राजाके नीचे बैठकर उसकी आराधना करता है। राज्यका यश, ब्राह्मण-क्षत्रियमें ही स्थापित करता है, ब्राह्मण क्षत्रियकी योनि है।

---

१. भा० १०, ८७, १८। २. छा० उप० ८, २, १०
३. छा० उप० ८, ७, २। ४. भा० ८, ७
५. वृह० उ० १, १, १। ६. भा० २, ६, १-३
७. भा० २, ६, १-२५। ८. भा० २, १, २६-३७
९. वृह० उ० १, २, १-२ १०. भा० ३, ५, ३१-३६

यद्यपि राजा परमोच्च हो जाता है तथापि अन्तमें ज्ञान और शान्तिकी कामनासे ब्राह्मणके ही आश्रित होता है। जो राजा इस ब्राह्मणको मारता है वह महापापी हो जाता है[1]। ब्राह्मणने ही चारों वर्ण रचे और उनके रक्षक, कृषि वाणिज्य आदि कर्म भी। आत्मा ही देखने योग्य है, जानने योग्य है, श्रवण करने योग्य है, मनन करने योग्य है एवं निश्चयसे ध्यान करने योग्य है[2]।

भागवतमें—"**श्रोतव्यः कीर्तितव्यश्च स्मर्तव्यश्चेच्छतानृणाम्**[3]"। भगवान्के श्रवण-कीर्तन-स्मरणकी आज्ञा है। भागवतमें पृथिवीको कामधेनु रूपमें प्रस्तुत किया गया है। पृथिवीने पृथुराजाके राज्यमें सबके मनोरथ पूर्ण किये हैं ऐसा स्पष्ट है। पशु, पक्षी, सरीसृप, नागकिन्नर, गन्धर्व, देव, असुर सभीने इससे अमृत प्राप्त किया[4]। इस उपनिषद्में कहा गया है कि—"**पृथिव्यै सर्वाणि भूतानि मधु**।।" बृह० २, ५, १

यह पृथिवी सब प्राणियोंका मधु है, मधुवत् प्रिय और सुखकर है। इस पृथिवीके लिये सब प्राणी मधु हैं, मधुकोश समान हैं। पृथिवी सब प्राणियोंका पालन करती है। इस मधुविद्याका उपदेश 'दधीचि' अथर्वण गोत्रीने अश्विनी कुमारोंको दिया था। इन दोनोंका उल्लेख भी भागवतमें आता है, तृण जलायुकका दृष्टान्त दोनोंमें है एक देहसे दूसरे देहमें जीव ऐसे चला जाता है जैसे तृण जलायुक नामक कीडा एक तृणके किनारे पर पहुँचकर दूसरे सहारेको पाकर पकड़कर फिर अपने आपको उस पर लाता है ऐसे ही यह आत्मा इस शरीरको छोड़कर धन-बन्धु आदिकोंकी ममता अथवा मरणकालीन मूर्च्छाको दूरकर दूसरे पहुँचनेके लोकको अवलम्बन करके वहाँ अपने आपको ले जाता है—

"**तद्यथा तृण जलायुका तृणस्यान्तगत्वा........अयमात्मा**[5]" भागवतमें—"**यथा तृणजलूकेवं देही कर्मगतिंगतः**।।" गायत्रीका चतुर्थपाद या तो इस उपनिषद्में ही है या श्रीमद्भागवतके पंचम स्कन्धमें है। "**गायत्री एतस्मिन् तुरीयेदर्शते पदे परोरजसि प्रतिष्ठिता**[6]" गायत्री चौथे "**दर्शत परोरजः**" पदमें प्रतिष्ठिता" है। भागवतमें—"**परोरजः सवितुर्जातवेदो**[7]" श्लोकमें चतुर्थपाद वर्णित है।

११. श्वेताश्वतरोपनिषद्—

इस उपनिषद्का आरम्भ कारणवादसे है अर्थात् इस जगत्का कर्ता कौन है? हम किसके आदेशसे उत्पन्न हुए हैं, हम किससे जीवित हैं, हम किसमें स्थित हैं—

---

१. बृह० उप० १, ४, ११-१४।
२. बृह० २, ४, ५
३. भाग० २, १, २।
४. बृह० उप० ४, ४, ३
५. भाग० १०, १, ४०।
६. बृह० उ० ५, १४, ४
७. भा० ५, ७, १४।

कि कारणं ब्रह्म कुत स्मजाता जीवाम केन क्वच संप्रतिष्ठाः ।
अधिष्ठिताः केन सुखेतरेषु कर्तामहे ब्रह्मविदो व्यवस्याम्[1] ।।

आगे यह स्पष्ट किया गया है कि ब्रह्मवादियोंने परमेश्वरको उत्पत्ति. पालन और प्रलयका कारण जाना—

ते ध्यानयोगानुगता अपश्यन् देवात्मशक्तिं स्वगुणैर्निगूढाम् ।
यः कारणानि निखिलानि तानि कालात्मयुक्तान्यधितिष्ठत्येकः[2] ।।

ध्यानमें ब्रह्मवादियोंने ईश्वरके चलाये चक्रको देखा–उस रथकी एक नेमि है, तीन पट्टियाँ हैं, १६ अन्त ५० अरे, ६ अष्टकोंसे बन्धन युक्त त्रिमार्ग भेदवाला आदि[3]। इसी प्रकारका प्रकृतिका रूपक भागवतमें देखा जा सकता है और यह स्पष्ट प्रभावित माना जा सकता है कि भागवतमें इस प्रक्रियाका प्रभाव है—

एकायनोऽसौ द्विफलस्त्रिमूलश्चतू रसः पंचविधः षडात्मा ।
सप्तत्वगष्ट विटपो नवाक्षो दशच्छदी द्विखगो ह्यादिवृक्षः ।। भा० १०, २, २७

द्वे अस्य बीजे शतमूलस्त्रिनालः पंचस्कन्धः पंच रसप्रसूतिः ।
दशैक शाखो द्विसुपर्णनीडस्त्रिवल्कलो द्विफलोऽर्कं प्रविष्टः[4]।।

शतमूलका त्रिनाल, ५ स्कन्ध ५ रस, ११ शाखाओंका वर्णन भागवतमें है जबकि श्वेताश्वतरमें भी त्रिवृत, शताधार, ५ स्रोत, ५ भूत, ५ आवर्त आदिका वर्णन है[5] । पुरुषके अंगुष्ठमात्रका वर्णन इस उपनिषद्में है[6]। जो भागवतकारने भी स्वीकार किया है और दोनोंने उसकी हृदयदेशमें मानी है–**अंगुष्ठमात्रः पुरुषोन्तरात्मा सदाजनानां हृदये सन्निविष्टः ।।** श्वेता ३, १३ **अंगुष्ठमात्रममलम् ।** भा० १, १२, ८ हृदयके लिये–"**हृदिस्थोऽप्यति दूरस्थः ।**" भा० १०, ८६, ४७ **हृत्पुण्डरीकमन्तः स्थम् ।** भा० ११, १४, ३६ श्लोक दृष्टव्य हैं जिनमें हृदयमें सन्निविष्ट परमात्माको माना है । **सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्** श्वेता० ३, १४ **सहस्र शिरसं देवम्** भा० १०, ३९, ४३ में स्पष्ट है एवं आगेका भाग द्वितीय स्कन्ध ५ अध्यायमें ३७-४२ में दृष्टव्य है । **पुरुष एवेदं सर्वम्० ।** (श्वेता० ३, १५) **सर्वं पुरुष एवेदम्० ।** भा० २, ६, १५ "**नवद्वारे पुरे देही हंसो लेलायते बहिः**" श्वेत ३, १८ देहवान् बद्धात्मा नवद्वारपुरमें रहता है । भागवतके पुरञ्जनोपाख्यानमेंइ स नवद्वारपुरीका वर्णन बड़े विस्तारके साथ किया है । भागवतका प्रसिद्ध श्लोक—**सुपर्णावितौ सदृशौ सखायौ० ।** (भा० ११, ११, ६) श्वेताश्वतरो० में ज्योंका त्यों है—(श्वेता ४, ६) "**नैव स्त्री न**

---

१. श्वेताश्वतरो० १, १ । २. श्वेताश्वतरो० १, २
३. श्वेताश्वतरो० १, ४ । ४. भागवत ११, १२, २२
५. श्वे० उ० १, ५ । ६. श्वे० उ० ३, ३

पुमानेष नचैवायं नपुंसकः । श्वेता ५, १० अर्थात् वह आत्मा न स्त्री है, न पुरुष, न नपुंसक भागवतमें भी यही भाव एवं अक्षर साम्य है—

"न स्त्री न षण्ढो न पुमान्नजन्तुः" भाग० ८, ३, २४

श्वेताश्वतरमें परमात्माके सम्बन्धमें लिखा है कि उसका कोई कारण नहीं है—**"न तस्य कार्यं करणं च विद्यते"** भाग० में लिखा है कि—**"नमो नमस्तेऽखिल कारणाय निष्कारणायाद्भुतकारणाय"** भा० ८, ३, १५ अर्थात् भगवान् ही अखिल कारणोंके कारण हैं। श्रीमद्भागवतमें ब्रह्माकी उत्पत्तिकी कथा तृतीय स्कन्धमें वर्णित है और वेदोंके प्रणयनकी कथा भी लिखी गई है—इस उपनिषद्में **"यो ब्रह्माणं विदधातिपूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै"** श्वे० ६, १८ में स्पष्ट है।

भागवतमें देवता तथा गुरुकी भक्ति करनेके कई प्रसंग हैं। इस उपनिषद्में स्पष्ट ही लिखा है कि जिसकी परमदेवमें परम भक्ति है और जैसी भक्ति देवमें है वैसी ही गुरुमें है उस महात्माको कहे हुए ये अर्थ रहस्य प्रकाश पाते हैं उसको दिये हुए ये उपदेश सफल होते हैं—

यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ ।
तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः ।। श्वेता० ६, २३

यह उपनिषद् सत्संगका मूल स्रोत कहा जाता है। **"किं कारणं ब्रह्म कुतः स्म जाता जीवामकेन क्व च सम्प्रतिष्ठाः ।।"** श्वेता० ३, १, १ ब्रह्म विषयक चर्चा करने वाले जिज्ञासुओंका परस्पर कथन है कि इस जगत्का मुख्य कारण ब्रह्म कौन है? हम लोग किससे उत्पन्न हुए हैं और किससे जी रहे हैं। इस प्रकार परब्रह्म परमात्माकी खोज करना उन्हें जानने और पानेके लिये उत्कट अभिलाषाके साथ उत्साहपूर्वक आपसमें विचार करना। परमात्माके तत्वको जानने वाले महापुरुषोंसे उनके विषयमें विनयभाव और श्रद्धापूर्वक पूछना, उनकी बतायी हुई बातोंको ध्यानपूर्वक सुनकर काममें लाना—इसीका नाम सत्संग है। अतः इस उपनिषद्के प्रथम मन्त्रमें सत्संगका ही वर्णन है[1]।

उपनिषद्-रचनाकाल

भारतीय मत—

भारतीय विचारधारा तत्व चिन्तनको सर्वोपरि मानकर चलती रही है। वह अमृतपानकी इच्छुक रही है फलतः बाह्य परिवेषकी समालोचनाके लिये प्रश्रय ही वहाँ कहाँ मिलता और यही कारण है विभिन्न उपनिषदोंका प्रकाशन करते हुए भी आधुनिक युगमें उनके रचयिता और रचनाकालका महत्व नगण्य ही रहा है। उपनिषदोंके विभिन्न संस्करण आज भी उपलब्ध हैं किन्तु रचयिता और रचना तिथिके ऊहापोहके व्यर्थ जंजालसे दूर ही हैं। इस विचारधाराका मुख्य कारण

१. उपनिषदंक (कल्याण) पृ० ३६३

व्यक्तित्वको प्राधान्य देनेसे था न कि किसी प्रकार अव्यवस्था उत्पन्न करना या भयसे समयका गोपन करना था। इसके साथ-साथ भारतकी विचारधारामें 'श्रुति' साहित्य अनादिकालसे प्रवाहित होता आ रहा है और यह 'अपौरुषेय' है और अपौरुषेय शब्दके साथ संयुक्त कृतिका रचयिता परमात्मा ही है, फलतः परमात्माका समय निर्धारण करना पड़ता है अतः कठिनसे कठिन ग्रंथोंके सूक्ष्म विचार करनेमें प्रमाण प्रस्तुत करनेमें अपूर्व पाण्डित्व परिपूर्ण पण्डितगणोंने इस विषय पर अपनी समालोचनाएं प्रस्तुत नहींकीं और एक प्रकारसे यह अच्छा ही हुआ जो हम उनकी देनको सार रूपमें प्राप्त कर रहे हैं।

'धातायथापूर्वमकल्पयत्' के विश्वासमें परिपक्व बुद्धिको डिगाना बड़ा कठिन है और इसीका परिणाम है कि अल्पज्ञात उपनिषदोंमें और प्रसिद्ध ईश-केनःकठादि उपनिषदोंमें पूज्यत्व बुद्धिमें कोई भेदमात्र दिखलाई नहीं देता। विभिन्न सम्प्रदाचार्योंने विभिन्न प्रसंगों पर प्रमुख-प्रमुख उपनिषदोंके साथ वराह, नारायण, गोपालतापनीय आदिके उद्धरण प्रस्तुत करके उक्त तथ्यको प्रमाणित कर दिया है।

संस्कृत साहित्यमें उपनिषद् ग्रन्थोंका स्थान बहुत ऊंचा है। यहाँ जब कि वेदोंके शिरोभागके नामसे उपनिषदोंका परिचय दिया जाता है और अध्य।त्मज्ञानके लिये उपनिषद् ग्रन्थ ही एकमात्र साधन हैं। वेदान्तसूत्र और श्रीमद्भगवद्गीता आदि गीताएं उपनिषदोंके ही ज्ञानसे परिपूर्ण हैं। उपनिषद् ग्रन्थ संस्कृत साहित्य ज्ञानराशिके भण्डार माने जाते हैं। उपनिषदोंका मान देखकर किसी चाटुकारने 'अकबर' के समयमें 'अल्लोपनिषद्' की रचना की। इसमें अरवी और संस्कृतके मिश्रित १० पद्य हैं। इसमें रसूल, मुहम्मद आदि शब्द भी आये हैं। उपनिषदोंकी ओरसे श्रद्धा हटानेके अभिप्रायसे 'मैक्समूलर' जैसे विद्वान् एक (मक्त्योपनिषद्) नामकी पुस्तिका भी इन्होंने बनाई। विद्वानोंने इस पर जब आपत्तिकी तो प्रो० साहबने उत्तर दिया कि हमने मजाकके तौर पर यह पुस्तिका लिखी थी। मैक्समूलरका पत्र 'सरस्वती' मासिक पत्रिकामें छपा है। ऐसे और भी धूर्त हुए होंगे।

अपणिनीय शब्दोंको देखकर पाणिनि पूर्ववर्ती मानना ठीक नहीं है क्योंकि आधुनिककालमें भी अनेक ग्रन्थोंमें अपाणिनीय प्रयोग देखकर ही 'मैत्र्युपनिषद्' को पाणिनिके पूर्ववर्ती कालका माना जा रहा है। पर यह ठीक नही है। बालगंगाधर-तिलकके अनुसार इस उपनिषद्का रचनाकाल १६००-१८०० वर्ष पूर्व है। (गीता रहस्य पृ० ५५२) इस उपनिषद्में **'मघाद्यं श्रविष्ठार्द्धम्'** के रूपमें दक्षिणायनका वर्णन आया है। उस समय आधे धनिष्ठासे उत्तरायणका (मकर संक्रान्तिका आरम्भ) होता था। तिलकके अनुसार वेदांग ज्योतिषोक्त उद्गमन स्थिति ईसासे १२०० या १४०० वर्ष पहलेकी है। सारांशमें इसे ईसासे १२०० वर्ष पूर्व माना जा सकता है।

मैत्र्युपनिषद्में अनेक स्थलोंमें 'छान्दोग्य, बृहदारण्यक, तैत्तिरीय, कठ और ईशावास्य उपनिषदोंमें वाक्य तथा श्लोक प्रमाणार्थ उद्धृत किये गये हैं, अतः ये मैत्र्युपनिषद्से पहिलेके हैं। यह मत भी ठीक नहीं है क्योंकि जिन पाश्चात्य विद्वानोंने मानव सृष्टिका आरम्भ ई० से ४००० वर्ष पूर्व माना है वे उपनिषदोंके उत्तरायण वर्णनकाल से ईसासे पूर्व १८००-१६८० उपनिषदोंका रचनाकाल मानें तो इसमें आश्चर्यकी बात ही नहीं है, आधे धनिष्ठासे उत्तरायण आरम्भकी स्थिति १८८०-१६८० वर्ष पूर्व भी थी। परन्तु वैदिक धर्मानुयायी सृष्टिका आरम्भ विक्रम संवत्के पूर्व १९५,५८,८५०४९ मानते है। अतः उपनिषदोंका रचनाकाल नहीं आविर्भावकाल मानेंगे उस समय जबकि मघामें दक्षिणायन और आधे धनिष्ठा नक्षत्रसे उत्तरायणका समय रहा होगा। उपनिषदोंके निरूपणमें सबसे प्रथम धनिष्ठार्थसे उत्तरायणको न मानकर सबसे अन्तमें धनिष्ठार्धके उत्तरायणको माननेके लिये कोई प्रमाण नहीं है। यदि नहीं है तो अवश्य ही प्राचीन मत ठीक है। वेदके भाष्यकारोंने वेदका काल निर्णय किया है, इनमें उव्वटका मत है कि—**"सोऽयं हिरण्यगर्भपरंपरयाभिव्यक्तो नित्यो वेदः"** वेद नित्य है वह ब्रह्मा द्वारा अभिव्यक्त होकर प्रकाशित हुआ है, आचार्य महीधरने भी इस पक्षका समर्थन किया है—

"एवं परम्परया सहस्रशाखी वेदोजातः।"

स्वामी दयानन्द सरस्वतीने भी वेदको नित्य माना है, महर्षि पतञ्जलि एवं निरुक्तकार यास्कने भी वेदको नित्य माना है। मेरे विचार भी इस ओर वेदकी नित्यता पर दृढ़ हैं। युगोंके आधार पर वेदका काल निर्णय किया जा सकता है। कलियुगकी वर्ष गणना ४३२००० वर्ष है, ८६४००० वर्षका द्वापर युग है तथा १२९६००० वर्षका त्रेता एवं १७२८००० वर्षका सतयुग माना जाता है। चारों युगोंकी वर्ष संख्या ४३२०००० वर्ष होती है इतनी संख्या एक चतुर्युगीकी होती है। एक मन्वन्तरमें ७१ चतुर्युगी होते हैं अतः चतुर्युगीको ७१ से गुणित ४३२००००×७१ =३०६७२०००० तीन करोड़ सड़सठ लाख बीस हजार वर्ष मन्वन्तरके होते हैं। १४ मन्वन्तरका एक कल्प होता है इसे १४ से गुणित किया तो—

३०६७२००००×१४·४२९४०८०००० हुए

यही सम्पूर्ण सृष्टिकी आयु है[1]। इसे ब्राह्म दिन कहा है। सम्वत् २०२९ वर्तमान तक एक अरब छियानवे करोड़ आठ लाख तिरेपन हजार छहत्तर (१९६०८५३०७६) वर्ष होते हैं यह गणना न केवल मनु आदि स्मृतियोंकी ज्योतिषकी है, अपितु शोध प्रबन्धके प्रतिपाद्य ग्रन्थ श्रीमद्भागवतके अनुसार भी है[2]। विदुरके प्रश्न पर मैत्रेयने

१. मनुस्मृति १।६८-६३। २. भा० ३, ११

कहा कि सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलि, ये चार युग अपनी सन्ध्या और सन्ध्यांशोंके सहित देवताओंके १२ सहस्र वर्ष तक रहते हैं। इन सत्यादि युगोंमें क्रमशः ४, ३, २ १ सहस्त्र दिव्य वर्ष होते हैं और प्रत्येकमें जितने सहस्त्र वर्ष होते हैं उससे दुगुने सौ वर्ष उनकी सन्ध्या और सन्ध्यांशोंमें होते हैं। अर्थात् सत्ययुगमें ४००० दिव्य वर्ष युगके ८०० वर्ष सन्ध्या और सन्ध्यांशके मिलाकर ४८०० वर्ष होते हैं, त्रेतामें ३,६००, द्वापरमें २,४००, कलियुगमें १२०० दिव्य वर्ष हैं। मनुष्योंका एक वर्ष देवताओंका एक दिन होता है अतः देवताओंका एक वर्ष मनुष्योंके ३६० वर्षके बराबर हुआ, फलतः मानवीयमानसे कलियुगमें ४३२००० वर्ष होते हैं।

कुछ विद्वानोंने दिव्य वर्षसे ही गणनाकी है, उसमें मानवीय वर्षोंको नहीं मिलाया है जो कि उक्त मतसे अयुक्त है। युगके आदिमें सन्ध्या और अन्तमें सन्ध्यांश होता है। भागवतमें मनुका काल ७१ चतुर्युगीसे कुछ अधिक माना है ७१ ६/१४ चतुर्युगी। मन्वन्तरकी है। सृष्टिके प्रारम्भ वाला यदि यह काल वेदोंका मान लिया जाय तो उपनिषदोंका भी यही काल सिद्ध हो जाता है और यदि मैक्समूलरके २०० वर्षके कालको यहाँ स्वीकार कर लिया जाय तो वेद-ब्राह्मण-आरण्यक-उपनिषदों में चतुर्थ स्थानीय उपनिषदोंको ८०० वर्ष पश्चात् माना जा सकता है। स्वामी दयानन्दने भी उक्त मतकी पुष्टिकी है[1]। शतपथ ब्राह्मणमें युगकी गणना विचित्र प्रकारसे की है। ऋग्वेदके अक्षरोंसे प्रजापतिने १२००० वृहती छन्द बनाये। वृहती छन्दमें ३६ अक्षर होते हैं तो ऋग्वेदके ४३२०००० हुए और यजुर्वेदके ८००० सामवेदके ४००० मिलाकर १२००० हुए, इसके भी ४३२००० हुए[2]। ज्योतिष शास्त्रके आधार पर शंकर बालकृष्णने, श्री तिलकने सूर्यादि ग्रहोंकी युतिको एकत्र मानकर गणनाकी है। युगारम्भके समय ग्रह एक युतिमें थे, यहाँ गणकोंका विभिन्न दृष्टिकोण रहा है। जब सूर्य-चन्द्र-तिष्य और वृहस्पति एक राशिमें आते हैं तब सतयुगका आरम्भ होता है। यह मत भागवतको अभीष्ट है[3]। इस प्रकार भागवतके अनुसार वैदिककाल स्थिर है और यही प्राचीन उपनिषदोंका स्थिर होता है। जहाँ तक लोकमान्यके ग्रंथ 'ओरायन' के अनुसार वेदोंका समय ई० पू० १०००० तक स्वीकार करना है ठीक नहीं है। इस मतका खण्डन नानापावगी, उमेशचन्द्र दत्त और बाबू अविनाश चन्द्रदासने किया है और उपनिषद् कालको लाखों वर्य पूर्व सिद्ध किया है। बाबू उमेशचन्द्र विद्यारत्नने सामवेदकी तिथि एक लाख वर्ष पूर्व निश्चित की है[4]। अतः इस विवादमें निष्कर्ष यही है कि उपनिषदोंकी रचना अत्यन्त प्राचीन कालमें हुई।

१. वैदिक सम्पत्ति पृ० १२५। २. शतपथ ब्राह्मण १०, ४, २, २२-२५
३. भा० १२।२।२४। ४. शुक्लयजुः पर महीधर उव्वट दयानन्दके भाष्य पृ० ३५

पाश्चात्यमत—

विदेशी विद्वानोंने भी अपनी टिप्पणियाँ उपनिषदों पर लिखी हैं जिनमें निम्न प्रमुख हैं—आटो श्राडर, जी. ए. जेकब, ओर्टल, मैक्समूलर, आटो वोइलिंग, हारमन ओल्डेनवर्ग, ई० ह्यूम, रावर्ट जिमरमन, सी०ओ०हाट, अयसन, आर्यर एवलन एफ० टी० ब्रुक्स, शोपेन हार नामक विद्वानोंने लिखा है कि सारे संसारमें ऐसा कोई स्वाध्याय नहीं है जो उपनिषदोंके समान उपयोगी और उन्नतिकी ओर ले जाने वाला हो। वे उच्चतम बुद्धिकी उपज हैं। मैक्समूलरका कथन है कि–उपनिषद् वेदान्तकी आदि स्रोत हैं और ये ऐसे निबन्ध हैं जिनमें मुझे मानवीय 'उच्चभावना' अपने उच्चतम शिखर पर पहुँची हुई मालूम पड़ती है। उपनिषदें क्रियात्मक विद्या है काल्पनिक नहीं। उपनिषदोंका सीधा सम्बन्ध वेदसे है किन्तु कुछ विद्वान् इन्हें ब्राह्मणोंका आलोचना भाग भी मानते हैं[1]। उपनिषद् वैदिक भावनाके विकास रूप हैं। कर्म और ज्ञान दोनोंका वेदसे सम्बन्ध है। कर्म भावनाको लेकर ब्राह्मण ग्रन्थोंकी रचना हुई और ज्ञानभावनाको लेकर उपनिषदोंकी। कर्मप्रधान ब्राह्मण ग्रन्थोंका विधान जब पशु हिंसा जैसे स्थूल कार्यों तक पहुंच गया (या विकृत व्याख्याओं द्वारा इन ग्रन्थोंको दूषित किया गया) तब विचारवन्त मनीषियोंने कर्मकाण्डकी इस स्थूलताके प्रति अविश्वासकी भावनाएं अभिव्यक्त कीं। कर्मकाण्डके इस हेय पक्षके विरोधमें ज्ञानकाण्डका जन्म हुआ जिसके प्रतिपादक ग्रंथ उपनिषद् हुए।

"उपनिषद् युग" भारतीय विचारधाराकी पराकाष्ठाका युग रहा है। इस युगमें नये अन्वेषण नये चिन्तन और नयी मान्यता हुई। जीवन जगत् और ब्रह्म विषयक जिन गूढ ग्रन्थियोंका समाधान एवं महती जिज्ञासाओंका स्पष्टीकरण इस युगमें हुआ वैसा संसारके इतिहासमें आज तक नहीं दिखाई देता। ब्राह्मणकाल वैदिक धर्मकी अवनतिका समय और उपनिषद् काल वैदिक धर्मकी चरम उन्नतिका समय रहा है। उपनिषदोंको श्रवणात्मक, गीताको निदिध्यासनात्मक तथा ब्रह्मसूत्रको मननात्मक माना है। १२वीं शताब्दी तक इन उपनिषदोंकी संख्या ३० थी। १४वीं शतीके शंकरानन्द और नारायणके समयमें ये संख्या ६० के लगभग हो गई। धार्मिक संप्रदाय अपनी लोकविश्रुतिमें लगे हुए थे, जिनमें शैव, वैष्णव और शाक्त प्रमुख थे। इन सम्प्रदायोंने अपने सिद्धान्तोंके प्रचारार्थ और मान वृद्धि हेतु अनेक उपनिषद् ग्रन्थोंकी रचनाकी जिससे कि उपनिषदोंकी संख्यामें आशातीत वृद्धि हुई। इसका फल यह हुआ कि उपनिषदोंका महत्व बढ़नेकी अपेक्षा घटने लगा। उपनिषदोंकी संख्या सैंकड़ों तक पहुँच गई। उपनिषदोंका रचना क्रम एक नहीं है। कुछ उपनिषदों पर

---

१. सं० सा० का० सं० इ०—वाचस्पति गैरोला चौखम्बा पृ० ७५

१४-१५वीं शताब्दीका भी प्रभाव है। इनके रचनाकालमें एक सर्वसम्मत निश्चित-राय नहीं है। छान्दोग्य-बृहदारण्यक-केन-ऐतरेय-कौषीतकि और कठका समय छठी शताब्दी पूर्व है।

विद्वान् लुर्डविगने इनकी रचना ३००० वर्ष पूर्व मानी है। न जाने कितने विधर्मी और विदेशी महानुभाव भी इनकी गंभीरता मधुरता और तात्विकता पर मुग्ध हो चुके हैं। मंसूर, सर्मद, फैजी बुल्लाशाह और दाराशिकोह आदि महानुभावोंने इस्लाम धर्माबलम्बी होकर भी औपनिषद् सिद्धान्तको ही अपने जीवनका सर्वस्व बनाया था। मंसूर और सर्मदने तो सिर देकर भी इस सिद्धान्तको छोड़ना पसन्द नहीं किया था[1]। डा० गोल्डस्करका कथन है कि—वेदान्त सबसे ऊंचे दर्जेका यंत्र है जिसे पूर्वीय विचारधाराने प्रवृत्त किया है[2]।

The Upanishadic age, whatever dates we may assign to its upper and lower limits falls, corresponding to the three classes of upanishadic words in to three matural divisions. The earliest divesion may be called the Aranyakdopanishadic period, the second division may be called the somhetaopanishedic period, and the third or last division may be called the perion of independant upanisheds[3].

इन्होंने उपनिषदोंकी रचनाको तीन कालोंमें विभक्त किया है प्रथमः आरण्यकोपनिषद् काल—इस कालमें छः उपनिषदोंकी रचना हुई, ये प्रामाणिक एवं प्राचीन उपनिषद् हैं—बृहदारण्यक, छान्दोग्य-ऐतरेय-कौषीतकि तैत्तरीय और केन।

२. संहितोपनिषद् काल—इसमें ४ उपनिषद् प्रमुखतः आते हैं—कठ-श्वेताश्वतर-ईश और मैत्रायणी। ये उपनिषद् संहिताओं पर आधारित हैं।

३. स्वतन्त्र उपनिषद्—इसमें मुण्डक प्रश्न, माण्डूक्य उपनिषद् रचे गये। क्लासीकल उपनिषदोंका समय २५०० बी० सी० से १६०० बी० सी० माना है[4]। पाश्चात्य विद्वानोंने पाणिनिकी भाषासे भी उपनिषदोंके काल निर्णय पर प्रकाश

---

१. **ईशोप० भूमिका पृ० ६ गीताप्रेस गोरखपुर**

२. **कल्याण वर्ष ७ अङ्क ८**

३. **दी मैस्टिक फिलासफी आफ दी उपनिषद्—एस० पी० सेन पृ० ३७**

४ The age of the upanishads. p. 55—
Thus the time from 2500 B. C, to 1600 B. C. may be fisced as the age of the classical upanishads.

डालते हुए लिखा है कि उपनिषदोंकी रचना पाणिनिसे पूर्व हो गई थी, पाणिनिका समय ७०० बी० सी० है। बृहदारण्यक, छान्दोग्य आदि उपनिषदोंमें ब्रह्म चर्चाकी गई है अतः इन्हें ब्राह्मणकालका माना जा सकता है और ब्राह्मणकाल २५०० बी० सी० है अतः उपनिषदोंकी रचनाका भी यही काल है। जैकोवी नामक विद्वान्ने उपनिषदोंका समय १२०० बी० सी० ६०० बी० सी० माना है।

आचार्य बलदेव उपाध्यायका मत है कि "उपनिषदोंने वैदिक देवताओंसे ऊपर उठकर एक अनामरूप ब्रह्मको ही इस विश्वका स्रष्टा, नियन्ता तथा पालनकर्ता स्वीकार किया है। केवल पिछले उपनिषदोंने पहले विष्णुको अनन्तर शिवको उस परमपद पर प्रतिष्ठित किया है। बृहदारण्यक-ईश-तैत्त० ऐत० प्रश्न-मुण्डक-माण्डूक्य उपनिषद् ही अनाम ब्रह्मका प्रतिपादन करती हैं।" कठोपनिषद्में विष्णुको परम पद पर प्रतिष्ठित किया है, कृष्णयजुर्वेदीय उपनिषद्में महादेव ही इस महनीय पदके अधिष्ठाता माने गये हैं अतः श्वेताश्वर "कठ" से अर्वाचीन है तथा ब्रह्मा-विष्णु और महेश इस देवत्रयीके गौरव गानके कारण मैत्रायणीय उपनिषद् श्वेताश्वतरसे भी अर्वाचीनतम माना जाता है[1]। प्रधान उपनिषदोंकी रचना बुद्धसे पूर्व इन्होंने स्वीकार की है। 'उपनिषदें' ज्ञानकी खानें हैं। जीवनकी सभी दिशाओंमें प्रकाश देने वाली अखण्ड परम ज्योति हैं।

उपनिषदोंकी महिमा इसलिये नहीं है कि 'दाराशिकोह' ने इनसे प्रकाश प्राप्त किया या शोपेनहर, मैक्समूलर एवं अन्यान्य पाश्चात्य विद्वानोंने इनकी प्रशंसाकी है यह उनका सौभाग्य है, जो उन्हें उपनिषदोंका कुछ आभास प्राप्त हुआ। आजकल 'कालनिर्णय' की पद्धति चली है और पाश्चात्य विद्वानोंके मतोंका अनुकरण करके भारतीय विद्वान भी उसी पद्धतिके अनुसार चल रहे हैं इसीसे उपनिषदोंका निर्माण काल ईसासे सात-आठ सौ वर्ष पूर्व बतलाते हैं। पर उन्हें यह समझना चाहिये कि ब्रह्मसूत्रमें उपनिषदोंकी व्याख्या है और ब्रह्मसूत्रका भगवद्गीतामें उल्लेख है इससे यह सिद्ध[2] है कि गीतासे पूर्व उपनिषदोंका अस्तित्व था, गीताका प्रादुर्भाव ईसासे ३१०० वर्ष पूर्व महाभारत युद्धमें हुआ था, यह प्रायः निर्णीत हो चुका है। ऐसी अवस्थामें दूसरोंके अंधेरेमें काल टटोलनेकी यह पद्धति कहाँ तक समीचीन है? उपनिषदोंकी महत्ता काल पर नहीं है, वह तो उनकी महान् ज्ञान राशिको लेकर है जो वेदोंके सारके रूपमें ऋषियों द्वारा श्रुत और संगृहीत है एवं जो नित्य, सत्य और सनातन है[3]।

---

१. वैदिक साहित्य और संस्कृति पृ० २५६।   २. ब्रह्मसूत्र पदेश्चैव १।३।४
३. उपनिषद् (कल्याण) अङ्क पृ० ७७५।

उपनिषदोंकी तालिका और भाष्यकार

ऋग्वेदकी उपनिषद्

१—ऐतरेय
२—कौषीतकि ब्राह्मण
३—नाद बिन्दु
४—आत्मप्रबोध
५—निर्वाण
६—मुद्गल
७—अक्षमालिका
८—त्रिपुरा
९—सौभाग्य लक्ष्मी
१०—वह्वृच

ऋग्वेदकी इन १० उपनिषदोंका शान्तिमन्त्र **'वाङ् मे मनसि'** इत्यादि है।

सामवेदकी उपनिषद्

१—केन
२—छान्दोग्य
३—आरुणिक
४—मैत्रायणी
५—मैत्रेयी
६—वज्रसूचिका
७—योग चूड़ामणि
८—वासुदेव
९—महत्
१०—सन्यास
११—अव्यक्त
१२—कुंडिका
१३—सावित्री
१४—रुद्राक्षजाबाल
१५—जाबालदर्शन
१६—जाबालि

सामवेदकी ये १६ उपनिषद् हैं—इनका शान्तिमन्त्र **"आप्यायन्तु ममांगानि"** इत्यादि हैं।

अथर्ववेदकी उपनिषद्

१—प्रश्न
२—मुंडक
३—माण्डूक्य
४—अथर्वशिरस्
५—अथर्वशिक्षा
६—बृहज्जाबाल
७—नृसिंह तापनीय
८—नारद परिव्राजक
९—सीता
१०—शरभ
११—त्रिपाद्विभूतिनारायण
१२—रामरहस्य
१३—राम तापनीय
१४—शाण्डिल्य
१५—परमहंस परिव्राजक
१६—अन्नपूर्णा
१७—सूर्य
१८—आत्मा
१९—पाशुपत
२०—परब्रह्म

२१—त्रिपुरा तापनीय
२२—देवी
२३—भावना
२४—भस्मजावाल
२५—गणपति
२६—महावाक्य
२७—गोपाल तापनीय
२८—कृष्णा
२९—हयग्रीव
३०—दत्तात्रेय
३१—गरुड़

कृष्णयजुर्वेदकी उपनिषद्

१—कठवल्ली उपनिषद्
२—तैत्तरीय
३—ब्रह्म
४—कैवल्य
५—श्वेताश्वतर
६—गर्भ
७—नारायण
८—अमृत बिन्दु
९—अमृतनाद
१०—कालाग्निरुद्र
११—क्षुरिका
१२—सर्वसार
१३—शुकरहस्य
१४—तेजोबिन्दु
१५—ध्यान बिन्दु
१६—ब्रह्मविद्या
१७—योगतत्व
१८—दक्षिणामूर्ति
१९—स्कंद
२०—शारीरक
२१—योगशिक्षा
२२—एकाक्षर
२३—अक्षि
२४—अवधूत
२५—कठ रुद्र
२६—रुद्र हृदय

शुक्ल यजुर्वेदकी उपनिषद्

१—ईशावास्य उपनिषद्
२—वृहदारण्यक
३—जावाल
४—हंस
५—परमहंस
६—सुबाल
७—मन्त्रिका
८—निरालम्ब
९—त्रिशत् ब्राह्मण
१०—मंडल ब्राह्मण
११—अद्वय तारक
१२—पैंगल
१३—भिक्षुक
१४—तुरीयातीत
१५—अध्यात्म
१६—तारसार
१७—याज्ञवल्क्य
१८—शाट्यायनी
१९—मुक्तिका

शुद्ध यजुर्वेदकी १९ उपनिषद् हैं इनका शान्तिमन्त्र **पूर्णमदः पूर्णमिदम्'** इत्यादि है ।

२७—योग कुंडली

२८—पंच ब्रह्म

२९—प्राणाग्निहोत्र

३०—वराह

३१—कलि संतरण

३२—सरस्वती रहस्य

इन ३२ उपनिषदोंका शान्तिमन्त्र

"सहनाववतु सह नौ भुनक्तु"

इत्यादि है।

अथर्ववेद की उपनिषदोंका शान्ति मन्त्र **"भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवाः"** इत्यादि है। इस प्रकार कुल संख्या १०८ है—

ऋग्वेद	१०
कृष्णयजुर्वेद	३२
शुक्ल यजुर्वेद	१९
सामवेद	१६
अथर्ववेद	३१
	१०८

मुक्तिकोपनिषद्में चारों वेदोंकी १०८ उपनिषदोंके नाम मिलते हैं अतः यह उपनिषद् सबसे अर्वाचीन मानी जा सकती है[1]। ये १०८ उपनिषदें मनुष्यके आधिदैविक, आधिभौतिक और आध्यात्मिक तीनों तापोंका नाश करते हैं। इनके पाठ और स्वाध्यायसे ज्ञान और वैराग्यकी प्राप्ति होती है तथा लोक वासना-शास्त्र एवं देहवासनारूप विविध वासनाओंका नाश होता है। समस्त उपनिषदोंके बीच १०८ उपनिषद् सारस्वत रूप हैं। पातञ्जल महाभाष्यमें वेदकी ११३० शाखाओंका उल्लेख है[2]। जितनी शाखायें हैं उतने ही उपनिषद् होने चाहिये। क्योंकि प्रत्येक शाखाके ब्राह्मण-आरण्यक पृथक् है। डा० बेलवेलकरने पूनासे वाष्कल्य, छागल्य, आर्षेय और शौनक उपनिषदोंको सानुवाद प्रकाशित किया है।

जर्मनके विद्वान् डायसनने ६० उपनिषदोंको एक साथ प्रकाशित किया। श्रीनारायणस्वामी एवं ह्यूमने अंग्रेजी अनुवादके साथ ३०, ३० उपनिषदोंका प्रकाशन एक साथ किया[3]। शाहजहाँके ज्येष्ठ पुत्र 'दाराशिकोह' ने फारसी अनुवादके साथ कई दर्जन उपनिषदोंको प्रकाशित कराया था। मद्रासकी 'थियासाफिकल सोसाइटी' ने

१. मुक्तिकोप० १, २४-३६। २. म० भा० पस्पशा०।

३. कल्याण हिन्दू संस्कृति अङ्क पृ० २८९।

लगभग २०० उपनिषदोंको प्रकाशित कराया है। गीता और ब्रह्मसूत्रोंका मूलस्रोत उपनिषद् हैं, अतः संस्कृत साहित्यमें सबसे महत्वपूर्ण स्थान इनका माना गया है। उपनिषदों पर अब तक जितने भाष्य, कृतियाँ, टीकाऐं लिखी गई हैं कदाचित् ही किसी दूसरे साहित्य पर इतनी हों।

मुख्य भाष्य और टीकाकार—

श्रीशंकराचार्य, आनन्द, अनन्ताचार्य, ब्रह्मानन्द, विद्यारण्य, सुरेश्वराचार्य, नारायण, विज्ञान भागवत, आनन्दगिरि, मुनि नित्यानन्द, रंग रामानुज, दिगम्बरानुचर, मध्वाचार्य, जयतीर्थ, व्यासतीर्थ, रघूत्तमस्वामी, ब्रह्मयोगी, नारायण मुनि, भास्करानन्द, अरविन्द घोष, महादेव शास्त्री, श्रीशचन्द्र बसु, भगवद्दत्त, भीमसेन, श्रीधरशास्त्री आदि।

ब्रह्मसूत्र और भागवतकार—

प्रचलित धारणा यह है कि बादरायण और व्यास नामान्तर मात्र हैं। परन्तु पाश्चात्य तथा आधुनिक विद्वान् इससे सहमत नहीं हैं। उनका कथन है कि बादरायण व्यास कृष्णद्वैपायन व्याससे भिन्न थे। परन्तु अनेक प्रमाणोंसे यह निश्चित हो चुका है कि ब्रह्मसूत्र और भावगतके रचयिता कृष्णद्वैपायन व्यास ही थे।

१—"**पाराशर्यशिलालिभ्यां भिक्षु नट सूत्रयोः**[१]" इस पाणिनि सूत्रका पाराशर्य पद निःसन्देह वेदव्यासके लिये है। पाणिनि सूत्रभिप्रेत भिक्षु सूत्र वेदव्यासप्रणीत (बादरायण प्रणीत) ब्रह्मसूत्र ही हैं। यहाँ यह शंका होना स्वाभाविक है कि पाराशर्य पद पृथक् आया है तथा भिक्षु सूत्र पृथक् है अतः यह कोई अन्य ग्रन्थ होना चाहिये परन्तु भिक्षुसूत्रसे तात्पर्य पाणिनिपूर्ववर्ती ब्राह्मण संघोंमें प्रचलित पाराशर्यसे प्रोक्त भिक्षुत्व संपादक तथा संप्रदाय विशेषके सिद्धान्तों एवं नियमोंके संग्राहक सूत्रसे है।

२—ब्रह्मसूत्रकी चर्चा गीतामें है "**ब्रह्मसूत्र पदैश्चैव**" गी० १३, ४ "**ब्रह्मणः सूत्रकानि वाक्यानि ब्रह्मसूत्रकाणि**[२]" आचार्य शंकरने लिखा है।

३—शांकरभाष्यमें उपवर्ष आचार्यका उल्लेख है, उपवर्षने ब्रह्मसूत्र पर वृत्ति लिखी है। उपवर्ष पाणिनिके समकालिक एवं गुरु थे[३]। "**पाणिनिर्नाम वर्षस्य शिष्यः पूर्वं जडाशयः। तपसा शंकरं प्राप्य नवं व्याकरणं वशी**" (कथा सरित्सागर)

४—बादरायण ब्रह्मसूत्रके रचयिता थे यह तो सूत्र प्रामाण्यसे ही सिद्ध है। "**उत्तरं भगवान् बादरायण आचार्यः पठति अनावृत्तिः शब्दादनावृत्तिः शब्दात्**[४]।"

---

१. अष्टाध्यायी ४, ३, ११०। २. आचार्य शंकर गीता १३।४।

३. ब्रह्मसूत्र शांकर भाष्य–हनूमान् षट्शास्त्री भूमिका–वीरमणिप्रसाद उपाध्याय।

४. दी ब्रह्मसूत्राज् आफ बादरायण–वेलवेलकर पृ० १७ पूना।

५—भामतीकारने मंगलाचरणमें वेदव्यासको ब्रह्मसूत्रका कर्ता माना है— '**,ब्रह्म सूत्रकृते तस्मैवेदव्यासाय धीमते ज्ञानशक्त्यावताराय नमो भगवते हरेः**[1]।''

६—मधुसूदन सरस्वती–अद्वैत वेदान्तके प्रधान आचार्योंमें गिने जाते हैं। इन्होंने संक्षेप शारीरकके मंगलाचरण–''**वाग् विस्तारा यस्य वृहत्तरंगा**'' की टीकामें लिखा है कि व्यास विष्णुके अवतार हुए हैं ''**रत्नाकर रूपेण भगवन्तं व्यासं विष्णवतारं सूत्रकारं प्रथम गुरुं स्तौति**[2]।''

७—सुप्रसिद्ध व्याख्याकार विद्वान् ''**आनंद गिरि**'' ने ब्रह्मसूत्रकर्ताके रूपमें वेदव्यासका ही स्मरण किया है–''**श्रीमद् व्यास मुनिः पयोनिधिरसौ सत्सूक्ति पंक्तिस्तुरन्** ।''

८—रत्नप्रभा—टीकाकारने व्यासको सूत्रकार माना है—**श्री शंकरंभाष्य-कृतंप्रणम्य व्यासं हरिं सूत्र कृतं च वच्मि**[3]।''

९—श्रीभाष्यमें–व्यासका नाम ''पाराशर्य'' स्मृत है—''**पाराशर्य वचः सुधामुपनिषद् दुग्धाब्धिमध्योद्धृताम्**[4]।''

१०—तत्वटीकामें–स्पष्ट बादरायण नाम एवं सत्यवती पराशरसे उत्पन्न एवं वदरिकाश्रमवासी लिखकर उन्हें ब्रह्मसूत्रकर्ता माना है—''**द्वीपे वदरिकाश्रमे बादरायणमच्युतम् । अवतीर्णो महायोगी सत्यवत्यांपराशरात् । चकार ब्रह्मसूत्राणि येषांसूत्रत्वमंजसा**[5]।'' एक हस्तलिखित भागवतानुसारि ब्रह्मसूत्र भाष्यमें व्यासका उल्लेख सूत्रकारके रूपमें किया है और भागवतानुसारि भाष्यकारके रूपमें भी, अर्थात् दोनोंको एक रूपमें यहाँ देखा जा सकता है—

श्रीमद्भागवतानुसारि भगवद्भक्तिप्रभाधारि यत् ।
भाष्यं व्यास महामुनेर्विरचितं सूत्रेषु शुद्धिप्रदम् ॥
तत्त्वज्ञानविशुद्धधीभिरमितो विद्वद्भिरुद्वीक्षितम् ।
गोविन्दार्थिषुतत्करोत्यनुदिनं वृन्देषु सौख्यं सताम्[6]॥

''**इति श्रीमद्भागवतानुसारिणी ब्रह्मसूत्रभाष्ये चतुर्थोऽध्यायस्य चतुर्थ पादः** ।'' इसमें व्यास मुनिको ब्रह्मसूत्रोंका कर्ता स्वीकार किया है तथा ब्रह्मसूत्रका भाष्य भागवत पुराणके अनुसार किया है। लेखकका नाम अज्ञात है, किन्तु जीवगोस्वामीके उल्लेखसे इसे गौडीय संप्रदायका भाष्य कहा जा सकता है।

---

१. भामतीमंगलाचरण–वाचस्पतिकृत । २. सारसंग्रह–मधुसूदनसरस्वती ।
३. ब्र० सू० भाष्य रत्नप्रभा–श्लोक ५ । ४. श्रीभाष्य मं० श्लोक २ ।
५. तत्वटीका कलकत्ता संस्करण पृ० ७३ ।
६. भागवतानुसारि भाष्य–श्रीजीकुंज वृन्दावन (हस्तलिखित)

ब्रह्मसूत्रकर्ता और भागवतकर्ताका ऐक्यविचार

कुछ विद्वानोंका कथन है कि ब्रह्मसूत्रकर्ता और पुराणकर्ता व्यास एक नहीं है[1]। गीतामें **"ब्रह्मसूत्रपदैश्चैव"** कहा है, अतः ब्रह्मसूत्रकी रचनाके पश्चात् गीताकी रचना हुई। यह तर्क निर्मूल है क्योंकि पुराणोंमें बहुधा एक दूसरेके नाम हैं।

२—**वेदव्यासश्चैवमेव स्मरति** १, ३२९ 'शांकर भाष्य' **"भावं तु वादरायणोऽस्ति हि"** १, ३, ३३ इस सूत्रके भाष्यमें वादरायण और व्यासका उल्लेख है, यदि एक ही व्यक्तिकी दोनों रचना होती तो दो नाम न आते, भाष्यमें लिखा है—**वादरामणस्त्वाचार्यो भावमधिकारस्य देवादीनामपि मन्यते" मनु व्यास प्रभृतिभिः"** २, १, १२ **'स्मरन्ति च व्यासादयो यथा"** २, ३, ४८ शां० भा० इन उद्धरणोंसे स्पष्ट है कि वेदान्तसूत्र रचयिता और पुराण रचयिता व्यास पृथक्-पृथक् हैं। यदि सूत्रकार और पुराणकार अभिन्न होते तो शंकराचार्य अपने भाष्यमें उनका मत पृथक् उपन्यस्त करते। व्यास कई रहे हैं किन्तु दोनोंका कोई बाधक प्रमाण नहीं है कि 'सूत्रकार' और 'पुराणकार' पृथक् थे।

३—महाभारत रचयितासे सूत्र रचयिता भिन्न हैं। कृष्णद्वैपायन अपान्तर तमस्के अवतार थे। **"तथाहि अपान्तरतम नाम वेदाचार्यः पुरार्णर्षिविष्णु वियोगात्" "कलि द्वापरयोः सन्धौ कृष्णद्वैपायनः संवभूवेति।"** शा० भा० ३, ३, ३२ इसमें अपान्तरतमाको कृष्णद्वैपायन लिखा है। इसमें अनेक कल्पान्तरोंकी बात है अतः कोई निर्णय इससे सम्भव नहीं।

४—**"यावदाधिकारमवस्थितिराधिकारिकाणाम्"** सूत्रमें उपन्यस्त अधिकारिकों के उदाहरणके रूपमें कृष्णद्वैपायन अर्थात् वेदव्यासकी चर्चा आई है। इसमें भी सूत्रकारकी आधिकारिक पद वाच्य वेदव्याससे भिन्नता प्रतीत होती है[2]। वेदव्यासकी चर्चा तो सूत्रोंमें भी है इससे यह कथन ठीक नहीं है कि वे पृथक् थे। अद्वैत वेदान्तके महारथियोंने सर्वत्र वेदव्यास और वादरायण ब्रह्मसूत्रकर्ताका ऐक्य उद्घोषित किया है, यदि पूज्यपाद शंकराचार्यको इनका पार्थक्य अभीष्ट होता तो उनके अनुगामी आचार्य दोनोंको एक मानकर वन्दना न करते। मधुसूदन सरस्वतीने **भगवद्वादरायणः** १, १, ४६ लिखा है। सिद्धान्त विचार ग्रंथमें **"तं व्यासंशेषमथं"** (सि० वि० ग्र० २ श्लो०) **"वादरायणसंज्ञाय मुनये"** (पंचपादिका २ श्लो०) **"तं व्यासं नमत जगत्यपूर्व भानुम्"** (प० प० वि० ४ श्लो०) इनमें वादरायणका अर्थ व्यास किया है।

"यदीय सूत्रविलसच्छास्त्र-नावा-भवाम्बुधिम्।
सन्तस्तरन्ति तं वन्दे पाराशर्यमहर्निशम् ॥"

---

१. **ब्रह्मसूत्र समालोचन डी० लिट्० शोध प्रबन्ध, पृ० ९ डा० रामकृष्ण आचार्य।**
२. **ब्रह्म सूत्रोंके वैष्णव भाष्योंका तुलनात्मक अध्ययन पृ० १३-१७।**

बालकृष्ण सरस्वती अद्वैत पं० र० टीका मंगला० पाराशर्य पद पाणिनिकी अष्टाध्यायीके भी है।

चतुः सम्प्रदाय और व्यास—

दीपनीकारने लिखा है कि स्वयं भागवतका अन्तः साक्ष्य बादरायण और व्यासका एकत्व सिद्ध कर रहा है।

सवै मह्यं महाराज भगवान् बादरायणः।
इमां भागवतीं प्रीतः संहितां वेद सम्मताम्।। भा० १२, ४, ४५

मध्व सम्प्रदायके टीकाकार विजयध्वज अपनी पदरत्नावली नामक भागवत टीकामें स्पष्ट घोषित करते हैं कि व्यासने ही ब्रह्मसूत्रोंका प्रणयन किया और उन्होंने ही भागवत पुराण बनाया—**अथ ......पराशरादवतीर्णो व्यास नामा....शाखोपशाखाभेदेनविभक्त वेदंस्तदर्थनिर्णयेच्छु विरचितब्रह्मसूत्रस्तदनधिकारिजनापवर्गाय प्रकाशितपुराणसंहितां वेदान्तार्थप्रकाशिकां.......भागवत पुराणसंहितां चिकीर्षुः सर्वेष्टदेवतां नारायणाख्याम् अनुस्मरति।** (भा० १, १, १) पराशरसे अवतीर्ण व्यासने शाखा-उपशाखा भेदसे वेदका विभाग करते हुए, उनके अर्थ निर्णयके लिये ब्रह्मसूत्रों की रचना एवं ब्रह्मसूत्रके अनाधिकारी व्यक्तियोंके लाभके लिये वेदान्तार्थप्रकाशिका भागवत संहिता पुराणका प्रणयन किया। स्पष्ट ही ब्रह्मसूत्रोंके अर्थस्वरूपमें भागवतको स्वीकार किया है और ब्रह्मसूत्रोंका सम्बन्ध वेद भागसे सम्बद्ध किया है। फलतः वेद-उपनिषद् ब्रह्मसूत्रोंका स्पष्ट अर्थ श्रीमद्‌भागवत सिद्ध होता है।

जीवगोस्वामी—चैतन्य महाप्रभुके पादानुग श्रीरूपगोस्वामीके भ्रातृ पुत्र श्री जीवने भागवतको ब्रह्मसूत्रोंका अकृत्रि भाष्य माना है—

अर्थोऽयं ब्रह्म सूत्राणां भारतार्थ विनिर्णयः।
गायत्री भाष्यरूपोऽसौ वेदार्थपरिबृंहितः।। क्रम संदर्भ १, १, १

जीवगोस्वामीने एक अन्य तथ्यकी ओर भी ध्यानाकृष्ट किया है। उनका कथन है कि ब्रह्मसूत्रके प्रारम्भमें ब्रह्मस्वरूपका विवेचन **"जन्माद्यस्य यतः"** से है और ब्रह्मकी जिज्ञासा परक प्रश्न है। श्रीमद्‌भागवतमें भी यह ब्रह्मसूत्र है और ब्रह्मका निर्वचन है। श्री विश्वनाथ चक्रवर्तीने **"अथातो ब्रह्म जिज्ञासा"** सूत्रका अर्थ प्रथम श्लोकमें स्वीकार किया है। निम्बार्क सम्प्रदायके टीकाकार श्रीशुकसुधीने वेदान्तके अर्थके लिये भागवत रचनाको स्वीकार किया।

राधामोहन तर्क वाचस्पति भट्टाचार्य[1]—आपका मत है कि वेदव्यास भगवान्‌का अवतार है और यह अवतार भगवान्‌ने ब्रह्मादि देवोंकी प्रार्थनासे द्वापर युगमें लिया था। वेदका विभाग करके महाभारत पुराणोंका प्रणयन किया। हृदयमें

---

१. भाग० टीका १।१।१।

शान्ति प्राप्त न होने पर नारदके उपदेशसे व्यासने भागवतकी रचनाकी यह भागवत-स्वकृत वेदान्त सूत्रोंका व्याख्यान है—**"नारदोपदेशतः श्रीकृष्णगुणवर्णनप्रधानं भागवताख्यं स्वकृत वेदान्त सूत्र व्याख्यानमयं प्रारिप्सुः"** यहाँ स्वकृत वेदान्त सूत्र और भागवतको उसका व्याख्यान लिख देनेके उपरान्त कोई शंकाका स्थान ही नहीं रह जाता।

भागवतमें लिखा है कि—**ततः सप्तदशे जातः सत्यवत्यां पराशरात्।**
चक्रे वेदतरोः शाखा दृष्ट्वा पुंसोऽल्पमेधसः॥ १, ३, २१

भगवान्‌का १७वां अवतार व्यासदेवका अवतार है। इन्होंने वेद वृक्षकी शाखाओंका पल्लवन किया। ब्रह्मसूत्र भी इसी विस्तारमें आते हैं। आचार्य वीर राघवका कथन है कि पराशर सत्यवतीसे उत्पन्न 'बादरायण' नामसे प्रसिद्ध व्यासदेव हुए[1]। जीवगोस्वामी सेई सिद्धान्त स्थापने श्रीमद्‌भागवत केई तिनि ब्रह्मसूत्रेर अकृत्रिम भाष्य वलिया ग्रहण करियाछिलेन[2]" (श्री गोविन्दभाष्येर कथामुख) डाक्टर श्रीकृष्णगोपाल गोस्वामी डी० फिल, १४६ सिद्धान्तकण खण्ड ४।

नारदके उपदेशसे श्रीवेदव्यासने वेदान्तकी व्याख्या भागवतरूपमें की, जिसे व्यासने समाधि भाषामें लिखा। श्रीमहाप्रभुने एवं उनके अनुयायियोंने श्रीमद्‌भागवत को ही एकमात्र ब्रह्मसूत्रका भाष्य स्वीकार किया था और अनुभूति भी की थी। (वेदान्तसूत्र ४ अर्थखण्ड बंगला पृ० १४७) श्रीमद्‌भागवत ही ब्रह्मसूत्रका अकृत्रिम भाष्य है। श्रीमन्महाप्रभु प्रह्मसूत्रेर कोनउ भाष्य प्रणयन करेन नाई कारण तिनि श्रीमद्‌भागवत केइ ब्रह्मसूत्रेय अकृत्रिम भाष्य वलिया मने करितेन" (श्री सीतानाथ गोस्वामी) यादवपुर विश्वविद्यालयीय सं० विभागाध्यक्ष) व्यासका नाम तैत्तरीय आरण्यकमें प्राप्त होता है, इसमें व्यास पाराशर्य नाम मिलता है। पं० अभयकुमार गुहका मत है कि व्यास और वादरायण दोनों एक ही व्यक्तिके नाम हैं। (जीवाव्यन इन दी ब्राह्मण सूत्र ६२) मत्स्य पुराणमें भी व्यासका नाम वादरायण लिखा है। (म० पु० १४, १६) वदर्याश्रममें निवासके कारण इनका नाम वादरायण पड़ा है ऐसा अनेकोंका मत है।

नवीन मत—

डा० रामकृष्ण आचार्यने डी० लिट्० को प्रस्तुत अपने शोध प्रबन्ध ब्रह्मसूत्र समालोचनमें यह लिखा है कि ब्रह्मसूत्रोंके रचयिता वादरायण और महाभारत,

---

१. **भाग० चन्द्र चन्द्रिका १, ३, २१।**

२. **तत्वसन्दर्भ २१—ग्रन्थोऽष्टादशसाहस्रः श्रीमद्‌भागवताभिधः इति ब्रह्मसूत्राणामर्थ-स्तेषामकृत्रिम-भाष्य भूत इत्यर्थः।**

भागवत रचयिता कृष्णद्वैपायन वेदव्यास पृथक् व्यक्ति थे[1]। आपने अपने तर्कका आधार महाभारत और विष्णु पुराणमें बादरायण नामका अनुपलब्ध होना लिखा है[2]। यह ठीक है कि किसीं ग्रन्थमें कोई एक नाम न मिले किन्तु यह प्रमाण नहीं हो सकता, ऐसा होने पर कालिदासके ग्रन्थ जिनमें कि कविने अपना उल्लेख नहीं किया है उसकी कृति न मानी जायेंगी। दूसरी बात यह है कि आचार्यजीने वैष्णव शब्दका उल्लेख अपने शोध प्रबन्धके शीर्षकमें किया है, तब तो आवश्यक हो जाता है कि ब्रह्मसूत्र पर भाष्यकारोंका मत ही सर्वोपरि स्वीकृत किया जाय। वैष्णव सम्प्रदायके किसी भी आचार्यका आपने एक भी प्रमाण ऐसा प्रस्तुत नहीं किया जिससे दोनोंकी भिन्नता सिद्ध हो सके। इसके विपरीत काल निर्धारिण एवं दोनोंके ऐक्यके मैंने जिन प्रमाणोंको प्रस्तुत किया है वे ब्रह्मसूत्र और भागवत रचयिताको एक हीं सिद्ध कर रहे हैं। आचार्यजीका यह कथन कि महाभारतमें बादरायणका उल्लेख नहीं है, यह भी महत्वहीन है। जब व्यास नाम महाभारतमें है, कृष्णद्वैपायन नाम है तथा उनका चरित्र वर्णित है तो बादरायण नामके अनुल्लेखको इतना महत्व क्यों ? महाभारतमें स्पष्ट वेदान्त रचयिता, योगकर्ता आदिके रूपमें द्वैपायनका उल्लेख है—**वेदान्त कर्म योगं च वेदविद ब्रह्मविद्ः। द्वैपायनो निजग्राह शिल्प शास्त्रं भृगुः पुनः।** महाभारत शान्ति पर्व अ० २१२/३४ (दाक्षिणात्य पाठ) उक्त विश्लेषणमें वक्तव्य यह है कि इनका रचनाकाल भी द्वापरका अन्त अर्थात् ५००० वर्ष पूर्व है, बुद्धसे पूर्व "कुछ वर्षों पूर्व नहीं" जैसाकि आचार्यजीने स्वीकार किया है[3]। आचार्यजीने ब्रह्मसूत्रोंकी रचनाको उत्तर सीमा नागार्जुन द्वितीय शताब्दीके पश्चात् स्वीकारी नहीं है।

श्री दयानन्दका मत—यह तो सर्वथा भ्रान्त है क्योंकि स्वामी दयानन्दने तो भागवतकी रचना व्यासकी ही स्वीकार नहीं की। भागवतका रचयिता 'वोपदेव' नामक विद्वान् सिद्ध किया है[4]। किन्तु वोपदेवके पूर्व समयकी भागवत प्रति सरस्वती ग्रन्थागार वाराणसीमें सुरक्षित है अतः उक्त मत अमान्य सिद्ध हो जाने पर उनका मत इस ओर कथमपि प्रामाणिक कोटिमें आता हीं नहीं है। व्यासने ब्रह्मसूत्रोंकी रचनाकी, इसे दयानन्द सरस्वतीने स्वीकार किया है—"जो अठारह पुराणोंके कर्ता व्यासजी होते तो उनमें इतने गपोड़ न होते क्योंकि शारीरिक सूत्र, योगशास्त्रके भाष्य आदि व्यासोक्त ग्रन्थोंके देखनेसे विदित होता है कि व्यासजी बड़े विद्वान्, सत्यवादी, धार्मिक, योगी थे।" (सत्यार्थप्रकाश एकादशमुल्लास पृ० ४१५)

---

१. **ब्र० सू० समालोचन पृ० ६।**

२. **ब्रह्मसूत्रोंके वैष्णव भाष्योंका तुलनात्मक अध्ययन पृ० १३-१७।**

३. **ब्रह्मसूत्रोंके वैष्णव भाष्योंका तुलनात्मक अध्ययन पृ० २६३।**

४. **सत्यार्थ प्रकाश पृष्ठ ४२५।**

बाल गंगाधर तिलकने स्पष्ट लिखा है कि—"ब्रह्मसूत्रोंको 'व्याससूत्र' कहनेकी रीति पड़ गई है। गीताको वर्तमान स्वरूप देने तथा ब्रह्मसूत्रोंकी रचना करनेका काम भी एक बादरायण व्यासजीने ही किया है[१]।" वैष्णवाचार्यों एवं उनके अनुयायियोंने भागवत पर सार गर्भित टीकाएं लिखी हैं और उनका ऐसा दुराग्रह भी नहीं है कि दोनोंको एक व्यक्ति ही स्वीकार किया जाय तथा टीकाकार परस्पर एक दूसरे पक्षका नेत्रनिमीलन पूर्वक अनुमोदन भी नहीं करते, यदि ऐसा होता तो विभिन्न स्थलों पर वे एक दूसरेके मतोंका खण्डन न करते, किन्तु यह स्पष्ट है कि श्रीधर स्वामीके मतका खण्डन बल्लभाचार्य और उनके अनुयायियोंने टीकाओंमें किया है।

रामानुजके मतका खण्डन विजयध्वज आदिकी पदरत्नावली टीकामें द्रष्टव्य है। उक्त पक्षोंका खण्डन मण्डन मैंने अपने पी० एच० डी० के शोध प्रबन्धमें विस्तार से किया है। द्रष्टव्य है[२]। अतः यदि व्यासके उभय कृतित्वमें संशय होता अथवा उन संप्रदायाचार्योंको अभीष्ट न होता तो अनुयायी टीकाकार मुक्त कण्ठसे अपने स्वर दोनोंके ऐक्यमें कदापि प्रस्तुत न करते जैसाकि—वीरराघवाचार्य, आचार्यविजयध्वज सुदर्शन सूरि, बल्लभाचार्य, गिरिधर गोस्वामी, वंशीधर, सनातन गोस्वामी, जीवगोस्वामी, विश्वनाथ चक्रवर्ती, शुकसुधी आदि टीकाकारोंने भागवतारम्भमें किया है। अतः पाश्चात्य और उनसे प्रभावित विचारोंका उक्त टीकाकारोंकी तुलनामें मेरी दृष्टिमें लेशमात्र भी प्रामाण्य नहीं है और उक्त कारणसे मेरी निश्चित धारणा है कि विभिन्न व्यासोंको स्वीकार करते हुए भी ब्रह्मसूत्र रचयिता और भागवत रचयितामें कोई भेद नहीं है वे एक ही हैं।

ब्रह्मसूत्र-रचनाकाल—

ब्रह्मसूत्र ५५० सूत्रोंका स्वल्प कलेवर मात्र है। यह समस्त वेदान्तोंका आकर ग्रन्थ है। जिसकी अपनी दृष्टिसे विस्तृत व्याख्या करके आचार्योंने अपने धार्मिक मतोंकी भव्य-प्रतिष्ठाकी है। रचनाकाल—इन सूत्रोंका उदयकाल प्राचीन है। भिक्षुओं अर्थात् सन्यासियोंके लिए उपादेय होनेके कारण इन्हें भिक्षु सूत्र भी कहते हैं। पाणिनिने जिन पाराशर्य भिक्षु सूत्रोंका नाम निर्देश किया है, वे पराशरके पुत्र महर्षि बादरायण व्यासके द्वारा विरचित ब्रह्मसूत्रोंसे भिन्न प्रतीत नहीं होते[३]। यदि व्यास ही उसके कर्ता हैं तो द्वापर युगका अन्त एवं कलियुगारम्भ अर्थात् (५०००) वर्ष पूर्व इनकी रचना तिथि है जो वेदव्यासकी है।

ब्रह्मसूत्रोंका रचनाकाल विक्रम पूर्व षष्ठ शतमसे उत्तरका नहीं है। ऐसा

---

१. गीता रहस्य पृष्ठ ५४०।

२. भागवतके वैष्णव टीकाकारोंको टीकाओंका विश्लेषणात्मक अध्ययन भा० ४।२।२८

३. भारतीय दर्शन—बलदेव उपाध्याय पृ० ४०६।

आधुनिकोंका मत है। आधुनिक विद्वानोंका मत इन्हें विक्रमके आस पास एक आधार पर मानता है वह है तर्कपाद २, २ में सर्वास्तिवाद और विज्ञानवादका खण्डन मिलना, परन्तु भारतीय विचाराधारामें ये खण्डन बुद्धसे भी अधिक प्राचीन हैं। पार्जिटरका मत है कि व्यासने शाखा प्रवचन भारत युद्धसे एक चौथाई शती पूर्व समाप्त कर दिया था[1]। सीतानाथ प्रधानएा मत है कि व्यासने खाण्डवदाहके पश्चात् वेद संकलन किया[2]। अवघोषका समय ई० पू० सुनिश्चित है। इसने भी व्यासका स्मरण किया है वह लिखता है कि जो काम वसिष्ठ और शक्तिने न किया वह व्यासने किया[3]।

पाश्चात्य विद्वानोंका मत—

ब्रह्मसूत्रोंको अति प्राचीन कालका मानना भारतीय विद्वानोंका पक्ष है। इसके विपरीत पाश्चात्य विद्वानोंकी मान्यता है। उनका कथन है कि ब्रह्मसूत्रोंकी रचना ईसाके ४०० शताब्दी पूर्वसे अधिक नहीं ले जायी जा सकती। प्रसिद्ध समालोचक 'जैकोवी' नामक विद्वान्ने ब्रह्मसूत्रोंकी रचना २५०-४५० शतीके मध्य स्वीकारकी है। (फ्रेजर) नामक विद्वान् जैकोवीसे नितान्त विपरीत ईसासे ४०० वर्ष पूर्व ब्रह्मसूत्रोंकी रचना मानता है। (सिक्ट सिस्टम आभ इण्डियन फिलासफी पृ० ११३)

डा० कीथ[4]—ब्रह्मसूत्रोंको ईसासे २०० शताब्दी पूर्वकी रचना मानता है। श्री अभयकुमार गुहा ने ईसासे ६०० वर्ष पूर्व इनकी रचना स्वीकारी है। श्री दास गुप्ताने–हिस्ट्री आफ इण्डियन फिलासफी पृ० ४१८ में २०० ई० पूर्व ब्रह्मसूत्रोंकी रचना स्वीकारकी है। श्री वेलवकर ने ईसाके पूर्व स्वीकार किया है।(लेक्चर्स आन वेदान्त पृ० १४६) जैकोवी नामक विद्वान्का विचार है कि ब्रह्मसूत्रोंमें सांख्य आदि शास्त्रोंका खण्डन है अतः वे प्राचीन नहीं माने जा सकते, परन्तु यह कथन भ्रममूलक है क्योंकि ब्रह्मसूत्रोंमें तो न्याय वैशेषिक, सौत्रान्तिक योगाचार, माध्यमिक, पाशुपत आदि सभीका उल्लेख है ये सभी प्राचीन हैं। सांख्य भी है तो कपिलदेव कृत सांख्य की चर्चाकी गई है, ईश्वर कृष्ण आदिकी नहीं। इसी प्रकार अन्य पाश्चात्य विद्वानोंके मत भ्रान्त हैं और भारतीय चिन्तन पद्धतिको अर्वाचीन सिद्ध करनेके षड्यंत्रसे प्रभावित हैं। (इन्ट्रोडक्सन टू वेदान्त पृष्ठ ६ श्री विश्वेश्वरानन्द) गोपीनाथ कविराज– अच्युत पृ० २-३।

---

१. प्रा० भा० रो० परंमपरा। २. क्रोनोली आफ एन्सेंट इण्डिया पृ० ६८।

३. युद्ध चरित्र १, ४७ "व्यासस्तथेनं बहुधाचकार न यं वसिष्ठः कृतवान्न शक्तिः।"

4. That Badarayana can not be deted lated than A. O. 200. Indian Scholars are of opinion that the Sutra was composed in the period form 500 to 200 B. C. Fraser asrigns it to 400 B. C. (G. P. P. 433 Vo II)

ब्रह्मसूत्रोंके टीकाकार

नाम	भाष्य	मतवाद
शंकर	शारीरक भाष्य	निर्विशेषाद्वैत
भास्कर	भास्कर	भेदाभेद
रामानुज	श्रीभाष्य	विशिष्टाद्वैत
मध्व	पूर्णप्रज्ञ	द्वैत
निम्बार्क	वेदान्त पारिजात	द्वैताद्वैत
श्रीपति	श्रीकर भाष्य	वीरशैव विशिष्टाद्वैत
वल्लभ	अणु भाष्य	शुद्धा द्वैत
बलदेव विद्याभूषण	गोविन्द भाष्य	अचिन्त्य भेदाभेद

इन भाष्यकारोंने सूत्रोंमें और अधिकरणोंमें भी भेद माना है यथा—

नाम	सूत्र	अधिकरण
शंकर	५५५	१९६
रामानुज	५४५	१६०
माध्व	३६४	२२३
निम्बार्क	५४६	१६१
श्रीकण्ठ	५४४	१८२
वल्लभ	५५४	१७१

१ खण्ड—अध्याय ३

सृष्टिवाद (विविध सर्ग)

ब्रह्मसूत्रके द्वितीय अध्यायके तृतीय पादसे सृष्टिवादका आरम्भ किया है। सृष्टिवादके सम्बन्धमें श्रुतियोंमें परस्पर विरुद्ध वाक्य उपलब्ध होते हैं उनका विरोध परिहार करके एक वाक्यता सिद्धकी गई है। जड़-जीव सब कुछ ब्रह्म है तो सृष्टिवाद पर विचार करना ही व्यर्थ है। **"जन्माद्यस्ययतः"** १, १ २ सूत्रमें ब्रह्मसे ही सबकी उत्पत्ति कही गई है। तब विचार व्यर्थ प्राप्त होता है, किन्तु जड़-जीवमें विरुद्धांश निराकरणके लिए तृतीय पादमें—**"न वियदश्रुते"** २, ३, १ सूत्र प्रारम्भ किया है। वेदान्तमें सृष्टि दो प्रकारकी कही गई है। प्रथम सृष्टिका क्रम **"अग्नि विस्फुलिंगन्याय"** से है अर्थात् जैसे बड़े काष्ठसे छोटी बड़ी चिनगारी निकलती है वैसे ही भूत और भौतिक पदार्थ ब्रह्मसे उत्पन्न हुए[1]। द्वितीय सृष्टिका क्रम यह है कि आकाशादिकी उत्पत्तिसे ही जगत्‌की उत्पत्ति हुई। यहाँ यह भी विचारणीय है कि छान्दोग्योपनिषद् में सृष्टिके क्रमसे तैत्तरीयोपनिषद वर्णित सृष्टि क्रममें पर्याप्त भेद है। छान्दोग्यो०····

---

१. अणु भाष्य २, ३, १।

में सदैव '**सौम्येमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयं**" से उपक्रम करके "**तदैक्षत तत् तेजोऽसृजत्**" से तेजसे सृष्टिका विधान है, ईक्षापूर्वक मुख्य सृष्टि है। तैत्तरीयो० में "**ब्रह्मविदाप्नोतिपरम्**" उपक्रमपूर्वक "**तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः सम्भूतः**" इत्यादिसे आकाशादिकी सृष्टि कही गई है। वैसे दोनोंमें क्रम सृष्टिका कथन है। "**अस्तितु**" ब्र० सू० २, ३, २ तथा "**गौण्यसम्भवात्**" २, ३, ३ तक पूर्वपक्ष प्रस्तुत किया है। तैत्तरीयमें 'वियत् उत्पत्ति' कही है। परन्तु यह ठीक नहीं है क्योंकि लोकमें सावयव की ही उत्पत्ति देखी गई है निरवयवकी नहीं, जबकि आकाश निरवयव है, आकाश विकृत है अतः उसकी उत्पत्ति माननेमें कोई दोष नहीं है। विभिन्नाचार्योंने अपना इस पर मत उपस्थापित किया है[1]।

वायु—एतेन मातरिश्वा व्याख्यातः २, ३, ८ इसके द्वारा वायुकी उत्पत्ति बतलाई गई है।

तेज—तेजो तस्तथाह्याह—२, ३, १० द्वारा तेजकी उत्पत्ति सिद्धकी है। यहाँ शंका थी कि तेजकी उत्पत्ति ब्रह्मासे साक्षात् हुई है या परम्परासे। छा० उ० में तेजकी ही प्रधानता है। तेजोत्पत्तिमें तैत्तरीयो० वाक्य ही अधिक प्रामाणिक है। तेजकी सृष्टि वायु द्वारा ही है।

आपः—वायुसे जलका निर्माण हुआ। **आपः** २, ३, ११ "**तदपोऽसृजत्**" तथा "**अग्नेरापः**" दोनों ही श्रुतियाँ इसकी उत्पत्ति सिद्ध करती है।

पृथिवी—पृथिव्याधिकाररूपशद्वान्तरेभ्यः २, ३, १२ जलसे पृथिवीकी सृष्टि हुई "**अन्नमयं हि सौम्यं मनः**" इस छा० उ० में वर्णित अन्न शब्दसे पृथिवीका ग्रहण ही अभिष्ट है[2]।

छा० उ० में ब्रह्मसे ही पञ्चमहाभूतोंकी सृष्टिका निरूपण है। क्रमसृष्टि जिसका वर्णन ऊपर किया गया है, के अनुसार शंका होती है कि ये आकाशादि स्वतन्त्र है या परमेश्वराधीन हैं "**आकाशाद्वायुः**" कथनसे इनका स्वतन्त्रत्व सिद्ध है परन्तु उनमें ब्रह्म ही व्याप्त है "**बहुस्यां प्रजायेय**" यह श्रुति ही यहाँ नियामक है।

---

१. **क वाचस्पति मिश्र–आकाश काल दिङ्मनः परमाणवो विकाराः।**

ख भास्कराचार्य–अचेतनत्वेसति......पृथिव्यादिवत्। ऐसा अनुमान करते हैं।

ग रामानुजाचार्य–ब्रह्मसे ही आकाशोत्पत्ति मानते हैं।

घ शंकराचार्य–आकाशको अनित्य मानते हैं।

ङ माध्व "भाल्लवेयश्रुति" को उद्धृत करते हैं तथा आकाशका विभाजन मानते हैं।

च भिक्षुने "नित्यानित्य माना है।

२. **अणु भाष्य २, ३, १२।**

तथा ब्रह्मसूत्रमें भी इसे कहा गया है[1]। मु० उ० में विस्फुलिंग न्यायसे युगपत् ही सबकी उत्पत्ति और युगपत् ही सबके प्रलयका निरूपण है। सुवालोपनिषद्में "**सदसद्विलक्षणम्**" का निरूपण है और उसके पश्चात् 'तम' तथा तमसे आकाशादिकी उत्पत्ति वर्णितकी है। प्रलयका क्रम सर्वत्र विपरीत है अर्थात् 'पृथिवी' जलमें 'जल' तेजमें प्रविष्ट हो जाता है। यहाँ प्रलयका वर्णन वैशेषिकादि सिद्धान्तोंकी भाँति ध्वंसरूप नहीं है अपितु प्रवेशरूप है[2]। युगपत् प्रलयोत्तर युगपत् सृष्टि होती है क्रमसे प्रलय होने पर तद्विपरीत क्रमसे सृष्टि होती है। जीवात्मा और मन—इन दोनोंकी उत्पत्ति आकाशादिसे पूर्व ही कही गई है। व्यासने "**अन्तराविज्ञानमनसी**" २, ३, १५ सूत्रमें विज्ञान शब्दसे जीव एवं मनकी उत्पत्ति स्पष्ट रूपसे पृथक् कही है। शरीरका जन्म-मरण होता है, अतः उसके सम्बन्धसे जीवकामी कहा जाता है परन्तु यह लाक्षणिक है। जीवकी उत्पत्ति नहीं है[3] क्योंकि श्रुतिमें "**अयमात्माऽजराऽत्मा**" कहा गया है। जीवात्मा चैतन्यस्वरूप है।

अध्याय—३ **(२) सृष्टि**

प्राण—"**एतस्माज्जायते प्राणः**" इस श्रुति वाक्यसे प्राणोत्पत्ति मन और इन्द्रियोंकी उत्पत्ति निरूपितकी गई है। सृष्टिसे पूर्व प्राणादिकी स्थिति थी[4] ११, इन्द्रियाँ—इन्द्रियाँ भी जीव तुल्य हैं। "**तमुत्क्रमन्तं प्राणोऽनुत्क्रामति प्राणमनूत्क्रमन्तं सर्वेप्राणा अनुत्क्रामन्तीति**" इससे उनकी जीवसमान योग्यता कही गई है तथा "**सप्तगतेर्विशेषितत्वाच्च**" ब्र० सू० २, ४, ५ से उनकी संख्या ७ कही गई है जबकि ११ इन्द्रियाँ हैं। उन अधिक ४ इन्द्रियोंको "**हस्तादयस्तुस्थितेऽतो नैवम्**" २, ४, ६ सूत्रमें रखकर व्याख्याकी गई है। चक्षुरादिकी गणनामें ये चार हस्त, उपस्थ, वायु, पाद, इन्द्रियोंमें ही परिगणित है अतः श्रुतिमें सप्त संख्याका ही विधान है, इन्हें जोड़ने पर ११ संख्या हो जाती है। इसका प्रमाण गीताके इस वचनसे है—"**ब्रह्मसूत्रपदैश्चैव**[5]" ब्रह्म सूत्रकारका नाम लेकर "**इन्द्रियाणिदशैकंच**" कहा गया है और ११ संख्याका प्रतिपादन किया है। मध्वाचार्यने द्वादश प्राणोंको स्वीकार किया है किन्तु इन्द्रियाँ कितनी हैं वे इसे नहीं लिखते[6]।

प्राण परिमाण—प्राणोंका परिणाम भी अणुरूप है[7]। मुख्य प्राण नित्यगतिमान है "अणु परिमाण" है[8]। प्राण और वायु दोनों भिन्न हैं "**प्राणोमनः सर्वेन्द्रियाणिच एवं वायुः**" इस प्रमाण द्वारा यह मत पुष्ट है क्योंकि यहाँ प्राणमन और इन्द्रियोंके

१. ब्र० सू० २, ३, १३
२. सप्रकाश० अणु० २, ३, १४।
३. २, ३, १७ नात्माऽश्रुतेः।
४. अणुभाष्य २, ४, ३।
५. गीता १३, ४।
६. अणुभाष्य २, ४, ६।
७. ब्र० सू० २, ४, ७ 'अणवश्च'
८. ब्र० सू० २, ४, ८ श्रेष्ठाश्च।

साथ वायु शब्द पठित है अतः प्राण और वायुमें भेद है[1]। चक्षु आदि इन्द्रियोंकी भाँति यह प्राण भी स्वतन्त्र नहीं है भगवान्के आधीन है । व्यवहार दशामें प्राण जीवाधीन है[2]। इस पादमें भूत-भौतिक सृष्टिका रचयिता ब्रह्म ही सिद्ध किया है । नामरूप व्याकरण भी परमेश्वरसे है, इसे भी "संज्ञामूर्ति" ब्र० सू० २, ४, २० में सिद्ध किया है । छा० उ० में त्रिवृत् करण श्रुतिमें लिखा है **"नामरूपेव्याकरवाणीति"** अतः त्रिवृत्कर्ता परमेश्वर ही है । सृष्टिका बड़ा ही विलक्षण क्रम उपनिषदोंमें प्राप्त होता है । कहीं **"एतस्माज्जायते प्राणः"** इत्यादिसे प्राण-मन-इन्द्रियोंकी उत्पत्ति कह कर आकाशादि भूतोंकी उत्पत्ति कही है[3]। कहीं प्राण-भूत-इन्द्रिय-मन-अन्नका वर्णन है[4]। कहीं प्राण-लोक-देव-भूतोंका वर्णन है[5]। कहीं लोक और लोकपालोंका वर्णन है[6]। कहीं पहले १० इन्द्रिय, मन, तेज, अहंकार, प्राण, बुद्धि, तन्मात्राके पश्चात् भूतोंकी सृष्टिका वर्णन है[7]। तैत्तरीयो० में आकाशादि क्रमसे सूक्ष्म भूतोंकी उत्पत्ति वर्णित है। भूत शब्दसे ५ तन्मात्राओंका निरूपण है ।

सृष्टि कारणवाद—सृष्टि क्यों हुई ? इस प्रश्नका एक ही उत्तर है कि "ईश्वर ने इच्छाकी कि मैं अनेक हो जाऊं" ईश्वरने क्यों इच्छाकी, इसका कोई समुचित समाधान नहीं है । **"धाता यथापूर्वमकल्पयत"** इत्यादि श्रुतियाँ उसकी रचना नित्यताकी ही प्रतिपादिका हैं । सृष्टि बनाई किसने इस पर विभिन्न वाद हैं । सांख्यशास्त्रके आचार्य सृष्टिका मूल तत्त्व प्रकृतिको ही मानते हैं किन्तु मनुने प्रधानको कारण नहीं माना, पातञ्जल शास्त्र भी प्रकृतिको स्वतन्त्र मानता है अतः उसका भी समाधान उक्त कथनसे हो गया[8]। जगत् जड़ है, परमात्मा चेतन है[9]। चेतन व्यक्तियोंसे नख-लोम आदि जड़ वस्तुओंकी उत्पत्तिका वर्णन वेदमें भी उपलब्ध है एवं प्रत्यक्ष भी देखा गया है यह बात मुण्डक उप० में कही गयी है । **"यथा सतः पुरुषात् केश लोमानितथाक्षरात् संभवतीहविश्वम्"** मु० १, १, ७ अविनाशी पुरुषसे जगत् वैसे ही उत्पन्न होता है जैसे पुरुषसे नख-लोम आदि उत्पन्न होते हैं । अतः ब्रह्मको जगत्का कारण मानना युक्तियुक्त ही है ।

जगत्

शंकराचार्यके अनुसार सम्पूर्ण जगत् ब्रह्मका विवर्त है, माया शक्तिमान् ब्रह्म ही जगत्रूपमें अवभासित है । मायोपहित ब्रह्म या ईश्वर ही इस जगत्का रचयिता

---

१. ब्र० सू० २, ४, ९ 'न वायुक्रिये'
२. अणुभाष्य २, ४, १० ।
३. मु० उ० २, ३ ।
४. प्र० उ० २, २ ।
५. बृह० उ० २, १, ५ ।
६. ऐत० उ० ।
७. महोप०
८. एतेनयोगः प्रयुक्तः २, १, ३ ।
९. तै० उ० २, १ ।

है। 'ईश्वर' कारण है और 'जगत्' उसका कार्य है। व्यावहारिक दृष्टिसे जगत्की सत्ता नहीं है। 'जगत्' नामकी कोई वस्तु नहीं है। **रामानुजाचार्य** का कथन है कि जगत् ब्रह्मका स्थूल शरीर है। स्थूल, सूक्ष्म, चिदचित् 'ब्रह्म' का शरीर है। प्रलय कालमें ब्रह्मके सूक्ष्म शरीरमें यह स्थूल रूप समाविष्ट हो जाता है, ब्रह्म ही जगत्का निमित्त कारण और उपादान कारण है। मध्वाचार्यका कथन है—यह जगत् सत्य है एवं विष्णु भगवान्के वशमें है। जगत्की सृष्टि ईश्वरके ईक्षण द्वारा हुई है। आचार्य विष्णुस्वामीका कथन है कि जगत् ब्रह्मका कार्य है। सर्व कारण ब्रह्म जैसे सत्य और नित्य है, ऐसे ही जगत् भी सत्य और नित्य है। घट-शराब आदि बननेके पूर्व अव्यक्तरूपमें मिट्टीमें रहते हैं ऐसे ही जगत् भी ब्रह्ममें रहता है। 'जगत्' परमेश्वर का विकार नहीं है। निम्बार्काचार्यका मत है कि 'जगत्' कार्य है और 'ब्रह्म' उसका कारण है। ब्रह्म शक्तिवान् है जगत् उसकी शक्ति है। 'ब्रह्म' चेतन है, 'जगत्' अचेतन है, फलतः ब्रह्म और जगत्में स्वाभाविक भेद और दोनोंका स्वाभाविक अभेद भी है। जगत्-सृष्टिके पूर्व सूक्ष्म शक्तिमें और सृष्टिकालमें वास्तव परिणामरूपमें नित्य सत्य है। श्री वल्लभाचार्यके अनुसार—'जगत्' भगवान्का कार्य है। भगवानकी माया शक्ति द्वारा रचा गया है। 'ब्रह्म' जगत्का उपादान कारण और निमित्त कारण भी है। सृष्टिसे पूर्व जगद्रूप कार्य सर्वकारण ब्रह्ममें विद्यमान रहता है। 'जगत्' प्रवाहकी भाँति गमनशील है। चैतन्यके अनुसार—

अविचिन्त्य शक्ति युक्त श्री भगवान्। इच्छाय जगत् रूपे पाप परिणाम।
नाना रत्न राशि हय चिन्तामणि हेते। तथापि ह मणि रहे स्वरूपे अविकृत॥

(चै० च० अ ७ परि०)

श्री बलदेव विद्याभूषण का मत यह है कि सत्यस्वरूप ईश्वरका शक्ति निबंधन 'जगत्' सत्य है। जगत् ब्रह्माधीन है। जगत्का निमित्त और उपादान कारणत्व ब्रह्मका पारमार्थिक है। 'परा' नामक शक्ति रूपमें वह निमित्त कारण है। परमात्माके अन्तरालमें सूक्ष्म भावमें स्थूल जगत्का कारण विद्यमान है।

माया या शक्तितत्व

आचार्य शंकरका कथन है कि माया अनिर्वाच्य है, वह सत् है न असत्। श्रौत दृष्टिसे 'माया' तुच्छ है किन्तु युक्ति द्वारा देखनेसे 'अनिर्वचनीय है। यह 'माया' जगत्की बीज शक्ति है, परमेश्वरके अधीन है। सगुण ब्रह्म अथवा ईश्वर ही अचिन्त्य, अनन्त शक्तिमान् है, ईश्वरका शक्ति समूह अतर्क्य है। श्रीरामानुजाचार्यके अनुसार– 'माया' परब्रह्मकी ही शक्ति है, वह त्रिगुणात्मिका है। परमेश्वर 'मायाशक्ति' द्वारा 'जगत्' की सृष्टि करता है। परब्रह्मकी 'शक्ति' सनातन एवं स्वाभाविक और शक्तिस्वरूपानुबन्धिनी है। श्रीमध्वाचार्यके मतसे—श्री हरिकी शक्ति–मुख्य रूपसे

'माया' अमुख्य रूपसे 'प्रकृति' है। 'माया' त्रिगुणात्मिका है। विष्णुकी वशीभूता प्रकृति ही 'शक्ति' है। यद्यपि सबको वन्धनमें डालने वाली प्रकृति है तथापि विशेष रूपसे श्री प्रकृति देवगणको वन्धन देती है, भू प्रकृति मनुष्यगणको, दुर्गा प्रकृति दैत्यगणको वन्धन प्रदान करती है। आचार्य विष्णुस्वामीका कथन है कि—'माया' ईश्वरके अधीन है। जीवको पीड़ित करती है अतः इसे अविद्या कहा जाता है। ईश्वर सच्चिदानन्द एवं ल्हादिनी और संवित् शक्ति द्वारा आश्लिष्ट है। आचार्य 'निम्बादित्य' के अनुसार—'माया' प्रधानादि पदवाच्य एवं त्रिगुणमयी है। परब्रह्म की असंख्य शक्ति समूहके मध्य चित् और अचित् दो शक्ति हैं। चित् शक्ति द्वारा भगवान् 'जीव' को एवं अचित्शक्ति द्वारा 'जगत्' को रचते हैं। श्रीवल्लभाचार्यके अनुसार—माया परब्रह्मकी शक्ति है, वह जीवको मोहित करती है। आच्छादिका है। भगवान्की १२ मुख्य शक्ति हैं—श्री, पुष्टि, गीः, कान्ति, कीर्ति, तुष्टि, इला, ऊर्जा, विद्या, अविद्या, इच्छा शक्ति और माया। कृष्णदास कविराजके अनुसार—

माया द्वारे सृजें तेहां ब्रह्माण्डेरगण।
जड़ रूपा प्रकृति न हे ब्रह्माण्डेरकारण ॥ (चै० च० म० २० प०)
कृष्णेर स्वाभाविक तिन शक्ति परिणति।
चिच्छक्ति जीव शक्ति आर माया शक्ति ॥ (चै० च० म० २० प०)

श्रीवलदेव विद्याभूषणका कथन है कि सत्व-रज और तमकी साम्यावस्थाका नाम प्रकृति है। इसके तम-माया नाम हैं। यह ईश्वरके ईक्षण मात्रसे उत्पन्न होती है और विचित्र जगत्को उत्पन्न करती है। परमेश्वरकी शक्ति माया सत्य है यह अनिर्वाच्य नहीं है। जीव, प्रकृति, काल और कर्म ये चार ब्रह्मकी शक्तिहैं। हरिकी परा, अपरा और अविद्यानामक तीन शक्ति हैं। परा शक्तिके संवित्, सन्धिनी और ल्हादिनी नाम हैं।

उपनिषदों और ब्रह्मसूत्रोंमें प्रतिपादित साधना एवं मुक्ति, कर्मका स्वरूप

कर्मनिष्ठाका दर्शन **"कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः[1]"** मन्त्रमें स्पष्ट है कि 'ज्ञाननिष्ठा' अत्यन्त क्लिष्ट है, प्रत्येक प्राणीके लिये वह सुलभ नहीं है। कर्म, अज्ञानी और सकाम पुरुषके लिये ही हैं, बृहदारण्यकमें ऐसा लिखा आता है "उसने इच्छाकी कि मेरे पत्नी हो।" अन्य स्थल पर आता है कि मन ही इसकी आत्मा है, वाणी स्त्री है" इस वचनसे भी कर्मनिष्ठका अज्ञानी और सकाम होना निश्चित रूपसे जाना जाता है। उसीका बल सप्तान्न सर्ग है। अन्नसृष्टि सात प्रकार की है। ब्रीहियव आदि मनुष्यके अन्न हैं, हुत और प्रहुत ये देवताओंके अन्न हैं, मन-वाणी और प्राण ये आत्माके अन्न हैं तथा दुग्ध पशुओंका अन्न है इनमें आत्म भावना

---

१. ईशोप० ८ कर्मकी परिभाषा—कर्म भूति च क्रियमाणेन्द्रियैः।

करनेसे ही आत्माकी (अनात्म रूपसे) स्थिति है। बृहदारण्यकमें "**किं प्रजया करिष्यामो**" से पुत्रादि ऐषणात्रयके त्यागपूर्वक कर्मनिष्ठाके विरुद्ध आत्मस्वरूपमें स्थित होना ही दिखलाया है। कर्मको अविद्या कहा गया है—"**अन्धन्तमः प्रविशन्ति येऽविद्यामुपासते**[1]" अर्थात् जो अविद्या (कर्म) की उपासना करते हैं वे अविद्यारूप घोर अन्धकारमें प्रवेश करते हैं और जो विद्या (उपासना) में ही रत हैं वे मानो उससे भी अधिक अन्धकारमें प्रवेश करते हैं। कर्ममें और ज्ञानमें जो निन्दाकी गई है वह उपासनाके समुच्चयसे है।

"**कर्मणापितृलोकः**" बृह० उ० १, ५, १६ में स्पष्ट ही कर्मसे पितृलोक प्राप्तिका उल्लेख है। कर्मको आत्मज्ञानके विरुद्ध मानकर ही उसकी निन्दाकी गई है वैसे नहीं, और जो केवल देवता ज्ञानमें ही अनुरक्त हैं वे कर्मका भी परित्याग कर दिये हैं, वे अन्धकारसे भी अधिक अन्धकारमें हैं। देवता ज्ञानसे फल प्राप्ति कुछ और होती है तथा कर्म द्वारा कुछ और—

अन्यदेवाहुर्विद्ययान्यदाहुरविद्यया ।
इति शुश्रुम धीराणां ये नस्तद्विचचक्षिरे[2]**॥**

जिन आचार्योंने हमसे उस कर्म तथा ज्ञानका विज्ञान किया था अर्थात् उनकी व्याख्याकी थी, कहाकि "जो विद्या और अविद्या इन दोनोंको ही एक साथ जानता है वह अविद्यासे मृत्युको पार करके विद्यासे अमरत्व प्राप्तकर लेता है।" अग्निहोत्रादि कर्मसे मृत्यु यानी 'मृत्यु' शब्द वाच्य स्वाभाविक (व्यावहारिक) कर्म और ज्ञान इन दोनों को तरकर पार करके विद्या अर्थात् देवता ज्ञानसे अमृत यानी देवात्मभाव को प्राप्त होना ही अमृत कहा जाता है। कर्मफल भोगनेके लिए अनेक स्थलोंमें स्तवन है हे अग्ने हमें कर्म फल भोगके लिए सन्मार्गसे ले चलो। '**अग्नेनय सुपथा**[3]" धन प्राप्ति के लिये इस श्रुतिमें 'राये' का प्रयोग है।

कर्म फल ईश्वराधीन है—

कभी-कभी बिना कुछ किये मनसातीत वस्तुकी उपलब्धिको देखकर चकित होना पड़ता है और कभी सब कुछ कर्म पूर्ण करनेके उपरान्त भी उसका फल प्राप्त नहीं होता। इन प्रश्नोंका समाधान बिना ईश्वरकी कृपाके सुलभ नहीं है। कभी-कभी मनमें ऐसा आता है कि किये जाने वाले कर्मोंका फल तुरन्त ही सामने आ जाय तो ईश्वर है, नहींतो नहीं। परन्तु यह असंगत है। अनन्त कर्माशयकी बात

---

१. ईशोप० ६ "**कर्माण्यहं करोमीत्यध्यात्मनिष्ठत या कृतं कर्मैवकर्म**" **इन्द्रियों द्वाराकी जाने वाली क्रियाऐं, जिसे मैं करता हूँ इस प्रकारकी अध्यात्म निष्ठासे किया गया हो उसका नाम कर्म है।"**

२. ईशोप० १०। ३. ईशो० १८।

सहसा समझमें नहीं आती । जब यह विचार किया जाता है कि किया हुआ 'कर्मफल' कभी नष्ट नहीं होता तो यह विचार करना पड़ता है कि इसके मध्य ईश्वरका अस्तित्व व्यर्थ है । परन्तु इस संशयका उच्छेद तब हो जाता है जब ज्ञानकी प्राप्ति होती है—कि 'जड़कर्म' चेतनाश्रयके बिना स्वेच्छासे फल नहीं देते । यदि कर्मोंमें इस प्रकारकी चेतना शक्ति होती तो सम्भवतः ईश्वरकी आवश्यकता न रहती । 'कर्म' स्वयं ही एक दूसरा ईश्वर बन बैठता । जीवात्माके अधीन कर्म करना, उलटा करना आदि है, फल भोगनेमें वह परतन्त्र है अतः वेदोंमें कहा है—"**कुर्वन्नेवेह कर्माणि**" ईशो० ।

हे मनुष्य ! शुभ कर्मोंको करते हुए फलकी इच्छा छोड़कर सौ वर्ष तक जीनेका प्रयत्न कर, इससे तुझको कर्म न सतायेंगे । पतञ्जलिने इस ओर ध्यानाकृष्ट करते हुए लिखा है—"**समानमीहमानानां चाधीयानानां च केचिदर्थैर्युज्यन्ते अपरे न तत्राऽस्माभिः किं कर्तव्यम्**[1]" छात्रोंमें समानरूपसे पढ़ने वालोंमें कुछ तो उस अर्थको प्राप्त कर लेते हैं दूसरे बुद्धू रह जाते हैं । कोई नाममात्र फल पाता है कोई बहुत कुछ न करके भी न जाने, बैठे-बैठे फल पा जाता है । कोई जन्मसे ही राजपुत्र कोई जन्मसे ही दरिद्रनारायण कोई जन्मसे ही कवि, गायक, कलाकार, कोई जड़ होता है । यह आर्थिक बौद्धिक और अन्य प्रकारकी विषमताएं क्यों हैं, इनका एक ही उत्तर है "कर्मफल ।" कोई ऐसी अदृश्य शक्ति पीछे अवश्य है जो कर्म सूत्रोंको हाथमें लेकर प्राणियोंको स्वेच्छापूर्वक कठपुतलीकी तरह नचाती रहती है[2]।

न्यायशास्त्रमें इस पर स्पष्ट आलोचना है, पुरुष जो प्रयत्न करता है यह आवश्यक नहीं उसका फल अवश्य ही पावे । इससे ज्ञात होता है कि फल ईश्वराधीन है "**ईश्वरः कारणं पुरुष कर्माफल्यदर्शनात्**[3]।" इस पूर्वपक्षका उत्तर देते हुए कहा गया है कि—"**न पुरुष कर्मा भावे फल निष्पत्तेः**[4]" यदि फल ईश्वराधीन है तो फिर पुरुष को बिना कर्म किये ही फल क्यों नहीं मिल जाता और सिद्धान्त० में कहा गया है कि ईश्वरके अनुग्रहसे उसे फल मिलता है—"**तत्कारितत्वादहेतुः**[5]" अतः बिना कर्मके ईश्वर फल दे यह बात युक्ति-युक्ति नहीं है ।

कर्म—६

इसी कर्मके प्रारब्ध, संचित और क्रियमाण भेद हैं । किसीने खेत तैयार किया, पकने पर कोई काटकर ले गया और बोने वाला स्वयं मर गया । यहाँ दूसरोंका ले

---

१. महाभाष्य पस्पशान्हिक ।

२. कर्मफल ईश्वराधीन ले० नरदेव प्रभ पृ० ४४४ कल्याण, ईश्वरांक ।

३. न्याय दर्शन ४, १६ । **४. न्याय दर्शन ४, २० ।**

५. न्याय दर्शन ४, २१ ।

जाना, स्वयंका परिश्रम करके मरजाना आदि सब कुछ्र कर्म पर आश्रित है। यह कर्मवाद बड़ा ही गहन है तभी भगवान्‌को भी कहना पड़ा **"गहनाकर्मणोगतिः।"** शास्त्रकारोंने जो धर्म-अधर्मके फल हैं उन्हें अदृष्ट कहा है जो सत्य ही है। कार्यकी सफलतामें गीतामें ५ बातें कही गई हैं। १. अधिष्ठान–अर्थात् स्थान, २. कर्ता–करने वाला, ३. कारण–उपकरण (साधन), ४. चेष्टा–प्रयत्न, ५. दैव–परमेश्वर।

इन पाँचोंमें से एक भी न रहे तो कार्य विफल हो जाता है। प्रथम चारके विद्यमान रहने पर पाँचवेंके अविद्यमान रहने पर भी चारों विफल हो जाते हैं। अतः गीताने निष्काम भावसे ही कर्म करने पर बल दिया है। उपनिषदोंमें कर्मका ही अन्तःकरणकी शुद्धि एवं परमपुरुषार्थकी प्राप्तिके साधनके रूपमें विधान किया है। इस पुरुषार्थको मुक्ति कहें या कल्याण या निर्वाण। विश्वके समस्त ग्रंथोंमें एकमात्र उपनिषदोंने और इसकी सारभूत राशि गीताने कर्मयोगका प्रतिपादन किया है। धर्म बुरा नहीं है, कर्ममें और कर्मफलमें आसक्ति तथा फलकी कामना ही जिस फलकी कामना है। जिस फलको प्राप्त करनेके लिए मनुष्यमात्र लालायित रहता है, दोषका कारण है। मुण्डकोपनिषद्‌में लिखा है कि जो अग्निहोत्र कर्म करता है उसे वे आहुतियाँ सूर्यकी रश्मियोंके साथ मिलकर वहाँ ले जाती हैं जहाँ देवताओंका एक पति सबसे ऊपर विराजता है। इसमें यह भी लिखा है कि वैदिक कर्मकाण्ड सच्चा अर्थात् अव्यय फलप्रद है। **''तदेतत् सत्यं मन्त्रेषु कर्माणि कवयो यान्यपश्यन्।'' प्रथमतः** मंत्र प्रकट हुए, मन्त्रोंके साथ वैदिक कर्म करनेकी विधियाँ ब्राह्मण ग्रन्थोंमें समाविष्ट हुईं।

कठोपनिषद्‌में यमराजके द्वार पर एक नचिकेता नामक ऋषिका उपाख्यान आता है। इसमें यह लिखा है कि "एक ऋषि नचिकेताने यमराजके द्वार पर तीन रात्री व्यतीत कीं। तब यमराजने नचिकेतासे पूछा तुम क्यों यहाँ ठहरे हो? और कैसे यहाँ आ गये? नचिकेताने कहा—मैंने अपने पिताजीको गोदानके समय रोककर पूछा कि आप ऐसी दुर्बल गायोंको जिनमें प्राण भी शेष नहीं हैं दान देकर कौन-सा पुण्य प्राप्त करलोगे।" उपनिषदोंका कर्म योग संग्राममें जूझने वाले सैनिकके लिये ही नहीं अपितु प्रत्येक नर-नारीके लिए जिस किसी परिस्थितिमें वह हो जीवनभर साधन करनेका है। निष्काम कर्म हमारे राष्ट्रका प्राण बन जाना चाहिये और जब तक हमारे शरीरमें यह प्राण रहेगा तब तक हमारी मृत्यु नहीं हो सकती। कर्म ही आध्यात्मिक उन्नतिका सर्वश्रेष्ठ साधन है। वैदिक कर्मकाण्डके अनुसार स्वर्गकी प्राप्ति कर्मके द्वारा ही होती है। **"तद्येह वै तदिष्टापूर्ते कृतम्‌·········इत्युपासते ते चान्द्रमसमेव लोकमभिजयन्ते"** ऐसा प्रश्नोपनिषद्‌में है। यहाँ कर्मका अर्थ यज्ञ करना है वापी-कूप-तडाग आदिका निर्माण कराना है। उद्दालक ऋषिने अपने पुत्रके द्वारा जब अपना अपमान देखा तो उन्होंने उसे यमलोक भेज दिया।

नचिकेताने कहा कि मैं आपसे कल्याणका मार्ग पूछना चाहता हूँ तो यमने उसे सबसे पहिले कर्म करनेकी प्रेरणा दी, यज्ञोंका विधान बतलाया। तैत्तरीय उपनिषद्में लिखा है—"**देव पितृकार्याभ्यां न प्रमदितव्यम्**" देव और पितरोंके लिये यज्ञ करनेमें कभी प्रमाद न करना। मुण्डकोपनिषद्में लिखा है कि "**तेषामेवैतां ब्रह्म विद्यां वदेत शिरो व्रतं विधिवद्यैस्तु चीर्णम्**" ब्रह्मविद्याका अधिकार वैदिक कर्मको विधिपूर्वक पालन करनेसे ही है। मोक्ष चाहने वालेको भी कर्म करनेकी प्रेरणा दी गई है। उपनिषदोंमें कहा है कि उठो, जागो—"**उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत**" कठोप० १४ अर्थात् हे मनुष्यों! तुम जन्मान्तरसे अज्ञान निद्रामें सो रहे हो। परमात्माकी कृपासे तुम्हें यह दुर्लभ शरीर प्राप्त हुआ है इसे पाकर अब एक क्षण भी प्रमाद न करो। "**कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविशेच्छतं समाः**" ईशो० २ कर्म करते हुए ही सैकड़ों वर्ष जीओ। जीवन ही सब कुछ है और मरनेके बाद कुछ नहीं है, इसलिये इस प्रकारके कर्म करो जिससे तुम्हारा जीवन, जो कि पृथिव्यादि जड़तत्वोंके समुदायमें बहुत समय तक रहे उपनिषदोंके उपदेश कर्मकी महत्ताके सूचक हैं यथा "**सत्यं वद, धर्मं चर, सत्यान्न प्रमदितव्यम्, धर्मान्न प्रमदितव्यम्**" अर्थात् कर्म करो और यदि कर्ममें कहीं तुम्हें शंका हो तो जो विद्वान् ब्राह्मण हों उनसे समाधान प्राप्त करो। कर्ममें सदा लगे रहो "**चरैन्वेति-चरैन्वेति**" वाक्य भी हमें निरन्तर कर्म करनेकी ओर उन्मुख कर रहा है और उपनिषदोंके सारभूत गीतामें भी कर्मयोगका महत्वपूर्ण स्थान है अतः उपनिषदोंके स्थान पर चलनेके लिये हम अच्छे कर्म करें।

कर्म करनेमें आत्मा स्वतन्त्र है। उपनिषदोंमें इसे स्पष्ट घोषित किया है। बृहदारण्यकमें लिखा है यह पुरुष काममय है, जैसी उनकी इच्छा है वैसा ही उसका क्रतु (संकल्प) होता है तथा संकल्पके अनुसार ही वह कर्म करता है[1]। कोषीतकि (३, ८) ने भी कर्म करनेकी अस्वतन्त्रताका वर्णन किया है। संकल्प मात्रसे प्रत्येक वस्तु मनुष्यको प्राप्त हो सकती है[2]। मुक्तिकोपनिषद्में पुरुषार्थ पर अत्यधिक बल दिया है[3]। वासनारूपी नदी दोनों ओर बहती है। शुभ मार्ग पर अशुभ मार्ग, दोनों ही उसके पथ हैं। मनुष्यको चाहिए कि वह अशुभमें लगी वासनाको शुभकी ओर ले जाय।

शुभाऽशुभाभ्यां मार्गाभ्यां वहन्ती वासना सरित्।
पौरुषेण प्रयत्नेन योजनीया शुभे पथि[4]॥

---

१. ......"**काममय एवायं पुरुषः। स यथाकामो भवति तत्क्रतुर्भवति यत्क्रतुर्भवति तत् कर्म कुरुते तदभिसंपद्यते।" बृह० उप० ४, ४, ५।**

२. छा० उप० ८, २, १०।   ३. मुक्तिको० ८, ५, ६।

४. भारतीयदर्शन—बलदेव उपाध्याय पृ० ६२।

इस कर्मके प्रतिपादनमें व्यवहारकी उपयोगिता है। उपनिषदोंमें उन्नत आध्यात्मिक पथ पर आरूढ़ होनेके लिये सद्गुणोंका सद्भाव परम आवश्यक माना है। बृह० उप० में एक सुन्दर कथानक द्वारा आत्मसंयम, दान तथा दयाकी शिक्षा दी है[1]। छा० उप० में तपस्या, दान, आर्जव, अहिंसा, सत्य वचनको आध्यात्मिक उन्नतिमें साधन बतलाया है[2]। तैत्तरीयमें समावर्तनके समय स्नातकको बड़ी सुन्दर शिक्षाऐं दी हैं[3]। इन शिक्षाओंमें माता-पिता तथा गुरुकी सेवा, स्वाध्यायचिन्तन तथा धर्माचरणका महत्वपूर्ण स्थान है। परन्तु 'सत्यंवद' को समस्त उपदेशोंमें विशिष्ट गौरव प्राप्त है। छा० उप० में सत्यकाम जावालकी कथामें सत्यकी शिक्षा पर अत्यधिक बल दिया है[4]। प्रश्नोपनिषद्में अनृत-भाषणकी निन्दाकी गई है—"जो मिथ्या भाषण करता है वह समूल नष्ट हो जाता है। **"समूलो वा एष परिशुष्यति योऽनृतं वदति"** प्रश्न ६, १। मुण्डकोपनिषद्में सत्यकी प्रशंसा है—**"सत्यमेव जयते नानृतं, सत्येनपन्था विततो देवयानः"** मु० उप० ३, १, ६। सत्यके अनन्तरही शम-दम-उपरति तितिक्षा तथा समाधानकी प्राप्ति भी उतनी आवश्यक मानी गई है। ज्ञान साधनके मूलभूत गुण विवेक और वैराग्य हैं। ब्रह्मप्राप्तिकी ओर जीवका अग्रसर होना सत्यासत्य विवेचन द्वारा ही है[5]। वैराग्यके अभावमें श्रेय मार्ग और प्रेय मार्गका निर्धारण सम्भव नहीं है। मुण्डकोप० में इन गुणोंका महत्व घोषित किया है[6]। कर्मके द्वारा प्राप्त लोक नाशवान् है, इसे जानकर ब्राह्मणके हृदयमें निर्वेद-वैराग्य उत्पन्न होता है और विवेक ही उसकी बुद्धिको निश्चिन्त धरातल पर पहुँचाता है कि कृत (कर्म) के द्वारा अकृत (ब्रह्म) की उपलब्धि हो नहीं सकती। अतः कर्मज्ञान परमावश्यक माना गया है।

ज्ञानका स्वरूप

यद्यपि वेदका एक भाग 'कर्मकाण्ड' भी है; किन्तु उससे आत्माकी नित्यता निरतिशयता, आनन्दमयता, प्रकाशमय, सर्वात्मरूपता आदिका ज्ञान नहीं हो सकता। आत्माकी सर्वात्मता और एकताका प्रतिपादन कर्मकाण्डके विरुद्ध भी पड़ता है। अतः आत्माके एकत्वका प्रतिपादन करना, भेदको औपाधिक बतलाना, जीवात्मा परमात्मा में अभेद बतलाना आदि उपनिषदोंका कार्य है विशेषतः ईशोपनिषद्से लेकर कैवल्य पर्यन्त द्वादश उपनिषदोंका यही परम तात्पर्य है। आचार्य शंकरने लिखा है—**"एकरसं ब्रह्मेति विज्ञानं सर्वस्यामुपनिषदि प्रतिपिपादयिषितोऽर्थः**[7]**"** माण्डूक्योपनिषद्में

१. बृ० उ० ५, २, १-३। २. छा० उप० ३, १७, ४।
३. तैत्त० उप० १, २, १-३। ४. छा० उप० ४, ४, १-५।
५. बृह० उप० ४, ४, २३। ६. मुण्डक १, २, १२।
७. बृहदा० १, ४, १० शांकर भाष्य।

भी ऐसा लिखा है[१]—,'**इष्यते च सर्वोपनिषदां सर्वात्मैक्य प्रतिपादकत्वम्** ।" जो सब भूतोंको आत्मामें देखता है तथा सब भूतोंमें आत्माको ही देखता है किसीसे घृणा नहीं करता[२]। केनो० में कहा है कि जो वाणीके द्वारा अभिव्यक्त नहीं होता वह एक सबको अपने वशमें रखता है[३]—"**एकोवशी सर्वभूतान्तरात्मा एकं रूपं बहुधा यः करोति**[४]।" कठ० जो अविनाशी पुरुषको जानता है वह उस अक्षर ब्रह्मको ही प्राप्त होता है[५]। वह ब्रह्म हिरण्मय परमकोषमें स्थित है । "**हिरण्मये परे कोशे विरजं ब्रह्म निष्कलम्**[६]।"

वह ब्रह्म तेजस्स्वरूप है न विश्वरूप, वह अचिन्त्य है, अनिर्वचनीय है । वही आत्मा है वही जानने योग्य है[७]। और जो पुरुष (पंचकोशात्मक देहमें) है और जो आदित्यमें है वह एक है—"**स यश्चायं पुरुषे यश्चासावादित्ये सएकः**[८]" स्थावर, जंगम सब कुछ ब्रह्म ही है[९]। छान्दोग्यो० में श्वेतकेतुसे कहा गया है कि हे श्वेतकेतो ! एतद्रूप ही यह सब कुछ है, यह सत्य है, वह आत्मा है, वह तुम हो[१०]। जिसमें पाँच पंचजन (गन्धर्व; पितर, देवता, असुर और राक्षस अथवा (ब्राह्मणादि और निषाद) अव्याकृत प्रकाश प्रतिष्ठित है और उस आत्माको ही मैं अमृतब्रह्म मानता हूँ—

"यस्मिन् पंच पञ्चजना आकाशश्च प्रतिष्ठितं ।
तमेव मन्य आत्मानं विद्वान् ब्रह्मामृतोऽमृतम्[११]।।"

यह आत्मा ही सबका अनुभव करने वाला है[१२]। वह निष्कल निष्क्रिय और शान्त है[१३]। जो परब्रह्म सबका आत्म विश्वका महान् आयतन, सूक्ष्मसे भी सूक्ष्मतर और नित्य है वह तुम्ही हो, तुम्ही वह हो[१४]—

"यत्परं ब्रह्म सर्वात्मा विश्वस्यायतनंमहत् ।
सूक्ष्मात्सूक्ष्मतरं नित्यं सत्वमेव त्वमेव तत् ।।" कैवल्यो० १, १६

प्रथम तो यह कि ज्ञान स्वतः प्रमाण है[१४], परतःप्रमाण नहीं, इसका आशय यह है कि किसी भी पदार्थका यथार्थ निश्चय करनेमें ज्ञान ही अन्तिम निर्णायक होगा । सम्पूर्ण व्यवहार अपने ज्ञान पर ही चलता है । प्रमाता, प्रमाण एवं प्रमेयकी

---

१. मा० उ० १, ३ ।
२. ईशो० ६ ।
३. केनो० १, ४ ।
४. कठ० २, २, १२ ।
५. प्रश्नो० ४, १० ।
६. मुण्डको० २, २, ९ ।
७. माण्डूक्यो० १, ८, ५ ।
८. तैत्तरीयो० २, ८, ५ ।
९. ऐतरेयो० ३, ३ ।
१०. छा० उ० ६, ८, ७ ।
११. बृह० उ० ४, २, १७ ।
१२. श्वेता० ६, १९ ।
१३. कैवल्यो०
१४. अपौरुषेयताका अभिप्राय-कल्याण उपनिषदंक स्वामी अखण्डानन्द सरस्वती पृ० २१ ।

त्रिपुटी ज्ञानके द्वारा ही प्रकाशित होती है। इसलिए ज्ञानकी सिद्धिके लिये उनकी कोई अपेक्षा नहीं है, यों भी कह सकते हैं कि इस त्रिपुटीके भाव और अभावका प्रकाशन ज्ञान ही है। 'ज्ञान' स्वयं प्रकाश है, ज्ञानसाधन-साध्य नहीं है, सिद्ध है। 'ज्ञान' काल परिच्छिन्न नहीं है। जैसे घट-पटादिके भिन्न-भिन्न होने पर भी उनको प्रकाशित करने वाले प्रकाशमें भेद कल्पनाका कोई प्रसंग नहीं है ऐसे ही कलाकाष्ठा आदि रूप, कालके अवयवोंमें भेद होने पर भी उनके प्रकाशक ज्ञानमें भेद कल्पनाका कोई अवसर नहीं है।

ज्ञानमें देश परिच्छेद भी नहीं है। जैसे स्वप्नके पचासों वर्ष कालके अवयव नहीं हैं, संविद्रूप ही हैं, उनमें भूत भविष्यत्की कल्पना और ज्ञानके द्वितीयत्वकी प्रतीति संविन्मात्र ही है, पूर्व पश्चिम आदि एवं दैर्ध्य विस्तार आदिकी कल्पना वस्तुनिष्ठ नहीं संविन्मात्र है। ज्ञानमें विषयपरिच्छेद भी नहीं है। ज्ञानमें ज्ञातृत्व और ज्ञेयत्वका भेद भी औपाधिक है, देशकाल और वस्तु भेदका वैविध्य हो जाने पर ज्ञानसे पृथक् ज्ञेयकी उपस्थिति अपने आप ही कट जाती है। ज्ञानका जन्म नहीं होता तथा ज्ञानमें यथार्थ-अयथार्थ और परोक्ष अपरोक्षका भेद भी नहीं है। व्यवहारमें जो ज्ञान यथार्थता आदि भेद किये जाते हैं यदि वास्तवमें विचार करके देखें तो कल्पित विषय मतभेद ही ज्ञान पर आरोपित होते हैं। ज्ञान सर्वथा अवाध्य है। ज्ञानका कोई भी विरोधी नहीं है "मैं अज्ञ हूं" एक प्रकारसे यह भाव भी ज्ञान ही है। सन्धि हीन होनेके कारण ज्ञान और अज्ञानका भेद कल्पित है। ज्ञानका स्वरूप अनिर्वचनीय है। यदि किसी पदार्थका निर्वचन करते हैं तो उसमें दृश्यता, अन्यता आदिका आरोप अवश्य करते हैं अतः वह मन, वाणीका विषय होगा। अनिर्वचनीयता परमतरीतिसे है।

सत्य, अहिंसा, ध्यान, उपासना आदि ज्ञानके ही उपलक्षण हैं। अपरिच्छेद रूपलक्षणके एकरूप होनेके कारण ज्ञान, आत्मा, ब्रह्म और विश्व आदि शब्द पर्यायवाची हैं और एकही अर्थके बोधक हैं। उपनिषदोंके **"प्रज्ञानं ब्रह्म, अयमात्मा ब्रह्म, ब्रह्मैवेदं विश्वमिदं वरिष्ठम्, अहमेवेदं सर्वम्, कृत्स्नः प्रज्ञान घन एव। विज्ञानमानन्दं ब्रह्म।"** गीता के **"ज्ञानं ज्ञेयम्"** और श्रीमद्भागवतके **"विज्ञानमेक-मुरुधेवविभाति"** वचनोंसे उपर्युक्त अर्थकी पुष्टि होती है। यह ज्ञान जब ब्रह्म है तब वेद और उपनिषद्की अपौरुषेयताका भाग स्पष्ट हो जाता है। प्रमुख उपनिषदोंमें इस प्रकारके अर्थ वाले सैकड़ों श्लोक प्रमाण हैं जिनका तात्पर्य आत्मा और ब्रह्मकी एकरूपताका प्रतिपादन करना है। इन उपनिषदोंका महत्व इसलिये भी है कि इनमें संप्रदाय विशेष (देवताविशेषके कारण) कहीं व्याख्यात नहीं है। यद्यपि मुक्तिकोपनिषद्में १०८ उपनिषदोंकी नामावली दी है किन्तु सर्वत्र निर्विरोध रूपमें

उपर्युक्त उपनिषदोंका ही प्राधान्य है। अखण्डआनन्दैकरस स्वरूप ब्रह्म ही उपनिषद् प्रतिपादित तत्त्व है। एक बार राजा जनकने प्रश्नके समाधानके लिये एक सहस्र गोदानका संकल्प किया। प्रश्न था कौन सर्वश्रेष्ठ वेत्ता है? उस समय याज्ञवल्क्यने उठकर उन गायोंको अपने अधिकारमें कर लिया। विद्वानोंने इस पर कुपित होकर उनसे अनेक प्रश्न किये। इन प्रश्नकर्ताओंमें शाकल्य महर्षि भी थे। शाकल्यका समाधान करनेके बाद याज्ञवल्क्यने भी उनसे प्रश्न पूछे—"**तं त्वौपनिषदं पुरुषं पृच्छामि, तं चेन्मे न विवक्ष्यसि मूर्धा ते विपतिष्यतीति**[1]।" अर्थात्—शाकल्य! मैं तुमसे उस उपनिषद् प्रतिपादित पुरुषको पूछता हूँ, यदि तुम नहीं बतलाओगे तो तुम्हारा मस्तक गिर जायगा। शाकल्य इसका उत्तर नहीं जानता था, अतः उसका सिर गिर गया। औपनिषद पदके अर्थको वहीं खोला है—"**विज्ञानमानन्दं ब्रह्म गतिर्दातुः परायणम्**" ब्रह्म विज्ञानानन्दस्वरूप है। यही आत्मतत्त्व वैवस्वत धर्मराजने अपने प्रिय शिष्य नचिकेताको दिया था—"**सर्वेवेदा यत्पदमामनन्ति**" कठ० १, २, १५ इस प्रकार उपनिषदोंमें ज्ञानतत्व सर्वोपरि है और इसे ही संक्षिप्त करके ब्रह्मसूत्रकारने अपने सूत्रोंमें उपनिबद्ध कर दिया है।

भक्तिका स्वरूप

उपनिषदोंके कण-कणसे भक्ति रसका अजस्र प्रवाह उमड़ रहा है, उपनिषदोंके अनुसार परमात्मा तर्कका विषय नहीं है-- '**नायमात्मा प्रवचनेनलभ्यः**" कठो० १।२।२३ वह केवल भक्तिके द्वारा ही जाना जाता है। जो मनुष्य अपने अन्तःकरणको शुद्ध करके प्रभुकी भक्ति करता है, उसे ही प्रभु अपना बना लेते हैं "**यमवैष वृणुते तेन लभ्यः**" में उनके अनुग्रहका ही वर्णन है। उपनिषदोंका कथन है कि वह परमात्मा कहीं दूर नहीं है, वह हृदयमें ही विराजमान है। ईश्वर हमारी समस्त कामनाओंको पूर्ण करता है। वह सर्वदा जाग्रत् रहता है। शीतसे आतुर मनुष्यका 'शीत' अग्निके पास जानेसे निवृत्त हो जाता है, ऐसे ही प्रभुकी भक्ति करनेसे सब दोष दूर हो जाते हैं। प्रभुकी भक्तिमें बड़ा रस है—"**स एव रसानां रसतमः**" छा० उ०, प्रभु भक्ति सर्वोत्कृष्ट रस है। ईश्वरकी दयाका वरदहस्त अपने मस्तक पर समझने वाला कहीं भी खिन्न नहीं होता। उस ईश्वरकी परम ज्योति सर्वत्र छिटक रही है उसका आलम्बन ही श्रेष्ठ है—

एतदालम्बनं श्रेष्ठमेतदालम्बनंपरम् ।
एतदालम्बनंज्ञात्वा ब्रह्मलोके महीयते ॥ क० उ० १।२।१७

वह परमात्मा एक है और सबको वशमें रखनेमें समर्थ हैं, एक जड़ प्रकृतिसे उन्होंने नानारूप बना रखे हैं। जो धीर पुरुष भक्तिके नेत्रसे उसे अपने भीतर देखता

१. बृह० उ० ३, ९, २६।

है केवल वही शाश्वत सुख प्राप्त करता है। "**एको वशीसर्वभूतान्तरात्मा, एकं रूपं बहुधा यः करोति**" कठो०, उपनिषदोंका यह भक्तिस्रोत वेदके आधार पर ही है। हिन्दू धर्मके क्रमिक विकासको स्थूलरूपसे ३ भागोंमें विभक्त माना जाता है—१—कर्म प्रधान वैदिक युग, २—ज्ञान प्रधान औपनिषद युग, ३—भक्ति प्रधान पौराणिक युग। कर्मप्रधान वैदिक युगमें वैदिक साहित्यके तीन भाग—संहिता, ब्राह्मण और आरण्यक आ जाते हैं। ज्ञानमार्गका विवेचन उनके चतुर्थ भाग उपनिषद् साहित्यमें है। संहिता भागके मन्त्रसमूह इन्द्र, अग्नि, वरुण, सविता, रुद्र आदि देवों की स्तुतिसे परिपूर्ण हैं। परमेश्वरके ही ये विभिन्न रूप हैं—"**एकं सद् विप्रा बहुधा-वदन्ति**[1]" मन्त्र इसका प्रमाण है। इसी तथ्यका उद्घाटन—"**सुपर्णं विप्रा कवयो वचोभिरेकंसन्तं बहुधा कल्पयन्ति**[2]।" मन्त्रमें है। अर्थात् सुपर्ण या परमात्मा एक सत्तामात्र है। इस एकही सत्ताकी तत्त्वदर्शी लोग अनेक नामोंसे कल्पना करते हैं। यज्ञ सम्पादनमें यद्यपि अनेक नाम देवोंके आते हैं तथापि वे सब मूलरूपमें एक ही हैं—**यमृत्विजो बहुधा कल्पयन्तः सचेतसो यज्ञमिमं वहन्ति**[3]।" उस एक अद्वितीय सत्ताको वेदमें हिरण्यगर्भ, प्रजापति, विश्वकर्मा, पुरुष इत्यादि नामोंसे अभिहित किया है।

प्राचीन आचार्योंका प्रधान अनुष्ठेय धर्म "यज्ञ" था। यज्ञादिकर्म श्रद्धाके साथ किये जाते थे, इसमें अर्चन, वन्दना, नमस्कार आदि भक्तिके अङ्ग समन्वित थे। वेदके संहिता भागमें भक्ति शब्द नहीं है किन्तु श्रद्धा शब्द है, जो भक्तिका ही रूप है। "**श्रद्धयाग्निः समिध्यते श्रद्धया हूयते हविः**[4]।" श्रद्धाके द्वारा ही यज्ञकी अग्नि प्रज्वलित की जाती है, श्रद्धा द्वारा ही हविकी आहुति दी जाती है। वेदोंको संहिता युगमें देव विषयक भक्तिमूलक जो सहज सरल धर्म दिखलाई देता है वह ब्राह्मण युगमें आकर यज्ञानुष्ठानका मंत्र बनकर कुछ जटिल होता है। यद्यपि यज्ञका अनुष्ठान, इन्द्रादि देवोंके लिये किया जाता था, तथापि मुख्यत्व यज्ञोंका हो गया, इन्द्रादि देवोंका नहीं—"**यागात् स्वर्गो भवति यजेत स्वर्गकामः**" की मीमांसा ही प्रधान बन गई थी। उपनिषदोंने ऐसी भक्ति रोकनेका प्रयास किया और कर्मकाण्डकी भक्तिको 'अदृढ़ नौका' कहा—"**प्लवा ह्येते अदृढा यज्ञरूपः**[5]।"।

साधककी दृष्टि बहिर्जगत्से लौटकर अन्तर्जगत्में केन्द्रीभूत हो गयी थी। उपनिषदोंके ऋषियोंने उद्घोषित किया कि इस नामरूपात्मक दृश्य प्रपंचके अन्तराल में एक नित्य, शाश्वत, सत् पदार्थ है, ज्ञानयोगसे उसे जाना जाता है, वही ब्रह्म है, ("**तद्विजिज्ञासस्व तद् ब्रह्म**") यह ब्रह्मविद्या ही उपनिषद् या वेदान्तका प्रतिपाद्य

---

१. **ऋग्वेद १, १६४, ४६।** २. **ऐतरेयोपनिषद् १०, ११४, ५।**
३. **ऐतरेय० ८, ५८, २।** ४. **ऋग्वेद १०, १५१, १।**
५. **मुण्डको० १, २, ७।**

विषय है, उपनिषद् कहती हैं कि 'वेदवाद' स्वर्ग साधक होने पर भी मोक्ष साधक नहीं है, एकमात्र ब्रह्मवादके अवलम्बनसे ही निःश्रेयसकी प्राप्ति हो सकती है। उपनिषदों की निर्गुण ब्रह्मवाद धारामें भक्तिका कोई स्थान नहीं है क्योंकि जो निर्गुण है निर्विशेष है, अवाङ्-मनसगोचर है "उसके साथ भावभक्तिका सम्बन्ध कैसे हो सकता है?" वह तो आत्मबोधरूप है।

सगुण ब्रह्मके बिना भक्तिमूलक उपासना सम्भव नहीं है। परन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि उपनिषदोंमें सगुणभक्ति नहीं है, उपनिषदोंमें देव, ईश्वर, महेश्वर आदि शब्दोंका प्रयोग है जो सगुणत्वकी ओर ध्यान आकर्षित करता है तथा भक्ति शब्दका प्रयोग "श्वेताश्वतर-उपनिषद्" में स्पष्ट है–**यस्यदेवेपराभक्तिः**[१]। केनोपनिषद् में उपासनाके लिये बल दिया है—"**तद्ध तद्वनं नाम तद्वनमित्युपासितव्यम्**[२]" ब्रह्म सम्यक्तया भजन योग्य है उसकी उपासना करनी चाहिये। कठोप० में उसकी कृपा का निरूपण है—"**यमेवैष वृणुते तेनलभ्यः**[३]।" भक्ति साधनाके आश्रय प्रेमस्वरूप करुणामय भगवान् हैं। "**एषास्य परमा गतिरेषास्य परमा सम्पद् एषोऽस्य परम आनंदः**[४]।" ये ही परमगति हैं, परमसम्पद् हैं, परमधाम तथा परमआनन्द हैं जिसकी जिह्वा पर तुम्हारा पवित्र नाम रहता है, वह चाण्डाल भी श्रेष्ठ है, क्योंकि जिन्होंने तुम्हारे नामका कीर्तन किया, उन्होंने तप, यज्ञ, तीर्थस्थान और वेदाध्ययनादि सब कुछ कर लिये[५]। इस प्रकार उपासना विषयक श्रवण-कीर्तन आदि विशेष धर्मोंका महत्व दिखलाया गया है। आचार्य वल्लभने लिखा है कि मुक्तोंको क्या मिलता है? मायासे विनिर्मुक्त होकर आत्मस्वरूप मात्र ही, किन्तु उन्हें वे देहादिक तो नहीं मिलते जिससे भजनानन्दका अनुभव प्राप्त किया जा सके—

"**मुक्तानां तु मायाविनिर्मुक्तमात्मस्वरूपमेव, नतु देहन्द्रियादिकमप्यस्ति येन भजनानन्दानुभवः स्यात्। भक्तानांतु देहेन्द्रियादिकमपि मायातत्कार्यरहितत्वेनानन्द-रूपत्वेन च भगवदुपयोग्यतोऽपि तत्तथेत्यर्थः**[६]।"........**तदुक्तं भागवते "न यत्र माया किमुतापरे हरेः"** इत्यादिमें मायाका अप्रभाव स्पष्ट है।

ब्रह्मसूत्रोंमें भक्ति

अपि संराधने प्रत्यक्षानुमानाभ्याम् ३, २, २४ इस सूत्रमें अपि शब्द पूर्व पक्षकी निन्दाके लिये प्रयुक्त है '**अपिरत्रगर्हायाम्**[७]' आचार्य वल्लभने भी इसे गर्हा अर्थमें स्वीकार किया है अपितु पूर्वपक्षवादीके लिये मूर्ख शब्दका प्रयोग भी किया है—

१. श्वेता० उ० ६, २३।
२. केनो० ४, ६।
३. कठो० १, २, २३।
४. बृहदा० उप० ४, ३, ३२।
५. भा० ३, ३३, ७।
६. अणुभाष्य ३, ४, ३८।
७. गोविन्द भाष्य ३, २, २४।

सर्वथा "मूर्खः पूर्वपक्षवादी[१]" पूर्व पक्षकी यहाँ चर्चाकी गई है वह पूर्वपक्ष इस सूत्रसे पृथक् सूत्र है—"**अव्यक्तमाहहि**" ३, २, २३ ब्र सू० इसमें यह कहा गया था कि परब्रह्म अव्यक्त है। परन्तु प्रस्तुत सूत्रमें इसका खण्डन किया गया है और श्रुति-स्मृतियोंके प्रमाण भी दिये गये हैं। प्राकृत जगत्में यह देखा जाता है कि गुणयुक्त वस्तु जब देखी जाती है या सुनी जाती है तभी उसे प्राप्त करनेकी चेष्टा उदित होती है। परन्तु ब्रह्म तो गुणयुक्त वस्तुकी भाँति नहीं है न वह श्रुत है न दृष्ट। इसका उत्तर दिया गया है कि वह केवल भक्तिगम्य है। श्रुतियोंमें ऐसा नहीं है—यह बात भी नहीं है श्रुतियोंमें आता है कि–"**कश्चिद्धीरः प्रत्यगात्मानमैक्षत आवृत्त चक्षुरमृतत्व-मिच्छन्**" कठो० २, १, १ परब्रह्म चक्षुः आदिके द्वारा ग्राह्य है। मुण्डकोपनिषद्में भी ऐसा वर्णन आता है—"**तद् विज्ञानेन परिपश्यन्ति धीराः आनन्दरूपममृतं यद्विभाति**[२]" आचार्य वल्लभने "**यमेवैषवणुते तेन लभ्यः**" श्रुति उद्धृतकी है और सिद्ध किया है कि श्रुतियोंमें वह निराकार और उभयरूपमें चित्रित है तब उसे केवल निराकार ही कैसे स्वीकार किया जाय। भगवद्गीतामें कहा है कि—

"**भक्त्यात्वनन्ययाशक्य अहमेवंविधोऽर्जुन।**
ज्ञातुं दृष्टुं च तत्त्वेन प्रवेष्टुं च परंतप॥" गीता ११। ५४

श्रीमद्भागवतमें इसे स्पष्ट किया है—"**केवलेन हि भावेन गोप्यो गावो नगा मृगाः। येऽन्ये मूढाधिपा नागाः सिद्धा मामीयुरंजसा॥**" भा० ११, १२, ८ भक्तिके द्वारा ही गोपियोंने भगवान्को प्राप्तकर लिया और भी ऐसे वचन आये हैं—"**भक्त्याहमेकया ग्राह्यः श्रद्धयात्मा प्रियः सताम्**" भा० ११, १४, २१ "संराधन" शब्द जो सूत्रमें है वह भक्तिका सजातीय है। संराधनके द्वारा उस परमात्माका दर्शन होता है यह सिद्ध किया गया है। विहित कर्मोका अनुष्ठान आवश्यक है इसे सिद्ध करते हुए ब्रह्मसूत्रकारने यह लिखा है कि परब्रह्म पुरुषोत्तमकी भक्तिके अंगभूत जो श्रवण-कीर्तन आदि कर्म हैं, उनका पालन भी करना चाहिये। "**सर्वथापि त एवोभयलिंगात्**" ३, ४, ३४ ब्र० सू० अपिकिसी कारणवश कठिनता प्राप्त होने पर भी, तेवे भक्ति सम्बन्धी कर्म या भागवत धर्म तो सर्वथा सब प्रकारसे ही आचरणमें लाने योग्य हैं, क्योंकि श्रुति और स्मृति दोनोंके निश्चयात्मक वर्णनरूप लक्षणसे यही सिद्ध होता है[३]। श्रुतिमें ऐसा वर्णन है—"**तमेवधीरो विज्ञाय प्रज्ञांकुर्वीत ब्राह्मणः**[४]" बुद्धिमानको चाहिये कि उस पर ब्रह्म पुरुषोत्तमके तत्त्वको समझकार उसीमें बुद्धिको

---

१. अणु भाष्य ३, २, २४। **२. मुण्डकोप०२, २, ८।**

३. वेदान्तदर्शन गीताप्रेस गोरखपुर पृ० ३२२। ४. बृहदा० उ० ४, ४, २१।

प्रविष्ट करे, नाना प्रकारके शब्दोंपर ध्यान न दे, तथा—"**यस्मिन् द्यौः पृथिवी चान्तरिक्षमोतं मनः सह प्राणैश्चसर्वैः**[५]।"

जिस परमेश्वरमें स्वर्ग, पृथिवी, अन्तरिक्ष, मनसहित इन्द्रियाँ और प्राणस्थित हैं, उसी एक परमेश्वरको कहे हुए उपायों द्वारा जानो, यही अमृत स्वरूप परमात्माको पानेके लिये सेतु सदृश सरल मार्ग है। यही भाव भागवतमें वर्णित है—जो आपके भक्त आपके चरित्रोंको प्रतिक्षण सुनते हैं, गाते हैं, वर्णन करते हैं वे जन्म मरण प्रवाहके नाशक आपके चरणकमलोंका दर्शन कर लेते हैं[१]। भगवद्गीतामें भी कहा है—"**सततं कीर्तयन्तश्च**[२]" आपत्तिकालमें भी किसी कारणवश अन्य वर्ण, आश्रम और शरीर निर्वाह सम्बन्धी कर्मोंका पालन पूर्णतया न हो सके तो भी उन भाव उपासना विषयक श्रवण-कीर्तन आदि मुख्य धर्मोंका अनुष्ठान अवश्य करना चाहिये। इस अनुष्ठानकी विशेषता भी अगले सूत्रमें सूत्रकारने दिखलाई है। "**अनभिभवं च दर्शयति**" ३, ४, ३५ श्रुति, इन अनुष्ठान करने वालोंका पापसे अनभिभूत होना भी दिखलाती है। बृह० की श्रुतिमें आता है कि "जो परमात्माके स्मरणमें तल्लीन है" वह अपने हृदयमें स्थित उस आत्मस्वरूप परमेश्वरका साक्षात्कार करता है, अतः वह समस्त पापोंसे पार हो जाता है, उसे 'पाप' ताप नहीं पहुँचा सकते अपितु वही पापोंको सन्तप्त करता है[४]। उक्त श्रुतिमें स्पष्ट ही भगवत्स्मरण करने वालेको पाप न लगनेकी बात कही गई है जो उपासना विषयक श्रवण-कीर्तन और स्मरण आदि धर्म हैं। भागवतमें भी ऐसा वर्णन है[५]।

आश्रम धर्मोंके अभावमें भी केवल उपासना विषयक अनुष्ठानसे परमात्माकी प्राप्ति सम्भव है—"**अन्तरा चापि तु तद्दृष्टेः**" ३, ४, ३६ यहाँ "**तद्दृष्टेः**" द्वारा श्रुतिकी ओर ध्यानाकृष्ट किया गया है "**स्वदेहमरणिं कृत्वा प्रणवं चोत्तरारणिम्। ध्याननिर्मथनाभ्यासाद्देवं पश्येन्निगूढवत्**[६]।।" अपने शरीरको नीचेकी अरणि और प्रणवको ऊपरकी अरणि बनाकर ध्यानके द्वारा निरन्तर मन्थन करते रहनेसे साधक छिपी हुई अग्निकी भाँति, हृदयमें स्थित, परमदेव परमेश्वरको देखे। भागवतमें भी ऐसे वर्णन हैं[७]। इसमें परमेश्वरमें ध्यानकी स्थितिके लिये प्रार्थना करने तथा उन्हीं परमात्माकी शरण ग्रहण करनेका भी वर्णन आया है। आगे इसमें यह भी कहा गया

---

१. मु० उ० २, २, ५। २. भा० १, ८, ३६। ३, २५, ४०-४४।
३. गीता ९, १३-१४। ४. बृह० उ० ४, ४, २३।
५. भा० ११, २०, ३१ भा० ११, ११, ३२।
६. श्वेताश्व० १, १४। ७. भा० ५, ९, ३ तथा ११, २, ३५।

है कि उस पर ब्रह्म-परमात्माकी सेवा करनी चाहिये। उन परमेश्वरकी शरण लेकर उन्हींमें अपनेको विलीन कर देना चाहिये[१]।

सूत्रकारने उपासनाकी महत्ता पर बल देते हुए स्मृतियोंका प्रमाण भी दिया है—**"अपि च स्मर्यते"** ३, ४, ३७ गीता एवं अन्य स्मृतियोंमें वर्णाश्रमोचित कर्मके अधिकारियोंके लिये चाण्डाल आदिके लिये भी भगवान्‌की शरणागतिसे परमगति की प्राप्ति लिखी है[२]। स्वयं भगवान्‌का वचन है कि "मेरी प्राप्तिमें वेदाध्ययन, यज्ञानुष्ठान, दान तथा नाना प्रकारकी क्रिया और उग्रतप हेतु नहीं है केवल मात्र अनन्य भक्तिसे ही मैं जाना–देखा और प्राप्तकिया जा सकता हूँ[३]।" श्रीमद्भागवतकारने भी यही बात लिखी है—

किरात हूणान्ध्र पुलिन्द पुल्कसा आभीरकंकायवनाः खसादयः।
येऽन्ये च पापा यदुपाश्रयाश्रया शुद्ध्यन्ति तस्मै प्रभविष्णवे नमः॥

भा० १२।४।१८

किरात, हूण, आन्ध्र, पुलिन्द, पुल्कस, आभीर, कंक, यवन, खस आदि तथा अन्य जितने भी पापयोनिके मनुष्य हैं वे सब जिनकी शरण लेनेसे शुद्ध हो, परमात्मा को प्राप्त हो जाते हैं उन सर्वसमर्थ भगवान्‌को नमस्कार है। भगवान्‌की भक्ति सम्बन्धी धर्मोंका पालन करने से भगवान्‌का विशेष अनुग्रह होता है। 'विशेषानुग्रहश्च' ३, ४, ३८ भक्ति सम्बन्धी धर्म भागवतमें कहे गये हैं—**"श्रवणं कीर्तनं विष्णोः"** भा० ७, ५, २३ द्वारा। भगवान्‌ने अपने भक्तोंको महत्त्व बतलाते हुए यह कह दिया है कि मैं सदा भक्तोंके आधीन रहता हूँ—**"अहं भक्तपराधीनः"** भा० ९, ४, ६३ अतः यह निश्चित होता है कि भगवान्‌की भक्तिका अनुष्ठान करने वाले उनके विशेष कृपापात्र होते हैं। यही कारण है कि भक्तवत्सल भगवानके स्वभावको जानने वाले निरन्तर उनके भजन स्मरणमें ही लगे रहते हैं। अन्य धर्मोंकी अपेक्षा भागवत धर्म श्रेष्ठ हैं, इसे सूत्रकारने स्पष्ट किया है—**"अतस्त्वितरज्यायो लिंगाच्च"** ३, ४, ३९ इसका अर्थ भागवतमें है—

विप्राद् द्विषड्गुण युतादरविन्दनाभ पादारविन्द विमुखाच्छ्वपचं वरिष्ठम्[४]।
मन्ये तदर्पित मनो वचनेहितार्थ प्राणं पुनाति स कुलं सतु भूरिमानः[५]॥

---

१. श्वेता० १, १-५।
२. गीता ९, ३२।
३. गीता ११, ४८-५३-५४।
४. गीता १५, १९ "तेषामेवानुकम्पार्थम्" गी० ११।११ चौ० च० म० २४।
५. भाग० ७, ९, १० तथा ३, ४, १५। ११, १२-१-२। ९, ५, १६। ९, ४, ६६ तथा १०, ९, १०।

द्वादश प्रकारके गुणोंसे युक्त ब्राह्मण भी यदि भगवान् पद्मनाभके चरणकमलसे विमुख है तो उसकी अपेक्षा चाण्डाल श्रेष्ठ है, जिनके मन, धन, वचन, कर्म और प्राण परमात्माको अर्पित हैं। क्योंकि वह भक्तचाण्डाल अपनी भक्तिके प्रतापसे सम्पूर्ण वंशको पवित्र कर देता है, परन्तु 'मानीब्राह्मण' नहीं।

× × × × ×

वेदाः श्रीकृष्णवाक्यानि व्याससूत्राणि चैवहि ।
समाधि भाषा व्यासस्य प्रमाणं तच्चतुष्टयम् ॥
उत्तरं पूर्व सन्देह वारकं परिकीर्तितम् ।
अविरुद्धं तु यत्त्वत्र प्रमाणं तच्च नान्यथा ॥
एतद्विरुद्धं यत्सर्वं न तन्मानं कथंचन ॥

तत्त्वदीप निबन्ध शा० प्र० ८ ।

× × × × ×

ऐकं शास्त्रं देवकी पुत्र गीतं
एको देवो देवकीपुत्र एव ।
मंत्रोऽप्येकस्तस्य नामानि यानि
कर्माप्येकं तस्य देवस्य सेवा ॥

★

द्वितीय खण्ड

उपनिषदोंके पद पदांश और भागवत ।

उपनिषदोंकी अर्थराशि और भागवत ।

ब्रह्मसूत्रोंके पद पदांश और भागवत ।

ऋग्वेद और भागवत ।

उपनिषदोंके प्रमुखपात्र और भागवत ।

उपनिषदोंके तथा भागवतके स्थल विशेष ।

ब्रह्मसूत्रोंके प्रमुख पात्र ।

भागवतके पात्र और ऋग्वेद ।

उपनिषदोंके पद पदांश और भागवत

१. ईशावास्यमिदं—ईशोप० १	आत्मावास्यमिदं—भाग० ८, १, १०
२. विद्यां चाविद्यां च—ईशोप० ११	विद्याऽविद्ये ममतनू–भा० ११, ११; ३
३. केनेषितं पतति—केनोप० १	केनाहंविधिना—भा० ८, १६, २२
४. यन्मनसा न मनुते–केनो० ५	मनसाऽसुभिर्वा–भा० ६, ३, १६
५. नोनवेदेति च–केनो० २	नायं तं वेद वेदसः—भा० ८, १, ६
६. एकस्तथा सर्व भूतान्तरात्मा–कठोप० ५, ६	एकएवाद्वितीयोऽभूत्–भा० ११, ६, १७ एकस्त्वमे—भा० ८, १२, ८
७. स तपोऽतप्यत–प्रश्नो० १, ४	दिव्यवर्षशतं तपः—भा० ३, १०, ४
८. विश्वरूपं हरिणं जातवेदसम्–प्रश्नो० १, ८	परोरजः सवितुर्जातवेदः भा० २, ७, १४
९. द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते । तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति–मुण्डको० १, १	सुपर्णावेतौ सदृशौ सखायौ यदृच्छयैतौ कृत नीडौ च वृक्षे एकस्तयोः खादति पिप्पलान्नं अन्यो निरन्योऽपि बलेन भूयान्—भा० ११, ११, ६
१०. सर्वगतं सुसूक्ष्मम्–मु० उ० २, ६	अतीन्द्रियंसूक्ष्ममिवातिदूरम्–भा० ८, ३, २१
११. यथोर्णनाभिः—मु० ३	यथोर्णनाभिः—भा० ११, २१, ३८ ११, ६, २१ ।
१२. भिद्यते हृदयग्रन्थिः–मु० उ० ३, २, ८	भिद्यते हृदयग्रन्थिः–भा० १, २, २१ ११, २०, ३०
१३. दहरं पुण्डरीकम्–छा० उ० ८, १, १	आरुणयोदहरम्—भा० १०, ८७, १८
१४. श्रोतव्यः निदिध्यासितव्यश्च—बृह० उप० २, ४, ५	श्रोतव्यः कीर्तितव्यश्च—भा० २, १, २
१५. यथा तृणजलायुका—बृह० उ० ४, ४, ३	यथा तृण जलौकेवम्—भा० १०, १, ४०
१६. परो रजसि—बृह० उ० ५, १४, ४	परोरजः—भा० ५, ७ १४
१७. अंगुष्ठमात्र पुरुषोऽन्तरात्मा	अंगुष्ठमात्रममलम्—भा० १, १२, ८
१८. सहस्रशीर्षा पुरुषः–श्वेता० ३, १४	सहस्रशिरसं देवः—भा० १०, ३६, ४५
१९. पुरुष एवेदं सर्वम्–श्वेता० ३, १५	सर्वं पुरुष एवेदम्—भा० २, ६, १५
२०. नैव स्त्री न पुमानेष नचैवायं नपुंसकः—श्वेता ५, १०	न स्त्री नषण्ढो न पुमान्न जन्तुः—भा० ८, ३, २४

उपनिषदोंकी अर्थराशि और भागवत

"जन्माद्यस्ययतः" (भा० १, १, १) श्लोकमें यतः शब्द आया है इस पदका

अर्थ है जिससे इस जगत्का जन्म आदि होता है। इसका स्रोत **"यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते"** उपनिषद् वाक्य है[१]। इसमें यह स्पष्ट किया है कि "जिससे ये समस्त भूत उत्पन्न होते हैं। दोनोंका अभिप्राय ब्रह्मका वैशिष्ट्य सिद्ध करना है। ब्रह्मसे जगत्के जन्मादि कैसे होते हैं ? इसका उत्तर **"स ईक्षत लोकानुत्सृजं[१]"** श्रुति-वाक्य है अर्थात् उसने देखा और लोकोंकी रचनाकी। **"यो ब्रह्माणंविदधातिपूर्वम्"** जिसने ब्रह्माको बनाया। ब्रह्माको हृदयसे भगवान्ने वेद दिया। ब्रह्माके बनानेके लिए भी भागवतमें लिखा है। **"रसो वै सः[२]"** यह श्रुति **"रसिका भुवि भावुकाः[३]"** श्लोकमें दृष्टव्य है। **"तस्यात्मनोर्द्धं पत्न्यास्ते"** (भा० १, ७, ४५) श्रीधरका कथन है कि इस श्लोकमें 'अर्ध' शब्द श्रुत्यर्थ है **"अर्धो वा एव आत्मनो यत् पत्नी"** यह श्रुति इसमें व्याख्यात है। आत्माका आधा भाग पत्नी है। **"गविष्ठोगांगतस्तदा"** भा० १, १०, ३६। श्रीकृष्ण प्रयाणके वर्णनमें लिखा है कि भगवान् श्रीकृष्ण मार्गमें पूजा की वस्तु ग्रहण करते हुए आनर्तदेश पहुँचे, उस समय सूर्य उदकमें प्रविष्ट हो गये थे। कृष्णने संध्या की। सूर्य का उदकमें प्रवेश श्रुत्यर्थ सिद्ध है—

"अद्भ्योवा एव प्रातरुदेत्यपः सायं प्रविशति[४]" मनुजो **निवासः** (भा० २, १, ३६) में "अविस्तरात्मा श्रुतिका अर्थ है।" **वयांसि तद् व्याकरणम्**—पूर्व पदमें **"नामरूपेव्याकरवाणि"** श्रुत्यर्थ है। **"ऋतेपशूनसतीं नाम् कुर्यात्"** भा० २, २, ७ हरिके चिन्तनको छोड़कर विषय चिन्ताको सिवाय पशुके अर्थात् कर्म जड़के अन्य कोई नहीं करेगा। यह तथ्य **"यथा पशुरेव स देवानाम्"** इस श्रुतिमें वर्णित है। कर्म जड़को पशु कहा है। **"प्रादेशमात्रंपुरुषम्"** भा० २, २, ८। कोई अपने हृदयमें प्रादेश मात्रमें स्थित हरिका ध्यान करते हैं। प्रादेशमात्रका वर्णन उपनिषद्में है। **"यदि प्रयास्यन्.......वैहायसानामुत्यद्विहारम्।"** मुक्ति वर्णनमें भागवतमें 'सद्यो-मुक्ति' और 'क्रममुक्ति' के २ भेद वर्णित हैं, इनमें उत्क्रमणके लिए मूर्धास्थानसे प्राणवायुका गमन लिखा है जो–निम्नश्रुतिमें दृष्टव्य है—**"तासां मूर्द्धानमभिनिःसृतैका"** क्रम मुक्तिका प्रमाण **"तेऽर्चिभिरभिसम्भवन्ति।"** श्रुति है। **"न तस्य प्राणा उत्क्रामन्ति ब्रह्मैव सन् ब्रह्माप्येति"** श्रुतिका विश्लेषण भी इस श्लोकमें किया है।

"वैश्वानरं याति विहायसागतः" भा० २, २, ४ में 'अर्चिरादि' मार्गका वर्णन है जिसका छान्दोग्योपनिषद्में मूल दृष्टव्य है। **"यथ पुष्कर पलाश आपो न श्लिष्यंते"** उपक्रमपूर्वक **"अर्चिषोऽहरहः"** श्रुति द्वारा परलोकगमनकी पद्धतिकी है। **"पुण्य-पापे विधूय"** श्रुति, अर्थात् "विद्वान् पुण्य पापोंका परित्याग करके वैश्वानरको

---

१. तै० उ० १, ६, ६।
२. ऐ० उ० १, १।
३. छा० १, २।
४. भा० १, १, ३।
५. भा० चन्द्रचन्द्रिका २, १, ३।

प्राप्त होता है" भी इस प्रसंगमें समालोच्य है । **"ततो विशेषं प्रतिपद्य निर्भयः"** भा० २, २, २८ । तदनन्तर निर्भय होकर विशेष पृथ्वी तत्त्वको प्राप्त करता है, तदनन्तर जल-अग्नि-वायुको प्राप्तकर आकाशको प्राप्त करता है । विशेषका अर्थ पृथिवी है । श्रुति **"पृथिवीमहं भिनद्मि"** में पृथिवीका भेदन स्पष्ट है । **"तेनात्मनात्मानमुपैति शान्तम्"** २, २, ३१ । प्रधानके द्वारा आनन्द स्वरूपसे आत्माको प्राप्त होता है । फिर इस संसारमें जीव नहीं आता । **आत्मन आकाशः संभूतः "आनंदोब्रह्म"** इस उपक्रम उपसंहारके अंशोंका सार यहाँ प्रस्तुत है । **"क्षयं तमस्य रजसः पराके आदित्य वर्ग तमसः परस्तात्"** श्रुतिमें भी प्रकृतिके आवरणोंका भेद सिद्ध है । भागवतमें भी आवरणोंका भेदन लिखा है । **"एते सृती ते नृप वेद गीते"** भा० २, २, ३२ । ये दोनों प्रकारकी मुक्ति वेद वर्णित हैं । **"यदासर्वप्रमुच्यन्ते**[1]**"** श्रुतिमें सद्योमुक्ति वर्णित है तथा **"तेऽर्च्चिभिरभि सम्भवन्ति**[2]**"** में क्रम मुक्ति है ।

वीरराघवाचार्यने 'भागवत० चन्द्रिका' टीकामें—मुक्तिमार्गके सन्दर्भमें **"ये चेमेऽरण्ये श्रद्धां तप इत्युपासते"** तथा—**"अथ य इमे ग्रामे इष्टापूर्त्तेदत्तम्"** श्रुतियोंको उद्धृत किया है । **"भगवान् सर्वभूतेषु लक्षितः स्वात्मनाहरिः"** भा० २, २, ३५ । भगवान् हरि, मन आदिके द्वारा ही लक्षित होते हैं । श्रुतिमें भी कहा है—**"मनसात्तु विशुद्धेन"** अर्थात् मन द्वारा ही वह लक्षित है । **"सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म"** तथा **"सदेव सौम्येदमग्रआसीत्"** इत्यादिसे भी वह भगवान् उपलक्षित है **"विचक्षणायच्चरणोपसादनात्"** भा० २, ४, १६ । भक्तोंको सांसारिक तापत्रयको दूरकर ब्रह्मकी प्राप्ति होती है । **"ब्रह्मविदाप्नोति परम्"** श्रुति भी प्रमाण है । **"येन स्वरोचिषा विश्वम् रोचितं रोचयाम्यहम्"** भा० २, ५, ११ । ब्रह्माका कथन है कि जिन भगवान्की शक्तिसे प्रकाशित इस विश्व को मैं प्रकाशित किया करता हूँ, 'अर्क' आदि भी चैतन्य प्रकाशका ही प्रकाशन करते हैं, श्रुतिमें कहा है—**"न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्र तारकम् ....तस्य भासा सर्वमिदं विभाति"** (मुण्डकोप० २, १०) **"नारायण परा वेदाः"** भा० २, ५, १५ । वेदोंका कारण नारायण है । श्रुतिमें प्रमाण है—**"तस्य हवा एतस्य महतोभूतस्यनिःश्वसितमेतद्‌ऋग्वेदः"** तथा—**"सर्वे वेदा यत्पदमामनंति"** चन्द्रादिदेव नारायणके अंग हैं । **"चन्द्रमा मनसो जातः ।"**

(उप०) **दोनोंके साम्य वाले पद्य**

स एव पुरुषस्तस्मादण्डंनिर्भिद्यनिर्गतः ।
सहस्रोर्वङ्घ्रि वाहु्वक्षः सहस्राननशीर्षवान् ।। (भा० २, ५, ३५)

"सहस्रशीर्षा पुरुषः" प्रसिद्ध ऋचा है । द्वितीय स्कन्धमें वेदके पुरुषसूक्तका अंश थोड़े परिवर्तनके साथ प्राप्त है, यह अंश उपनिषदोंमें भी प्राप्त है—

---

१. कठो० २, ६, १४ । २. बृह० उ० ६ ।

पुरुषस्य सुखं ब्रह्म क्षत्रमेतस्य वाहवः ।
ऊर्वोर्वैश्यो भगवतः पद्भ्यां शूद्रोऽभ्यजायत ।। (भा० २, ५, ३७)

ऋग्वेदमें—ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः ।
भूर्लोकः कल्पितः पद्भ्याम् भुवर्लोकोऽस्य नाभितः ।। (भा० २' ५, ३८)

वेदमें नाभिसे अन्तरिक्षकी उत्पत्ति कही है—"नाभ्या आसीदन्तरिक्षम्" सर्वं पुरुष एवेदम् भूतं भव्यं भवच्चयत् (भा० २, ६, १५) पुरुष एवेदं सर्व यद् भूतं यच्च भाव्यम् । (वेद) में है ।

तेनेदमावृतं विश्वम्—भा० २, ६, १५ स भूमिं विश्वतो वृत्वा० (पु० सू०) ।

भा० २, ६, १७	सोऽमृतस्याभयस्येशो मर्त्यमन्नं यदत्यगात् ।
पु० सूक्त०—	उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति ।।
भा० २, ६, १७	महिमैष ततो ब्रह्मन् पुरुषस्य दुरत्ययः ।
पु० सू०	एतावानस्य महिमाऽतो ज्यायांश्च पूरुषः ।।
भा० २, ६, १८	पादेषु सर्व भूतानि पुंसः स्थिति पदो विदुः ।
	अमृतं क्षेममभयं त्रिमूर्ध्नोऽधायिमूर्द्धसु ।।
पु० सू०	पादोऽस्य विश्वा भूतानित्रिपादस्यामृतंदिवि ।
भा० २, ६, १९	पादास्त्रयो वहिश्चासन्नप्रजानां य आश्रमाः ।।
पु० सू०	त्रिपादूर्ध्व उदैत् पुरुषः पादोस्येहाभवत्पुनः ।
भा० २, ६, २०	सृतीविचक्रमे विष्वङ् साशनानशने उभे ।।
पु० सू०	ततो विष्वङ्व्यक्रामत् साशनानशने अभि ।
भा० ६, ६, २१	तस्मादण्डंविराड् जज्ञे भूतेन्द्रियगुणात्मकः ।।
	तद् द्रव्यमत्यगाद् विश्वं गोभिः सूर्य इवातपन्
	तस्माद्विराडजायतविराजोऽधिपूरुषः ।
पु० सू०	सजातो अत्यरिच्यत पश्चात् भूमिमथो पुरः ।।
भा० २, ६, २३	तेषु यज्ञस्यपशवः सवनस्पतयः कुशाः ।
	इदं च देव यजनं कालश्चारु गुणान्वितः ।।
पु० सू०	तं यज्ञं बर्हिषि प्रौक्षन् पुरुषं जातमग्रतः ।
	तेनदेवा अयजन्त साध्याऋषयश्च ये ।।
भा० २, ६, २४	वस्तून्योषधयः स्नेहो रसलोह मृदोजलम् ।
	ऋचो यजूंषि सामानि चातुर्होत्रश्च सप्तमः ।।

पू० सू० तस्माद्यज्ञात् सर्वहुतः सम्भृतं पृषदाज्यम् ।
पशूंस्तांश्चक्रे वायव्यानारण्यान् ग्राम्यांश्च ये।।

भा० २, ६, २५ नामधेयानिमन्त्राश्च दक्षिणाश्च व्रतानि च ।
देवताऽनुक्रमः कल्पं संकल्पस्तन्त्रमेवच ।।

पू० सू० तस्माद्यज्ञात् सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे ।
छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत ।।

भा० २, ६, २६ गतयो मतयश्चैव प्रायश्चित्त समर्पणम् ।
पुरुषावयवैरेतै सम्भाराः सम्भृता मया ।।

पु० सू० तस्मादश्वा अजायन्त ये के चोभयादतः ।
गावोह जज्ञिरे तस्मात्तस्माज्जाता अजावयः।।

भा० २, ६, २७ इति सम्भृत सम्भारः पुरुषावयवैरहम् ।
तत्रैव पुरुषं यज्ञं तेनैवायजमीश्वरम् ।।

पु० सू० यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् ।
तेह नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः
सन्तिदेवाः ।।

उपनिषदों की अर्थराशि और भागवत

स्वस्थः प्रशान्तकरणः परिमुक्त संगः (भा० २, ७, १०) वह भगवान् अपनेमें ही स्थित है, श्रुतिमें भी वर्णन है "**स्वे महिम्नि प्रतिष्ठितः ।**" "**वाचोवभूवुरुशतीः श्वसतोऽस्य नस्तः**" (भा० २, ७, ११)। उन हयग्रीव भगवान्की निःश्वाससे वेदोंका आविर्भाव हुआ। श्रुतिमें भी कहा है—"**तस्य हवा एतस्य.... निःश्वसितमेतद् ऋग्वेदः**" "**विष्णोर्नु वीर्यगणनांकतमोऽर्हतीह यः पार्थिवान्यपि कविर्विममे रजांसि ।**" (भा० २, ७, ४०)। "**विष्णोर्नुकं वीर्याणि प्रवोचम् यः पार्थिवानि विममे रजांसि ।**" (ऋ० विष्णुसूक्त) अर्थात् "अब मैं विष्णुके पराक्रमका वर्णन करता हूँ, जिसने तीनों लोकोंको बनाया। भागवत एवं श्रुतिकी पदावली दृष्टव्य है।

"**शश्वत् प्रशान्तमभयं प्रतिबोधमात्रम्, शुद्धं समं०**" (भा० २, ७, ४७) अर्थात् 'भय' द्वितीयसे होता है, वह ईश्वर अभय है, "**द्वितीयाद्वै भयं भवति**" श्रुति में लिखा है। "**प्रतिबोधमात्रम्**" में "**प्रज्ञानघनएव**" श्रुतिका अर्थ है। "**विभ्रदात्मानमात्मना**" (भा० २, ९, २६)। आत्मनिमित्त और आत्मउपादानसे यह जगत् परमात्मा ने बनाया, "**तदात्मानं स्वयमकुरुत**" श्रुतिमें भी लिखा है। "**यावानहंयथाभावो**" (भा० २, ९, ३१)। मैं जितना हूँ, जैसी शक्ति-रूप-गुण-कर्मवाला हूं, वह सब तत्त्व मेरे अनुग्रहसे ही प्राप्य है। शक्तिका वर्णन "**सत्यंज्ञानमनन्तं ब्रह्म**" तथा "**यः सर्वज्ञः स सर्ववित्**" में वर्णित है। "**अहमेवासमेवाग्रे**" (भा० २, ९, ३२)। सृष्टिके

पूर्व केवल मैं ही था । **"आत्मैवेदमग्र आसीत्"** (ऐ० उ०) ऐसा श्रुतिमें भी वर्णन है । **"पुरुषो हवै नारायण"** से नारायणकी महत्ता वर्णित है । **"जिघृक्षतस्त्वङ् निर्भिन्ना तस्यांरोम महीरुहाः"** (भा० २, १०, २३) अर्थात् उष्णशीत जाननेकी इच्छा होने पर त्वक् इन्द्रिय हुई । यह ऋग्वेदीय ऐतरेय उपनिषद्में वर्णित है[1]। **"त्वङ्निरभिद्यत त्वचोलोमानि ।" इत्थं भावेन कथितो भगवान् भगवत्तमः ।** (भा० २, १०, ४४) अर्थात्-सृष्टि आदिके कर्त्ता भगवान् हैं । **"तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः संभूतः सोऽकामयत बहुस्यांप्रजायेय"** श्रुतिमें वर्णित सृष्टि प्रसंगकी ओर संकेत है । **"यमामनन्तिस्म हि शब्दयोनिं मनोमयं सत्व तुरीय तत्वम् ।"** (भा० ३, १, ३३) चित्त-अहंकार-बुद्धि-मनके ४ देव हैं—वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न-अनिरुद्ध । मनका शब्दयोनित्व प्रसिद्ध है । **"मनः पूर्वरूपं वागुत्तररूपमिति श्रुतिः । तामसोभूत सूक्ष्मादिर्यतः खं लिंगमात्मनः"** (भा० ३, ५, ३१) अर्थात्—तामस् अहंकारसे शब्द, तन्मात्रा और उससे ईश्वर का ज्ञापक शरीर आकाश उत्पन्न होता है । **"तस्माद्वाएतस्मादात्मन आकाशः संभूतः"** इस श्रुतिमें ईश्वरसे आकाशका उत्पन्न होना लिखा है । प्रतीकोपासनामें **"खं ब्रह्मोपासीत"** ऐसा लिखा है ! अतः आकाश ब्रह्मका शरीर है । **"यावद्बलिं तेऽज हराम काले यथावयंचान्नमदाम यत्र ।"** (भा० ३, ५, ४८) अर्थात्—हे अज ! हम समय पर आपको पूजें और आपके प्रसादको पावें । **"ता एनमब्रुवन् आयतनं नः प्रजानीहि यस्मिन् प्रतिष्ठिता अन्नमदाम ।"** श्रुतिका 'अन्नमदाम' पद भागवतमें ज्योंकात्यों है । **"कएषयोऽसावहमब्जपृष्ठे अधिष्ठितं यत्र सता नु भाव्यम् ।"** (भा० ३, ८, १८)

ब्रह्माने विचार किया कि "मैं पद्म पर बैठा हूँ और जलके ऊपर यह पद्म ही है, यह कहाँसे उत्पन्न हुआ ? नीचे अवश्य ही कुछ होगा जिस पर यह पद्म अवस्थित है ? श्रुतिमें भी ब्रह्माका पुष्करपत्र पर यह विचार दर्शनीय है—**"सोऽपश्यत् पुष्कर पर्णे तिष्ठन्.......अधितिष्ठति अविदो भूरितमसो घ्राणज्ञा हृद्यवेदिनः"** (भा० ३, १०, २०) तिर्यग्योनिके सभी जीव अज्ञानी हैं, केवल नासिकासे पदार्थ को जानते हैं, इनके मनमें स्मृति नहीं रहती है । **"अथेतरेषांपशूना....न विज्ञातं पश्यति"** ऐसा श्रुतिमें भी कथन है । **"एवं व्याहृतयश्चासन् प्रणवो ह्यस्य दह्रतः"** (भा० ३, १२, ४४) । **व्याहृति-भूः, भुवः, स्वः, महः**, पूर्वादि मुखसे उत्पन्न हुईं । व्याहृति वैसे तीन हैं किन्तु तीनोंको मिलाकर चार हो जाती हैं जैसा कि श्रुतिमें लिखा है—**"भूर्भुवः स्वरितिवा एतास्तिस्रोव्याहृतयः....तो चतुर्थीम्....मह इति ।"** ये आकाशसे उत्पन्न हुईं । **"स्नुतोऽनुष्टुप्"** (भा० १२, ४५) अर्थात्—ब्रह्माजीके रोमोंसे उष्णिक् छन्द निकला, त्वचामें से गायत्रीछन्द, मांससे त्रिष्टुप् तथा स्नायुमें से

---

१. **दीपनी टिप्पणी—राधारमणदास ।**

अनुष्टुप्छन्द निकला। श्रुतिमें भी कहा है '**अनुष्टुप् स्नावान्**" "**सुदर्शनास्त्रं भगवान् प्रायुंक्त दयितं त्रिपात्**' (भा० ३, १९, २२)। त्रिपाद् विभूति वाले भगवान्ने सुदर्शन अस्त्र चलाया। "**त्रयो अस्य पादाः**" ऐसा श्रुति वर्णन त्रिपाद सिद्धिमें प्रमाण है। "**देवोऽदेवान् जघनत**" (भा० ३. २०, २३)। ब्रह्मादेवने जंघासे 'लम्पट असुरों' को उत्पन्न किया। श्रुतिमें इसकी पुष्टि है "**सजघनादसुरानसृजत**"।

"**तां क्वणच्चरणाम्भोजां**" (भा० ३, २०, २९) असुरोंने उस देहको स्त्री समझा और मोहित हो गये। यह सायंतनी संध्याका वर्णन है। श्रुतिमें अहोरात्रीकी संध्याका उल्लेख है—"**साऽहो रात्रयोः सधिरभवत्**।" तथा भा० में—"**अकर्णयन् यत्ररथेन्द्रपक्षैरुच्चारितं स्तोममुदीर्ण साम**।" (भा० ३, २१ ३४) भगवान्के पधारने पर सिद्धोंने देखा कि गरुड़के पक्षोंसे सामवेदकी मंत्र ध्वनि निकल रही है। श्रुतिमें भी कहा है–"**बृहद्रथन्तरे पक्षौ स्तोमआत्मा**" सामके आधारभूत ऋक् समुदायका नाम स्तोत्र है। "**कामः स भूयात् नरदेव तस्याः**" (भा० ३, २२, १६) तुम्हारी पुत्री का वेदविहित विधिसे विवाह होगा, वेदमें कन्याका हाथ पकड़ना लिखा है और मंत्र का उच्चारण किया जाता है—"**गृभ्णामि ते सौभगत्वाय हस्तं**।" "**मद्भयाद्वातिवातोऽयम्**" (भा० ३, २५, ४२)। श्री कपिलदेवने कहा कि मेरे भयसे पवन चलता है, सूर्य मेरे भयसे तपता है। श्रुतिमें भी लिखा है "**भीषास्माद्वातः पवते**।" "**यद्विदित्वा विमुच्येत पुरुषः प्राकृतैर्गुणैः**" (भा० ३, २६, १) अब मैं तत्वोंका लक्षण बतलाता हूँ, जिन्हें जानकर पुरुष प्राकृत गुणोंसे छूट जाता है। श्रुतियोंमें भी वर्णन है-"**तमेवविदित्वातिमृत्युमेति**" "**गुर्णैविचित्राः सृजतीं सरूपाः प्रकृतिंप्रजाः**" (भा० ३, २५, ५) प्रकृति गुणोंके विचित्र रूप वाली है, वही नाना प्रकारकी सृष्टिको रचती है। श्रुतिमें भी कथन है— "**अजामेकां लोहित शुक्लकृष्णां**" (श्वेता० ४, ५)। "**पतितो भुव्यसृङ्मूत्रे विष्ठा-भूरिवचेष्टते**" (भा० ३, ३१, २४) दशमासके पश्चात् जन्मके समय 'पुरुष' मलमूत्रमें गिरता है। पुरुष असंग है। "**असंगोह्ययं पुरुषः**" (बृह० ४, ३, १५) "**सूर्यद्वारेण ते यान्ति**" (भा० ३, ३२, ७) जीव सूर्य द्वारसे जाते हैं। "**सूर्य द्वारेण ते विरजाः प्रयान्ति**" ऐसा मुण्डोकोपनिषद् (१, २, ११) में भी वर्णित है। "**इष्ट्वा स वाजपेयेन**" (भा० ४, ३, ३) दक्ष प्रजापतिने वाजपेययज्ञ पूर्ण करके 'वृहस्पतिसव' नामक यज्ञका आरम्भ किया। "**वाजपेयेन इष्ट्वा राजसूयेन यजेत**" ऐसी उप० श्रुति है।

"**चिन्मात्र मेकमभयं प्रतिषिध्य मायाम्**० (भा० ४, ७, २६) इसमें **अभयं** पदके लिये **द्वितीयाद्वै भयं भवति**" (बृह० १, ४, २) श्रुति व्याख्यात है। "**तं यज्ञियं पंचविधं च पंचभिः स्विष्टं यजुर्भिः प्रणतोऽस्मि यज्ञम्**।" (भा० ४, ७, ४१) अग्निने शिवका स्तवन किया है, वैसे बृहदारण्यकोप० में "**स एष यज्ञः**" (१, ४, १७) यज्ञकी महिमा

वर्णित है। पंचविध शब्दसे श्रुतिमें वर्णित—आश्रावय-अस्तु-श्रौषट्, यज, येयजामहे, वषट्का उल्लेख है। **"पुंसः काममुतापरे"** (भा० ४, ११, २२) कोई कर्मको, कोई स्वभावको, कोई काल एवं कामको प्रधान मानते हैं। **"कामः करोति कामोऽर्षीत्"** ऐसा उपनिषद् वाक्य भी है **"को वेदाथ स्व सम्भवम्"** (भा० ४, ११, २३) परमेश्वर के जन्मको कौन जान सकता है? **"को अद्धावेद"** (बाष्कल मंत्रोप० १०) में भी इस तथ्यको स्पष्ट किया है। **"पुत्रेण जयते लोकानिति सत्यवती श्रुतिः"** (भा० ४, २२, ४६) पुत्रके द्वारा लोकोंको जीता जाता है। यह श्रुतिका ही अंश है।

"तत्र पूर्वतरः कश्चित् सखा ब्राह्मण आत्मवान्" (भा० ४, २८, ५१) स्त्री वेषधारी पुरंजनको समझानेके लिए 'अविज्ञात' नामक उसका मित्र आया। **"द्वासुपर्णा"** श्रुतिका भाव इस कथानकमें वर्णित है। **"ज्ञानं च जनयिष्यति"** (भा० ४, २९, ३७) वासुदेव भगवान्में भक्ति करनेसे वैराग्य और ज्ञानका उदय होता है। **"तरतिशोकमात्मवित्"** ऐसा उपनिषद् सिद्धान्त है। **'निरूप्यतां सत् क्रिययानुमेयम्।'** (भा० ५, १२, ६) चर-अचरकी उत्पत्ति तथा नाश पृथिवीमें ही नित्य है, श्रुतिमें भी कहा है—**"वाचारम्भणं विकारो नामधेयं मृत्तिकेत्येव सत्यम्।"** **"संवत्सरान्ते-विनिपतन्ति"** (भा० ५, १८, १५) **"संवत्सरो वै प्रजापतिः"** संवत्सर प्रजापतिका नाम है ऐसा श्रुति प्रमाण है। **"स ईश्वरस्त्वं य इदंवशेऽनयत नाम्ना यथादारुमयीं नरः स्त्रियम्।"** (भा० ५, १८, २६) ब्राह्मणादि नामसे हे ईश्वर! तुमनेही इस विश्वको अपने वशमें कर रखा है जैसे पुतलीके नचाने वाले रस्सीसे पुत्तलिकाको वशमें रखते हैं। **"तस्य वाक् तन्तिर्नामानि दामानि"** ऐसा श्रुतिमें भी वर्णित है।

"पातु न शेकुर्द्विपदश्चतुष्पदः सरीसृपं स्थाणु यदत्रदृश्यते।" (भा० ५, १८, २७) इन्द्रादि लोकपाल, द्विपद—चतुष्पद, सरीसृप और अचरकी रक्षा करनेमें समर्थ नहीं हैं। श्रुति—**"ता अहिंसन्ताहमुकमस्म्यहमुकमस्मि। जरायुजं स्वेदजमण्डजोद्भिदं चराचरं देवर्षि पितृभूतमैन्द्रियम्।"** भा० ५, १८, ३२) जरायुज (मनुष्य) स्वेदज—मत्कुण आदि तथा पक्षी एवं वृक्षादि देव ऋषि, पितृ—भूत, इन्द्रिय, आकाश, पृथिवी, द्युलोक, पर्वत, सरित-समुद्र, द्वीप-ग्रह-नक्षत्र सब एक ही हैं। **"सर्वंखल्विद ब्रह्म"** श्रुतिकी व्याख्या उक्त श्लोकमें विस्तारसे है। **'यत्र ह वै शाल्मली····पतत्त्रिराजस्य"** (भा ५, २०, ८) शाल्मली नामक द्वीपमें भगवान्के वाहन गरुड़ विराजमान हैं। **"सुपर्णोऽसि गरुत्मान्"** श्रुतिमें गरुड़को स्मरण किया गया है।

"तत·······सहाभिजिताष्टाविंशतिः" (भा० ५, २२, ११) अभिजित सहित २८ नक्षत्रोंकी गणना है। श्रुतिमें भी निर्देश है **"अभिजिन्नाम नक्षत्रमुपरिष्टादाषाढा नामाधस्तात् श्रोणाया।"** **"यस्त्विह वै विप्रो राजन्यो वैश्यो वा सोमपीथः तत्कलत्रं वा सुरां व्रतस्थोऽपि वा पिबति प्रमादतः·····"** (भा० ५, २६, २९) जो ब्राह्मण,

क्षत्रिय, वैश्य, 'सोमपान' करे या उसकी स्त्री सुराका पान करे, चाहें व्रत ही क्यों न हो, उसे बंधनमें डालकर यमदूत उष्ण लोह पान कराते हैं। श्रुतिमें कहा है **"न्यग्रोधस्तन्तीराहृत्य न सौमम्"** **"वेदो नारायणः साक्षात्"** (भा० ६, १, ४०) वेद विहित आचरण धर्म है, वेदविरुद्ध आचरण ही अधर्म है, क्योंकि 'वेद' साक्षात् नारायण है। श्रुति प्रमाण है—**"अस्यमहतोभूतस्यनिःश्वसितमेतद् ऋग्वेदो यजुर्वेदः ।"** **"अस्तीतिनास्तीति च वस्तुनिष्ठयोः एकस्थयोर्भिन्न विरुद्धधर्मयोः ।"** (भा० ६, ४, ३२) अर्थात्—ईश्वर विरुद्ध धर्मवाला है। 'अपाणिपाद' वह हाथ पैर रहित है फिर भी सब कार्य करता है श्रुति प्रमाण है। **"ऋणैस्त्रिभिरमुक्तानाम् ।"** (भा० ६, ५ ३७)

'तीन ऋणोंसे अमुक्त' यह दक्षका नारदके प्रतिकथन है। नारदने दक्षके १० सहस्त्र पुत्रोंको बन जानेका परामर्श दिया। दक्षके पुत्र लौटकर वनसे न आये तब दक्षने नारदको देखकर आक्रोश प्रकट किया है। नारदने पितृ ऋण भी तो नहीं चुकाया था, अतः तीन ऋणोंका धारयिता नारदके लिये कहा है। श्रुतिमें भी वर्णन है—**"जायमानो वै ब्राह्मणस्त्रिभि र्ऋणैः०"** ब्राह्मणको तीन ऋण पूरे करने चाहिये। **"नेत्थं पुंसां विरागः स्यात्"** (भा० ६, ५, ४०) इस प्रकार पुरुषोंको वैराग्य नहीं होता क्योंकि स्नेहकी पाशका काटना कठिन होता है। श्रुतिमें ऐसा वर्णन है कि जब वैराग्य हो जाय तब सन्यास लेना उचित है—**"यदहरेवविरजेत तदहरेव प्रव्रजेत ।"** **"तस्यासन्विश्वरूपस्य'** (भा० ६, ९, १) विश्वरूपके तीन मस्तक थे। एकसे सोमपान, द्वितीयसे सुरापान और तृतीयसे अन्नसेवन करता था। श्रुतिमें भी **"विश्वरूपो वै त्वाष्ट्रः"** आता है। **"द्रव्यभूयोवरेणापस्तुरीयं जगृहुर्मलम् ।"** (भा० ६, ९, १०) इन्द्रने जलमें ब्रह्म हत्याका अंश स्थापित किया और उन्हें सब द्रव्योंमें मिलनेका वर प्रदान किया **"तस्मादापो नपरिचक्ष्या"** श्रुति वर्णन है। **"इन्द्रशत्रो विवर्धस्व"** (भा० ६, ९, ११) त्वष्टाने इन्द्रके वधके योग्य पुत्रकी कामनासे चरु प्रदान करते हुए स्तवन किया। श्रुतिके शब्द इस प्रकार हैं—**"यदब्रवीत् स्वाहेन्द्रशत्रोवर्धस्व ।"** **"येनावृता ....सर्वं वृत्र इतिप्रोक्तः"** (भा० ६, ९, १८) जिसने सारे लोकोंको आच्छादितकर लिया, ऐसा वृत्रासुर त्वष्टाने उत्पन्न किया। श्रुतिमें भी इसका उल्लेख है—**"स इमांल्लोकानावृणोत्तत्वृत्रस्य वृत्रत्वम् ।"** **"सवा⋯यद्वा अश शिरोनाम० ।"** (भा० ६, ९, ५२) भगवान्‌ने देवोंको अश्वशिरा दधीचिके पास भेजा, दधीचिके अस्थिपंजरसे निर्मित वज्रसे देवोंने वृत्रको मारा था। इन्हें अश्वशिरा कहा गया है क्योंकि अश्विनीकुमारोंने अश्वका शिर लगाकर इनसे विद्या पढ़ी थी। इन्द्रका भय मानकर उन्होंने ऐसा किया था। अश्वशिर छेदनके पश्चात् पुनः पूर्व शिर लगाया था। श्रुतिमें आता है—**"अश्वस्यशीर्ष्णाप्रयदीमुवाच"** **"आत्मानं सृजते प्रभुः ।"** (भा० ६, १६, १९) भगवान् ही अपने द्वारा विश्वकी रचना करते हैं। **"तदात्मानं-**

स्वयमकुरुत" ऐसा श्रुति प्रमाण भी है। **"अग्नीन्पुरीष्यानाधत्त।"** (भा० ६, १८, ४) पुरीषीमें अग्नि हुए। **"पुरीष्यासो अग्नयः"** श्रुतिमें अग्निके लिये यह विशेषण भी दिया है। ५ अग्नियोंका वर्णन है। **"मुख्योऽस्यत्र महानसुः"** (भा० ७, २, ४५) में—**"प्राणो वै मुख्यः"** श्रुति है। **"आत्मा नित्योऽव्ययः शुद्ध एकः क्षेत्रज्ञ आश्रयः।"** (भा० ७, ७, १९) में अविनाशी **"वारेऽयमात्मा एकमेव द्वितीयं ब्रह्म"** आदि श्रुतियाँ हैं। **"क्षयिष्णवः सातिशया न निर्मलाः"** (भा ७, ७, ४०) स्वर्गादि लोक क्षयी हैं श्रुतिमें **"तद्यथेह कर्मचितो लोकक्षीयतएव"** वर्णन है। **"नृसिंहविरिञ्चगीताः।"** (भा० ७, ९, १८)। विरिञ्चने जो कथा गाई, वह सुनूंगा। आथर्वणीश्रुतिमें वर्णन है, देवगण प्रजापतिके पास गये—**"देवा ह वै प्रजापतिमब्रुवन्"** **"त्वं वा इदम् सदसदीश"** (भा० ७, ९, ३१) में **'वाचारम्भण'** **'रूपे इमे सदसती'** (भा० ७, ९, ४७) में **'स ऐक्षत'** **'आद्यन्तवन्तउरुगाय विदन्ति हि त्वाम्'** (भा० ७, ९, ४९) में **'किमर्था वयमध्येष्यामहे'** श्रुति है। **'विमुंचति यदाकामान्'** (भा० ७, ९, १०) में **'यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते'** **'भोगेन पुण्यं कुशलेन पापम्** (भा० ७, १०, १३) में **'सुकृत दुष्कृते विधुनुते'** श्रुति एवं **'तदधिगम उत्तरपूर्वाघयोरश्लेषविनाशौ०'** सूत्र व्याख्यात है।

आत्मानं चेद्विजानीयात्परं ज्ञान धुताशयः।
किमिच्छन्कस्यवाहेतोर्देहं पुष्णाति लंपटः॥ (भा० ७, १२, ४० में)

आत्मानं चेद्विजानीयादयमस्मीतिपुरुषः किमिच्छन्कस्य कामाय शरीरमनुसज्ज्वरे। श्रुति थोड़े परिवर्तनके साथ द्रष्टव्य है। **'द्रव्य सूक्ष्मविपाकश्च।'** (भा० ७, १५, ५०) में **'पंचम्यामाहुतावापः'** श्रुति वर्णित है। **'य एते पितृदेवानाम् अयने वेद निर्मिते'** (भा० ७, १५, ५७) में **'ते धूममभिसंभवन्ति'** श्रुति है। **'भावाद्वैतं क्रियाद्वैतं द्रव्याद्वैतं तथात्मनः'** (भा० ७, १५, ६२) में **'त्रय आवसथास्त्रयः स्वप्नः'** श्रुति है। **'आत्मावास्यमिदं विश्वम्'** (भा० ८, १, १०) में **'ईशावास्यमिदं विश्वम्'** श्रुति ज्यों की त्यों है। **'यत्र पश्यति पश्यन्तं चक्षुर्यस्य न रिष्यति'** (भा० ८, १, ११) में **'चक्षुषश्चक्षुरुत श्रोत्रस्य श्रोत्रम्'** तथा **'मनोऽग्रयानम्।'** (भा० ८, ५, २६) में **'मनसो जवीयो'** **'आसांचकारोपसुपर्णमेनम्'** (भा० ८, ५, २९) में **'द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया'** **'यच्चक्षुरासीत्तरणिर्देवयानम्'** (भा० ८, ५, ३६) में **'त्रयीमयः श्रुति'** **'विप्रो मुखं ब्रह्म च यस्य गुह्यम्'** (भा० ८, ५, ४१) में **'ब्राह्मणोऽस्यमुखम्'** है। **'अग्निर्मुखं तेऽखिल-देवतात्मा'** (भा० ८, ७, २५) में **'अग्निः सर्वादेवता।'** **'सत्र यागश्चैतस्मिन्'** (भा० ८, ८, ३९) में **'ऋद्धिकामाः सत्रमासीरन्'** श्रुति है।

'चतुः शृंगाय तन्तवे' (भा० ८, १६, ३१) में **'चत्वारि शृंगा त्रयोअस्यपादाः'** है। **'ध्यायन् फेनमथापश्यत्'** (८, ११, ४०) में **'अपां फेनेन नमुचेः शिर इन्द्रोदवर्तयत्'**

श्रुति है इन्द्रने जलके झागसे नमुचिका शिर काट डाला। **'शिपिविष्टाय विष्णवे'** (भा० ८, १७, २६) में **'शिपिर्यज्ञ एवपशुषु प्रतितिष्ठति।'** **'श्रोणायांश्रवण द्वादश्याम्'** (भा० ८, ८, ५) में **'अभिजिन्नाम नक्षत्रम्·····श्रोणायाः'** श्रुति है। श्रोणा शब्दका प्रयोग यहीं हुआ है, यह वैदिक प्रयोग है। **'सत्यमोमति प्रोक्तंयन्नेत्याहानृतं हितत्'** (भा० ८, १६, ३८) में **'ओमितिसत्यम् नेत्यनृतम्'** श्रुतिवर्णित है। **'अथैतत् पूर्वमभ्यामम् सर्वमेत्यनृतं ब्रूयात्'** (भा० ८, १६, ४२) में **'अथैतत्पूर्णमभ्यात्ममयन्नेति स सर्वम्'** श्रुति है। **'यत्सेवयाग्नेरिव रुद्ररोदनम्'** (भा० ८, २४, ४८) में **'यदरोदीत्तद्रुद्रस्यरुद्रत्वम्'** श्रुति वर्णित है। रुदन करनेके कारण रुद्र नाम वैदिक संप्रदाय सिद्ध है। **'उच्छिष्टमृषयः क्वचित्'** (भा० ६, ४, ८) में **'उच्छेषण भागो वैरुद्रः'** यज्ञमें उच्छिष्ट भाग रुद्रका होता है।

'तांस्त्वं शंसय सूक्ते द्वे' (भा० ६, ४, ४) में वैश्वदेव कर्ममें **'इदमित्थारात्रम्'** और **'येयज्ञेन दक्षिणया'** नामक दो सूक्त अंगिरा ब्राह्मण भूल जाते थे, श्रुति पुष्ट है। नाभागकी कथा उपनिषदोंकी कथा है **'अंगिरसो वा इमे स्वर्गाय लोकाय सत्रमासते।'** **'त्रैशंकवो हरिश्चन्द्रोविश्वामित्रवसिष्ठयोः'** (भा० ६, ७, ७)। **'हरिश्चन्द्रोहवैधस-ऐक्ष्वाकोराजा पुत्र आस'** हरिश्चन्द्रका उपाख्यान औपनिषदिक है यह उक्त श्रुति द्वारा प्रमाणित है। सम्पूर्ण उपाख्यान ऐतरेय ब्राह्मणमें भी द्रष्टव्य है। **'अथैनमुवाच वरुणं राजानमुपधाव पुत्रो मे जायताम्'** **'तेन त्वायज इति तथेति तस्य ह पुत्रो जज्ञे रोहितोनामा'** **'तं होवाचाजनि वै ते पुत्रो यजस्व मानेनेति सहोवाच यदा वै पशुर्निर्दशो भवत्यथस मेध्यो भवति इति।'** भागवतके नवमस्कन्धके सप्तमाध्यायके **'वरुणं शरणं यातः पुत्रो मे जायता-मिति'** (भा० ६, ७, ८) से समग्र श्लोक इस ब्राह्मण भागके अनुवाद हैं, कहीं पूरा शब्द साम्य है। **'मित्रावरुणयोर्जज्ञे उर्वश्यांप्रपितामहः'** (भा० ६, १३, ६) उर्वशीके दर्शनसे निकला हुआ 'रेत' कुम्भमें रखा। इस मित्रावरुणके रेतसे वसिष्ठका जन्म हुआ। **'कुम्भे रेतः सिषिचतुः समानम्'** श्रुतिमें इस आख्यानका स्रोत है। **'शमीगर्भं विलक्ष्य सः'** (भा० ६, १४, ४४) शमीगर्भसे अग्नि मंथनकी कथा श्रुतिमें है **'शमीगर्भादग्निं ममन्थ।'**

विश्वामित्रस्य चैवासन् पुत्रा एकशतं नृप।
मध्यमस्तु मधुच्छन्दा मधुच्छन्दस एव ते॥ (भा० ६, १६, २६)

विश्वामित्रका उपाख्यान भी उपनिषदोंमें वर्णित है—**'तस्य ह विश्वामित्रस्यैक शतं पुत्रा आसुः पंचाशदेव ज्यायांसो मधुच्छन्दसः।'** शुनःशेप नामक ऋषिको कई वैदिक सूक्तोंका द्रष्टा माना जाता है इस प्रकार नवमस्कन्धके अनेक आख्यान वैदिक हैं। भगवान् रामका चरित तो रामोत्तर-तापिनी आदि उपनिषदोंमें वर्णित ही है।

'सत्यव्रतं सत्यपरं त्रिसत्यम्' (भा० १०, २, २६) में 'तत्सत्यम्' यह श्रुति है। समग्र दशमस्कन्धमें सैकड़ों उपनिषद् वाक्य हैं, केवल दिग्दर्शन मात्रके लिए कुछ श्रुतियोंको भागवत श्लोकोंके साथ प्रदर्शित किया है। वेदस्तुति की श्रुतियां श्लोकोंके साथ रखी हैं। वेदस्तुतिमें २८ श्रुतियोंका उल्लेख है, जिनकी ओर केवल विजयध्वजाचार्यने अपनी पदरत्नावली नामक टीकामें इंगित किया है। उन्होंने यह भी लिखा है कि यह निरूपण वेदव्यासने ही किया है—

सर्वश्रुत्यर्थसम्पन्नान् श्लोकान् सत्यवती सुतः
एकैक शाखाश्रुत्यर्थान् जगौ सर्वोपलक्षणान्[1]।
वबन्ध तान् भागवते प्रतिश्लोकं प्रथक् श्रुतीः ॥

संख्याका उल्लेख जीवगोस्वामी प्रभृति टीकाकारोंने भी किया है[2]। विश्वनाथ चक्रवर्तीने इस स्तुतिके—'**बुद्धीन्द्रिय मनः प्राणान्**' श्लोक अंशको ब्रह्म उपनिषद्का अंश लिखा है[3]।

वृहद्धि दृष्टमवशेषितंयत् स्वरूपमीशस्य तमोऽधिकस्य।
सर्वाधिकत्वेन तमोहिदुर्गा ततस्तथैनं विबुधा यथाऽगुः ॥ (पदरत्ना० १०-८७।१४)

यह औद्दालकि श्रुतिका भाग है जो भागवतमें इस प्रकार है—

बृहदुपलब्धमेतदवयन्त्यवशेषतया यत उदगास्तमयौविकृतेर्मृदिवा विकृतात्।
अत ऋषयो दधुस्त्वयिमनोवचनाचरितं कथमयथाभवन्तिभुवि दत्तपदानि नृणाम् ॥

"इति तवसूरयस्त्र्यधिपतेऽखिललोक मलक्षपण कथा मृताब्धिमवगाह्य तपांसिजहुः। किमुत पुनः स्वधाम विधुताशयकालगुणाः परम भजन्ति ये पदमजस्र-सुखानुभवम्। (भा० १०।८७।१६) यह श्लोक निम्न श्रुतिका सार कहा जाता है—

"त्यजन्ति तापं य उते भवत्कथा इतिस्म मुक्ताः किमुत स्वरूपगाः।
परावरेशेश पदं भजन्तः परं परानन्दमनारतन्त, इन्द्रद्युम्न श्रुति ॥"

जगत् पालन, उत्पत्ति, संहारक अधीशकी कथाओंका अवगाहन कर, संसारके तापसे अनेक लोग बचे हैं। उक्त अर्थ दोनोंमें हैं।

दृतय इव श्वसन्त्यसुभृतो यदि तेऽनुविधा महदहमादयोण्डमसृजन् यदनुग्रहतः।
पुरुषविधोऽन्वयोऽत्र चरमोऽन्नमयादिषु यः सदसतः परं त्वमथ यदेष्ववशेषमृतम् ॥
(भा० १०, ८७, १७)

पैंगी श्रुतिमें यह इस प्रकार है—

अनिशमनुश्वसन्त्यसुखोद्भरितास्तव रिपवो हतिवत्तमसि प्रविष्टाः तव।
गुणप्रथना परिहाय तमः पर्यान्ति तेपदमजस्रमनन्तसुखम् ॥

---

१. पदरत्नावली १०, ८७, १४। २. क्रमसन्दर्भ १०, ८७, १४।
३. सा० द० १०, ८७, २।

[किन्तु इस श्रुतिका अन्तिम चरण स्तुति १६वें अन्तिम चरणसे ज्योंका त्यों मिलता है ।]

उदरमुपासते य ऋषि वर्तमसु कूर्पदृशः परिसर पद्धतिं हृदयमारुणयो दहरम् ।
तद उदगादनन्त तव धाम शिरः परमं पुनरिह यत्समेत्य न पतन्ति कृतान्त मुखे ।।
(भा० १०, ८७, १८)

यह श्लोक हिरण्यनाभ श्रुतिका सार है । इस श्रुतिमें उदरंब्रह्मकी व्याख्या इस प्रकार है—**"तंप्रपदाभ्यांप्रापद्यत ब्रह्मेमं पुरुषंयत्प्रपदाभ्यां प्रापद्यत ब्रह्मेमं पुरुषं तस्मात् प्रपेदे इत्याचक्षेत........अमवता गुरु गृणीहीत्यब्रवीत्तदुदरमभवत् उर्वेवमे ब्रवीत्तदुदरोभवदुदरं ब्रह्मे ति शार्कराक्षा उपासते । हृदयंब्रह्मेत्यारुणयो....।"** **"उदरम्—पूर्ण ब्रह्म उद्गतः अरः परिच्छेदो यस्यात्तदुदर"** इस प्रकार उदरकी व्याख्या भी इस उपनिषद् भागमें की गई है ।

स्वकृत विचित्रयोनिषु विशन्निव हेतुतया ।
तरतमश्चकास्यनलवत् स्वकृतानुकृतिः० ।।

ज्ञानी लोग आनन्द रूपसे आपकी उपासना करते हैं । विभिन्न योनियोंमें आप प्रविष्टसे प्रतीत होते हैं । कमठ श्रुतिमें इसका मूल इस प्रकार है—

यो जीववद्योनिषु आत्यनन्तो मूढैस्तमोगैर्भरताधिगम्यः ।
निचाय्य तं शाश्वत आत्मसंस्थ तदिच्छवोत्मन्यदधुर्महान्तः ।।

इस श्लोकमें 'भरत' शब्दकी व्याख्या दृष्टव्य है—

रतत्वाद्भात्मके विष्णावथवापि जगद्भृतेः ।
भरतोवायुरुद्दिष्टो भारती तत्सरस्वती ।।

"दुखगमात्मतत्वनिगमायतवात्ततनोश्चरितमहामृताब्धि परिवर्त परिश्रमणाः ।" (भा० १०।८७।२१) इस श्रुतिका मूल कुशिक श्रुतिमें इस प्रकार है—

विमथ्य वेदाधिमति श्रमेण ज्ञात्वा परेशे मुनयो विमुक्ताः ।
मृशन्ति यज्ञेश्च यजन्ति नित्यमुपासते वेदफलप्रदं तम् ।।

वेदरूपी समुद्रको मथकर श्रमपूर्वक परेशको जानकर ज्ञानी लोग वेदफलप्रद उसका स्तवन करते हैं ।

त्वदनुपथं कुलायमिदमात्म सुहृत् प्रियवच्चरति ।
तथोन्मुखे त्वयि हिते प्रिय आत्मनि च ।। (भा० १०, ८७, २२)

कुछ सन्त अपवर्गकी कांक्षा भी नहीं करते । उपासना द्वारा अपवर्गकी उपलब्धि उन्हें तुच्छ लगती है । आचार्य विजयध्वजने इसमें श्रुत्यन्तर मात्र लिखा है, किसी श्रुतिका उल्लेख नहीं किया है । **"निभृत मरुन्मनोऽक्ष दृढयोग युजो"** (भा० १०, ८७, २३) इसमें प्रसिद्ध श्रुतिका अभिप्राय वर्णित है—

असुर्या नाम ते लोका अन्धेन तमसावृताः ।
तांस्ते प्रेत्याभिगच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः ।।
"कइह नुवेद बतावर जन्म-लयोऽग्रसरं ।
यत उदगादृषिर्यमनुदेवगणा उभये ।। (भा० १०, ८७, २४)

विजयध्वजके अनुसार यह 'सांकृति श्रुति' का अर्थ है । जिसका मूल यह है—"त्वे वेत्थनापरस्ते स्वरूपं न नित्यवाङ् भाग भोग प्रियस्य कुतो ब्रह्मा प्राप्त लोकश्च-देवास्तथा प्राप्ता जनिमन्तो यतोऽस्मात्" वेदशास्त्रके बिना आपके रूपका जानना अत्यन्त कठिन है । "जनिमसतः सतो मृतिमुतात्मनि ये च भिदां"(भा० १०, ८७, २५) विजयध्वज सम्मतपाठ—"तर्हि न सन्न चासदुभयं न च कालजवः" (भा० १०, ८७ २४) भागवतकी इस स्तुतिमें निम्न श्रुति है—"नासदासीन्नोसदासीत्तदानीम्" इस श्रुतिके सन्दर्भका उल्लेख नहीं है । "सदिवमनस्त्रिवृत्त्वयि विभात्यसदामनुजात्" विजयध्वज सम्मत पाठ—"त्रिगुणमयःपुमानिति यदवोधकृता त्वयि ननु भवेत्त-दवबोधरसे ।" (भा० १०, ८७, २६) इसका मूल यह है—

सत्वादिकं देहमथोमनश्च सत्वादि बद्धञ्च वदन्त्यसन्तः ।
परं पुमांसं नसुरास्तुर्तीह जीवाः सुदृष्टाः परमार्थरूपाः ।।

जीव, सत्व रज-तमगुणमय है । "तव परि ये चरन्त्यखिलसत्वनिकेततया० ।" विजयध्वज सम्मत पाठ—"नहि विकृतिं त्यजन्ति कनकस्य तदात्मतया ।" (भा १०, ८७, २६) इसकी श्रुतिका मूल यह है—

सर्वगं ये प्रपश्यन्ति ब्रह्मानन्दमजाक्षरम् ।
एकमेवाद्वयं नित्यं निर्ऋतेस्ते शिरोगताः ।।

'हरि' सब सुर-असुर आदिमें व्याप्त हैं । जैसे 'सुवर्ण' कंकण-कटक आदि सबमें व्याप्त है । "त्वमकरणः स्वराडखिल कारक शक्तिधरस्तव" (भा० १०, ८७, २८) इसमें कोई स्पष्ट श्रुतिकी व्याख्या विजयध्वजने नहीं दी है । वैसे इसमें भगवान् के पराक्रमका निरूपण है उसकी परिचायिका श्रुति यह है—"भीषास्माद्वातः पवते भीषोदेति सूर्यः" 'अकरण शब्द द्वारा उसे इन्द्रिय रहित कहा है जो निम्न श्रुतिमें है—"अपाणिपादो जवनोगृहीतो पश्यत्यचक्षुः स श्रृणोत्यकर्णः" "स्थिर चर जातयः स्युरजयोत्थनिमित्तयुजो" इस श्लोकमें खण्डधीशोंकी चर्चाकी गई है जो साण्डिल्य श्रुतिकी छाया है ।

खण्डाधीशाः सार्व भौमस्य यद्ब्रह्मेशाद्याः कुर्वते तेऽनुशान्ति ।
त्वं मुक्तिदो बन्धदोऽतोमतोनस्त्वं ज्ञानदोऽज्ञानदश्चासिविष्णो ।।

"न हिपरमस्य कश्चिदपरो न परस्य भवेत्" (भा० १०, ८७, २९) में "अत्र प्राणान्नान्यस्तुल्य शून्यस्यसन्धिन् प्राणाधीना अमिता जीव संघाः" तथा—"न तत्स-

मश्चाभ्याधिकश्च दृश्यते" अर्थात् उस परमपिता परमात्माके समान कोई भी नही है। '**न घटत उद्भव प्रकृतिपूरुषयोरजयोरुभय युजा"** (भा० १०, ८७, ३१) इसमें कलाप श्रुतिका अर्थ है—

"मुच्यते तत्वसम्वुद्धादाचार्यात् पुरुषो भवात्।
एतावेव स्वतो बद्धौ परमः प्रकृतिस्तथैति॥"

"त्वयि त इमे ततो विवुधा नामगुणाः" (भा० १०, ८७, ३१) में **"यो नः पिताजनिता यो विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा।"** यह श्रुति वर्णित है। **"इहभवच्चरणेषु सुजात भुवो"** (भा० १०, ८७, ३२) **"जितहृषीक वायुभिरुदात्त-महत्तुरगैः।"** (भा० १०, ८७, ३३) में **"यस्यदेवे परा भक्तिर्यथादेवे तथागुरौ"** श्रुति का भाव इसमें वर्णित है। **"स्वजनसुतात्मदार धन-धाम-धरा-सुरथैः"** (भा० १०, ८७ ३४) **"नास्त्यकृतः कृतेन"** यह श्रुति इसमें वर्णित है। **"इति सदजानतांमिथुनतो रतये चरतां सुखयति०"** (भा० १०, ८७, ३४) में **"ब्रह्मा ज्ञात्वेति लोक प्रवृत्ति प्रवर्तताम् को नुमोक्षंददाति अतोब्रह्मोपासते"** यह श्रुति वर्णित है।

(ग) ब्रह्मसूत्रोंके पद पदांश और भागवत—

ब्रह्मसूत्र	अध्याय-पाद-सूत्र	**भागवत**	स्क० अ० श्लो०
अथातो ब्रह्म जिज्ञासा	१, १, १	**ब्रह्म परं ज्योतिः**	१०, ६३, ३४
		जिज्ञास्यम्	२, ६, ३५
जन्माद्यस्ययतः	१, १, २	**जन्माद्यस्ययतः**	१, १, १
शास्त्र योनित्वात्	१, १, ३	**शास्त्रयोनेः**	२०, ८४, २०
ईक्षतेर्नाशब्दम्	१, १, ५	**ईक्षेत**	११, १३, ३४
		योऽस्योत्प्रेक्षक	१०, ८७, ५०
आत्मशब्दात्	१, १, ६	**आत्मनित्यः**	७, ७, १६
मोक्षोपदेशात्	१, १, ७	**मुक्तोऽपि**	५, १, १६
हेयत्वावचनाच्च	१, १, ८	**त्यक्त्वा स्वधर्मं**	१, ५, १७
		त्यजेत	७, ३, १३
स्वाप्ययात्	१, १, ९	**स्वापं यातं**	१०, ५१, २२
		परागतिः	१, २, २९
गति सामान्यात्	१, १, १०	**गतिस्मितं**	१०, ३०, ३
		गतिजिगीषतः	२, १०, २५
		गतयोमतयः	२, ६, २६
श्रुतत्वाच्च	१, १, ११	**श्रुतं च**	११, १०, २१

		श्रुतः कविर्वृषो वीरः	१०, ६१, १४
		श्रुतो भगीरथात् जज्ञे	९, ९, १६
		श्रुतमृन्वीक्षितंब्रह्मन्	४, २९, २६
आनन्दमयः	१, १, १२	आनन्दानुभूत्यैव	६, १६, २०
विकार शब्दात्........	१, १, १३	विकारः ख्यायमानोऽपि	१२, ४, २९
		विकारैः सहितो युक्तैः	३, ११, ३९
तत्हेतुव्यपदेशाच्च	१, १-१४	हेतुर्जीवोऽस्यसर्गादेः	१२, ७, १८
मान्त्रवर्णिकमेवचगीयते	१, १ १५	गीयतेपरमंपुण्यम्	७, १, ५
		वर्णितं	१०, ७४, ५०
नेतरोऽनुपपत्तेः	१, १, ६		
भेदव्यपदेशाच्च	१, १, १७	भेद दृष्ट्याभिमानेन	३, ३२, १३
कामाच्चनानुमानापेक्षा	१, १, १८	कामाद् द्वेषात्	७, १, २९
		कामात् कामयते	७, ७, ४३
		कामानतृप्तः	११, २६, ६
		कामैरुच्चावचैः	७, ११, २७
अस्मिन् अस्य च	१, १, १९	अस्मिन् लोके	४, १८, ३
		अस्मिन्नप्यन्तरे	१२, ६, ४८
		अस्यासि हेतु	११, ६, १५
		अस्यमेपादसंस्पर्शो	१०, ८३, १६
		अस्य ब्रह्मासनंदत्तम्	१०, ७८, ३०
		अस्यापि देव	१०, १४, २
		अस्यौव भार्या	१०, ५३, ३७
अन्तस्तद्धर्मोपदेशात्	१, १, २०	अन्तः शरीर	२, १०, १५
		अन्तः स	३, ११, ३१
		अन्तस्थः	१, ८, १४
भेदव्यपदेशाच्च	१, १, २१	भेददृष्ट्या	३, ३२, १३
		खमादिः	१०, ४०, २
तल्लिगात्	१, १, २२	लिगंचतापसाभीष्टं	४, ६, ३६
		लिगमेवाश्रमख्याता	१२, २, ४
अतएवप्राणः	१, १, २३	अतएवस्वयम्	६, ९, ४३
		अतएवशनैश्चितम्	३, २७, ५
		प्राणाः	२, १०, १६
		प्राणवृत्यैव	११, ७, ३९

रूप०	१, २, २२	रूपं भगवता	४, ३०, २७
वैश्वानरः	१, २, २४	वैश्वानरं	२, २, २४
स्मर्यमाणम्	१, २ २५	स्मरन्	३, ६, १०
शब्दादिभ्यः	१, २, २६	शाब्दस्यहि	२, २, २
पुरुष विधम्		पुरुषविधः	१०, ८७, १७
अतएव न देवता	१, २, २७	अत एवं	६, ६, ३३
भूतंच		देवताः	३, २०, २२
		भूतमात्रेन्द्रिय	२, १०, ३
जैमिनः	१, २, २८	जमिनेः	१२, ६, ७५
अभिव्यक्ते	१, २, २६	व्यक्तं	७, ३, ३३
स्मृतेः	१, २, ३०	स्मरतां	६, ११, १६
जैमिनेः	१, २, ३१	जैमिनेः	१२, ६, ७५
आमनन्ति	१, २, ३०	आमन्त्रय	३, २२, २६
द्यु्म्वाद्यायतनम्	१, ३, १,	भूर्लोकः	२, ५, ३८
मुक्त	१, ३, २	मुक्ताः	११, २०, ३०
स्थित दनाभ्यां च	१, ३, ७	खादति पिप्पलान्नम्	११, ११, ६
भूमा प्रसादात्	१, ३, ८	भूमा	१०, २६, ५७
धर्मोपपत्तेः	१, ३, ६	धर्ममयः	२, ४, १६
अक्षरम्	१, ३, १०	अक्षरम् ब्रह्म	२, १, १७
दहर उत्तरेभ्यः	१, ३, १४	आरुणयो दहरम्	१०, ८७, १८
ह्यपेक्षयातु	१, ३, २५	केचिद् हृदयावकाशे	२, २, ८
ज्योतिष भावाच्च	१, ३, ३२	ज्योतिः सनातनम्	१२, २८, १५
शुगस्यतदनादर श्रवणात्	१, ३, ३४	शूद्रद्विजबन्धूनाम्	१, ४, २५
संस्कार परामर्शात्०	१, ३, ३६	संस्कारायत्रावच्छिना	७, ११, १३
ज्योतिर्दर्शनात्	१, ३, ४०	ब्रह्म ज्योतिर्निर्गुण	१०, ३, २४
आकाशोऽर्थान्तरत्वात्	१, ३, ४१	अन्तः शरीर आकाशात्	२, १०, १५
सुषुप्युत्क्रान्तयोर्भेदेव	१, ३, ४२	सुषुप्तिरितिवृत्तयः	७, ७, २५
पत्यादिशब्देभ्यः	१, ३, ४३	श्रियः पतिः यज्ञपतिः	२, ४, २१
सूक्ष्मं तु तदर्हत्वात्	१, ४, २	सूक्ष्मज्ञाः संप्रचक्षते	१२, ४, ३५
चमसवत् अविशेषात्	१, ४, ८	इडोदरे चमसा	३, १३, ३६
ज्योतिषैकेषा	१, ४, १३,	ज्योतिश्चक्र् जलं तेजः	१०, ८, ३८

अरूपवदेव	३, २, १४	अरूपायोरुरूपाय	८, ३, ९
····सूर्यकादिवत्	३, २, १८	अर्कस्यवासना	६, ६, १४
अव्यक्तम्	३, २, २३	अव्यक्तस्य	४, ११, २३
····अनन्तेन	३, २, २७	अनन्तमाद्यं परिपूर्णमीडे	८, ३, २१
पादवत्	३, २, ३४	पादेषु	२, ६, १९
फलमत	३, २, ३९	फलार्थी	१०, ११, १०
परः	३, ३, ८	परोरजः	५, ७, १४
आनन्द	३, ३, १२	आनन्द	१०, ८३, ३
आध्यानाय	३, ३, १५	ध्याने	३, ९, ४
आत्म	३, ३, १६, १७	आत्मा	१०, ५८, ३२
····द्यु व्याप्त्यपि चातः	३, ३, २३	द्यु	५, २०, ४३
सैव हि सत्यादयः	३, ३, ३९	सत्यं	१, १६, २७
			१, १, १
विद्यै व तु	३, ३, ४८	विद्यया च	७, ५
मन्त्रादिवत्	३, ३, ५८	मन्त्रार्थतत्ववित्	१०, ७०, ४६
नाना शब्द	३, ३, ६०	नाना वर्ण	११, ५, २०
विकल्पः	३, ३, ६१	विकल्पंच	११, २०, २
यथाश्रयभावः	३, ३, ६३	आश्रयणम्	४, ८, ४५
असकृत्	४, १, १,	अनुदिनम्	४, २३, ३९
आत्मेति	४, १, ३	अहमात्मा	३, ९, ४२
ब्रह्म दृष्टिः	५, १, ५	ब्रह्म ज्योतिः	१०, ३, २४
आसीनः	४, १, ७	आसीनः	११, १४, ३२
ध्यानात्	४, १, ८	ध्यायन्	४, ८, ७७
ऐकाग्रता	४, १, ११	एकत्र	११, १४, ४३
भोगेन	४, १, १९	भोगेनकुशलम्	७, १०, १३
वाङ्मनसि	४, २, १	वाचं जुहाव मनसि	१, १५, ४१
मनः	४, २, ३	मनः	२, २, १५

अथातो ब्रह्मजिज्ञासा १।१।१

ब्रह्मके सम्बन्धमें जिज्ञासा करनी चाहिए। 'अथातो' में 'अथ' 'आतो' ऐसा पदच्छेद करके 'आतो' का अर्थ वासुदेव किया है अर्थात् वासुदेवसे ही ब्रह्म सम्बन्धी जिज्ञासा परिपूर्ण होती है। ब्रह्म शब्दका भागवतमें अनेक स्थलों पर उल्लेख है यथा— **"ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते"** १।२।११ **"पूर्णं ब्रह्म सनातनम्"**

१०।१४।३२ ब्रह्मसूत्रके विशिष्ट पद 'जिज्ञासा' का विवेचन भी भागवतमें है। **"तस्मात् गुरुं प्रपद्येत जिज्ञासुः श्रेय उत्तमम्"** जिज्ञासुको गुरुकी शरणमें जाना चाहिए। एक श्लोकमें तो जिज्ञासा और ब्रह्म, दोनों पद दृष्टव्य हैं—**"जिज्ञासितमधीतञ्च यत्तत् ब्रह्म सनातनम्"** भा० १।५।४।

जन्माद्यस्य यतः १।१।२

यह सूत्र **"जन्माद्यस्य यतोऽन्वयात्"** भागवत १।१।१ में ज्योंका त्यों है। अनुमानके द्वारा परमेश्वरका निश्चय किया जाता है। उक्त सूत्रमें अनुमानकी ओर संकेत है तथा भागवत में **"लक्षणैरनुमापकैः"** द्वारा स्पष्ट अनुमानका महत्व स्वीकार किया है।

शास्त्रयोनित्वात् १।१।३

शास्त्र योनि (कारण) है। अनुमानसे निश्चयके पश्चात् शब्दसे भी उस ब्रह्मका निश्चय किया गया है। **"नमः प्रमाणमूलाय कवये शास्त्रयोनये"** भा० १०।१६।४४ तथा **"शास्त्रयोनेस्तवाच्युत"** श्लोकमें ब्रह्मसूत्र ज्योंका त्यों है। माण्डूक्योपनिषद्[1] में **"एष योनिः सर्वस्य"** अर्थात् यह परमात्मा सम्पूर्ण जगत्का कारण है, लिखा है। वेदमें ब्रह्मके सत्य, ज्ञान और अनन्त आदि लक्षण बतलाये हैं[2] और ब्रह्मको जगत्का कारण भी बतलाया है[3] भागवतमें उसका व्याख्यान किया है।

तत्तु समन्वयात् १।१।४

ब्रह्म समस्त जगत्में पूर्ण रूपसे व्याप्त होने के कारण उपादान कारण भी है। **"ईशावास्यमिदं सर्वं[4]"** उपनिषद्का सिद्धांत भागवतमें **"वेद्यं वास्तवमत्र वस्तु शिवदम्"** १, १, २ में प्रतिपादित है। ईश्वर ही वेद्य अर्थात् जानने योग्य है और जगत्का रचयिता भी है (भा० १, १, १)।

ईक्षतेर्नाशब्दम् १।१।५

'ईक्ष' धातुका प्रयोग होनेके कारण अशब्द जड़ प्रकृति जगत्का कारण नहीं है। वेदमें **"तदैक्षत् बहुस्यां प्रजायेय[5]"** अर्थात् उस सत्ने ईक्षणसंकल्प किया कि मैं बहुत हो जाऊं, अनेक प्रकारसे उत्पन्न होऊं। ऐसा कहा गया है। **"स ईक्षत लोकान्नुसृजै[6]"** भी श्रुति है ईक्षण करना जड़का धर्म नहीं, चेतनका धर्म है। भागवतमें भगवान्को उपर्युक्त उपनिषद् और ब्रह्मसूत्रोंके आधार पर उत्प्रेक्षक लिखा है—**"योऽस्योत्प्रेक्षक आदि मध्य निधनः"** (भा० १०, ८७, ५०) प्रकृतिको ईक्षण क्रियासे सम्बद्ध माननेका खण्डन आगे किया है—

---

१. भा० उप० ६।
२. तै० उ० २, १।
३. तै० उ० ३, १।
४. ईशोप० १।
५. छा० उ० ६, २, ३।
६. ऐत० उ० १, १, १।

गौणश्चेन्नात्मशब्दात् १।१।६

ईक्षणका कर्ता आत्मा है गौण वृतिसे भी उसका सम्बन्ध प्रकृतिके साथ नहीं है । भागवतमें आत्माकी महत्ता स्वीकृत है—"**आत्म सृष्टमिदं विश्वम्**" यह विश्व आत्मा द्वारा रचित है[१]। माया इसीका अंश है[A]। आत्मा अगुण है[B]। आत्मा शुद्ध है[C]। आत्मा ब्रह्मरूप है[D]। आत्मा का ही ध्यान करना चाहिये[E]।

तान्निष्ठस्य मोक्षोपदेशात् १।१।७

परमात्मामें स्थित होने वालेकी मुक्ति होती है, अतः प्रकृति जगत्का कारण नहीं हो सकती । "**तदात्मानं स्वयमकुरुत**' ब्रह्मने स्वयं ही अपने आपको जड़ चेतनात्मक जगत्के रूपमें प्रकट किया है[२]। भागवतमें मुक्तको भी देह धारणके लिये प्रेरणा है[३]। "**महत्सेवां द्वारमाहुर्विमुक्तेः**" भा० ५, ५, २ मुक्तिका द्वार महान् व्यक्तियों की सेवासे खुला मिलता है । मनुष्य सब कर्मोंका परित्याग करके ही भगवान्को प्राप्त करता है[४]।

हेयत्वावचनाच्च १।१।८

त्यागने योग्य न बताये जानेके कारण भी उस प्रसंगके आत्मा शब्द प्रकृति का वाचक नहीं है । अतः परब्रह्म परमात्मा ही 'आत्म' शब्दका वाच्य है और वही इस जगत्का निमित्त एवं उपादान कारण है । भागवतमें भी ब्रह्मको सर्वत्र सर्व-शक्तिमान् कहा है अनिर्देश्य कहा है—"**ब्रह्मन् ब्रह्मण्यनिर्देश्ये**" (भा० १०, ८७, १)

स्वाप्ययात् १।१।९

छान्दोग्योप० में अपनेमें विलीन होना लिखा है अतः सत् शब्द भी जड़का वाचक नहीं है[५]। सत्को समस्त जगत्का कारण कहा है । सूत्रमें स्वाप्ययात् में उपनिषद्के उक्त अंशका ही संकेत है । भागवतमें "**सत् एव पदार्थस्य**" ३, ११, २ में सत शब्द आया है । चेतनमें अचेतनका लय भी कहा गया है—"**कालोमायामये जीवे जीव आत्मनि मय्यज**" (भा० ११, २४, २७)।

गति सामान्यात् १।१।१०

उपनिषद् सामान्य रूपसे चेतनको ही जगत्का कारण बतलाते हैं[६] छा० उ० में कहा है कि परमात्मासे ही सब कुछ हुआ है[७]। प्राण भी परमात्मासे उत्पन्न है[८]।

---

१. भागवत १०, ४८, १९। (A) ८, १२, ४२। (B) ११, २८, ११। (C) १०, ४७, ३१। (D) ४, १३, ८। (E) ६, ८, ११ ।

२. तै० उ० २, ७ । ३. भा० ५, १, १६ ।

४. भा० ११, २९, ३४ ।

५. छा० उ० ६, ८, १ "**यत्रैतत् पुरुषः स्वपिति नाम सता सोम्य ।**"

६. तै० उ० २, १ "**आत्मनः आकाशः सम्भूतः ।**"

७. छा० उ० ७, २६, १ । ८. प्र० उ० ३, ३ ।

पृथिवी भी उसीसे जन्म लेती है[१]। कृष्णके ही अनेक रूप नारदने देखे थे[२]। वे ही सब कुछ हैं। गति शब्द **"वासुदेव परागतिः"** में द्रष्टव्य है। (भा० १, २, २९)।

श्रुतत्वाच्च १, १, ११

श्रुतियोंमें सर्वत्र परमेश्वरको ही जगत्का कारण कहा है[१]। मुण्डकमें कहा है कि परमेश्वरसे समुद्र और पर्वत उत्पन्न हुए हैं[४]। भा० में—**"योऽव्यक्त जीवेश्वरः"** द्वारा इसे स्पष्ट किया है। (भा० १०, ८७, ५७)।

आनन्दमयोऽभ्यासात् १, १, १२

श्रुतिमें बार-बार आनन्द शब्दका ब्रह्मके लिये प्रयोग होनेके कारण 'ब्रह्म' आनन्दमय शब्दका ही वाचक है[५]। **"आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान्[६]"** तथा **"विज्ञानमानन्दं ब्रह्म[७]"** में आनन्द शब्दका प्रयोग है। आनन्दमय परमात्मा अन्नमयादिवत् जीव नहीं है। भागवतमें चरम शब्दका प्रयोग आनन्दमयके लिये आया है। **"चरमोऽन्नमयादिषु च"** १०, ८७। **"आत्मानन्देन पूर्णस्य"** भा० १०, ५८, ३८ तथा **"केवलानुभवानन्द"** भा० ११, ५, १८ आदिमें भागवतमें आनन्दका बार-बार अभ्यास दृष्टव्य है[८]।

कृष्ण नामे ये आनन्द सिंधू आस्वादन।
ब्रह्मानन्द तार आगे खातोदक सम[९]॥

विकार शब्दान्नेति चेन्न प्राचुर्यात् १, १, १३

'आनन्दमय' में मयट् प्रत्यय विकारका बोधक होनेसे आनन्दमय शब्द ब्रह्मका वाचक नहीं हो सकता, यह कथन ठीक नहीं है। मयट् प्रत्यय यहाँ प्रचुरताका बोधक है विकारका नहीं। 'मयट्' प्रत्यय प्रचुरताके अर्थमें भी होता है[१०]। विकार तो उसके साथ रहते हैं वह विकार रहित है—**"विकारैः सहितो युक्तैः"** भा० ३, ११, ३९। तथा **"विकारः ख्यायमानोऽपि[११]"** आदिमें विकार शब्द है।

तद्धेतुव्यपदेशाच्च १, १, १४

उपनिषदोंमें ब्रह्मको आनन्दका हेतु बनाया गया है इसलिए भी मयट् प्रत्यय विकारअर्थका बोधक नहीं है[१२]। भागवतमें तो 'आनन्दमय' सूत्रमें ब्रह्मका आनन्दत्व वर्णित है।

भा० १०, १३, ५४।

१. मु० उ० २, १, ३। २. भा० १०, ६९, २।

३. श्वेता० उ० ६, ९। ४. मु० उ० २, १, ९।

५. तै० उ० २, ७ अर्थात् वह आनन्दमय है।

६. तै० उ० २, ९। ७. बृह० उ० ३, ९, २८।

८. भा० ११, २६, १। ९. चै० च० आ० ७, ९७।

१०. पा० सू० ५, ४, २१। ११. भा० १२, ४, २९।

१२. तै० उ० २, ७।

मान्त्रवर्णिकमेव च गीयते १, १, १५

मन्त्राक्षरोंमें जिसका वर्णन किया गया है[1] उस ब्रह्मका ही यहाँ प्रतिपादन किया गया है। भागवतमें भी लिखा है—"**सत्यज्ञानानन्तानन्द मात्रैकरसमूर्तयः**" भा० १०, १३, ५४।

नेतरोऽनुपपत्तेः १, १, १६

ब्रह्मसे भिन्न जीवात्मा है, वह आनन्दमय नहीं हो सकता, तै० उ० में भी संकल्प करनेका वर्णन है[2]। भागवतमें लिखा है कि बद्धता जीवकी है परमात्माकी नहीं—"**योऽविद्ययायुक् स तु नित्य बद्धः**" भा० ११, ११, ७।

भेदव्यपदेशात् च १, १, १७

जीवात्मा परमात्माको एक दूसरेसे भिन्न बतलाया गया है, अतः आनन्दमय शब्द, जीवात्माका वाचक नहीं है। परमात्मा आनन्द दाता है, जीवात्मा आनन्दयुक्त होने वाला श्रुतिमें कहा है[3]। "**द्विखगोह्यादि वृक्षः**" भा० १०, २, २। भागवतमें लिखा है कि संसार वृक्ष पर दो पक्षी हैं एक जीवात्मा, द्वितीय परमात्मा। भेद स्पष्ट है[4]। श्वेताश्वतरमें "**द्वा सुपर्णा सयजासखाया**" के द्वारा भेद स्पष्ट किया है।

कामाच्च नानुमानापेक्षा १, १, १८

आनन्दमयमें कामनाका कथन होनेसे अनुमान कल्पित जड़ प्रकृतिको 'आनन्दमय' शब्दसे ग्रहण करनेकी आवश्यकता नहीं है। भागवतमें "**आत्मेक्षानुगतावात्मा**" में कामको इच्छा द्वारा व्यक्त किया है। "**जगृहे पौरुषं रूपम्**" भा० १, ३, १ में पुरुष रूप धारण करनेका उल्लेख है।

अस्मिन्नस्य च तद्योगं शास्ति १, १, १९

जीवात्माका आनन्दमयसे मिल जाना लिखा है[5]। ब्रह्मको जानने वाला ब्रह्म रूप हो जाता है[6]। "**तेनात्मनात्मानमुपैति शान्तम्**" भा० ११, २, ३७ में स्पष्ट है।

अन्तस्तद्धर्मोपदेशात् १, १, २०

हृदयके भीतर शयन करने वाला विज्ञानमय तथा सूर्य मण्डलके भीतर स्थित हिरण्मय पुरुष ब्रह्म है। "**केचित् स्वदेहान्तर्हृदयावकाशे**" भा० २, २, ८ में सूत्रकी बात स्पष्ट है।

भेद व्यपदेशाच्चान्यः १, १, २१

भेद कथन होनेसे हिरण्मय पुरुष सूर्यके अधिष्ठाता देवतासे भिन्न है। वृ० उ०

---

१. तै० उ० २, ७। २. तै० उ० २, ६।
३. तै० उ० २, ७। ४. भा० ११, ११, ६।
५. तै० उ० २, ८। ६. बृह० उ० ४, ४, ६।

अन्तर्यामि ब्राह्मणमें ऐसा निर्देश है। **"य आदित्ये तिष्ठन्**[१]**"** **"हिरण्मयं पुरुषमुज्जिहाने सूर्य मण्डले"** भा० ५, ७, १३ में भी दोनोंका भेद है। **"आदित्यानामहं विष्णुः"** भा० ११, १६, १३ की टीकामें विश्वनाथ चक्रवर्तीका कथन है कि सूर्य मण्डलमें सप्तमीका निर्देश है, अतः सिद्ध है कि परमात्मा सूर्यसे भिन्न है।

आकाशस्तल्लिङ्गात् १, १, २२

आकाश शब्द परब्रह्म परमात्माका ही वाचक है। **"सर्वाणि हवा इमानि भूतानि आकाशादेव समुत्पद्यन्त**[२]**"** सब भूत आकाशसे ही उत्पन्न होते हैं। भा० में—**"यथा पुनः स्वे ख इदंनिवेश्य"** ३, ५, ६ में 'ख' शब्द परमात्माका वाचक माना है। **"आसमन्तात् काश इत्याकाशः परमात्मैव नप्रसिद्धाकाशः"** इस व्युत्पतिसे आकाश परमात्मा है[३]।

अत एव प्राणः १, १, २३

अतएव प्राण भी ब्रह्म है[४]। प्राण वायुसे भूतोंकी उत्पत्ति सम्भव नहीं है। भगवान् प्राण स्वरूप मी हैं—**"प्राणाय महसे ओजसे"** भा० तथा **देहेन्द्रियासु हृदयानि चरन्ति येन"** भा० ११, ३, ३५ में असु प्राणको भगवत्प्रेरणासे विचरण करने वाला कहा है।

ज्योतिश्चरणाभिधानात् १, १, २४

ज्योतिके चरणका कथन है, अतः ज्योति शब्द ब्रह्मका वाचक है। **"त्वं हि ब्रह्म परं ज्योतिः०"** भा० १०, ६३, ३४ में स्पष्ट सूत्रका व्याख्यान है। **"कान्तिस्तेजः प्रभासत्ता"** १०, ८५, ७ में भी 'अर्थ रूपमें' मूल द्रष्टव्य है। छा० उप० में कहा है कि स्वर्ग लोकसे ऊपर परम ज्योति प्रकाशित हो रही है[५]। ज्योतिका पर्यायवाची शब्द तेजस् भी है। भा० उप० चार पादोंमें तेजस् आत्माका द्वितीय पाद है। भागवतमें **'तेजः'** को इसी हेतु रखा है।

"छन्दोऽभिधानान्नेति चेन्न तथा चेतोऽर्पण निगदात् तथा हि दर्शनम् १, १, २५

ज्योति प्रकरणमें गायत्री छन्दके चारपादोंका वर्णन है, ब्रह्मके पादोंका नहीं यह कथन भी अयुक्त है क्योंकि ब्रह्ममें चित्तका समर्पण कहा है। गायत्री छन्द भी ब्रह्म है। **"गायत्री छन्दसामहम्"** भा० ११, १६, १२ तथा **"सत्यं परं धीमहि"** भा० १, १, १ में गायत्री ब्रह्मका ध्यान है।

---

१. बृह० उ०। २. छा० उ० १, ६, १।

३. **सर्व सम्वादिनी-जीवगो०**

४. छा० उ० १, ११, ५ **"इमानि भूतानि प्राणमेवाभिसंविशन्ति"**

५. छा० उ० ३, १३, ७।

भूतादि पाद व्यपदेशोपपत्तेश्चैवम् १, १, २६

गायत्रीको भूत, पृथिवी, शरीर और हृदय रूप चारपादोंसे युक्त कहा गया है। फिर उसकी पुरुषके साथ एक रूपताकी गई है। तत्पश्चात् समस्त भूत उसके एक पाद में निहित माने गये हैं। "**गायत्री च त्वचो विभो**" भा० ३, १२, ४५।

उपदेश भेदान्नेति चेन्नोभयस्मिन्नप्यविरोधात् १, १, २७

गायत्री ब्रह्मका ही वाचक है। उपदेश भेदसे दोनोंमें विरोध नहीं है। दोनों स्थलोंमें श्रुतिका उद्देश्य गायत्री शब्द वाच्य तथा ज्योतिः शब्द वाच्य ब्रह्मको सर्वोपरि सिद्ध करना है। "**यस्मिन्निदं यतश्चेदम्**" तथा "तीन पाद उस ब्रह्मके ऊपर हैं' भा० २, ६, २० में यही कथन है।

प्राणस्तथानुगमात् १, १, २८

पूर्वापर प्रसङ्ग विचार करनेके पश्चात् प्राण शब्दसे ब्रह्म ही समझना चाहिए। तथा "**अनुप्राणन्ति यं प्राणाः**" २, १०, १६ में प्राणसे ब्रह्मका बोध होता है।

न वक्तुरात्मोपदेशादिति चेदध्यात्म सम्बन्ध भूमा ह्यस्मिन् १, १, २९

अध्यात्म सम्बन्धी उपदेशकी बहुलतासे प्राण शब्द, ब्रह्माका वाचक है। वक्ता इन्द्रके कथन कि 'मैं ही प्राण हूँ' से इन्द्रका वाचक प्राण नहीं ब्रह्मका वाचक है। "**पश्येम ब्रह्मणि कल्पितं परे**" में नारदका उपदेश नहीं, अपितु ब्रह्मका है। "**द्रव्यं कर्म च कालश्च**" भा० २, १०, १२ में सब कुछ भगवान् हैं यह सिद्ध किया है।

शास्त्र दृट्ष्या तूपदेशो वामदेववत् १, १, ३०

इन्द्रका अपनेको प्राण बतलाना तो वामदेवकी भाँति शास्त्र दृष्टिसे है। वामदेव ब्रह्म भावापन्न हो गया था। "**अहं ब्रह्म परं धाम ब्रह्माहं परमं पदम्**" भा० १२, ५, ११ में तदाकारकी बात कही है।

जीव मुख्य प्राण लिङ्गान्नेतिचेन्नोपासा वैविध्यादाश्रितत्वादिह तद्योगात् १, १, ३१

सब लक्षण ब्रह्मके आश्रित हैं। प्राण शब्दसे ब्रह्म मानना उचित ही है। "**प्राणो जीवो विभर्ष्यजः**" **में प्राण ब्रह्म ही है।** "**न श्रोता नानुवक्ताऽयं मुख्योप्यत्र महानसुः** भा० ७, २, ४५ में असुः प्राणको मुख्य सिद्ध करते हुए भागवतकानेर ब्रह्मसूत्रके मन्तव्यको अग्रसारित किया है।

सर्वत्र प्रसिद्धोपदेशात् १, २, १

वेदान्त वाक्योंमें जगत्का कारण ब्रह्म है, ऐसा लिखा है—"**वासुदेव परा वेदा वासुदेव परा मखाः।**" वासुदेव ही सब कुछ है। (भा० १, २, २८)

छा० उ० ३, १२।

विवक्षित गुणोपपत्तेश्च १, २, २

श्रुति द्वारा वर्णित गुणों की संगति उस परब्रह्ममें ही है[१]।

भा० में कहा है कि भगवान् ही सर्वैश्वर्यशाली हैं। (भा० १०, ८७, २८)

अनुपपत्तेस्तु न शरीरः १, २, ३

जीवात्मामें श्रुतिवर्णित गुणोंकी संगति नहीं है। ब्रह्म सत्य संकल्प है **"सत्यव्रतं सत्यपरं त्रिसत्यम्"** १०, २, २६ में उन्हें सत्य संकल्प कहा है जीवात्माको नहीं।

कर्मकर्त्तृ व्यपदेशाच्च १, २, ४

ब्रह्म प्राप्य है और जीवात्मा प्राप्त कर्ता है। वह ब्रह्मा सर्वकर्मा है ऐसा उपनिषद्में लिखा है[२]। **"मद्भक्तः प्रतिबुद्धार्थो मत्प्रसादेन भूयसा"** जीवात्मा भक्त है उपासक है, ब्रह्म उपास्य है (भा० ३, २७, २८)।

शब्द विशेषात् १, २, ५

उपास्य और उपासकके लिये शब्दका भेद है 'एष' शब्द ब्रह्मके लिये तथा 'मे' अर्थात् मेरा शब्द उपासकके लिए है। भगवान् सम्पूर्ण भूतोंमें प्रविष्ट है। भा० २, २, ३५ में भगवान्की महिमा वर्णित है।

स्मृतेश्च १, २, ६

स्मृति प्रमाण भी है—**"मय्येव मन आधत्स्व मयि बुद्धिं निवेशय"** (गीता १२, ८) अन्तकालमें जो मेरा स्मरण करके शरीर त्याग देता है वह मेरे स्वरूपको प्राप्त करता है। गीता ८, ५ भाग० में भी कहा है कि ईश्वर सबके हृदयमें है। भा० ४, ६, ४।

अर्भकौकस्त्वात्तद्व्यदेशाच्च नेति चेन्न निचाय्यत्वादेवं व्योमवच्च। १, २, ७

उपास्य छोटे स्थान (हृदय)में रहता है अतः छोटा है यह कथन ठीक नहीं, वह आकाशकी भाँति व्यापक है।

"उसका न भीतर है न बाहर, न पूर्व है न पश्चिम, वह वासुदेव गुहा (हृदय)में निवास करता है। भा० ६, १८, ५० अणु होता है किन्तु अणु परिमाण नहीं है। (भावार्थ दी०)

संभोग प्राप्तिरिति चेन्न वैशेष्यात् १, २, ८

उसे सुख-दुःखोंका भोग प्राप्त नहीं होता। यह वैशिष्ट्य है। वह केवल साक्षी है[३]। ईश्वर अनीह है। भा० ७, ७ ४८।

---

१. के० उ० १, २ २. छा० उ० ३, १४। ४।

३. मु० उ३ ३, १, १ तरोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्यनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति।

अत्ता चराचर ग्रहणात् १, २, ९

प्रलयकालमें ईश्वर सबको अपनेमें विलीन कर लेता है[1]। आप ही जगत्‌की रचना करते हो पालन करते हो एवं संहार करते हो। भा० १, २, १०।

प्रकरणाच्च १, २, ९

कठोपनिषद्‌के १, २, २४ तक परब्रह्मका ही प्रकरण है। दो परार्द्धके पश्चात् सम्पूर्ण जगत् भगवान्‌में स्थित रहता है भा० ६,४,५३।

गुहां प्रविष्टावात्मानौ हि तद्दर्शनात् १, २, ११

हृदय रूप गुहामें जीवात्मा और परमात्मा दोनों ही रहते हैं। **"गुहाप्रविष्टौ परमे परार्घे"** कठो० १, ३, १ में सूत्रका मूल है।

'भगवान् सर्वं भूतानामध्यक्षोऽवस्थितो गुहाम्' भा० २, ६, २४ श्लोकमें भी सूत्रकी सम्पुष्टि है।

द्वे अस्य बीजे शतमूलास्थिनालः भा० ११, १२, २२ में भी बीज रूप जीव और परमात्मा हैं। छा० में भी कहा है—**जीवेनात्मनानुप्रविश्य**[2]।

विशेषणाश्च १, २, १२

दोनोंके विशेषण नेथक् २ हैं। **'एकस्तयोः खादतिपिप्पलान्नम्'** भा० ११, ११, ६ अर्थात् जीवात्मा फल भोक्ता है परमात्मा नहीं। भा०।

अन्तर उपपत्तेः १, २, १३

कठोप०के विपरीत छा० उ०में नेत्रमें स्थित पुरुषको ब्रह्म कहा है[3]। अन्तरे=नेत्रे। चक्षुको त्वष्टा=सूर्यमें और सूर्यको चक्षुमें रोकना चाहिये। ब्रह्मकी उपलब्धिका यह मार्ग है। चक्षुमें ध्येय परमात्मा है (अग्नि पुराण–१३) भा० ११, १५, २०।

स्थानादि व्यपदेशाच्च १, २, १४

अनेक स्थलोंपर ब्रह्मके स्थानका निर्देश है[4]। नेत्रमें दीखनेवाला पुरुष आँखके दोषोंसे निर्लिप्त रहता है। आँखमें डाला हुआ घी या पानी द्रष्टा पुरुषका स्पर्श नहीं करता। आत्मा आश्रयका भी आश्रय है। (भा० २, १०)

सुखविशिष्टाभिधानादेव च १, २, १५

नेत्रान्तर्वर्ती पुरुष सुखविशिष्ट है। **नित्योऽक्षरोजस् सुखो निरंजनः**। भा० १०, १४, २३। **"मयात्मना सुखं यत् तत्"** भा० ११, १४, १२ में भी सुखविशिष्ट ब्रह्मको कहा है।

---

१. **कठो० १, २, २५—यस्य ब्रह्म च क्षत्रं चोभे भवत ओदनः।**
२. **छा० उ० ६, ३, २।** ३. **छा० उ० ४, १५, १।**
४. **बृह० उ० ३, ७, ३-२३।**

श्रुतोपनिषत्कगत्यभिधानाच्च १, २, १६

रहस्य श्रवण करने वालेकी गति, नेत्रान्तर्वर्ती पुरुषको जानने वालेकी गतिके समान कही गई है। "**यन्नारायणः साक्षात् न्यासिनां परमा गतिः**" (भा० ४, ३०, ३६) नारायण सबकी गति हैं।

अनवस्थितेरसम्भवाच्च नेतरः १, २, १७

ब्रह्मसे—अन्य किसीकी स्थिति नेत्रमें नहीं है। अक्षिमें भगवान्‌की उपासना है। छा० उप०की श्रुतिकी व्याख्या यहाँ तक सूत्रकारने प्रस्तुत की।

अन्र्यााम्यधिदैवादिषुतद्धर्मव्यपदेशात् १, २, १८

आधिदैविक आधिभौतिकमें जिसे अन्तर्यामी कहा है वह ब्रह्म ही है[1]।

ब्रह्म० उ०में उद्दालक ऋषिने याज्ञवल्क्यसे अन्तर्यामीके सम्बन्धमें प्रश्न किया था। याज्ञवल्क्यने कहा कि वह अन्तर्यामी सबको देखता है उसे कोई नहीं देखता। "**योऽध्यात्मिकोऽयं पुरुषः योसादेवाधिदैविकः**" (२, १०, ८) इसमें अन्तर्यामी परमात्माको सिद्ध किया है। "**अन्तःपुरुष रूपेण कालरूपेण यो बहिः**" भा० ३, २६, १८।

बाहर वह रूप कालरूप है। २, ४, १२—"**अन्तर्भवायानुपलक्ष्यवर्त्तने**"में भी सूत्रकी व्याख्या है।

न च स्मार्तमतद्धर्माभिलाषात् १, २, १९

सांख्योक्त प्रधान अन्तर्यामी नहीं है क्योंकि द्रष्टापन आदिधर्म प्रकृतिके नहीं हैं। '**अन्तःस्थ सर्वभूतानाम्**' भा० १, ८, १४ में अन्तःस्थ ब्रह्म है प्रधान नहीं।

शारीरश्चोभयेऽपि हि भेदेनैनमधीयते १, २, २०

शरीरमें रहनेवाला जीवात्मा भी अन्तर्यामी नहीं है। उभये-माध्यन्दिनी और कण्व शाखाके अध्येता दोनों ही जीवात्मा और अन्तर्यामीमें भेद समझते हैं। **य आत्मनितिष्ठन्............त अन्तर्याम्यमृतः।**" शतपथ १४, ५, ३० "**यो विज्ञाने तिष्ठन्.........त अन्तर्याम्यमृतः।**" वृ० उ० ३, ७, २२।

ध्रुवने भगवान्‌की स्तुतिमें कहा कि अन्तःकरणमें प्रविष्ट होकर जिसने मेरी सरस्वतीको जगाया। भा० ४, ९, ६।

अदृश्यत्वादिगुणक धर्मोक्तेः १, २, २१

अदृश्यत्वादि गुण वाला परमात्मा ही है। इस सूत्रका मूल मुण्डकोपनिषद् है।

---

[1]. वृ० उ० ३, ७।

शौनकने अंगिरासे ज्ञेयको जानना चाहा। उन्होंने अपरा-वेद-वेदांग तथा परा= अक्षर ब्रह्मके गुणोंको समझाया।[१]

'अदृश्यः सर्वभूतानाम्' भा० ७।१०।३१ श्लोकमें परमात्माको अदृश्यत्वादि गुणविशिष्ट कहा है।

विशेषण भेदव्यपदेशाभ्यां च नेतरौ १, २, २२

विशेषणोंके कथनसे जीवात्मा और प्रकृति जगत्‌के कारण नहीं हो सकते। जीवात्मासे परमात्माकी भिन्नता स्वतः स्पष्ट है[२]।

रूपोपन्यासाच्च १, २, २३

श्रुतिमें उसीके निखिल लोकमय विराट् स्वरूपका वर्णन किया है[३]। **"अरूपायोरुरूपाय नम आश्चर्यकर्मणे"** भा० ८, ३, ९ शब्दतः "रूप" शब्द भी है और "अर्थ" भी।

वैश्वानरः साधारण शब्दविशेषात् १, २, २४

छा० उ० में वैश्वानरका वर्णन करते हुए द्युलोकको उसका मूर्धा बतलाया है[४]। वैश्वानरका अर्थ जठराग्नि भी है किन्तु यहाँ ब्रह्मका वाचक है। प्राचीन शाल, सत्ययज्ञ, इन्द्रद्युम्न, जन तथा बुडिलका संवाद छा० उ०में है इन्होंने ब्रह्मके स्वरूपका विचार किया है।

भागवतमें वेद स्तुतिमें ब्रह्मका विचार है :—**"ब्रह्मन् ब्रह्मण्यनिर्देश्ये निर्गुणवृत्तयः"** १०, ८७, १। **"वैश्वानरं याति विहायसागतः** भा० २, २, २४ गीतामें कहा है कि वैश्वानर बनकर सबके जठर स्थित अन्नको पचाता हूँ। गीतामें **१५, १४**।

स्मर्यमाणमनुमानं स्यादिति १, २, २५

स्मृतिमें भी वैश्वानरसे परमात्माका ही बोध है। **"यस्याग्निरास्यम् द्यौर्मूर्धा"** अग्नि जिसका मुख है द्युलोक मस्तक है आकाश नाभि है..........उस परमात्माको नमस्कार है[५]। भा० में कहा है—काष्ठमें अग्निकी भाँति वह ब्रह्म व्याप्त है[६]।

शब्दादिभ्योऽन्तःप्रतिष्ठानाच्च नेति चेन्न तथा दृष्ट्युपदेशादसंभवात् पुरुषमपि चैनमधीयते ॥ १, २, २६

वैश्वानर शरीरके भीतर प्रतिष्ठित कहा है अतः ब्रह्मका वाचक नहीं है यह

---

१. **मु० १, १, ६ यत्तद्देश्यमग्राह्यम्। X तस्मादेतद् ब्रह्मनाम रूपमन्नं च जायते।**
२. **मुण्डको० ३, १, २।**
३. **मुण्डको० २, १, ४।**
४. **छा० उ० ५, ११।**
५. **महाभारत शान्ति पर्व ४७, ७०।**
६. **भा० २, ६, ३२।**

कथन भी अयुक्त है । शतपथमें वैश्वानरका वर्णन है[1] । केवल जठरानलका विराट् रूपमें वर्णन सम्भव नहीं है अतः वैश्वानर परब्रह्मका वाचक है ।सूर्य, अग्नि, ब्राह्मण, गायमें भगवान् की पूजा करनी चाहिए । भा० ११, ११, ४२ ।

अत एव न देवता भूतं च १, २, २७

सूर्य आदि लोकोंके अधिष्ठाता देवगण तथा आकाशादि भूत समुदाय भी वैश्वानर नहीं हैं । सूर्यमें भी मेरा भजन करे भा० ११, ११, ४३ ।

साक्षादप्यविरोधं जैमिनिः १, २, २८

वैश्वानर शब्दको साक्षात् परब्रह्मका वाचक माननेमें भी कोई विरोध नहीं है । 'अग्निमें, गुरुमें, आत्मामें मुझे पूजे' (भा० ११, १७, ३२) ।

अभिव्यक्तेरित्याश्मरथ्यः १, २, २९

भक्तोंपर अनुग्रह करनेके लिए ब्रह्मका प्राकट्य देश-विशेषमें होता है । आश्मरथ्य आचार्यका यह मत है, उपनिषद्में भी कहा गया है[2] । सर्वसमर्थ भगवान् सगुण साकार भी है । 'माययोपात्त 'विग्रहम्' मायासे वे शरीर धारण कर लेते हैं ।

अनुस्मृतेर्बादरिः १, २, ३०

बादरि आचार्यका पक्ष है कि विराट् परमेश्वरको देश-विशेषसे सम्बद्ध माननेमें कोई दोष नहीं है । जिस-जिस बुद्धिसे ईश्वरका स्मण किया जाता है वह वैसा ही स्वरूप धारण करके दर्शन देता है ।

यद्यत्धियात उरुगाय विभवयन्ति तत्तद्वपुःप्रणयसे सदनुग्राह । भा० ३, २, १९

सम्पत्तेरिति जैमिनिस्तथाहिदर्शयति १, २, ३१

परमेश्वर अनन्तऐश्वर्यसे सम्पन्न है । अतः देश विशेषसे युक्त माननेमें कोई आपत्ति नहीं है । यह जैमिनिका मत है । **मुक्तात्मभिः स्वहृदये परिभाविताय** भा० ८, ३, १८ मुक्तात्मा भी अपने हृदयमें उसका चिन्तन करते हैं ।

आमनन्ति चैनमस्मिन् १, २, ३२

वेदान्त शास्त्रमें परमेश्वरको ऐसा ही माना है । परमात्मा सर्वव्यापी, सर्वशक्तिमान्, सर्वसमर्थ है[3] । वह सर्वत्र व्याप्त है ।

---

१. शा० ब्रा० १०, ६, १, ११ । २. केनो० ३, २ गीता ४, ६, ९ ।

३. श्वेता० ५, १३ ।

"स एव विश्वस्य भवान् विधत्ते" भा० १, २, ३३

इस अ० श्लोकमें उसकी सर्वश्रेष्ठ शक्तिमत्ताका निरूपण किया है। अन्यत्र भी ऐसा वर्णन है[१]।

द्युभ्वाद्यायतनं स्व शब्दात् १, ३, १

स्वर्ग और पृथ्वी आदिका आधार परब्रह्म ही है। जीवात्मा या प्रकृति नहीं। क्योंकि इसमें परब्रह्म बोधक 'आत्मा' शब्दका प्रयोग है[२]। भूलोक परमात्माका चरण है। भा० २, ५, ३८।

मुक्तोपसृप्यव्यपदेशात् १, ३, २

वह परमात्मा मुक्त पुरुषोंके लिए प्राप्तव्य है अतः वह जीवात्मा नहीं हो सकता। जिस प्रकार बहती हुई ननियाँ नाम रूप छोड़कर समुद्रमें विलीनमें हो जाती हैं, वैसे ही ज्ञानी परम पुरुषको प्राप्त हो जाता है। आत्माराम भी भगवान्का भजन करते हैं। (भा० ११, २०, ३०)।

नानुमानमतच्छब्दात् १, ३, ३

अनुमान कल्पित प्रधान भूलोक आदिका कारण नहीं है। क्योंकि उसका प्रतिपादक कोई शब्द इस प्रकरणमें नहीं है। **"अनादिरात्मा पुरुषो निर्गुणः प्रकृतेः परः"** पुरुष अनादि है, निर्गुण है तथा प्रकृतिसे परे है। (भा० ३, २६, ३)।

प्राणभृच्च १, ३, ४

प्राणधारी जीवात्मा भी आधार नहीं हो सकता। आत्मा शब्द अन्यत्र जीवात्माके अर्थमें प्रयुक्त होनेपर भी इस प्रकरणमें वह जीवात्माका वाचक नहीं है। क्योंकि मु० उ० २, २, ७ में इसके लिये 'आनन्दरूप' और अमृत विशेषण दिये गये हैं। **"कायवृत्या तु मायायाम्"** (भा० ३, ५, २६) श्लोकमें मायाका नियन्ता श्रीभगवान्को सिद्ध किया है। श्रीधर स्वामीने आत्माकी व्याख्या इस प्रकार की है :—**"आततत्वात् च मातृत्वादात्माहि परमोहरिः"**[३] अर्थात् वह विस्तृत है और मित है।

भेद व्यपदेशात् १, ३, ५

आत्मा-जीवात्मासे भिन्न कहा गया है[४]। अतः जीवात्मा जगत्का आधार नहीं अपितु परमात्मा है। **"द्वे अस्य बीजे"** (भा० ११, १२, १२) इस वृक्षके दो बीज हैं, आत्मा और परमात्मा। इस संसार रूपी वृक्षपर दो पक्षी बैठते हैं एक जीवात्मा और दूसरा परमात्मा। (भा० १०, २, २७)।

---

१. भाग० ६, ४, ३१, ११, २२, ४। २. मुण्डकोप० २, २, ५।
३. विष्णु पुराण १, १२, ५७। ४. मु० उ० २, २, ५, ३, १, ७

प्रकरणात् १, ३, ६

उपनिषद्में प्रकरण भी परमात्माका है। द्युलोक, आकाश आदि सभी परमात्मामें हैं। उसे जानकर यह सबको जान जाता है[1]।

स्थित्यदनाभ्यां च १, ३, ७

एक जीवात्मा भोगोंको भोगता है दूसरा परमात्मा साक्षी है। मु० उ० में कहा है :—"**द्वा सुपर्णा सयजा सखाया**" (मु० ३. १, १) "**सुपर्णावेतो सदृशो सखायौ**" (भा० ११, ११, ६)। भागवत श्लोकमें उपनिषद् प्रतिपादित अर्थ की ही व्याख्या है और सूत्रका विस्तृत विवेचन है।

भूमासंप्रसादादध्युपदेशात् १, ३, ८

भूमा=सबसे बड़ा ब्रह्म ही है। क्योंकि प्राण शब्द वाच्य जीवात्मासे भी बड़ा है। संप्रसाद, प्राणका ही नाम है[2]। "**तावाह भूमा परमेष्ठिनां प्रभु**" (भा०, १० ८६, ३७) भूमा परमात्मा है।

धर्मोपपत्तेश्च १, ३, ९

भूमाके धर्म ब्रह्ममें ही सुसंगत हो सकते हैं। छा० उ० में भूमाका विवेचन है[3]। '**नैवेशितुं प्रभुर्भूम्न ईश्वरो धाम मानिनाम्**' (भा० ३, ११, ३८) धर्मोंकी उपपत्ति भूमामें है। "**त्रयीमयो धर्ममयस्तपोमयः**" (भा० २, ४, १९) में धर्म शब्दका उल्लेख है।

अक्षरमम्बरान्तधृतेः १, ३, १०

अक्षर शब्द परब्रह्म परमात्माका ही वाचक है। भूमा ही आकाश पर्यन्त सम्पूर्ण जगत्को धारण करने वाला बताया गया है। गार्गी याज्ञवल्क्यके संवाद रूपमें बृहदारण्यकोपनिषद्में प्रस्तुत किया है।

गार्गीने पूछा काल किसमें ओतप्रोत है?

याज्ञवल्क्य—आकाशमें।

गार्गी—आकाश किसमें ओतप्रोत है।

याज्ञवल्क्य—उस तत्वको तो ब्रह्मवेत्ता लोग 'अक्षर' कहते हैं। अक्षर नामसे उसपर ब्रह्मका ही वर्णन है। '**तमक्षरं ब्रह्म परं परेशम्**' और अक्षर ही ब्रह्म है। (भा० २, १, १७) "**नित्योऽक्षरोऽजस्र सुखो निरंजनः**" (भा० १०, १४, २३) श्लोकमें "अक्षर शब्द" कथनपूर्व विवेचन है।

सा च प्रशासनात् १, ३, ११

आकाश पर्यन्त सब भूतोंका धारण करना रूप क्रिया परमेश्वर ही है[1]। यह

---

१. भा० ६, ४, २५।
२. छा० उ० ८, ३, ४।
३. छा० उ० ७, २४, १।
३. बृह० उ० ३, ८, ९।

कार्य जड़ प्रकृतिका नहीं हो सकता। अतः वह सबको धारण करने वाला अक्षर तत्त्व ब्रह्म ही है। जिसके भयसे पवन चलता है सूर्य तपता है। (भा० ५ २५, ४२)।

अन्यभाव व्यावृत्तेश्च १, ३, १२

अक्षरमें प्रधान आदिके लक्षणोंका निराकरण किया गया है[1] अतः अक्षर शब्दका अर्थ ब्रह्म ही है। वह अक्षर ब्रह्म है, परेश है :—**"तमक्षरं ब्रह्म परं परेशम्"** (भा० ३, ८, २१)।

ईक्षति कर्म व्यपदेशात् सः १, ३, १३

पुरुषको ईक्षते क्रियाका कर्म कहा गया है अतः त्रिमात्रा (ओम्) अक्षरके द्वारा चिन्तन करने योग्य है। मन्त्र इस प्रकार है :—**"यः पुनरेतं त्रिमात्रेण.........** **तुरुषमीक्षते"** (प्र० उ० ५, ५) भागवतमें त्रिवृत् ब्रह्माक्षरके ध्यानकी प्रेरणा है :— **"अभ्यसेन्मनसा शुद्धं त्रिवृद्ब्रह्माक्षरं परम्"** (भा० २, १, १७)।

दहरउत्तरेभ्यः १, ३, १४

'दहर' शब्दसे जिस ज्ञेयका वर्णन है, वह ब्रह्म ही है दहरका मूल छा० उ० में है..........**"ब्रह्मपुरे दहरं पुण्डरीकम्"** (छा० उ० ८, १, १) अर्थात् इस ब्रह्मके नगद रूप मनुष्यके शरीरमें कमलके आकार वाला एक पर है (हृदय) उसमें सूक्ष्म आकाश है उसके भीतरकी वस्तु जानने योग्य है। **"आरुणयो दहरम्"** (भा० १८, ८७, १८) में दहर उपासनाका विस्तृत विवेचन है। दहर ब्रह्म है।

गति शब्दाभ्यां तथा दृष्टं लिङ्गं च १, ३, १५

ब्रह्ममें गतिका वर्णन है। दहर ब्रह्म वाचक शब्द भी है अन्य श्रुतियोंमें भी ऐसा आया है। छा० में लिखा है कि ये जीव समुदाय प्रतिदिन सुषुप्तिकालमें ब्रह्मलोकको जाते हैं - असत्यसे आवृत रहनेके कारण उसे नहीं जानते हैं। **"त्वमित इमे नतो विविध नामभृतौ"** (भा० १०, ८७, ३१) इससे गतिका वर्णन है।

धृतेश्च महिम्नोऽस्यास्मिन्नुपलब्धेः १, ३, १६

दहरमें समस्त लोकोंके धारणकी शक्ति है। छा० में आत्माको सबका धारण करने वाला कहा है[2]। वृ० उ० में भी परमात्माके प्रशासनमें सूर्य चन्द्रमा आदिकी स्थितिका वर्णन है[3]। **"आधारंमहदादीनाम्"** (भा० ४, ८, ७८) इस भागवत श्लोकमें पुरुषको आधार कहा है।

प्रसिद्धेश्च १, ३, १७

आकाश शब्द भी परमात्माके अर्थमें प्रसिद्ध है। अतः दहराकाश ब्रह्मके लिये ही है। **"यदेव आकाश आनन्दो न स्यात्"** (तै० उ० २, ७, १) अर्थाद "यदि यह

---

३. वृह० उ० २, ८, ११। २. छा० उ० ८, ४, १।

३. वृह० उ० ३, ८, ६।

आनन्दस्वरूप आकाश न होता तो कौन जीवित रहता।" छा० उ० में कहा है कि 'ये सब प्राणी आकाशसे ही उत्पन्न होते हैं (छा० उ० १, ९, १)। **"आकृष्यब्योम्नि धारयेत्"** भागवतमें भी कहा है। एकादश स्कन्धमें सूर्य-अग्निके साथ आकाशमें भी भगवान्की पूजाका विवेचन है।

इतरपरामर्शात् स इति चेन्नासंभवात् १, ३, १८

दहरसे जीवात्माका बोध कदापि सम्भव नहीं है "सत्य संकल्प" आदिलक्षण जीवात्मामें घटित नहीं हैं। **तैस्तैरतुल्यातिशयैः** भा० श्लोकमें जो गुण कहे हैं वे भगवान्के हैं, जीवके नहीं।

उत्तराच्चेदाविर्भूतस्वरूपस्तु १, ३, १९

मन्त्रमें जिसका वर्णन है वह शुद्धस्वरूप आत्मा है। **"ईश्वरस्य विमुक्तस्य कार्मण्यमुत बंधनम्"** ऐसा भागवतमें भी आता है।

अन्यार्थश्च परामर्शः १, ३, २०

पूर्व प्रकरणमें दहर शब्दसे जीवात्माको संकेतका अर्थ यह है कि दहर शब्द वाच्य परमात्माके यथार्थ स्वरूपका ज्ञान हो जानेपर भी वैसे ही गुणोंवाला बन जाता है। **'ब्रह्मसंपद्यते तदा'** भा० तब वह जीव ब्रह्मरूप हो जाता है।

अल्पश्रुतेरिति चेत्तदुक्तम् १, ३, २१

दहरको बहुत छोटा बतलाया गया है अतः वह जीवात्माका वाचक है इस शंकाका उत्तर दिया जा चुका है[१]। "उस परमात्माका न भीतर है न बाहर[२]।

अनुकृतेस्तस्य च १, ३, २२

जीवात्माका अनुकरण करनेके कारण भी परमात्माको अल्प परिमाणवाला कहना उचित है। मनुष्यके हृदयका माप अंगुलके बराबर है और उसीमें दोनों जीवात्मा-परमात्माके रहनेकी बात भी कही है[३]। 'अणोरणीयान्' वह छोटेसे भी छोटा है। **"अहं ब्रह्म परं धाम ब्रह्माहं परमंपदम्"** (भा० १२, ५, ११) में जीव और ब्रह्मके ऐक्यका वर्णन है।

अपि चस्मर्यंते १, ३, २३

स्मृतिमें भी ऐसा कहा है कि वह हृदय देशमें रहता है[४]। **ध्यायन्त आकृतधियः**

---

१. सूत्र–१, २, ७ में।

२. क–भा० १०, ९, १३ ख–३, २४, ३१ ग–३, २, १२।

३. क–तै० उ० २, ६ ख–छा० उ० ६, ३, ३।

४. गीता १५, १५ सर्वस्य चाहं हृदिसन्निविष्टः १३, १७, १८, ६१, १३, १६।

शयनासनादौ तत्साम्यमापुरनुरक्तधियां पुनः किम् । (भा० ११, ५, ४८) ध्यानसे उसका साम्य प्राप्त हो जाता है ।

शब्दादेव प्रमितः १, ३, २४

उक्त प्रकरणमें (कठो०)में अंगुल परिमाणवाला पुरुष परमात्मा ही हैं[1] और वह हृदय देशमें रहता है । **"अंगुल मात्रं पुरुषं स्फुरत् पुरट मौलिनम्"** (१, १२, ८) भगवान् गुहा (हृदय)में अवस्थित हैं (भा० २, ६, २४) ।

हृद्यपेक्षया तु मनुष्याधिकारत्वात् १, ३, २५

परम पुरुषको अंगुलके मापवाला कहनेका आशय हृदयमें बतलानेकी अपेक्षासे है । ब्रह्मविद्यामें मनुष्यका ही अधिकार है । **'केचित् स्व देहान्तर्हृदयावकाशे, प्रादेश मात्रं पुरुषं वसन्तम्** (भा० २, २, ८) वह परमात्मा हृदयमें प्रादेशमात्र आकारसे रहता है ।

तदुपर्यपि बादरायणः संभवात् १, ३, २६

मनुष्यसे ऊपर देवादिकोंका भी ब्रह्मविद्यामें अधिकार है **"स्वर्गिणोऽप्येतमिच्छन्ति लोकं निरयिणस्तथा"** अर्थात् देवता भी उसे जानना चाहते हैं। (भा० ११, २०, १२) ।

विरोधः कर्मणीति चेन्नानेकप्रतिपत्तेर्दर्शनात् १, ३, २७

देवताओंको शरीरधारी माननेसे यज्ञकर्ममें विरोध नहीं आता क्योंकि वे अनेक रूप धारण कर सकते हैं[2] । पूषा देवताके दांत तोड़े गये थे ऐसा दक्ष प्रसंगमें स्पष्ट है । **"तमुपागतमालक्ष्य सर्वे सुर गणादयः"** (भा० ४, ७, २२) यहाँ बहुदेवत्व स्पष्ट है ।

शब्द इतिचेन्नातः प्रभवात्प्रत्यक्षानुमानाभ्याम् १, ३, २८

वैदिक विचारधारासे भी देवोंका शरीर माननेपर कोई दोष नहीं आता । क्योंकि वैदिक शब्दसे ही देवता आदि जगत्की उत्पत्ति होती है । प्रजापतिने पहले वाचक शब्दका स्मरण करके उसके अर्थ भूत स्वरूपका निर्माण किया[3] । सृष्टिकर्ता परमात्माने सबके नाम, कर्म वेदोक्त शब्दोंके अनुसार बनाये[4] । **"विश्वमात्मगतं-व्यञ्जन् कूटस्थो जगदंकुरः"** (भा० ३, २६, २०) युगादिमें वह परमात्मा सम्पूर्ण वेद इतिहास एवं मुनियोंको रचता है ।

---

१. कठो० २, १, १२ अंगुष्ठमात्रः पुरुषो मध्य आत्मनि तिष्ठति ।

२. बृ० उ० ३, ६, १-२ एक ही अनेक हो जाते हैं ।

३. तै० उ० २, २, ४, २ "सभूरिति व्याहरत् भूमिमसृजत् ।

४. मनु० १, २१ ।

अत एव च नित्यत्वम् १, ३, २९

इसीसे वेदकी नित्यता भी सिद्ध होती। चारों युगोंके अन्तमें पुनः श्रुतिगणोंका उद्धार होता है। (भा० ८, १४, ४) ब्रह्मा उन्हींकी आज्ञासे विश्वकी रचना करता है-(भा० २, ६, ३२) वेद साक्षात् नारायण है (भा० १२, ६, ४६)।

समाननामरूपत्वाच्चावृत्तावप्यविरोधो दर्शनात् स्मृतेश्च १, ३, ३०

कल्पान्तरमें वेदोंके नामरूप वैसे ही होते हैं। कोई विरोध नहीं है। वेदमें भी आया है—'**सूर्या चन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत्**" (ऋ० १०, १९०, ३) अर्थात् जगत् सृष्टा परमेश्वरने सूर्य–चन्द्रमा आदिको पहलेकी भाँति ही बनाया। और भी "परमेश्वर सबसे पहले ब्रह्माको उत्पन्न करता है उन्हें वेदोंका उपदेश देता है[१]"। पूर्व कल्पकी सृष्टिमें जिन्होंने जिन कर्मोंको अपनाया था बादकी सृष्टिमें वे प्राणी फिर उन्हीं कर्मोंको प्राप्त होते हैं—

"तेषां ये यानि कर्माणिप्राक् सृष्ट्यां प्रतिपेदिरे।
तान्येव ते प्रपद्यन्ते सृज्यमानाः पुनः पुनः॥

महाभागवतमें कहा है "**प्रजा सृजेति**" (भा० ३, २१, ६) अर्थात् यथापूर्व सृष्टिकर। परमात्मा ब्रह्माको हृदयमें ही वेद पढ़ा देता है। (भा० १, १, १) वह अपने तेजसे ही विश्वको प्रकाशित करता है। (भा० २, ५, ११)

मध्वादिध्वसंभवादनधिकारं जैमिनिः १, ३, ३१

मधुविद्या आदिमें देवोंका अनधिकार है, ऐसा आचार्य जैमिनिका मत है। छा० उ० में तीसरे अध्यायमें १–११ खण्डतक मधुविद्याका प्रकरण है। सूर्यको देवोंका मधु कहा है। वह भगवान् अमृत और अभयका ईश है। (भा० २, ६, १८)

ज्योतिषि भावाच्च १, ३, ३२

ज्योतिर्मय लोकोंमें देवताओंकी स्थिति होनेके कारण ही देवताओंक यज्ञादिकर्म और ब्रह्मविद्यामें अनधिकार है। देवता भी भारत भूमि प्राप्त करना चाहते हैं। क्षणायुषां भारत भूमयो परः। ज्योतिः शब्द तो "**ब्रह्मज्योतिः सनातनम्**" (भा० १०, २८, १५) में स्पष्ट है।

भावं तु बदरायणोऽस्ति हि १, ३, ३३

जैमिनिके विपरीत आचार्य बादरायण देवोंका अधिकार यज्ञादि कर्ममें एवं ब्रह्मविद्यामें मानते हैं। "**यज्ञेन यज्ञमयजन्तदेवाः**" (ऋग्वेद पुरुष सूक्त) **तदुदिते सूर्येऽजुहोत्** (तै० ब्रा० २, १, २, ८) **देवावै सत्रमासत** (तै० सं० २, ३, ३) उक्त प्रमाणोंसे देवोंका यज्ञ करना सिद्ध है तथा ब्रह्मविद्यामें उनका अधिकार है:—

---

१. श्वेता० उ० ६, १८ "यो ब्रह्माणं विदधातिपूर्वम्।

देवताओंमें-से जिसने उस ब्रह्मको जाना वही ब्रह्म हो गया (बृ० १, ४, १०) छा० उ० में लिखा है कि इन्द्र और विरोचनने ब्रह्माजीकी सेवा की तथा ब्रह्म तत्व प्राप्त किया। (छा० उ० ८, ७, २) **"ऋतंभर ध्यान निवारिताघ"**। **सर्व एव यजन्ति त्वां सर्व देवमहेश्वरम्** (भा० १०, ४०, ६) भागवतमें यज्ञकी बातकी संपुष्टि है।

शूद्रका ब्रह्मविद्यामें अधिकार

शुगस्य तदनादर श्रवणात् तदाद्रवणात् सूच्यतेहि १, ३, ३४

हंसोंके मुखसे अपना अनादर सुनकर राजा जनश्रुतिके मनमें शोक उत्पन्न हुआ। वह रैक्व मुनिके पास ब्रह्मविद्या सुनने गया। रैक्वने उससे शूद्र कहा। वह जातिसे शूद्र नहीं था अपितु वह शोकसे व्याकुल होकर दौड़ा था अतः शूद्र कहा था। इससे शूद्रका अधिकार ब्रह्मविद्यामें सिद्ध नहीं है। **"शुचम् आद्रवति इति शूद्रः"** शोकके पीछे दौड़नेवाला शूद्र कहलाता है। पृषध्रको गुरुके शापसे शूद्रत्व था, जातिसे नहीं। उसे फिर भी ब्रह्मविद्या प्राप्त हो गई। भागवतकारने—शूद्रका वेदमें अधिकार नहीं है ऐसा स्पष्ट किया है। भा० १, ४, २५) शूद्रोंको भगवान्के पैरोंसे उत्पन्न माना गया है। (भा० ३, ६, ३३)।

क्षत्रियत्वावगतेश्चोत्तरत्र चैत्ररथेन लिङ्गात् १, ३, ३५

राजाकी कन्याको रैक्वने पत्नी रूपमें ग्रहण किया। इससे यह सिद्ध है कि वह शूद्र नहीं क्षत्रिय था। तथा वेदविद्यामें जाति शूद्रका अधिकार नहीं है। चैत्ररथ क्षत्रिय थे। **"यस्य यल्लक्षणं प्रोक्तम्"** (भा० ७, १४, ३५) जिसका जो लक्षण है वही जाति है। मनुके पुत्र होनेके कारण पृषध्र शूद्र बननेपर भी क्षत्रिय था।

संस्कार परामर्शात्तदभावाभिलापाच्च १, ३, ३६

वेदविद्या ग्रहण करनेके लिए उपनयन आदि संस्कारोंका होना आवश्यक है। शूद्रके लिए इन संस्कारोंका अभाव कहा है। अतः जाति शूद्रका वेदविद्यामें अधिकार नहीं। उपनयनकी बात उपनिषदोंमें कही है—**"उपत्वानेष्ये"** (छा० उ० ४, ४, ४) तेरा उपनयन संस्कार करूँगा। ब्रह्मविद्या विधिवत आचरण करनी चाहिये[1]। **'स्नातमन्यत्नछान्दसात्"** (भा० १, ४, १३) शूद्र वेद रहित कर्म करनेका अधिकारी है।

तदभाव निर्धारणे च प्रवृत्तेः १, ३, ३७

शिष्यमें शूद्रत्वका अभाव निश्चित करनेके लिये आचार्यकी प्रवृत्ति पाई जाती है। पृषध्रको ब्रह्मविद्याकी प्राप्ति शाप निर्मुक्तिके पश्चात् हुई।

---

१. मु० उ० ३, २, १०।

श्रवणाध्ययनार्थ प्रतिषेधात् स्मृतेश्च १, ३, ३८

शूद्रके लिये वेदोंके श्रवण, अध्ययन तथा अर्थज्ञानका भी निषेध किया गया है। स्त्री, शूद्र और द्विजवन्धुओंको वेदाध्ययनका अधिकार है। (भा० १, ४, २५) स्मृतियोंमें भी इसका निषेध प्राप्त होता है[1] । फल प्राप्तिमें निरोध नहीं है[2] ।

कम्पनात् १, ३, ३९

अंगुष्ठमात्र परमात्रा ही है क्योंकि उसी भयसे सब काँपते हैं। अंगुष्ठमात्रका प्रकरण कठोपनिषद्में २ अध्यायमें आया है। इसमें यह भी कहा है कि इसके भयसे अग्नि तपता है, सूर्य तपता है[3] । **मद्भयात् वाति वातोऽयम्**" (भा० १, ३, ३६) तथा "**यद्भयात् वाति वातोऽयम्**" (भा० ३, २६, ४०) श्लोकोंमें कम्पनात्की व्याख्या द्रष्टव्य है।

ज्योतिर्दर्शनात् १, ३, ४०

पुनः दहराकाशपर विचार :—ज्योति शब्द परब्रह्मका ही वाचक है। "**अथ यदतः परो दिवो ज्योतिर्दीप्यते**" (छा० उ० ३, १३, ७) इसमें ज्योतिः पद परमात्माके अर्थमें है। ब्रह्म ज्योति है, निर्गुण, निर्विकार है। (भा० १०, ३, २४)।

आकाशोऽर्थान्तरत्वादिव्यपदेशात् १, ३, ४१

आकाश शब्द परब्रह्मका ही वाचक है। उसे नामरूप मय जगत्से भिन्न वस्तु बताया गया है[4] । '**व्योम्नि धारयेत्**' से भूताकाशका उल्लेख नहीं है।

सुषुप्त्युत्क्रान्त्योर्भेदेन १, ३, ४२

सुषुप्ति तथा मृत्युकालमें भी जीवात्मा परमात्माका भेदपूर्वक वर्णन है[5] । अतः आकाश शब्द परमात्माके लिये है। "**बुद्धेर्जागरणं स्वप्नः सुषुप्तिरिति वृत्तयः**" (भा० ७, ७, २५)।

पत्यादि शब्देभ्यः १, ३, ४३

परब्रह्मके लिये श्रुतिमें परमपति, परममहेश्वर आदि विशेष शब्दोंका प्रयोग है। इससे सिद्ध है कि जीवात्मा और परमात्मामें भेद है। '**तमीश्वराणां परमं महेश्वरम्**' (श्वेता० ६, ७) इस मन्त्रमें देवता आदिकी कोटिमें जीवात्मा है और परम देवता नागसे परमात्माका वर्णन किया गया है अतः आकाश शब्द परमात्माका

---

१. पाराशर स्मृति १, ७३—"वेदाक्षर विचारेण शूद्रः पतति तत्क्षणात्" मनुस्मृति ४, ८० न शूद्राय मतिं दद्यात्।

२ गीता ६, ३२।

३. क० उ० २, ३, ३।

४. छा० उ० ८, १४, १।

५. छा० उ० ६, ८ः १।

वाचक है, मुक्त जीवका नहीं। **"श्रियः पतिर्यज्ञपतिर्धरापतिः"** इससे असंसारित्व प्रतिपादन है। (भा० २, ४, २) वह आत्माओंका अधीश्वर है[१]। (भा० २,४,१६)।

आनुमानिकमप्येकेषामिति चेन्न शरीर रूपक विन्यस्त गृहीतेर्दर्शयति १, ४, १

अनुमान कल्पित जड़ प्रकृति किन्हींके मतमें वेदप्रतिपादित नहीं है क्योंकि यहाँ शरीर ही रथके रूपकमें पड़कर अव्यक्त शब्दसे गृहीत होता है। अव्यक्तसे परे पुरुष है—**"अव्यक्तात् पुरुषः परः"**[२] **"सोऽध्वनः पारमाप्नोति"** इत्यादिसे उपासकको रथी और शरीर आदिको रथका रूपक दिया गया और यह भी कहा है कि जिसके वशमें रथादि रहते हैं वह रास्ता तय कर विष्णुके पदको प्राप्त करता है। सूक्ष्म शरीरके सम्बन्धमें भागवतमें लिंग शरीरका उल्लेख किया है[३]। अव्यक्त ईश्वरकी शक्ति विशेषके अतिरिक्त और कुछ नहीं है। **"सूक्ष्मंतु तदर्हत्वात्"** (१, ४, २) तथा **"तदधीनत्वादर्थवत्"** ब्र० सूत्र १, ४, ३ में प्रमाण दिया गया है।

सूक्ष्मं तु तदर्हत्वात् १, ४, २

प्रकरणसे 'शरीर' शब्दसे सूक्ष्म शरीरका ही ग्रहण होता है क्योंकि वही अव्यक्त कहलाने योग्य है। भागवतमें कहा है कि वह सूक्ष्मतम है और अव्यक्त कोई विशेषण भी घटित नहीं होता :—**"अतः परं सूक्ष्मतममव्यक्तं निर्विशेषणम्"** (भा० ३, १०, ३४) अतः अव्यक्त शब्दसे सूक्ष्मका ही बोध होना चाहिये।

तदधीनत्वादर्थवत् १, ४, ३

उस परमात्माके आधीन होनेके कारण वह शक्तिरूपा प्रकृति सार्थक है। वह ईश्वर अपनी माया प्रकृतिको उद्भावित करता है[४] श्वेताश्वतरो०में भी लिखा है कि वह मायाशील परमेश्वर इस विश्वकी रचना करता है[५]।

सांख्य शास्त्र यह मानता है कि अव्यक्त चेतनके द्वारा अधिष्ठित नहीं हैं और अव्यक्त ही जगत्का कारण है भा०में लिखा है कि—दैवात् वह परमात्मा स्वयं ही अपनी योनिमें वीर्याधान करके महत् तत्त्वादिकी सृष्टि करता है[६]। अतः अव्यक्त स्वतन्त्र रूपमें कुछ करनेमें असमर्थ है।

ज्ञेयत्वावचनाच्च १, ४, ४

वेदमें प्रकृतिको ज्ञेय नहीं कहा है अतः यह सांख्योक्त प्रधान नहीं है। क्योंकि सांख्यमें तो अव्यक्त (प्रकृतिके)कें ज्ञानसे मोक्ष होना लिखा है[७]। अन्यत्र कहीं भी प्रकृतिकी ज्ञेयताके वचन उपलब्ध नहीं हैं।

---

१. मु० उ० ३, १, ४ **"आत्म क्रीड आत्मरति" उसीके सम्बन्धमें है।**
२. कठोप० ६, ८। ३. भा० ४, २६, ६०।
४. भा० १, १०, २२। ५. श्वे० उ० ४, १।
६. भा० ३, २६, १६। ७. सा० का० २।

वदतीति चेन्न प्राज्ञो हि प्रकरणात् १, ४, ५

वेद प्रकृतिको ज्ञेय नहीं कहता परमात्माको कहता है। पुरुष (परमात्मा)से बढ़कर कोई भी नहीं है, ऐसा उपनिषदोंमें आता है[१]। **'संधार्यतेऽस्मिन् वपुषि स्थविष्ठे"** (२, १, ३८) भागवत वाक्यमें भी परमात्माकी ज्ञेयता बतलाई है।

त्रयाणामेव चैवमुपन्यासः प्रश्नश्च १, ४, ६

तीन (अग्नि, जीवात्मा, परमात्मा)का ही ज्ञेय रूपमें उल्लेख है[२] और उन्हींके सम्बन्धमें प्रश्न किया है। इन तीनोंमें प्रधानका या प्रकृतिका उल्लेख ही नहीं है। भागवतमें लिखा है कि धारणाका आश्रय भगवान् है। धारणा शरीर आत्मा, तथा मनसे भी की जा सकती है अतः इन तीनोंका ही उपन्यास है या प्रश्न है। अतः प्रधानको किसी भी दशामें स्वतन्त्र 'नहीं माना जा सकता। साथ ही यह भी लिखा है कि उस परमात्मा न तो नाम है न रूप, उसमें गुण है न दोष[३]।

महद्वच्च १, ४, ७

महत् शब्दकी भाँति इसे भी दूसरे अर्थमें लेना अयुक्त नहीं है। अर्थात् जैसे महत् मायासे उत्पन्न होता है वैसे ही माया भी भगवान्से उत्पन्न होती है। भागवत्में भी कहा है :—**"तस्मादव्यक्तमुत्पन्नम्"** भा० श्वेताश्वतरोप०के **"अजामेकां लोहित शुक्ल कृणाम्"** श्लोकमें भी प्रकृतिको भगवान्के अधीन कहा है।

चमसवदविशेषात् १, ४, ८

अजा शब्द प्रकृतिका ही वाचक नहीं है अन्यका भी है जैसे 'चमस' शब्दका पृथक् अर्थ होते हुए भी यज्ञका अंग माना जाता है। चमस यज्ञका अंग है ऐसा भागवतमें भी लिखा है :—**"इडोदरे चमसाः"** (भा०) इसमें ब्रह्मसूत्रके 'चमस' शब्दकी भी आवृत्ति द्दष्टव्य है। प्रकृतिगुणमयी है, सूक्ष्म है[४]।

ज्योतिरूपक्रमाच्च तथा ह्यधीयत एके १, ४, ९

एक शाखावाले अजा शब्दको तेज आदि त्रिविध तत्त्वोंका वाचक मानते हुए भी परमेश्वरकी शक्तिका वाचक माना है। भागवतमें कहा है कि मायाके ३ वर्ण हैं और यह माया जगत्की सृष्टि-स्थिति एवं प्रलयकारिणी है[५]। **'ज्योतिर्मयो वायुमुपेत्य काले'** (भा० २, २, २८)में ज्योति शब्द आया है।

कल्पनोपदेशाच्च मध्वादिवदविरोधः १, ४, १०

श्वे० उपनिषद्में अजाका रूपक बाँधकर त्रिविध रूपकी कल्पना करके

---

१. कठो०। २. कठो० १, २, १४।
३. भा० ८, ३, ८। ४. भा० ३, २६, ४।
५. भा० ११, ३, १६ "एषामाया भगवतः सृष्टिस्थित्यन्तकारिणी"।

उपदेश किया है, अतः मधु आदिकी भाँति कोई विरोध नहीं है। छा० उ० में सूर्यको मधु कहा है[1]। बृहदारण्यकमें वाणीको धेनुका रूपक दिया है[2]। इस **'अजामेकाम्'** मन्त्रमें मन्त्र तन्त्र सिद्धान्त प्रत्यभिज्ञा मानना भी उचित नहीं है, क्योंकि अजासे भिन्नका भी बोध सौकर्यवश अजात्व रूपक कल्पित किया जा सकता है। जैसे अमधुरूप आदित्यकी मधुरूपमें कल्पना है ऐसे ही उसमें भी माननी चाहिये। "सम्वत्सरकी कल्पना भागवतमें पूरक द्वारा दी गई है, एक चक्रमें १२ आराएं हैं, ६ नेमि हैं, ३ नाभि हैं" (भा० ५, २१, १३)।

न संख्योपसंग्रहादपि नाना भावादतिरेकाच्च १, ४, ११

संख्याका ग्रहण होनेसे भी वह सांख्यमतोक्त गणना नहीं है। संख्याकी चर्चा यहाँ बृ० उ०के **"यस्मिन् पंच पंचजनाः"** इस वाक्यके आधारपर की गई है। पंचशब्द दो बार आया है, प्रथम पंच शब्दसे संख्या तथा द्वितीय पंच शब्दसे पाँच विषयोंका बोध किया जाता है। जनशब्द तत्ववाची है, अतः पंच संख्या गुणित तत्वपंचकोंका बोध उनसे होता है। सांख्यकारिकामें २५ तत्त्वोंका वर्णन है[3]। पंचजन शब्द संज्ञावाची है। सप्त-सप्तर्षयः प्रयोगकी भाँति यह शब्द भी समझना चाहिये। यह गुणित पद्धति भागवतमें भी है :—**"पचपंचाद्भुतं गृहम्"** (भा० ६, ५, ८) यहाँ पंचशब्द उपनिषद्के समान ही २५ तत्वोंके बोधके लिये प्रयुक्त किया गया है। पंचजनोंका स्पष्टीकरण अग्रिम सूत्रमें किया गया है।

प्राणादयो वाक्यशेषात् १, ४, १२

बृ० उ० के ४, ४, १८ में कहे वाक्यसे प्राण और इन्द्रियाँ ही ग्रहण की जाती हैं। यथा :—**"प्राणस्य प्राणमुतचक्षुषश्चक्षुः"** इसे माध्यन्दिन शाखा मात्रसे ही सम्बन्धित न माना जाय। इन्द्रियोंका कारण प्राण है ऐसा भागवतमें भी लिखा है :— **"इन्द्रियं त्विन्द्रियाणां त्वं देवाश्च तदनुग्रहः"** (भा० १०, ८५, १०)।

ज्योतिषैकेषामसत्यत्वे १, ४, १३

काण्व शाखावाले पाठमें अन्नका ग्रहण नहीं है अतः उनके अनुसार ज्योतिके द्वारा संख्या पूर्ति की जाती है। **"तद्देवा ज्योतिषां ज्योतिः"** (बृह० ४, ४, १६) प्राचीन आचार्योंका मत है कि यहाँ ज्योति, विषयक प्रकाशक इन्द्रियोंके लिये प्रयुक्त है। भागवतमें ज्योति शब्द अन्नके लिये प्रयुक्त है **"य एव षोडश कलः पुरुषो भगवान् मनोमयोऽन्नमयः"** अतः अन्न शब्दके अभावमें भी (काण्वमत)में ज्योतिषासे उसकी पूर्ति करना उचित है। वैसे—**"ज्योतिः परं यत्र रजस्तमश्च"** (भा० ८, ७, ३१)में 'ज्योति' शब्द गृहीत है।

---

१. छा० उ० ३ १। २. बृह० उ० ५, ८, १।
३. सांख्यकारिका।

कारणत्वेन चाकाशादिषु यथाव्यपदिष्टोक्तेः १, ४, १४

आकाशादि पदार्थोंमें कारण रूपसे एक ब्रह्मका ही प्रतिपादन है अतः वही जगत्का कारण है। आकाशकी उत्पत्ति कहीं आत्मासे लिखी है[1] तो कहीं सृष्टि तेजपूर्विका वर्णित है[2], कहीं सृष्टिकी उत्पत्ति प्राण द्वारा वर्णित है[3], कहीं कोई क्रम ही नहीं है[4] तब ऐसी स्थितिमें ब्रह्मको ही रचयिताके कारण सबका मूल माना है वैचित्र्य रचना पद्धतिमें है। सम्पूर्ण वेदान्तोंमें कारणत्वसे ईश्वरका ही बोध होता है।

भागवतमें तो आकाशादिका कारण स्पष्ट एकमात्र ईश्वरको कहा है[5]। **"जन्माद्यस्यतः"** भी ब्रह्मका उद्‌घोष कर चुका है कि संसारका कारण ब्रह्म है[6]। **"भगवानेक आसेदम्"** (भा० ३, ५, २३)में भी एकत्व कहा है।

समाकर्षात् १, ४, १५

वाक्य संगति करनेसे असत् आदि शब्द भी ब्रह्मके वाचक हैं। असत् कारण प्रतिपादक श्रुतिमें छः भाव विकार आते हैं उनमें 'अस्ति' नामक विकार भी है उससे समाकर्ष अर्थात् खींचकर 'असत्' यह उक्ति है इससे इसे कारण नहीं माना जा सकता। भागवतमें भी **"नसन्नाचासत्"** लिखा है।

जगद्वाचित्वात् १, ४, १६

जगत्का कर्ता परमेश्वर है जड प्रकृति नहीं। कौ० ब्रा०में कहा है कि जो पुरुषोंका भी कर्ता है वह जानने योग्य है[7] तत् शब्द परमात्माका वाचक है अतः कर्तृत्व जीवमें नहीं परमात्मामें है। **"यतो भवद्विश्वमिदं विचित्रं, संस्थाप्यते यत्र च वावतिष्ठते।"** (भा० ३, २२, २०) इस भागवत वाक्यके यत् शब्दसे परमात्माका बोध होता है और 'इदं' पदसे जगत्रूप कार्य पृथक कहा गया है।

जीव मुख्य प्राणलिंगान्नेति चेन्न तद् व्याख्यातम् १, ४, १७

प्राण सहित जीवको ज्ञेय नहीं माना जा सकता क्योंकि यदि जीवको ही ज्ञेय तत्व मान लें तो त्रिविध उपासनाका प्रसंग उपस्थित होता है जो उचित नहीं है। **"अनुप्राणन्ति यं प्राणाः"** (भा० २, १०, १६) में तत् २ शब्दोंसे परमात्मा ही कहा है। अन्यत्र भी कहा है[8]।

---

१. तै० उ० ३, २, १ **"आत्मनः सकाशादाकाश उत्पन्नः"**।

२. छा० उ० ६, २, ३ **तत्तेजोऽसृजत्।** ३. प्रश्न० ६, ४ **सप्राणमसृजत।**

४. ऐत० १, १, २ **सइमांल्लोकानसृजत।** ५. भा० ४, ८, ७८।

६. भा० १, १, १।

७. कौ० ब्रा० ४,१८ **यो वै बलाके एतेषां पुरुषाणां कर्ता...."**।

८. भा० ५, ११, १३-१४।

अन्यार्थंतु जैमिनिः ब्रह्म व्याख्यानाभ्यामपि चैवमेके १, ४, १८

जैमिनि इस प्रकरणमें जीव तथा प्राणका वर्णन दूसरे ही प्रयोजनसे मानता है, साथ ही प्रश्न-उत्तरसे भी यह सिद्ध है। काण्व शाखावालोंका भी यह मत है। भागवतके "**नाहं वेद परं यस्मिन्**" श्लोकसे[1] प्रश्न व्याख्यान द्वारा भगवदर्थ ही निरूपित किया है।

वाक्यान्वयात् १, ४, १९

वाक्योंके समन्वयसे भी यही मत पुष्ट होता है। '**सर्वेषामपि भूतानां नृप स्वात्मैव बल्लभः**'। (भा० १०, १४, ५०)में भी समन्वय द्वारा एकत्वका बोध कराया गया है।

प्रतिज्ञा सिद्धेर्लिंगमित्याश्मरथ्यः १, ४, २०

आश्मरथ आचार्यका मत है कि जीव तथा प्राणके लक्षणोंका वर्णन ब्रह्मको ही जगत्का कारण बतलानेके लिये हुआ है। भागवतमें कहा है कि काष्ठमें अग्निके समानमें भी सब भूतोंमें व्याप्त हूँ। इन भूत-इन्द्रिय एवं गुणादिसे रहित अपनी आत्मामें मेरा स्वरूप भाषित होता है[2]। भगवान्का यह भी कथन है कि मैं समस्त प्रियोंका प्रिय हूँ अतः मुझमें प्रीति करनी चाहिये[3]।

उत्क्रमिष्यत एवं भावादित्यौडुलोमिः १, ४, २१

ब्रह्मवेत्ताका शरीर शरीरको छोड़कर ब्रह्ममें लीन होता है ऐसा श्रुतियोंमें निर्देश है ऐसा औडुलोमि आचार्यका मतहै। शिशुपालके देहसे निःसृत ज्योति भगवान् श्रीकृष्णमें प्रविष्ट हो गई ऐसा भागवतमें वर्णन आता है:—"**चैद्य देहोत्थितं ज्योतिर्वासुदेवमुपाविशत**" (भा० १०, १४, ४५)।

अवास्थितेरिति काशकृत्स्नः १, ४, २२

प्रलयकालमें सम्पूर्ण जगत्की स्थिति उस परमात्मामें ही होती है। यह काशकृत्स्न आचार्यका मत है। 'मैं ही समस्त भूतोंका आदि अन्त हूँ" (भा० १०, ८२, ४५) गीतामें भी ऐसा कहा है[4]। भागवतमें अन्यत्र भी इसकी पुष्टि है[5]।

प्रकृतिश्च प्रतिज्ञादृष्टान्तानुपरोधात् १, ४, २३

इस जगत्का उपादान कारण भी ब्रह्म है। श्रुतिमें आगे प्रतिज्ञा वाक्य एवं दृष्टान्त वाक्योंसे भी कोई विरोध नहीं है। छा०उ० में "**येनाश्रुतं श्रुतं भवति**" (६,१,२)

---

१. भा०—(क) २, ५, ६ (ख) ३, ३१, १३-१४।

२. भा० ३, ९, ३२-३३। ३. भा० ३, ९, ४२।

४. गीता ६, २९

५. भा०-(क) ३, २८, ४२ (ख) ४, ११, ११।

प्रतिज्ञा वाक्य है श्वेतकेतुके पिताने अपने पुत्रसे यह जिज्ञासाकी थी और **"यथासौम्यैकेन मृत् पिण्डेन सर्वं मृण्मयम्"** (छा० उ० ६, १, ४) अर्थात् 'हे सौम्य ! जैसे एक मिट्टीके पिण्डके ज्ञानसे सबका ज्ञान होता है" यह दृष्टान्त वाक्य है। इनकी सार्थकता जगत्का उपादान कारण ब्रह्मको माननेसे ही है। भागवतमें—**"आत्मैव तदिदं विश्वम्"** ११, २८, ७) श्लोक द्वारा सिद्ध किया है कि भगवान् सबके उपादान कारण भी हैं। भगवान् निमित्त कारण भी है। **"सतोऽपिव्यञ्जनः कालो ब्रह्मतत् त्रितयं त्वहम्"** में त्रितयसे सर्वकारण भगवान् ही लक्षित कराये हैं।

अभिध्योपदेशाच्च १, ४, २४

श्रुतिमें संकल्पपूर्वक सृष्टि रचनाकी बात कही है इससे भी ब्रह्मको उपादान कारण माना गया है[१]। भागवतमें **"तस्मार्थ सूक्ष्माभिनिविष्ट दृष्टेः"** (३, ८, १३) द्वारा भी उपादान कारण सिद्ध किया है।

साक्षाच्चोभयाम्नानात् १, ४, २५

श्रुतिमें उपादान और निमित्त कारण दोनों ही कहे हैं[२]। ध्यानयोगसे उन्होंने निगूढ़ शक्तिको देखा[३]। भागवतमें तो सरल रीतिसे कहा है कि आत्मा द्वारा मैं ही इस विश्वको रचता हूँ, रक्षा करता हूँ और संहार करता हूँ। **आत्मन्येवात्मनात्मानं सृजे हन्म्यनुपालये, आत्ममायानुभावेन भूतेन्द्रियगुणात्मना। (१०, ४७, ३०)।**

आत्मकृते परिणामात् १, ४, २६

जगत्रूपमें प्रकट करनेका वर्णन होनेसे ब्रह्म ही उपादान है। भागवत **"सद्भिमृशत्यशेषमिदमात्मतयात्मविदः"** (१०, ८७, २६)में स्पष्ट ही ब्रह्मको उपादान कारण सिद्ध किया है। (कहीं इन सूत्रोंको पृथक् पढ़ा गया है[४]) यह विश्व भगवान् द्वारा रचित है वे ही इसके रूपमें समाविष्ट हैं यह श्रुति सम्मत मत है[५]। **ब्यासेर सूत्रे ते कहे परिणामवाद, व्यास भ्रान्त वलि तार उठाइल विवाद।** (चै० च० आ० ७, १२१)।

---

१. (क) तै० उ० २, ६ **सोऽकामयत बहुस्यां प्रजायेय**
(ख) छा० उ० ६, २, ३ **तदैक्षत बहुस्यां प्रजायेय**
(ग) छा० उ० ३, १४, १ **सर्वं खाल्विदं ब्रह्म।**

२. श्वेता० उ० (१, १-२) **किं कारणं ब्रह्म कुतः स्मजाता।**

३. श्वेता० ३, १, ३ "ते ध्यानयोगानुगता अपश्यन्"।

४. गीताप्रेस गोरखपुर वेदान्तसूत्र **"देवात्मशक्तिं स्वगुणैर्निगूढाम्" वेदान्त सूत्र।**

५. भा० १०, ४८, १६।

योनिश्चहिगीयते १, ४, २७

वेदान्तमें ब्रह्मको कारण कहा है[1] अतः ब्रह्म उपादान कारण है भागवतमें भी उसे **"सर्वकारण कारणम्"** कहा है तथा **"जाने त्वामीशं विश्वस्य जगतयोनि बीजयोः, शक्तिः शिवस्य च परं यत्तत् ब्रह्मनिरन्तरम्।'** (भा० ४, ६, ४२)। इसमें योनिशब्द भी दृष्टव्य है तथा सूत्रका भाव व्याख्यात है। **"ममयोनिर्महद् ब्रह्म"** ऐसा गीतामें भी कहा है[2]।

एतेन सर्वेव्याख्याता व्याख्याता १, ४, २८

इस विवेचनसे समस्त वादोंका समाधान हो जाता है। सांख्यवादी मतके साथ परमाणुकारणवादी नैयायिक आदिके मतोंका भी निराकरण कर दिया है। भागवतमें एक श्लोकमें यह शैली दृष्टव्य है :—**"नैतत् विज्ञाय जिज्ञासोर्ज्ञातव्यमवशिष्यत"** (मा०११,२६,३२) अर्थात् इसे जानकर जिज्ञासुको कुछ भी ज्ञातव्यशेष नहीं रहता। शिवको कर्त्ता माननेसे भी कोई दोष नहीं है क्योंकि हरि ही ३ रूप धारण करते हैं—**"अहं ब्रह्मा च शर्वश्च जगतः कारणं परम्"** (भा० ४, ७, ५०) भेद बुद्धि अज्ञानियोंमें है[3]। सत्व-तम-रज प्रकृतिके गुण हैं और उनसे ही भगवान् तीन मूर्तिवाले बन जाते हैं[4]। विष्णुके सहस्रनामोंमें शिवका नाम भी पढ़ा गया है[5]।

※ द्वितीयोऽध्यायः ※

स्मृत्यनवकाश दोष प्रसंगइति चेन्नान्यस्मृत्यनवकाश दोषप्रसंगात् २, १, १

प्रधानको जगत्का कारण न माननेसे सांख्य स्मृतिको मान्यता न देनेका दोष है किन्तु इसे माननेसे अन्धोंके अमान्यत्वका दोष है। भागवतमें तो सांख्यका नाम लेकर कहा है कि जो सांख्य और योगसे फल नहीं होता वह भगवान्के दर्शनसे होता है :—**"यन्न योगेन सांख्येन दान व्रत तपोध्वरैः"** श्रुति माताके समान है वह भगवान्के आराधनाकी विधिका उपदेश देती है। माताकी वाणीके समान ही स्मृति

---

१. (क) मुण्डको० ३, १, ३ **"कर्त्तारमीशं पुरुषं ब्रह्मयोनिम्"**।
(ख) मुण्डको० १, १, ६—**भूतयोनिं परिपश्यन्ति धीराः।**

२. गीता.........। ३. भा० ४, ७, ५०।

४. भा० १, २, २३।

५. विष्णुसहस्रनाम—**सर्वः सर्वः शिवः स्थाणु।**

है, पुराण स्मृतियोंके छोटे भाई हैं। हे मुरहर ! आप ही केवल रक्षक हो :— **श्रुतिर्मातापृष्टादिशति भगवदाराधनविधि यथामातुर्वाणी स्मृतिरपि तथा वक्ति भगिनी पुराणाद्या ये वा सहज निवहोस्ते तदनुगा अतः सत्यं ज्ञातं मुरहर ! भवानेव शरणम्**[1] ।

गीतामें भगवान्‌का कथन है कि "मैं इस जगत्‌को उत्पन्न करता हूँ[2] । मनुस्मृतिमें कहा है 'परमात्माने ध्यानपूर्वक समस्त प्रजा उत्पन्न की[3] । विष्णुपुराणमें भी कहा है कि विष्णुके द्वारा ही सम्पूर्ण जगत्‌की रचना हुई, और यह जगत् विष्णुमें ही स्थित है :—"**विष्णोः सकाशादुद्‌भूतं जगत्तत्रैव चास्थितम्**[4]" अतः एक सांख्य स्मृतिको महत्व देनेसे अन्य शास्त्रोंका भी तो अवमानन है अतः प्रधानको जगत्‌का कारण मानना उचित नहीं है।

इतरेषां चानुपलब्धे २, १, २

अन्य स्मृतियोंने सांख्योक्त प्रधानको जगत्‌का कारण स्वीकार नहीं किया है। कपिलदेवका द्वादश धर्म वेत्ताओंमें उल्लेख है और मनुका भी उल्लेख है। भागवत धर्मवेत्ता कपिलका मत ग्राह्य है इन्होंने प्रधानको कारण नहीं माना है। भागवतका कथन है कि ब्रह्ममें बड़े २ विद्वान् मोहको प्राप्त होते हैं[5] ।

एतेन योगः प्रत्युक्तः २, १, ३

इस कथनसे योग शास्त्रकी भी शंकाका समाधान हो गया। अर्थात् योगशास्त्र भी वेद विरुद्ध है तभी भागवतमें लिखा है :—"**यन्न सांख्येन योगेन**" परन्तु वेदानुगुण योग आदरणीय है। 'यम-नियम-आसन' आदि योगके मार्गोंसे आत्माको पूर्ण लाभ नहीं होता[6] । अभक्तोंके लिये योगके विघ्न कष्टदायी होते हैं :—**युंजानानामभक्तानांप्राणायामादिभिमनः। अन्तरायान् वदन्त्येतान् युंजतो योगमुत्तमम्** ॥ (भा० ११, १५, ३३) भगवान्‌ने स्पष्ट अनेकशः कहा है। "हे उद्धव ! मुझे न सांख्य शास्त्रसे प्राप्त किया जा सकता है न योगसे।"

न विलक्षणत्वादस्य तथात्वं च शब्दात् २ १, ४

चेतन ब्रह्म जगत्‌का कारण नहीं हो सकता क्योंकि जगत् जड़ है। जड़ वस्तुसे जड़ वस्तु उत्पन्न होगी। भागवतमें इस ओर शंका प्रस्तुत करते हुए लिखा

---

१. सिद्धान्तकण पृ–२० (बंगला)।

२. गीता ७, ६।   ३. मनुस्मृति १, ८।

४. वि० पुराण १, १, ३१।   ५. भा० १, १, १।

६. भा० १, ६, ३६।   ७. भा० ११, १४, २०।

है—**ब्रह्मन् कथं भगवतः चिन्मात्रस्याधिकारिणः । लीलया वापि युज्येरन् निर्गुणस्य गुणाःक्रिया ।।** (भा० ३, ७, २) गुण और क्रिया पदोंसे जड़त्वका संकेत है ।

अभिमानिव्यपदेशस्तुविशेषानुगतिभ्याम् २, १, ५

'जगत्' चेतन्से विलक्षण नहीं है क्योंकि श्रुतियोंमें 'जलने विचार किया तेजने विचार किया[1] ऐसा लिखा है । यहाँ जलके अधिष्ठाता तेजके अधिष्ठाताने विचार किया ऐसा समझना चाहिये । अभिमानी देवों द्वारा ही भगवान् श्रीकृष्णकी स्तुति एकादशस्कन्धमें "**नमाम ते देव पदारविन्दम्**" द्वाराकीगई है[2] । महदादि देव भी विष्णुके अंश हैं :—"**एते देवाः कला विष्णोः कालमायांशलिंगिनः**" (भा० ३,५,३८) ।

दृश्यते तु २, १, ६

उपादानसे विलक्षण वस्तुकी उत्पत्तिका वर्णन भी देखा गया है—गोमयसे वृश्चिक तथा मणिसे कामनाओंकी पूर्ति या कामधेनु, कलपवृक्ष द्वारा मनोरथ सिद्धि सुनी जाती है । **यथा नभस्यप्रतमः प्रकाश भवन्ति भूया न भवन्त्यनुक्रमात् ।** (भा० ४, ३१, १७) "**दृश्यते सन्नपिद्रष्टुः** (भा० ३, ७, ११)में सूत्रका दृश्यते पद द्रष्टव्य है ।

असदिति चेन्नप्रतिवेधमात्रत्वात् २, १, ७

इससे असद्वस्तुवादका प्रसंग नहीं आयेगा क्योंकि असत् शब्द अभावका बोधक है । जलके हिलनेसे उसमें प्रतिविम्बित चन्द्र आदिका हिलना दिखलाई देता है ऐसे ही आत्मामें दुःखादिकी बात है जो असत्य है—स्वप्नमें शिरश्छेद होना भी असत्य ही है **यदर्थेन विनामुष्यपुंस आत्म विपर्ययः, प्रतीयत उपद्रष्टुः स्व शिरश्छेदनादिकः । यथा जले चन्द्रमसः कंपादिस्तत् कृते गुणः दृश्यते सन्नपि प्रष्टुरात्मनो नात्मनो गुणः ।।** (भा० ३, ७, १०-११) ।

अपीतौ तद्वत् प्रसंगादसमंजसम् २, १, ८

प्रलयकालमें ब्रह्मको संसारके जड़त्व और सुख-दुःख आदिके धर्मोंसे युक्त माननेका प्रसंग उपस्थित होगा अतः उपर्युक्त मान्यता संगत नहीं है । भागवतमें लिखा हैं कि भगवान्ने अपनी गुणमयी मायासे विश्वकी रचनाकी और उसने ही इसे धारण किया है एवं वही संहार करके अपनेमें इसे मिला लेता है[3] । उसका मायासे युक्त होना असंगत है परन्तु उसमें सभी विरुद्ध धर्म भी देखे जा सकते हैं[4] । भगवान् अचिन्त्य शक्तिशाली हैं ।

---

१. छा० उ० ६, २, ३ तत्तेज ऐक्षत ।

२ भा० ११, ६, ७ । ३. भा० ३, ४, ७ ।

४. भा० ५, १८, ५ ।

न तु दृष्टान्त भावात् २, १, ९

वेद सम्मत सिद्धान्तमें पूर्व सूत्रोक्त दोष नहीं है क्योंकि ऐसे अनेक दृष्टान्त हैं जिनसे 'कारणमें कार्य विलीन हो जानेपर भी कार्यके धर्म विलीन नहीं होते सिद्ध होते हैं। भागवतमें मैत्रेयने विदुरकी शंकाका समाधान करते हुए कहा है कि सुषुप्तावस्थामें जाग्रत अवस्थाके विद्यमान क्लेश ही लीन होते हैं उसी प्रकार प्रलयकालमें इन्द्रियाँ जब निश्चलावस्थाको प्राप्त हो जाती हैं तब सृष्टि लीलामें विद्यमान पदार्थोंका ही लय 'हरि भगवान्'में होता है'। **न्यस्पेदभात्मनि जगद्बिलयाम्बु मध्ये शेषेऽत्मना निज सुखानुभवो निरीहः।** (भा० ७, ९, ३२)

स्वपक्षे दोषाच्च २, १, १०

वादीके पक्षमें उक्त दोष आते हैं अतः प्रधानको जगत्का कारण नहीं मानना चाहिए। अतः ब्रह्म उपादान पक्ष ग्रहण करना चाहिये। अतः उक्त कथनसे जगत्का असत् स्वरूप भी स्पष्ट है :—''**तस्मादिदं जगदशेषमसत् स्वरूपम्**' (भा० १०, १४, २२) भागवतमें ब्रह्माने भगवान्की स्तुतिमें असत्की चर्चाकी है।

तर्काप्रतिष्ठानादप्यन्यथानृमेयमिति चेदेवमप्यनिर्मोक्षप्रसंगः २, १, ११

तर्ककी अस्थिरतामें द्वितीय प्रकारका अनुमान कारणका निश्चय करता है, यदि यह मानें तो मोक्षके अभावका प्रसंग आता है। वेद प्रमाण रहित कोई भी अनुमान वास्तविक ज्ञान करानेवाला नहीं है और वास्तविक ज्ञानके विना मोक्ष सम्भव नहीं है अतः सांख्यमतसे भी मोक्ष न होनेका प्रसंग आयेगा। भागवतमें आर्ष ज्ञानका महत्व ही स्वीकार किया है :—''**ऋषे वदन्ति मनुयः प्रशान्तात्मेन्द्रियाशयाः**'' (भा० २, ६, ४१) अचिन्त्य भावोंको तर्कसे जोड़ना अनुचित है ऐसा महाभारतमें कहा है[2]। तर्क बुद्धि ईश्वरको समझानेमें समर्थ है :—'**नैषा तर्केणमतिरापनेया**' ऐसा कठोपनिषद्का मत है[3]।

एतेनशिष्टापरिग्रहा अपि व्याख्याता २, १, १२

इस प्रधान कारणवाद निराकरणसे शिष्टोंके द्वारा परित्यक्त परमाणु कारणवाद आदिका भी प्रतिवाद कर दिया गया। भागवतमें इस वादका निराकरण किया है :—**असन्निचाताद् परमाणवो ये अविद्यया मनसा कल्पितास्ते।** (भा०५,१२,९) परमाणुओंके मिलनेसे जगत् बना तो इन्हें मिलाया किसने? इसका उत्तर परमाणुवादपर नहीं है। अविद्या पद द्वारा 'न्याय' आदि पक्षोंका अनादर किया है। ये

---

१. भा० ३, ७, १३। २. महाभारत भीष्मपर्व ५, २२।

३. कठो० १, २, ९।

शास्त्र असद् गाथा है इनके सुननेसे लाभ नहीं है। मीमांसक कर्मके अंगको ईश्वर मानता है, सांख्य जगत्का कारण प्रधानको मानता है, न्यायशास्त्री विश्वकी रचना परमाणुओंको मानता है मायावादी निर्विशेष ब्रह्मको जगत्का हेतु बतलाता है, पातञ्जलके अनुसार ईश्वरका स्वरूप आख्यान है। वेदान्त मतमें ईश्वर साकार है। प्रत्येकने परमतका खण्डन किया है अतः महाजनोंका मार्ग ही श्रेयस्कर है **"महाजनो येन गतः सपन्थाः।" "महाजन येई कहे सेई सत्यमानि"** (चै० च० म० २४, ४८)

भोक्त्रापत्तेरवि भागश्चेत्स्याल्लोकवत् २, १, १३

ब्रह्मको जगत्का कारण माननेसे उसमें भोक्तापनका प्रसंग आ जायगा। जीव-ईश्वरका विभाग सिद्ध नहीं होगा। इस प्रकार जीव और जडवर्गका भी परस्पर विभाग सिद्ध नहीं होगा। परन्तु ऐसा मानना भी ठीक नहीं क्योंकि लोकमें विभाग देखा जाता है वैसा यहाँ भी मान्य होगा :—पुरुषके अवयवोंसेये समस्त वस्तु बनाई है[१]। यह सब कुछ पुरुष है[२]। वह परमपुरुष विभिन्न प्रकारकी शक्तियोंसे विभिन्न प्रकारकी सृष्टि करता है[३], व्यक्त और अव्यक्त विश्व कृष्णका ही स्वरूप है क्योंकि वही आद्यपुरुष हैं :—**"कृष्ण कृष्ण महा योगिंस्त्वमाद्यः पुरुषः परः। व्यक्ताव्यक्तमिदं विश्व रूपं ते ब्राह्मणा विदुः।।** (भा० १०, १०, ३१) जीव-शक्ति और शक्तिमान्में भेद होनेपर भी कोई दोष नहीं है।

तदन्यत्वमारम्भण शब्दादिभ्यः २, १, १४

आरम्भण आदि हेतुओंसे कार्य-कारणकी अनन्यता सिद्ध होती है। ब्रह्म और जगत् अभिन्न है। यही बात **"बृहदुपलब्धमेतदवयन्त्वशेषतया"** (भा० १०, ८७, १५) द्वारा वेद स्तुतिमें कही गई है। सद्रूप एक है इसे **"न यदिद मग्र आस न भविष्यदतो"** (भा० १०, ८७, ३७)से कहा है। अतः ब्रह्म ही चित्-अचित् समसा जगत्का उपादान कारण है यही निमित्तकारण भी है[४]।

भावेचोपलब्धे २, १, १५

कारणमें शक्तिरूपसे कार्यकी सत्ता होनेपर ही उसकी इपलब्धि होती है। इससे यह सिद्ध होता है कि यह जगत् अपने कारण ब्रह्ममें शक्तिरूपसे सदैव स्थित है। कार्यकारणकी अदन्यता तथा विकल्पका अवस्तुत्व भागवतमें कहा है[५], जैसे

---

१. भा० २, ६, २६। २. भा० २, ६, १५।

३. भा० २, ४, ७।

४. भा०—(क) ७, ३, २४ (ख) ७, ३, २६-२९ (ग) ७, ३, ३२।

५. भा० २, ५, १६।

गन्धादि गुणका पृथिवीसे व्यतिरेक नहीं है, उसी प्रकार ब्रह्मके धर्मोंका ब्रह्मसे पार्थक्य नहीं है—**यथा गंधस्य भूमेश्च न भावो व्यतिरेकतः। अपां रसस्य च यथा तथा बुद्धेः परस्य च॥** (भा० ३, २७, १८) एकमें अनेक तत्व भी देखे गये हैं[1]।

सत्वाच्चावरस्य २, १, १६

कार्य सत् है ऐसा श्रुतिमें लिखा है। विश्व (कार्य) ब्रह्म है—"**विश्वं वै ब्रह्म**" (भा० ३, १०, १२)।

असद्व्यपदेशान्नेति चेन्न धर्मान्तरेण वाक्यशेषात् २, १, १७

जिस श्रुतिमें जगत्को असत् कहा है वह धर्मान्तरकी अपेक्षा से है। भागवतमें कहा है कि सत् कार्य (विश्व) और असत् कारणसे भी परे जो ब्रह्म है, वह में हूँ। "**अहमेवासमेवाग्रे नान्यत् सदसतः परम्**" (६, ४, ४७) यही बात "**आत्मैव तदिदं विश्वं**'[2], श्लोकमें कही गई है।

युक्तेः शब्दान्तराच्च २, १, १८

युक्तिसे एवं दूसरे प्रमाणोंसे भी उक्त मतकी पुष्टि होती है, घट मिट्टीसे उत्पन्न होता है और उसीमें मिलता है[3], तथा सुवर्णसे कुण्डल आदि बनते हैं पुनः सुवर्ण रूप शेष रहता है[4], उसी प्रकार ब्रह्म ही सत् है।

पटवच्च २, १, १९

समस्त जगत् ब्रह्ममें सूतमें पटकी भाँति ओतप्रोत है। भागवतमें यह सूत्र ज्योंका-त्यों व्याख्यात है :—"**ओत प्रोतं पटवत् यत्रविश्वम्**" (भा० ३, ६, ३१)।

यथा च प्राणादिः २, १, २०

जैसे प्राण और इन्द्रिय बाहर निकलनेपर दिखाई नहीं देती किन्तु उनकी सत्ता रहती है। ऐसे ही प्रलयकालमें जगत्की स्थिति अवश्य रहती है—यह बात भागवतमें इस प्रकार कही है :—हे प्राण, इन्द्रिय, मन, बुद्धि विकारोंसे व्यक्ति रूपमें प्राप्त भगवन्! आपको नमस्कार है। "**प्राणेन्द्रिय मनोबुद्धिविकारैर्व्यक्तिमीयुषे**" (भा० ७, ३, २८) तथा आप ही स्थावर-जंगम जगत्के मुख्यप्राणके स्वामी हो। "**प्राणेनमुख्येन पतिः प्रजानाम्**" (भा० ७, ३, २९)।

इतर व्यपदेशाद्धिताकरणादिदोष प्रसक्तिः २, १, २१

यदि यह कहें कि ब्रह्म ही जीव रूपसे उत्पन्न होता है तो ब्रह्ममें अपने ही हित अनहितके दोष सम्भाव्य हैं। भागवतमें कहा है कि भगवान् तो एक ही हैं और

---

१. भा० ११, २२, ८।　　२. भा० ११, २९, ६।

३. भा० ६, १६, २२।　　४. भा० १०, ८७, २६।

क्लेश तो उनसे दूर हैं[१] । भगवान्‌ने ही ही मायासे इसे रचा है[२] । स्वयं वह अव्यय है[३], परन्तु वह तीनों गुणोंका भी अधिपति है[४] ।

अधिकं तु भेदनिर्देषात् २, १, २२

ब्रह्म जीवसे भी अधिक है क्योंकि जीवात्मासे उसका भेद दिखलाया है । भागवतमें भी कहा है :—भगवान् जीवसे पृथक है :—**भूतेन्द्रियान्तः करणात् प्रधानाज्जीव संज्ञितात् । आत्मा तथा पृथक् दृष्टा भगवान् ब्रह्म संज्ञितः ।** (भा० ३, २८,४१) वह नाना शक्तियोंको धारण करता है[५] । उपनिषदोंमें भी भेद वर्णित हैं[६] ।

अश्मादिवच्च तदनुपपतिः २, १, २३

जड=पत्थर आदिकी भाँति अल्पज्ञ जीवात्मा, परमात्मासे भिन्न हैं, जीव अस्वतन्त्र है :—जैसे काष्ठकी पुत्तलिका, जैसे पत्रमय मृग वैसे ही समस्त जीव ईशके आधीन हैं[७] । वह ईश्वर समस्त भूतोंका रचयिता है[८] । अनलकी भाँति उसमें तारतम्य है[९] ।

उपसंहार दर्शनान्नेति चेन्न क्षीरवत्‌हि २, १, २४

लोकमें घट निर्माण कार्यके लिये साधन आवश्यक है, किन्तु ब्रह्मके पास कोई साधन नहीं है । तब ब्रह्मको कैसे कर्ता माना जाय । इसका समाधान करते हुए सूत्रकारने दुग्धका दृष्टान्त दिया है :-अन्य उपसंहारके अभावमें स्वस्वरूप उपसंहारसे ही सृष्टि आदिका कर्त्तव्य सिद्ध है :—**"आत्मैवह्यात्मनात्मानं सृजे हन्म्यनुपालये"** (भा० १०, ४७, ३०) भूतोंसे ही भूतोंकी सृष्टि करता है और भूतोंसे ही भूतोंका संहार करता है[१०] ।

देवादिवदपि लोके २, १, २५

देवता भी तो बिना उपकरणके कार्य करते हैं । भागवतमें कर्दमका दृष्टान्त है । उन्होंने बिना किसी साधनके सुन्दर विमान बनाया[११] । विश्वकर्मामें भी ऐसी शक्ति थी ।

---

१. भा० ३, ७, ६ । २. भा० १, २, ३० ।
३. भा० ७, २, ३६ । ४. भा० ७, ८, ८ ।
५. भा० २, ६, २७ ।
६. (क) श्वेता० उ० ४, ५-७ ।
(ख) द्वासुपर्णा सयुजा सखाया (मुण्डको०) ३,१,१ ।
७. भा० ६, १२, १० । ८. भा० ६, १५, ६ ।
९. भा० १०, ८७, १९ । १०. भा० ६, १२, ११ ।
११. भा० ३, २३, १२ ।

कृत्स्न प्रसक्तिर्निरवयवत्व शब्द कोपोवा २, १, २६

ब्रह्म पूर्ण रूपसे जगत् रूपमें परिणत हो गया ऐसा दोष उपस्थित होगा। भागवतमें भी लिखा है कि यह विश्व भगवान् जैसा है :—"**इदंहिविश्वं भगवानिवेतरो**" (भा० १, ५, २०)।

श्रुतेस्तुशब्द मूलत्वात् २, १, २७

किन्तु पूर्वोक्त दोष नहीं आता क्योंकि श्रुतिमें भगवान्‌को कारण मानकर भी विकार रहित माना है। भागवतमें भी कहा है[1]। ईश्वरकी शक्ति अचिन्त्य है।

आत्मनि चैवं विचित्राश्च हि २, १, २८

जीवात्मामें भी विचित्र सृष्टि करनेकी सामर्थ्य होती है। भागवतमें कहा है कि वह विरुद्ध शक्ति सम्पन्न है :—"**तस्मै समुन्नद्ध निरुद्ध शक्तये**" (भा० ४, १७, ३३) '**आत्मन्येवात्मनात्मानं सृजे**' (भा० १०, ४७, ३०)से आत्मा द्वारा ही द्वारा सृष्टिका कथन है। '**आत्मनि**' पद भी द्रष्टव्य है।

स्वपक्षेदोषाच्च २, १, २९

जीवको कर्त्ता माननेमें दोष आता है, अतः परमात्माको ही जगत्‌का कारण मानना चाहिये। भागवतमें कहा है, वह आत्माका भी आश्रय है "**आत्मनात्माश्रयः पूर्वं मायया ससृजे गुणान्**" (भा० १०, ३७, १२) प्रधानकी अचिन्त्य कल्पनामें प्रमाणका अभाव है।

सर्वोपेता च तद्दर्शनाद् २, १, ३०

ब्रह्म समस्त शक्तियोंसे सम्पन्न है। भागवतमें भी कहा है कि वह अनन्त शक्ति सम्पन्न है :—"**योऽनन्त शक्तिर्भगवाननन्त**" (भा० १०, ८७, २८)में अखिल शक्तियोंके अवबोधक भगवान्‌का उल्लेख है और अखिल कारक शक्तिधर भी वे हैं ऐसा लिखा है।

विकरणत्वान्नेति चेत्तदुक्तम् २, १, ३१

श्रुतिमें परमात्माको मन इन्द्रिय आदि कारणोंसे रहित बतलाया है अतः जगतका कारण नहीं है इस शंकाका समाधान किया जा चुका है "**श्रुतेस्तु शब्द मूलत्वात्**" सूत्र द्वारा "**त्वमकरणः स्वराडखिल कारक शक्तिधरः**"से शक्तिवर परमात्मा ही निर्णीत है।

न प्रयोजनवत्वात् २, १, ३२

ब्रह्मको निज प्रयोजनके अभावमें जगत्‌का कर्त्ता कैसे माना जाय! (यह पूर्वपक्ष है) भागवतमें कहा है कि बालक क्रीडामें कोई प्रयोजन विशेष नहीं रखता।

---

१. भा० ४, १७, ३३।

लोकवत्तु लीला कैवल्यम् २, १, ३३

विश्व रचना आदिमें प्रवृत्त होना तो केवल लीलामात्र है लीलाभगवद्रूपा है— **प्रपंचं निष्प्रपंचोऽपि विडम्बयसि भूतले**" (भा० १०, १४, ३७) निष्प्रपंच होनेपर भी प्रपंचकी विडम्बना करता है। तथा वह बालवत् अनपेक्ष है :—"**आत्मसृष्टैरस्वतन्त्रैरनपेक्षोऽपि बालवत्**" (भा० ६, १५, ६)।

वैषम्य नैर्घृण्ये न सापेक्षत्वात्तथाहि दर्शयति २, १, ३४

परमेश्वरमें विषमता और निर्दयताका दोष नहीं है। क्योंकि वह जीवोंके शुभाशुभ कर्मोंकी अपेक्षा रखकर सृष्टि करता है, श्रुतिमें भी ऐसा लिखा है। भागवतमें उन्हें सबके लिये सम और प्रिय लिखा है :—"**समः प्रियः सुहृद् ब्रह्मन्**" (भा० ७, १, १) कर्मवादका प्रतिपादन गोवर्धन धारण प्रसंगमें "**कर्मणा जायते जन्तुः कर्मणैव प्रलीयते**" (भा० १०, २४, १३) अर्थात् जीव कर्मसे उत्पन्न होते हैं और कर्मसे ही नष्ट होते हैं" लिखा है। भगवान्का अवतार खलोंके निग्रहके लिये होता है[१]। वैसे उनका न कोई शत्रु है, न मित्र[२]। द्वितीय स्कन्धमें कर्मका जन्म स्वभावसे लिखा है[३]।

न कर्माविभागादिति चेन्नानादित्वात् २, १, ३५

जगत्की उत्पत्तिसे पहले जीव और उनके कर्मोंका ब्रह्मसे विभाग नहीं था। परमात्मा कर्मोंकी अपेक्षासे सृष्टि करता है क्योंकि जीव और कर्म अनादि हैं। **द्रव्यं-कर्म च कालश्च स्वभावतो जीव एव च। वासुदेवात् परोब्रह्मन् नचान्योऽर्थोऽस्ति तत्वतः** (भा० २, १०, १२) इससे भी भगवान्से अभेदकथन है। देह जब पंचतत्वको प्राप्त हो जाता है तब देही कर्मानुसार योनिमें जन्म लेता है। (भा० १०, १, ३९)।

उपपद्यते चाप्युपलभ्यते च २, १, ३६

जीव और उनके कर्मोंका अनादि होना मुक्तिसे भी सिद्ध है। वेदों स्मृतियोंमें भी ऐसा वर्णन उपलब्ध होता है। तपस्या द्वारा ही विश्वकी रचना हुई थी। "**तपसेव यथा पूर्वं स्रष्टा विश्वमिदंभवान्**" इससे भी जगत्का अनादित्व ही है।

सर्व धर्मोपपत्तेश्च २, १, ३७

जगत् कारण ब्रह्ममें सब धर्मोंकी संगति है। अतः कोई विरोध नहीं है। वेदोक्त धर्म ब्रह्ममें ही उत्पन्न हैं, भागवतमें कहा है कि सृष्टि आदिका कर्ता ईश्वर है[४]। परमात्मामें सभी धर्मोंका होना संगत है। इस पादमें सूत्रकारने जीव और उनके कर्मोंका अनादित्व बतलाया है। इस जगत्की अनादि सत्ता तथा सत्कार्यवादी

---

१. भा० १०, १६, ३३।

२. (क) भा० १०, ४६, ५७। (ख) भा० १०, ३८, २२।

३. भा० २,५,२२—"कर्मणोजन्म महतः"। ४. भा० ४, १७, ३३।

सिद्धान्तकी पुष्टिकी है। ग्रन्थकार परमेश्वरको केवल निर्गुण निराकार और निर्विशेष ही नहीं मानता किन्तु सर्वज्ञता आदि सब धर्मोंसे सम्पन्न भी मानते हैं।

रचनानुपपत्तेश्च नानुमानम् २, २, १

प्रधानको जगत्का कारण मानना उचित नहीं है। क्योंकि उनके द्वारा नानाप्रकारकी रचना सम्भव नहीं है। चेतनकर्ताकी सहायताके बिना जड़ वस्तु स्वयं कुछ करनेमें समर्थ नहीं है। भागवतमें कहा है :—"**यतोभवद्विश्वमिदंविचित्रम**" (भा० ३, २२, २०) अर्थात् जिससे यह विचित्र विश्व हुआ है। यह विश्व चेतनसे उत्पन्न है, जडसे नहीं। भगवान् अपनी बहिरंग शक्तिके द्वारा इस विश्वकी रचना करते हैं, गीतामें भी इस मतकी पुष्टि है[1]।

प्रवृत्तेश्च २, २, २

जगत्की रचनाके लिये जड प्रकृतिका प्रवृत्त होना भी सिद्ध नहीं है। भागवतमें कहा है कि अजीव (जड)को भी करनेवाले भगवान् हैं :—"**काल कर्म स्वभावस्थो जीवो जीवमजीवयत्** (भा० २, ५, २१) ईश्वर ही कालकर्म गुण युक्त होकर सात तत्वोंमें क्षोभ पैदा करता है तथा वही इनके भीतर प्रविष्ट है। क्षुभित-कर्म ईश्वर चेष्टा द्वारा ही होता है[2]।

पयोऽम्बुवच्चेत्तत्रापि २, २, ३

दूध जलकी भाँति जडका सृष्टि रचनाके लिये प्रवृत्त होना भी सम्भव नहीं है। अचेतन दुग्ध बछड़ेका पुष्टिके लिये गायके धनमें अपने आप उतर आता है अचेतन जल लोगोंके उपकारके लिये नहीं—निर्झरके रूपमें बहता है किन्तु रथ आदि अचेतन वस्तु चेतनके सहयोगके बिना नहीं बन सकती। दुग्ध जल दृष्टान्तमें भी अव्यक्त चेतन ही प्रेरक है, यह सहज अनुमान किया जा सकता है। भागवतमें पृथु चरितमें गायसे दुग्धके लिये वत्सकी कल्पनाकी आवश्यकता बतलाई है। "**धोक्ष्ये क्षीरमयान्कामाननुरूपं च दोहनम्**" (भा० ४, १८, ६) जड पवन, सूर्य और वर्षा भगवान्‌के भयसे ही अपने कार्यमें रत है :—**मद्भयात् वाति वातोऽयं सूर्यस्तपतिमद्भयात्**" (भा० ३, २५, ४२)।

व्यतिरेकानवस्थितेश्च अनपेक्षत्वात् २, २, ४

प्रधानको किसीकी अपेक्षा नहीं है अतः वह कभी सृष्टि रूपमें परिणत होता कभी नहीं परन्तु यह भी सम्भव नहीं है। भागवतमें कहा है कि मायाधीश भगवान् सभी तत्त्वोंमें प्रविष्ट हैं[3]।

---

१. गीता ९, १०। २. भा० ३, २६ ५०।
३. भा० २, ५, २१।

अन्यत्राभावाच्च न तृणादिवत् २, २, ५

तृण आदिकी भाँति प्रधानका जगत् रूपमें परिणत होना सिद्ध नहीं है। भागवतमें लिखा है पुष्पादि परिणाम भी भगवान्के भयसे हैं[१]। वह एक ही परमेश्वर दुःख-सुखादिका कारण है[२]।

अभ्युपगमेऽप्यर्थाभावात् २, २, ६

प्रयोजनाभावमें अनुमान द्वारा सृष्टि रचना व्यर्थ है। जड प्रकृतिसे न सृष्टि कार्य सम्भव है न अपवर्गप्रदान करना। भगवान् ही जीवको संसार और मोक्ष प्रदान करते हैं। **बुद्धीन्द्रिय मनः प्राणान् जनानामसृजत् प्रभुः। मात्रार्थं च भवार्थं च आत्मने कल्पनाय च ॥** (भा० १०, ८७, २) प्रधानवाद स्वीकार करनेपर यह उक्ति सम्भव नहीं है। मृत्यु और अमृतका दाता ईश्वर ही है :—"**प्रयच्छतो मृत्युमुतामृतं च मायामनुष्यस्य वदस्व विद्वन्**। (भा० १०, १, ७)।

पुरुषाश्मवदिति चेत्तथापि २, २, ७

अंधे, पंगु पुरुषकी भाँति तथा लोह चुम्बककी भाँति प्रकृति पुरुषका सामीप्य ही प्रकृतिको सृष्टि रचनामें प्रवृत्त करता है, ऐसा भी नहीं है। भागवतमें अश्मका दृष्टान्त लोह शब्दसे दिया है :—**निमित्त मात्रं तत्रासीन्निर्गुणः पुरुषर्षभः। व्यक्ताव्यक्तमिदं विश्वं यत्र भ्रमति लोहवत्**। (भा० ४, ११, १७)।

अंगित्वानुपपत्तेश्च २, २, ८

सत्वादि गुणोंके उत्कर्ष और अपकर्षकी सिद्धि न होनेके कारण भी प्रधान जगत्का कारण नहीं माना जा सकता। कालरूपी भगवान्के क्षोभसे प्रकृतिमें प्रधानकी अनुपपत्ति कही है[३]।

अन्यथानुमितौ च ज्ञ शक्ति वियोगात् २, २, ९

प्रधानमें ज्ञान शक्ति नहीं है, अतः बुद्धिपूर्वक रची जानेवाली वस्तुओंकी उत्पत्ति उसके द्वारा नहीं हो सकती। भगवान्की माया गुणमयी है[४]।

विप्रतिषेधाच्चासमञ्जसम् २, २, १०

परस्पर विरोधी बातोंसे सांख्यदर्शन समीचीन नहीं है। "**अद्य ते संप्रवक्ष्यामि**" (भा० ३, २६, १-२)से आरम्भवादका निराकरण किया गया है। तत्वोंके ज्ञानसे 'पुरुष' प्राकृत गुणोंके बन्धनसे मुक्त हो जाता है।

महद्दीर्घवद् ह्रस्व परिमण्डलाभ्याम् २, २, ११

द्व्यणुक तथा परमाणुसे ह्रस्व-दीर्घकी उत्पत्ति बतलानेकी भाँति वैशेषिकोंकी

---

१. भा० ३, २९, ४१। २. भा० ५, १, १५।
३. भा० ३, २६, ३-४। ४. भा० ३, ५, २६-२७।

सभी बातें असंगत हैं। भागवतमें इस विशेष तथा परमाणुकी चर्चा करते हुए कहा है :—**एवनिरुक्तं क्षिति शब्द वृत्तमसन्निधानात् परमाणवो ये। अविद्यया मनसाकल्पितास्ते येषां समूहेन कृतो विशेषः।** (भा० ५, १२, ९-१०) दो अणुसे एक परमाणु बनता है[1]।

उभयथापि नकर्मातस्तदभावः २, २, १२

दोनों प्रकारसे ही परमाणुओंमें कर्म होना सिद्ध नहीं होता अतः परमाणुओंके संयोगसे जगत्‌की उत्पत्ति सम्भव नहीं है। परमाणु और परम महत् भगवान्‌में ही समाविष्ट हैं :—"**परमाणु परममहतोस्त्वमाद्यन्तान्तरवर्ती त्रयविधुरः**" (भा० ६, १६, ३६)।

समवायाभ्युपगमाच्चसाम्यादनवस्थितेः २, २, १३

परमाणुवादमें समवाय सम्बन्ध स्वीकार किया गया है, अतः कारणवाद अस्वीकृत है। अनवस्था दोषसे परमाणुओंके संयोगसे जगत्‌की उत्पत्ति नहीं हो सकेगी—"**जाति व्यक्ति विभागोऽयं यथा वस्तु विकल्पितः**" (भा० ६, १५, ८)के इस श्लोकमें विभागकी असत्यता कही है। अतः समवाय भी अंगीकार करने योग्य नहीं है[2]।

नित्यमेव च भावात् २, २, १४

अणुओंका प्रवृत्ति स्वभाव है अतः नित्य सृष्टिका प्रसंग प्राप्त होनेपर परमाणुवाद असंगत है। भागवतमें कहा है कि यह समस्त जगत् असत्य है स्वप्नके समान है, अनेकदुःखोंसे परिपूर्ण है, नित्य सुख भगवान् हैं[3]।

रूपादिमत्वाच्चविपर्ययो दर्शनात् २, २, १५

परमाणुओंको रूप रस आदि गुणोंवाला माना गया है, उनमें अनित्यताका दोष उपस्थित होता है। भागवतमें "**अविद्यया मनसा कल्पितास्ते**" वाक्य द्वारा परमाणुओंका अनित्यत्व सिद्ध किया है। जो सत्य है वह ब्रह्म है[4]।

उभयथा च दोषात् २, २, १६

परमाणुओंको न्यूनाधिक गुणोंसे युक्त मानें या गुण रहित मानें उभयथा दोष है, अतः परमाणुवाद सिद्ध नहीं है। भागवतमें उभय प्रकारसे भगवान्‌का ही वैभव है—"**उभयं मय्यथ परे पश्यताभातमक्षरे**" (भा० १०, ८२, ४५-४६)।

---

१. भा० ३, ११, १, ५।
२. भा० ५, १२, ५।
३. भा० १०, १४, २२।
४. भा० ८, १२, ४।

अपरिग्रहाच्चात्यन्तमनपेक्षा २, २, १७

परमाणुकारणवादको शिष्ट पुरुषोंने ग्रहण नहीं किया है अतः यह वाद सर्वथा उपेक्षणीय है। वेदस्तुतिमें इसपर विचार किया है :—**"जनिमसतः सतोमृतिमुतात्मनि ये च भिदाम्"** (भा० १०, ८७, २५)।

समुदाय उभयहेतुकेऽपि तदप्राप्तिः २, २, १८

परमाणुहेतुक बाह्य समुदाय और स्कन्धहेतुक आभ्यन्तर समुदायके स्वीकार करनेपर भी उस समुदायकी सिद्धि नहीं हैं। एक देशके आकर्षणसे पूर्णाकर्षण नहीं हो सकता अतः संघात नहीं है—**"न संघातो विकारो वा न पृथक् नान्वितोमृषा"** समस्त पदार्थ भगवान् श्रीकृष्णमें ही हैं[1]।

इतरेतर प्रत्ययत्वादिति चेन्नोत्पत्ति मात्रनिमित्तत्वात् २, २, १९

अविद्या, संस्कार, विज्ञान आदिमें-से एक-एक दूसरेके कारण होते हैं अतः इनसे समुदाय सिद्धि सम्भव नहीं है। **सर्वेवियुक्ताः स्वविहार तन्त्रं नशक्नुमस्तत् प्रतिहर्तवैते।** अवस्था श्रम सत्तासे क्षणिक मतका निरसन कहा गया है[2]। क्षणिक आत्मामें भोगकी सम्भावना नहीं है। यदि आत्माका स्थायित्व स्वीकार किया जाय तो सर्व क्षणिकत्व प्रतिज्ञाका नाश हो जाता है।

उत्तरोत्पादे च पूर्व निरोधात् २, २, २०

बौद्धमतमें प्रथम क्षणमें पदार्थका जन्म द्वितीय क्षणमें नाश कहा है कार्योत्पत्तिके पूर्व ही कारण नाश जब है तो कार्यका जन्म ही कैसे ! **"कार्यकारणवस्त्वैक्यमर्थनं पटतन्तुवत्"** इसमें कार्यकारणकी एकताके कथनसे पूर्व निरोधको हटाया गया है :— सब कुछ भगवान् ही हैं—**यत्र येन यतो यस्य यस्मै यद् यद् यथा यदा स्यादिदं भगवान् साक्षात् प्रधान पुरुषेश्वरः।** (भा० १०, ८५, ६)।

असति प्रतिज्ञोपरोधोयौगपद्यमन्यथा २, २, २१

कारणके न रहनेपर कार्योत्पत्ति माननेसे प्रतिज्ञा भंग होगी और कार्यकारणकी एक कालमें सत्ता माननी पड़ेगी कृष्णके स्वरूप वर्णनमें व्यक्त और अव्यक्त दोनों रूपोंका युगपत् कथन है। कृष्ण ही काल (निमित्तकारण) और प्रकृति (उपादानकारण) हैं वही कार्यस्वरूप (महत्तत्व) हैं[3]।

प्रतिसंख्या प्रतिसंख्यानिरोधाप्राप्तिरविच्छेदात् २, २, २२

प्रतिसंख्यानिरोध अप्रतिसंख्या निरोध इनकी सिद्धि नहीं हो सकती क्योंकि प्रवाहका विच्छेद नहीं होता। भागवतमें कहा है कि भगवान्में सत् और असत् दोनों ही शोभित होते हैं।

---

१. भा० १०, ४६, ४३।　　२. भा० ५, १८, ३७।

३. भा० १०, १०, २९-३१।　　४. भा० १०, ८७, २६।

उभयथा च दोषात् २, २, २३

जबतक तत्त्व नहीं जानता तभीतक भ्रम है। मोक्षकी प्राप्ति मायाके नाशके पश्चात् ही होती है। भागवतमें कहा है कि मिथुनव्रतियोंका संग त्याज्य है :— **संगं त्यजेत मिथुनव्रतिनां मुमुक्षुः। सर्वात्मना नविसृजेद्बहिरिन्द्रियाणि।** (भा० ९, ६, ५१) भागवतमें शून्यवादका खण्डन करते हुए विश्वको ब्रह्म कहा है[1]।

आकाशे चाविशेषात् २, २, २४

बुद्धका सिद्धान्त है कि वायु आकाशका आश्रय ग्रहण करता है अतः आकाशको अभाव नहीं माना जा सकता। आकाशका कोई रूप नहीं है, वैसे उसका निर्माण वैसे ही हुआ है जैसे पृथ्वी आदि भूतोंका होता है अर्थात् ईश्वर ही उसका निर्माण करता है। भागवतमें कहा है :—**भूतानां छिद्रदातृत्वं बहिरन्तरमेव च। प्राणेन्द्रियात्मधिष्ण्यत्वं नभसो वृत्तिलक्षणम्।** (भा० ३, २६, ३८)।

अनुस्मृतेश्च २, २, २६

अनुभव और स्मृति एक ही वृत्ति हैं। "**कूटस्थ आशयमृते तदनुस्मृतिर्नः** (भा०) सूत्रका प्रयोग ज्योंकात्यों हुआ है। स्मृतिमें पूर्व क्षणकी बातें रहती हैं अतः क्षणिकत्ववाद अयुक्त सिद्ध हो जाता है।

नासतोऽदृष्टत्वात् २, २, २६

धर्मीके विनष्ट होनेपर धर्मकी स्थिति नहीं रह सकती भागवतमें "**सतइदमुत्थितं सदिति चेन्न**" (भा० १०, ८७, ३६)से यह सिद्ध किया है कि जो वस्तु अविद्यमान है उससे भावकी उत्पत्ति सम्भव नहीं।

उदासीनानामपि चैवं सिद्धिः २, २, २७

अभावसे भावोत्पत्ति होनेपर कृषि आदि न करनेवालोंको भी कृष्यादि सिद्धि होती है। भागवतमें लिखा है कि तत्त्व दृष्टा मुनियोंने मनुष्योंके श्रेयके लिये योगोंका साक्षात्कार किया उनका अनुष्ठान करनेवाला अभीष्ट प्रयोजनोंका लाभ प्राप्त लेता है[2]। अन्वय-व्यतिरेक उदासीनोंको सिद्धिका अभाव कहा है[3]।

नाभाव उपलब्धेः २, २, २८

उपलब्धिके कारण बाह्य वस्तुका अभाव नहीं है, भागवतमें लिखा है कि— '**मनमा वचसा दृष्टय गृह्यतेऽन्यैरपीन्द्रियैः** (११, १३, २४) मन-वाणी एवं दृष्टिसे

---

१. भा० ३, १०, १३।   २. भा० ४, १८, ३-५।
३. भा० ११, २२, ५।

अन्य इन्द्रियोंसे भी वह उपलब्ध होता है। इसमें उपलब्ध शब्दका पर्यायवाची शब्द 'गृह्यते' है।

वधर्म्याच्च न स्वप्नादिवत् २, २, २९

स्वप्नका दृष्टान्त जाग्रत्में उचित नहीं है क्योंकि स्वप्नकी बात क्षणिक है जाग्रत्की बात शतवर्ष भी रहती है। भागवतमें "**यथाह्यप्रतिबुद्धस्यप्रस्वापो बह्वनर्थभृत्**[1]"में तथा १०, ४६, ४५में '**यथा शयानः पुरुषो**"में यही तथ्य वर्णित है। जीवात्मा स्वप्नावस्थामें अनेक लोकोंकी रचना करता है। "**सृष्ट्या लोकं परं स्वाप्नमनुविश्यावभासते**" (भा० १०, ८६, ४५) परन्तु स्वप्नकी देखी बात व्यर्थ है :—'**मृषा स्वप्न दृशो यथा**' (भा० ११, १३, ३१) स्वप्न और जागरका ज्ञान पृथक् है।

न भावोऽनुपलब्धेः २, २, ३०

वासनाकी उपलब्धि भी असत्य है क्योंकि वासना अर्थ मूला होती है। जहाँ (अर्थ) वस्तु ही नहीं है वहाँ वासना भी नही है। भागवतमें स्पष्ट सूत्रका प्रयोग है :—**अदृष्टादश्रुताद्भावान्न भावउपलभ्यते** (भा० ११, २६, ३३)।

क्षणिकत्वाच्च २, २, ३१

बौद्धमतमें क्षणिकत्ववादमें वासनाका कोई भी आश्रय स्थिर नहीं हो सकता। आश्रयाभावमें वासनाकी सिद्धि सम्भव नहीं है। वासनाके अभावमें ज्ञान वैचित्र्य असम्भव है। भागवतमें 'आश्रय' ब्रह्म माना है :—

आभासश्च निरोधश्च यतोऽस्त्यध्यवसीयते।
स आश्रयः परं ब्रह्म परमात्मेतिशब्द्यते॥ (भा० २, १०, ७)

× × ×

एवमेकतराभावे यदानोपलभामहे।
त्रितयं तत्र यो वेद स आत्मास्वाश्रयाश्रयः॥ (भा० २, १०, अ)

सर्वथानुपपत्तेश्च २, २, ३२

शून्यवादमें शून्यको तत्त्व माना है और इस शून्यके ज्ञानसे मोक्ष होती है किन्तु यह मत ठीक नहीं है :—भागवतमें इन विभिन्न वादोंपर व्यंग किया है :—उस अनन्त गुणवाले भूमाको नमस्कार है जिसके सम्बन्धमें विभिन्न वाद करे जाते हैं :—

यच्छक्तयो वदतां वादिनां वै, विवाद सम्वाद भुवो भवन्ति।
कुर्वन्ति तेषां मुहुरात्ममोहं, तस्मै नमोऽनन्त गुणाय भूम्ने॥ (भा० ६, ४, ३१)

---

१. भा० ३, २७, २५।

नैकस्मिन्नसंभवात् २, २, ३३

एक कालमें सत्व-असत्व प्रभृति विरुद्ध धर्मका समावेश सम्भव नहीं है। **'केचिद्विकल्प वसनाः'** (भा० १, १७ १९) द्वारा ऐसे वादियोंका अनादर किया है। केचित् पद ऐसे ही वादियोंके लिये यहाँ रखा गया है।

एवं चात्मा कात्स्न्र्यम् २, २, ३४

जीवात्माको देहपरिमाणवाला यदि कहें तो आत्मामें अपर्याप्त दोष आता है। भागवतमें कहा है कि आत्मा न तो जन्म ग्रहण करता है, न मरता है, न बढ़ता है और न कभी क्षीण होता है :—**"नात्मा जजान न मरिष्यति नैधतेऽसौ न क्षीयते सवनविद् व्यभिचारिणांहि** । (भा० ११, ३, ३८)।

न चपर्यायादप्यविरोधोविकारादिभ्यः २, २, ३५

जैन मत माननेसे आत्मामें विकार और अनित्यता दोष आ जायगा अतः यह मत भी ठीक नहीं है। भागवतमें कहा है कि आत्मा अव्यय है शुद्ध है और सर्वत्र विचरण करनेमें समर्थ है[१]। दशमस्कन्धमें यह भी स्पष्ट किया है कि जन्मादि भाव देहके होते हैं आत्माके नहीं। आत्मा अविकारी है[२]।

अन्त्यावस्थितेश्चोभयनित्यत्वादविशेषः २, २, ३६

देह भेदसे अनवस्थित परिमाणताका भी अंगीकार ठीक नहीं है। मुक्तावस्थामें जीवका अविकृत परिणाम भागवतमें कहा है—**"मुक्तिर्हित्वाऽन्यथारूपं स्वरूपेण-व्यवस्थितिः**[३] ।

पत्युरसामञ्जस्यात् २, २, ३७

पति शब्दवाले—पशुपति—गणपति—दिनपति आदि सिद्धान्त भी युक्त नहीं है। भागवतमें ब्रह्माका कथन है कि "भगवान्की आज्ञासे मैं इस विश्वकी रचना करता हूँ और हर (पशुपति) इसका संहार करते हैं। वह ईश्वर तीनों शक्ति धारण करता है। अतः पशुपति आदि सिद्धान्तोंका स्वतः अस्तित्व नहीं है[४]। **परम ईश्वर कृष्ण स्वयं भगवान्, तांते बड़ तांर सम केई नाहि आन ॥**

सम्बन्धादुपपत्तेश्च २, २, ३८

कल्पित जगदीश्वरको विश्वका कर्त्ता मानना उचित नहीं है कुम्भ बनानेवाले कुम्भकारके दृष्टान्तसे तो वहाँ कुम्भकार शरीरी है। भागवतमें तो शक्तिशाली परमेश्वरको निमित्तकारण और उपादानकारण दोनों ही रूपमें स्वीकार किया है। पाशुपतोंकी मान्यता न वेदसे सिद्ध है न तर्कसे अतः यह मत अमान्य है।

---

१. भा० ७, २, २२।   २. भा० १०, ५४, ४७।

३. भा० २१, १०, ६।   ४. भा० २, ६, ३२।

अधिष्ठानानुपपत्तेश्च २, २, ३९

घटके बनानेमें घटके लिये मृत्तिकाका होना आवश्यक है और कुम्भकारका शरीरी होना भी किन्तु ईश्वरको विश्व निर्माणमें किसी वस्तुकी आवश्यकता नहीं है भागवतके **"दैवात् क्षुभित धर्मिण्यां स्वस्यां योनौ परःपुमान् । आधत्त वीर्यं सासूत महत्तत्वं हिरण्मयम् ।।** (भा० ३, २६, १९) श्लोकमें ईश्वरको सब अधिष्ठाता कहा है ।

करणवच्चेन्न भोगादिभ्यः २, २, ४०

अन्य जीव शरीर और इन्द्रियोंसे युत हैं किन्तु ईश्वरको इनकी अपेक्षा नहीं। शरीर-इन्द्रिय सम्बन्ध माननेसे ईश्वरका सम्बन्ध भोगोंसे मानना पड़ेगा जो ठीक नहीं है। भागवतमें तो भगवान्‌को स्पष्ट अकारण कहा है—**"त्वमकरणः स्वराट्"** (भा० १०, ८७) और भी स्पष्ट करते हुए तृतीय स्कन्धमें कहा है कि—ईश्वर, भूत, इन्द्रिय अन्तःकरणमें पृथक् है, वह द्रष्टा है, उसीको भगवान् या ब्रह्म कहते हैं[1] ।

अन्तवत्वमसर्वज्ञता वा २, २, ४१

ईश्वरको अन्तयुक्त और असर्वज्ञ नहीं माना जा सकता क्योंकि वह सर्व-शक्तिमान् है अनन्त एवं सर्वज्ञ है[2] ।

उत्पत्यसम्भवात् २, २, ४२

शक्तिको जगत्‌का कारण नहीं माना जा सकता। बिना पुरुषके केवल स्त्री 'पुत्र' उत्पन्न नहीं कर सकती। शक्तिका स्वरूप सत् और सदात्मक है वही माया है गो ईश्वरके अधीन है :—**या वा एतस्य संदृष्टुः शक्ति सदसदात्मिका । माया नाम महाभाग ययेद निर्ममे विभुः** (भा० ३, ५, २६) ।

न च कर्त्तुःकरणम् २, २, ४३

संकर्षण (कर्ता)से प्रद्युम्न (मन)की उत्पत्ति मानी गई है ऐसे ही यदि शक्तिका परिचालक रुद्रको मानें तो वह भी देह और इन्द्रियसे रहित है। **"वैका-रिकात् विकुर्वाणान् मनस्तत्वमजायत"** (भा० ३, २६, ९) भागवतके इस श्लोकमें मन सृष्टिका कथन वैकारिक अहंकार लिखा है ।

विज्ञानादि भावे वा तदप्रतिषेधः २, २, ४४

निःसन्देह भगवान्‌के विज्ञान आदि षड्विध गुणोंका संकर्षण आदिमें भाव

---

१. भा० ३, २८. ४०—**भूतेन्द्रियान्तः करणात् प्रधानाज्जीव संज्ञितात् ।**
आत्मा तथा पृथग् द्रष्टा भगवान् ब्रह्मसंज्ञितः ।।

२. भा० १०, १४, २३ ।

(होना) सूचित किया गया है इसलिये उनकी उत्पत्तिका वेदमें निषेध नहीं है[1] भगवान्का स्वरूप तो नित्य है ।

विप्रतिषेधाच्च २, २, ४५

श्रुति-स्मृति और युक्तिसे जगत्का कर्त्तव्य परमेश्वरमें आता है शक्ति आदिमें नहीं । शास्त्रोंमें जीवकी उत्पत्तिका निषेध किया गया है । **नान्यत्रमद्भगवतः प्रधान पुरुषेश्वरात् । आत्मनः सर्व भूतानां भये तीव्रं निवर्तते** । (भा० ३,२५, ४१) । सम्पूर्ण श्रुति-स्मृतियुक्ति विरोधके कारण शक्तिवाद अत्यन्त तुच्छ है ।

नवियदश्रुतेः २, ३, १

छा० उ०में आकाशकी उत्पत्तिसे पूर्व तेजकी उत्पत्ति वर्णित है[2] । भागवत "**चत्वार्येवेह तत्रापि तेज आपोमदात्मना**" (भा० ११, २२, ५१) द्वारा तेज सृष्टिका वर्णन है ।

अस्ति तु २, ३, २

तैत्तरीय श्रुतिमें आकाशका वर्णन है । "**तस्माद्वा एतस्मादात्मनः आकाशः सम्भूतः**" (तै० २, १) शब्दसे आकाशकी उत्पत्ति हुई है । "**शब्द मात्रमभूत् तस्मात् नभः श्रोत्रं तुशब्दगं** (भा० ३, २६, ३२) ।

गौण्यसम्भवात् २, ३, ३

शब्दाच्च २, ३, ४

निराकार आकाशकी उत्पत्ति सम्भव नहीं है नैयायिक आदि भी इसकी उत्पत्ति नहीं मानते हैं । वृहदारण्यकमें आकाशको अमूर्त लिखा है[3] ।

स्याच्चैकस्य ब्रह्मशब्दवत् २, ३, ५

ब्रह्म शब्दकी भाँति किसी एक शब्द का प्रयोग गौण भी हो सकता है । एक शब्द दो स्थलोंपर मुख्य और गौड़ रूपमें आ सकता है जैसे ब्रह्म एक स्थलपर 'तपस्या' कहा जाता है द्वितीय स्थलमें वह ब्रह्म है[4] ।

प्रतिज्ञाहानिरव्यतिरेकाच्छब्देभ्यः २, ३, ६

ब्रह्म ही सबका कारण है ऐसा श्रुतियोंमें वर्णन प्राप्त है **येनाश्रुतं श्रुतं भवति**" तथा "**आत्मनि खलु अरेदृष्टेमते विज्ञाते इदं सर्वं विज्ञातम्**[6]"से इसे स्पष्ट किया है कि आत्माके जाननेसे सब कुछ जान लिया जाता है[7] । भागवतमें कई स्थलोंपर

---

१. भा० २, ६, ४ ।
२. गौं० भाष्य २, २, ४५ ।
३. छा० ६, २, ३ ।
४. वृह० उ० २, ३, २ ।
५. भा० २, ३, ४ ।
६. छा० उ० ६, १, ३ ।
७. मुण्डक० १, १, ३ ।

ब्रह्म ही एकमात्र कारण माना है "अहमेवासमेवाग्रे" (भा० २, ९ ३) श्लोकमें लिखा है कि सृष्टिके पूर्व भगवान् ही एकमात्र थे। हे कृष्ण ! हे महायोगिन् ! आप ही आदिपुरुष हो यह समस्त विश्व आपका ही रूप है[1]।

यावद्विकारं तु विभागो लोकवत् २, ३, ७

आकाश ब्रह्मके कार्यसे पृथक् नहीं है। **"विकारो व्यवहारार्थो यथा तेजस पार्थिव"** इस श्लोकमें विकारकी उत्पत्ति बतलाई गई है। पृथ्वी जल, तेज आदि भगवान्के ही अंगोंसे उत्पन्न है[2]।

एतेन मातरिश्वा व्याख्यातः २, ३, ८

आकाशकी उत्पत्ति करनेवाले कथनसे ही वायुका उत्पन्न होना बता दिया गया। भागवतमें कहा है :—**"नभसोऽथविकुर्वाणादभूत् स्पर्श गुणोऽनिलः"** (भा० २, ५, २६) अर्थात् आकाशसे वायुकी उत्पत्ति हुई।

असम्भवस्तु सतोऽनुपपत्तेश्च २, ३, ९

सत् शब्द वाच्य ब्रह्मके सिवा अन्य किसीसे उत्पत्ति सम्भव नहीं है। श्रुतिमें वर्णन है :—**"न चास्य कश्चिज्जनिता न चाधिपः"** (श्वेता० उ० ६, ९) भागवतके **"नचास्य कश्चिज्जनिता"** (२, ६, ३३) श्लोकमें एवं "सम्पूर्ण वस्तुओंके आधार आप हो" (भा० १०, १४, २६)में ब्रह्मको ही सर्वोपरि कहा है।

तेजोऽतस्तथाह्याह २, ३, १०,

श्रुतिमें लिखा है कि अग्नि (तेज)की उत्पत्ति वायुसे हुई है। **"अनिलेनान्वितं ज्योतिः"** (भा० ३, ५, ३४)में भी सूत्रका समर्थन है। **"उपपद्यतवै तेजो रूपं तत् स्पर्श शब्दवत्"** (भा० २, ५, २७)में तेजका उल्लेख भी ज्योंका त्यों है।

आपः २, ३, ११,

"अग्नेरापः" इससे अग्निसे जलकी उत्पत्ति कही है, भागवतमें **'आसीदम्भो रसात्मकम्'** (२, ५, २८)में अग्निसे जलकी उत्पत्तिका कथन है।

पृथिव्यधिकाररूपशब्दान्तरेभ्यः २, ३, १२,

"अद्भ्यः पृथिवी" इस श्रुतिसे जलोंसे पृथ्वीकी उत्पत्ति कही है। भागवतमें इसकी विस्तृत व्याख्या की गई है :—दैव प्रेरित जल तत्त्व रससे, पृथ्वीके तत्व गन्धकी उत्पत्ति हुई और गन्धसे पृथ्वीकी उत्पत्ति हुई :—**रसमात्राविकुर्वाणादम्भसो दैव चोदितात्। गन्ध मात्रमभूत्तस्मात् पृथ्वी घ्राणस्तु गन्धगः॥** (भा० ३,२६,४४)।

---

१. भा० १०, १०, २०। २. भा० १०, ४०, २।

तदभिध्यानादेव तु तल्लिगात् सः २, ३, १३

तमः प्रभृति शक्तिसम्पन्न परमेश्वर ही प्रधानादि पृथ्वी पर्यन्त तत्वोंका साक्षात् सृष्टा है। भागवतमें कहा गया है :—तुम ही वायु हो, अग्नि हो, आकाश एवं पृथिवी हो।" (भा० ७, ६, ४८) भगवान्का यह स्वयं कथन भी प्रमाण है :— "**अहमेवासमेवाग्रे**" (भा० २, ६, ३)।

विपर्ययेण तु क्रमोऽत उपपद्यते च २, ३, १४

सुवालोप०से वर्णित सृष्टि क्रमसे विपरीत मुण्डको०में वर्णित क्रम है इस उपनिषद्में लिखा हैं कि सब वस्तु सर्वेश्वरसे ही उष्पन्न होती है। "**एतस्माज्जायते प्राणो मनः सर्वेन्द्रियाणि च**" (मु० २, १, ३) भागवतमें लिखा है कि पुरुष अनादि है, निर्गुण है और प्रकृतिसे परे है। (भा० ३, २६, ३)।

अन्तराविज्ञानमनसी क्रमेण तल्लिगादिति चेन्नाविशेषात् २, ३, १५

सुवाल एवं मुण्डक दोनोंकी श्रुतियाँ ठीक ही प्रतिपादन करती हैं। क्योंकि इसमें किसी क्रमका वर्णन नहीं है। भागवतमें भी महान्, मन, इन्द्रियादिका उल्लेख है :—**भूस्तोयमग्निः पवनः खमादिर्महानजादिर्मन इन्द्रियाणि**। (भा० १०, ४०, २)।

चराचर व्यपाश्रयस्तुस्यात्तद्व्यपदेशो भाक्तस्तद्भाव भावित्वात् २, ३, १६

चराचर आदि शब्द मुख्य वृत्तिसे ईश्वरके वाचक हैं। भागवतमें कहा है कि चराचरकी उत्पत्ति भगवान् श्रीकृष्ण ही करते हैं :—"**वस्तुतो जानतामत्र कृष्णं स्थाष्णु चरिष्णु च** (भा० १०, १४, ५५)।

नात्माऽश्रुतेर्नित्यत्वाच्च ताभ्यः २, ३, १७

जीवात्माकी उत्पत्ति नहीं है। भागवतमें कहा है कि आत्मा नित्य है, शुद्ध है, सर्वग एवं सर्ववित् है[1]। आत्मा जन्म रहित है। "**नात्माजजान न मरिष्यति नैधतेऽसौ**" (भा० ११, ३, ३८) कठोपनिषद्में भी कहा है :—"**न जायते म्रियते वाविपश्चित्**" (कठो० १, २, १८)।

जीव तत्व शक्ति कृष्ण तत्व शक्तिमान्।
गीता विष्णु पुराणादि ताहा ते प्रमान॥ (चै० च० आ० ७, ११७)।

ज्ञोऽत एव २, ३, १८

आत्मा नित्य एवं चैतन्यस्वरूप है। वह ज्ञान भी है, ज्ञाता भी है :—"**ज्ञान-स्वरूपतोनाम**" भा० '**क्षेत्रज्ञ एतामनसो विभूतिः**' (भा० ५, ११, १२)। वह अत्यन्त विलक्षण है स्वयं दृष्टा है[2]। वह सव भूतोंमें अवस्थित है[3]।

---

१. भा० ७, २, २२। २. भा० ११, १०, ८।
३. भा० ३, २८, ४२।

उत्क्रान्तिगत्या गतीनाम् २, ३, १९

जीव अणु परिमाणवाला है और लोकान्तरमें गमन करता है। जीव विभु है[१]। जीव अणु परिमाणवाला है[२]। जीव बालके अग्रभागके १००वें खण्डके बराबर है[३]। भागवतमें कहा है कि अत्यन्त सूक्ष्मोंमें मैं जीव हूँ[४]। स्त्रीके उदरमें पुरुषके रेतकणका आश्रय जीव ग्रहण करता है। (भा० ३, ३१, १)।

स्वात्मनाचोत्तरयोः २, ३, २०

श्रुतिमें समागत महान्पद परमात्माके लिये है जीवात्माको नहीं। जीवात्माका लोकान्तरमें गमन होता :—"**देहेन जीव भूतेन लोकाल्लोकमनुव्रजन्**" (भा० ३, ३१, ४३)।

नाणुरतच्छ्रुतेरितिचेन्नेतराधिकारात् २, ३, २१

जीवात्माको अणुपरिमाणवाला कहा है जहाँ आत्माको महान् कहा है वहाँ वह परमात्माका वाचक है[५]। भागवतमें स्पष्ट ही जीव भगवान्का अंश कहा है। (भा० ११, ११, ४) जीव सूक्ष्मातिसूक्ष्म है[६]।

स्वशब्दोन्माभ्यां च २, ३, २२

अणुत्ववाचक परमाणु तुल्य कथनसे जीव अणुपरिमाणवाला है। '**एषोऽणुरात्मा**' श्रुतिमें अणुपरिमाण कहा है[७]। '**बालाग्रशतभाग**' परिमाण भागवतमें भी वर्णित है अतः जीव अणुपरिमाणवाला है।

अविरोधाच्चन्दनवद् २, ३, २३

जैसे चन्दनकी बिन्दु शरीरके एक देशपर लगानेसे सम्पूर्ण शरीरको आनन्दप्रद होती है। ऐसे ही जीव शरीरके एक स्थानपर स्थित होकर सब शरीरमें व्याप्त हो जाता है। जीव अणुपरिमाण युक्त होते हुए भी शरीरके सभी अंगोंसे सम्बद्ध है। "**चित्तेनहृदयं चैत्यः क्षेत्रज्ञः प्राविशद्यथा**"में उक्त कथनकी पुष्टि है।

अवस्थितिवैशेष्यादितिचेन्नाभ्युपगमात्हृदि हि २, ३, २४

यह कथन कि चन्दन बिन्दु तो दिखलाई देती है किन्तु जीवात्मा शरीरमें दिखलाई नहीं देता, उचित नहीं। वह हृदयमें रहता है "**क्षेत्रज्ञ एता मनसो विभूतीः**" (भा० ५, ११, १२) श्लोकमें उक्त भावकी पुष्टि की गई है।

---

१. बृ० उ० ४, ४, २४।
२. मु० उ० ३, १, ९।
३ श्वेता० ५, ९।
४. भा० ११, १६, ११।
५. बृह० ४, ४, २२।
६. भा० ११, १६, ११।
७. मु० उ० ३, १, ९।

गुणाद्वालोकवत् २, ३, २५

जैसे सूर्य एक देशमें है किन्तु प्रकाश सर्वत्र होता है। ऐसे ही जीव एक देशमें है पर सम्पूर्ण देहमें व्याप्त होता है, स्थूलमतिवालोंको आत्मा अर्ककी (सूर्य) भाँति दिखलाई देता है—'**लक्ष्यते स्थूलमतिभिरात्मा चावस्थितोऽर्कवत्**" प्रकाशका दृष्टान्त दोनोंमें समान रूपसे वर्णित है।

व्यतिरेको गन्धवत्तथा चदर्शयति २, ३ २६

जैसे गन्ध प्रसारित होता है ऐसे ही जीवका चेतयितृत्व गुण हृदयसे अतिरिक्त स्थानपर भी प्रसर्पित होता है। "**यथा वातरथो घ्राणमावृंक्ते गंध आश्रयात्**" (भा०) आत्मामें ही आत्माका निवास है[1]। भागवतमें गन्धका उदाहरण दर्शनीय है।

पृथगुपदेशात् २, ३, २७

जीवका धर्म भूत ज्ञान नित्य है। पृथक् उपदेश प्र० उ० ४, ६ में है। "**भयं द्वितीयाभिनिवेशतः स्यात्**" (भा०११,२,३७)में द्वितीय शब्दसे पृथक्का उल्लेख है।

तद् गुणसारत्वात्त तद् व्यपदेशः प्राज्ञवत् २, ३, २८

जीवका वर्णन भी ईश्वरकी भाँति है अर्थात् वह ज्ञाता भी है और ज्ञानस्वरूप भी है।

"ते प्रत्यगात्मनि तदा भगवत्यनन्त।
आनन्द मात्र उपपन्न समस्त शक्ता॥"

में आनन्द मात्रतासे ब्रह्म ही व्यपदिष्ट है। दो अंशोंमें एकमें प्रकृति, द्वितीयमें ज्ञानरूप (जीव) वर्णित है (भा० ११, २४, ४)।

यावदात्मभावित्वाच्च न दोषस्तद्दर्शनात् २, ३, २९

आत्मा नित्य है उसके धर्म भी नित्य हैं। "**नात्माजजान न मरिष्यति**" (भा० ११, ३, ३८)में भी आत्माकी नित्यता कही है।

पुंस्त्वादिवत्वस्यसतोभिव्यक्तियोगात् २, ३, ३०

जैसे पुरुषत्व बाल्यावस्थामें सूक्ष्म, यौवनावस्थामें प्रौढ़ होता है ऐसे ही ज्ञान भी सुषुप्ति अवस्थामें सूक्ष्मभावसे रहता है[2]।

गर्भे बाल्येप्यपौष्कल्यादेकादश विधं तदा।
लिंगं न दृश्यते पुंसः कुह्वां चन्द्रमसो यथा॥ (भा० ४, २९, ७२)

में भी उक्त कथनकी पुष्टि की गई है। जीवात्मा बुद्धिकी वृत्तियोंसे विलक्षण है। जीव तो साक्षी है[3]।

---

१. भा० ४, २०, ८। २. वृ० उ० ४, ३, ३०,
३. भा० ११, १३, २७।

नित्योपलब्ध्यनुपलब्धिप्रसंगोऽन्यतरनियमोवान्यथा २, ३, ३१

जीवात्मा नित्य है, ज्ञानस्वरूप है, अनादिकालसे आनेवाली अविद्याके प्रभावसे प्रभावित है उससे छुटकारा तत्वज्ञानसे ही होता है अन्यथा नहीं। (भा० ३, ३१, ४३)।

कर्ताशास्त्रार्थवत्वात् २, ३, ३२

जीवात्मा कर्ता है, प्रकृतिके गुण कर्त्ता नहीं है। शास्त्रोंमें ऐसा ही निर्णय है।

तत्रैवं सति कर्तारमात्मानं केवलं तु यः।

पश्यत्यकृतबुद्धित्वान्न सपश्यति दुर्मतिः॥

सूत्रका 'कर्ता' पद कर्तारम्के रूपमें भागवतके इस श्लोकमें है और भाव भी ज्योंका त्यों है। **'शास्त्रे स्वियानेव सुनिश्चितोनृणाम्'** (भा० ४, २२, २१)में शास्त्रोंका निर्णय कहा है। शास्त्रपद सूत्रमें भी है।

उपादानाद्विहारोपदेशाच्च २, ३, ३३

मुक्त जीव क्रीड़ा भी करता है। **"क्रीडन् रममाणः"** पद इसका प्रमाण है[1]। **"सहैवयच्छन् मनसेन्द्रियैश्च"** भागवतके श्लोकमें उसकी क्रीड़ा ही वर्णित। **"एवं विहारैः कौमारैः**में विहार पद भी। यह विहार भगवान्के सम्बन्धमें लिखा है।

व्यपदेशाच्च क्रियायां न चेन्निर्देश विपर्ययः २, ३, ३४

लौकिक और वैदिक क्रियासे मुख्य रूपसे जीवका कर्तृत्व सिद्ध हो जाता है। **'भुंक्तेह्यव्यवधानेन लिंगेनमनसास्वयम्'** (भा० ४, २६, ६०) अन्तःकरणमें तृतीयान्त निर्देश है जो कर्तृत्वकी सिद्धिका परिचायक है।

उपलब्धिवदनियमः २, ३, ३५

प्रकृतिका कर्तव्य माननेसे असंगति दोष आ पड़ता है। अथवा जिस प्रकार सुख-दुःख प्राप्त करनेका नियम नहीं है वैसे ही कर्म करनेमें भी नियम नहीं है। जीव कामाशय है, वह सर्वत्र विचरण करता है, फल भोगता है।

एवं कामाशयो जीव उच्चावचपथा भ्रमन्।

उपर्यधो वा मध्ये वा यातिदिष्टं प्रियाऽप्रियम्॥ (भा० ७,११,३४)

जीव गुणाभिमानी है, परतन्त्र है वह कर्मानुसार फल करता है[2]।

शक्तिविपर्ययात् २, ३, ३६

शक्तिका विपर्यय होनेके कारण जीवात्मा अपने हितका आचरण करनेमें सर्वथा स्वतन्त्र नहीं है, देह इन्द्रिय और तदधिष्ठातृदेवताका कारण तो प्रकृति है

---

१. छा० उ० ८, १२ ३। २. भा० ४, २६, २७।

सुख दुःखादिका कारण जीव है[1]। "**ईशादपेतस्यविपर्ययोऽस्य**"में विपर्यय शब्द प्राप्त होता है।

समाध्यभावाच्च २, ३, ३७

जीवात्मा का कर्तव्य स्वाभाविक नहीं है क्योंकि समाधिका अभाव है। श्वेता० उ० ६, २ में कहा है कि जीवमें जो कर्तापन है वह अनादि सिद्ध अन्यःकरणके कारण है। 'अध्यात्ममें रति अनेक जन्मके बाद ही होती है' उक्त कथनसे जीवका पराधीनत्व कहा है[2]।

यथा च तक्षोभयथा २, ३, ३८

तक्षा=बढ़ई बसूलीसे काष्ठका छेदन करता है और अपनी शक्तिसे उसे धारण भी करता है। एसे ही जीव, प्राणादिकी सहायतासे कार्य करता है और उन प्राणादिको धारण भी करता है। अतः जीवात्माको स्वरूपसे कर्ता नहीं माना जा सकता, जबतक देह-इन्द्रिय और प्राण आत्माके निकट हैं तभी तक संसार फलवान् है। "**कार्य-कारण कर्तृत्वे कारणं प्रकृतिं विदुः**" (भा० ३, २६, ८) अहंकारसे मोहित पुरुष अपनेको कर्ता मान बैठता है :—'**अहंकारविमूढात्माकर्ताहमितिमन्यते**' (गीता ३, २७) शुद्ध आत्मामें कर्तापन नहीं है[3]।

परात्तु तच्छ्रुतेः २, ३, ३९

जीवका कर्तृत्व परसे है अर्थात् परमेश्वरसे है। उपनिषदोंमें भी ऐसा वर्णन आता है[4]। भागवतमें भी कहा है—"**एवंभूतानि भगवन्नीश तन्त्राणि विद्धि भो**" ध्रुवने कहा है कि—"जो मेरे अन्तःकरणमें आकर बैठा है" (भा० ४, ९, ६) इससे दोनोंका पृथक्त्व है। "**ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति**" (गीता १८, ६१)में भी हृदयदेशमें परमात्माका निवास कहा है। अन्यत्र भी हृदयमें ईशका निवास कहा है[5]। वह अन्तर्यामी है[6]। ईश्वर जीवात्माके साथ प्रविष्ट होता है[7]। देवताओंमें भी कार्य करनेकी स्वतन्त्र शक्ति नहीं है[8]।

कृतप्रयत्नापेक्षस्तु विहित प्रतिषिद्धवैयर्थ्यादिभ्यः २, ३, ४०

जीवके कृत प्रयत्नकी अपेक्षासे ही ईश्वर उसे कार्य करनेमें प्रदत्त करता है अतः विधि निषेध शास्त्र व्यर्थ नहीं है। "**यथा दारुमयी नारी यथा यन्त्रमयोमृगः**"

---

१. भा० ३, २६, ८।　　२. भा० ३, २७, २९।

३. गीता १८, १६।

४. (क) वृह० ३, ७, १५। (ख) कौषी० ३, ९।

५. वि० पु० १, १७, २६।　　६. वृ० आ० ३, ७, २२।

७. उा० उ० ६, ३, २।　　८. के० उ० ३, १, १०।

(भा० ६, १२, १०) अर्थात् जीव काष्ठकी पुत्तलिका और यन्त्रमय मृगकी भाँति है। नथे हुए बैलकी भाँति जीव परमात्माके आधीन है[१]।

अंशोनानाव्यपदेशादन्यथा चापि दाश कितवादित्वमधीयत एके २, ३, ४१

श्रुतिमें जीवोंका बहुत्व वर्णन है[२] और यह भी स्पष्ट है कि जीव ईश्वरका अंश है। "**एकस्यैव ममांशस्य जीवस्यैव महामते**" (भा० ११, ११-६)में भी दोनोंका पार्थिक्य वर्णित है। गीतामें भी "**अहं बीजप्रदः पिता**" अर्थात् मैं बीजको स्थापित करनेवाला पिता हूँ[३]।

मन्त्रवर्णाच्च २, ३, ४२

मन्त्रके शब्दोंसे भी यह बात स्पष्ट है। मन्त्र है "**ए तावानस्यमहिमा अतो ज्यायांश्चपूरुषः** (छा० उ० ३, १२, ६) इसमें स्पष्ट जीवको अंश कहा है। "**पादेषुसर्व भूतानि पुंसः स्थितिपदो विदुः**" (भा० २, ६, १८)में इस मन्त्रकी व्याख्या की गई है अर्थात् जीव ब्रह्मका एक पाद (अंश) है और इसके तीन पाद अमृतस्वरूप दिव्य हैं। "**सर्वं पुरुष एवेदम्**" (भा० २, ६, १६)में भी विभाग कल्पनाकी है।

अपि च स्मर्यते २, ३, ४३

स्मृतियोंमें भी जीवको अंश कहा है[४]। "**एकस्यैवममांशस्यजीवस्यैवमहामते**" (भा० ११, ११, ४)में स्पष्ट अंशत्व है। विष्णु पुराणमें—

एकः शुद्धोऽक्षरो नित्यः सर्वव्यापी तथा पुमान्।
सोऽप्यंशः सर्वभूतस्य मैत्रेय परमात्मनः॥ (वि० पु० ६, ४, ३६)

में भी अंशका उल्लेख है। भागवत "**यदा सम्मोहितो जीवः**" (१, ७, ५)में जीवका मोहित होना कहा है।

प्रकाशादिवन्नैवं परः २, ३, ४४

जैसे 'प्रकाश' अपने अंधके दोषोंसे लिप्त नहीं होते वैसे ही परमेश्वर जीवात्माके दोषोंसे सम्बद्ध नहीं। प्रकाशमें दोषका स्पष्टीकरण भागवतमें किया गया है—जिस प्रकार किसी पात्रमें जल भरकर उसमें चन्द्र आदिका प्रतिविम्ब दिखलाई दे और वायु द्वारा जलके हिलनेपर चन्द्रादि हिलते हुए प्रतीत हों[५] परन्तु वस्तुतः चन्द्रादि कम्प रहित हैं। मत्स्यादिमें जीवकी भाँति अंश नहीं है उनमें प्रकाश हैं। और सब मनु-ऋषि-देव भगवान्की कला है[६]।

---

१. भा० ११, ६, १४। २. श्वे० उ० ६, १२, १३।
३. गीता १४, ४।
४. गीता १५, ७ ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः।
५. भा० १०, १, ४३। ६. भा० १, ३, २७।

स्मरन्ति च २, ३, ४५

परमात्मा निर्गुण है वह फलसे लिप्त नहीं है[१]। बन्ध-मोक्ष जीवात्माके हैं परमात्माके नहीं :—

नलिप्यते फलैश्चापि पद्म पत्रमिवांभसा ।

कर्मात्मा ह्यपरो योऽसौमोक्षबन्धैः सयुज्यते ।। (म०भा०शा० ३५१,१४)

अंश दो प्रकारका होता है स्वांश विभिन्नांश, मत्स्य आदि अवतार स्वांश हैं जीवात्मा विभिन्नांश है। मुण्डकोपनिषद्में लिखा है कि जीव कर्म फल भोगता है[२]। भगवान् कृष्ण षोडशकला परिपूर्ण हैं। (भा० १, ३, २८)।

अनुज्ञा परिहारौ देह सम्बन्धाज्ज्योतिरादिवत् । भा० २, ३, ४६

विधि और निषेध ज्योति आदिकी संगति शरीरोंके सम्बन्धसे है। जैसे श्मशानकी अग्नि त्याज्य और यज्ञकी अग्नि ग्राह्य है। जीव ब्रह्मका अंश है तब भी वेदाध्ययनमें तारतभ्य होता है। भागवतमें कहा है :—"**तत्रापि भगवान् राजन् तारतभ्येन वर्तते**" (७, १४, ३७)।

असन्ततेश्चाव्यतिकरः २, ३, ४७

शरीरोंके आवरणसे व्यापकताका निरोध होने के कारण उनका तथा उनके कर्मोंका मिश्रण नहीं होगा। प्रलयकालमें भी विभाग विद्यमान रहता है[३]। वैसे ही सृष्टिकालमें शरीरोंके सम्बन्धसे सब जीवोंकी परस्पर व्याप्ति न होनेके कारण उनके कर्मोंका मिश्रण नहीं होता शब्दमात्रकी व्याप्ति आकाशमें है किन्तु मिश्रण नहीं है। जीव नाना हैं अतः मत्स्यादि अवतारोंसे उनकी तुलना करना भी ठीक नहीं है। '**अपरिमिता ध्रुवास्तनुभृत्**' (भा० १०, ८७)में इस तथ्यको स्पष्ट किया है। उल्मुकसे विस्फुलिंग निकलनेकी भाँति परमेश्वरसे जीवोंकी उत्पत्ति कहीं है[४]।

आभास एव च २, ३, ४८

जीवात्माको परब्रह्मका अंश माननेवालोंके युक्ति-प्रमाण आभास मात्र हैं अथवा ब्रह्मांश रूपी जीवका अविद्याकृत जीवाभास है पारमार्थिक नहीं। '**आभासश्च निरोधश्च**' (भा० २, १०, ७)में आभासका प्रयोग है।

अदृष्टानियमात् २, ३, ४९

जीवको स्वतन्त्र माननेसे अदृष्ट=जन्मातरमें किये हुए कर्मफल भोगकी नियत व्यवस्था नहीं हो सकेगी। अतः पिता—पुत्रकी भाँति सब जीव उसीसे प्रकट होते हैं। "**अदृष्टः परमो जनः**" (भा० १०, ५, ३०)में अदृष्ट पद प्रयुक्त है।

---

१. गीता १३, ३१। २. ब्र० य० २, ३, ३०।

३. मु० उ० ३, १, १। ४. भा० ३, २८, १४।

अभिसन्ध्यादिष्वपि चैवम् २, ३, ५०

संकल्प आदिमें भी अव्यवस्था होगी। अर्थात् शास्त्रमें जो परब्रह्मपरमेश्वरके ईक्षण संकल्पपूर्वक जगत्की उत्पत्ति करनेका वर्णन है उसकी भी संगति नहीं बैठेगी। भगवान् कृष्णका कथन है कि जीव कर्मानुसार फल प्राप्त करता है :—"**कर्मणा-जाते जन्तुः कर्मणैव विलीयते**" (भा० १४, २४, १३)।

प्रदेशादिति चेन्नान्तर्भावात् २, ३, ५१

यदि यह स्वीकारें कि उपाधियोंमें देश भेद होनेसे सब जीवोंका अलग-अलग विभाग हो जायगा और उसीसे कर्मफल एवं संकल्प आदिकी भी व्यवस्या हो जायगी, यह भी ठीक नहीं है क्योंकि परमेश्वर सभी उपाधियोंमें व्याप्त है। अतः परमेश्वर और जीवात्माओंका अंशाशिभाव घटाकाशकी भाँति उपाधि निमित्तक नहीं माना जा सकता। भागवतका कथन है कि आत्माके अदृष्ट तत्वको जाननेवाला कभी मोहको प्राप्त नहीं होता।

तथा प्राणाः २, ४, १

जिस प्रकार आकाशादि महाभूत परमेश्वरसे उत्पन्न हैं, उसी प्रकार प्राणादि इन्द्रिय वर्ग भी उसीसे उत्पन्न है। "**एतस्माज्जायते प्राणो मनः सर्वेन्द्रियाणि च**" (मु० उ० २, १, ३) "**स प्राणमसृजत**" (प्र० उ० ६, ४) भागवतमें "**बुद्धिः प्राणश्च तेजसौ**" (भा० २, ५, ३१) द्वारा तेजमें विकारके पश्चात् प्राणका वर्णन है।

गौण्यसम्भवात् २, ४, २

प्राणमें बहुवचन है, ब्रह्म एक है अतः अद्वितीयत्व घटित होता कठिन है। बहुत्ववाली श्रुति गौणी है "**ततो देहेन्द्रियाणि च**" तथा "**एकोनानात्वमन्विच्छन् योगतल्पात्समुत्थितः** (भा० २, १०, १३)से एक ही तत्व नानारूप बना लेता है ऐसा वर्णित है। छा० (६, ६, ४)में भी तेजसे वाणीकी उत्पत्ति कही है। "भक्षण किये हुए तेजका सूक्ष्म अंश एकत्र होकर वाणी बनता है।"

तत् प्राक् श्रुतेश्च २, ४, ३

तेजसे वाक् आदि इन्द्रियोंकी उत्पत्ति कहनेवाली श्रुति गौण है, क्योंकि आकाशादि तत्त्वोंके पहले इन्द्रियोंकी उत्पत्ति कही गई है। शतपथ ब्राह्मण (६, १,१) एवं मुण्डकोपनिषद्में इसका प्रमाण है। (भा० ३, ५ ५२)में एकत्वका प्रतिपादन है कि सृष्टिके आरम्भमें वे इकले ही थे।

तत्पूर्वकत्वाद्वाचः २, ४, ४

वाणीकी उत्पत्तिका वर्णन तीनों तत्त्वोंमें उस ब्रह्मके प्रविष्ट होनेके बाद है

अतः इन्द्रियाँ ब्रह्मसे उत्पन्न हुईं तेजसे नहीं। भागवतमें स्पष्ट कहा है—इन्द्रियाँ तेजस हैं किन्तु ब्रह्मसे उत्पन्न होती हैं भूतोंसे नहीं—

तेजसानीन्द्रियाण्येव क्रियाज्ञानविभागशः।
प्राणस्यहि क्रिया शक्तिर्बुद्धेर्विज्ञानशक्तिता।
स वाच्य वाचकतया भगवान् ब्रह्मरूपधृक्। (भा० २, १०, ३६)

सप्तगतेर्विशेषितत्वाच्च २, ४ ५

इन्द्रियाँ सात हैं। "**सप्त प्राणः**" कहकर मु० उ० २, १, ८ श्रुतिने 'सप्त' पदको प्राणों 'इन्द्रियों'के विशेषण रूपसे प्रयोग किया है। पर भा० ११, २२, २ में कहा है कि कुछ विद्वान् तत्वोंको सात मानते हैं, कुछ ९, ४, ११, १७ भी।

हस्तादयस्तु स्थितेऽतो नैवम् २, ४, ६

हाथ, पैर, उपस्थ, गुहा इन चारोंको भी इन्द्रियाँ कहा है, अतः इन्द्रियाँ ११ हैं। भागवतमें कहा है कि—श्रोत्र-त्वक्-नेत्र-प्राण-जिह्वा ज्ञान शक्ति हैं शेष कर्मेन्द्रियाँ हैं। (भा० ११, २२, १५)। गीता (१३, ५)में और बृ० उ० (३९, ४)में ग्यारहका उल्लेख हैं।

अणवश्च २, ४, ७

तन्मात्रा या प्राणोंकी उत्पत्ति भी परमात्मासे है, भागवतमें कहा है कि पुरुषकी चेष्टा करनेपर प्राण उत्पन्न हुए "**ओजः सहो बलं जज्ञे ततः प्राणो महानसुः**" (भा० २, १०, १५) इन्द्रिय अर्थ माननेसे त्वक् इन्द्रियको अणु नहीं माना जा सकता वह पूर्ण शरीरमें व्याप्त है। इन्द्रियोंको अणु बतलानेवाले व्याख्याकारोंने श्रुतियों स्मृतियोंके प्रमाण उद्धृत नहीं किये।

न वायु क्रिये पृथगुपदेशात् २, ४, ८

प्राण साधारण वायु जैसा नहीं है न ही पृथक् है। तथा वह वायुकी क्रिया भी नहीं है। क्योंकि दोनोंका उपदेश पृथक्-पृथक् किया गया है। मु० २, १, ३ तथा "**प्राणः सहो बलमोजश्च वायुः**" (भा० ११, ७, ३९)में भी दोनोंका साथ उल्लेख है।

चक्षुरादिवत्तु तत् सहशिष्ट्यादिभ्यः २, ४, ९

चक्षु-कर्ण आदिकी भाँति प्राण भी जीवका उपकरण है। प्राण और इन्द्रियोंके साथ सम्वाद रूपमें इनका वर्णन है तथा इन्द्रियोंकी भाँति जड है। (छा० ५, १, ६) भागवत "**यथा सुषुप्तं पुरुषं प्राणेन्द्रिय मनोधियः**" (भा० ६, १६, ४३) इस श्लोक द्वारा प्राणको जीवके आधीन कहा है। इन्द्रियाँ तैजस हैं ऐसा (भा० ३, २६, ३१)में वर्णन है।

अकरणत्वाच्च न दोषस्तथाहि दर्शयति २, ४, १०

जिस प्रकार चक्षुः आदि इन्द्रियाँ विषयोंके ज्ञान करानेमें कारण हैं। प्राणको ऐसा न माननेपर भी दोष नहीं है क्योंकि सब इन्द्रियोंको धारण करनेवाला प्राण ही है, शरीर और इन्द्रियोंका पोषण भी प्राण ही करता है (छा० ५, १, ६)। 'जीवात्मा' प्राणके साथ ही एक शरीरको छोड़कर दूसरे शरीरमें जाता है (प्र० ३, १०)। पुरंजनोपाख्यानमें लिखा है कि पाँच शिरवाला नाग इस शरीररूपी नगरीकी रक्षा करता है :—**"नागोऽयं पालयन् पुरीम्"** (भा० ४, २५, ३५)। **"प्राणेन्द्रियात्मा सुशरीरकेतम्"** (भा० ८, ५, ३) इसमें भी सबका पृथक् उल्लेख है।

पञ्चवृत्तिर्मनोवद् व्यपदिश्यते २, ४, ११

प्राणकी पाँच वृत्तियाँ हैं—प्राण–अपान–व्यान–समान और उदान (बृह० १, ५, ३)। उपनिषदोंमें इसकी वृत्तियोंका विस्तारसे वर्णन किया है (प्र० ३, ४-७)॥ यह तथ्य **"पंचशीर्षाहिना गुप्ताम्"** (भा० ४, २५, २१)में है।

अणुश्च २, ४, १२

यह प्राणतत्व पाँच वृत्तियोंसे स्थूल है तथा सूक्ष्म भी है। सूक्ष्मताके कारण व्यापक होनेपर भी सीमित है। **"सकालः परमाणुर्वै"** (३, ११, ४) भागवतके द्वारा भी उसे परम अणु कहा है।

ज्योतिराद्यधिष्ठानं तुतदामननात् २, ४, १३

ज्योति आदि तत्व जिसके अधिष्ठान बतलाये हैं वह तो ब्रह्म है[1]। भागवत द्वादशस्कन्धमें कहा—हे विभो ! आपकी महिमाका वर्णन कहाँतक करें आपके कारण ही प्राणोंमें संचार होता है और उसके साथ वाणी-मन और इन्द्रियोंमें भी। (भा० १२, ८, ४०) भागवतमें अग्नि आदि देवोंका अधिष्ठान वाक्को कहा है यह भी तेजस हैं।

प्राणवता शब्दात् २, ४, १४

ब्रह्मने प्राणधारी जीवात्माके सहित प्रवेश किया[2]। भागवतमें कहा है कि वह निर्गुण भगवान् प्राण-इन्द्रिय और मनको साथ लेकर स्वयं जीवके साथ प्रविष्ट होता है[3]।

तस्य चनित्यत्वात् २, ४, १५

जीवात्मा नित्य है अतः शरीरके साथ उत्पत्ति गौण रूपसे कही गई है।

---

१. छा० उ० ६, ३, २। २. ऐ० उ० अध्याय।

३. भा० ४, २९, २५—"प्राणेन्द्रिय मनोधर्मानात्मन्याधाय निर्गुणः"।

'द्वा सुपर्णा' भागवत श्लोकमें दोनोंका साथ वर्णन है। पुरंजनोपाख्यानमें जीवात्मा, परमात्मा दोनों नवद्वारवाली पुरीको देखने आते हैं[१]। जीवात्मा अनित्य नहीं है।

त इन्द्रियाणि तद्व्यपदेशादन्यत्र श्रेष्ठात् २, ४, १६

११ इन्द्रियाँ मुख्यप्राणसे भिन्न हैं (मु० २, १, ३)। श्रुतियोंमें गौणरूपसे इन्द्रियोंको प्राण कह दिया है। **"बुद्धीन्द्रियमनः प्राणान् जनानामसृजत् विभुः"** तथा **"भूत आत्मेन्द्रिय धियां जन्म सर्ग उदाहृतः"** (भा० २, १०, ३)।

भेद श्रुतेः २, ४, १७

मुख्य प्राणका अन्य इन्द्रियोंसे भेद भी सुना है। मुण्डक २, १, ३ बृह० १, ३, ३ तथा प्रश्नोपनिषद् २, २, ३ मेंउक्त पक्षकी संपुष्टि की गई है। **अनुप्राणन्ति यं प्राणाः प्राणंतं सर्व जन्तुषु।** (भा० २, १० १६)में प्राण भेद कथन स्पष्ट है "जिस परमेश्वरकी प्रेरणासे प्राण-इन्द्रिय चलते है"। भा० ११, ३, ३५ में भी प्राण और इन्द्रियाँ पृथक् पढ़ी गई हैं।

वैलक्षण्याच्च २, ४, १८

स्वरूप और कार्यगत वैलक्षण्य इन्द्रिय और प्राणोंमें है। इन्द्रियोंके शयनावस्थामें जानेपर भी प्राण जागते हैं **"सुप्तायामपि जागर्ति नागोऽयं पालयन् पुरीम्"** (भा० ४, ३०) प्राणपर निद्राका कोई प्रभाव नहीं पड़ता। यही इसकी विलक्षणता है।

संज्ञामूर्तिक्लृप्तिस्तु त्रिवृत् कुर्वत उपदेशात् २, ४, १९

नाम रूपकी रचना भी तीनों तत्त्वोंका मिश्रण करनेवाले परमेश्वरका ही कर्म है। छा० उ० ६, ३, ४ में त्रिवृत्करण श्रुति है। भागवतमें इसे स्पष्ट किया है कि नाम रूपोंको प्रकट करनेवाले भगवान ही हैं—**'नामानि रूपाणि मनोवचोभिः** (भा० ११,३,३९) ये सब भगवान्की शक्तिसे प्रेरित होते हैं (भा० २,५,३२-३३)।

मांसादि भौमं यथा शब्दमितरयोश्च २, ४, २०

जिस प्रकार माँस आदि पृथिवीके कार्य कहे हैं वैसे ही दोनों तत्त्वोंका कार्य भी समझ लेना चाहिये। मांस-विष्ठा-मन ये भूमि रूप अन्नके कार्य हैं। जलका कार्य प्राण है।

त्वक्चर्म मांस रुधिर मेदो मज्जास्थि धातवः।
भूम्यप्तेजोमयाः सप्त प्राणो व्योमांबुवायुभिः॥ (भा० २, १०, ३१)-

में भी मांसादिको कहा है।

---

१. भा० ४, ३१।

वैशेष्यात्तु तद्वादस्तद्वादः २, ४, २१

वह कथन तो अधिकताके नातेसे है। अधिकताके कारण तत्त्वका उल्लेख है। तद्वाद-पदका प्रयोग अध्यायकी समाप्तिका सूचक है। वास्तवमें मन, प्राण और वाणी आदि इन्द्रियाँ भूतोंका कार्य नहीं है, भूतोंसे भिन्न पदार्थ हैं (ब्र० सू० २, ४, २) समस्त पदार्थ त्रितयात्मक हैं, अतः संज्ञा भेद है। सत्वकी अधिकताके कारण :— **'सत्वेप्रलीनाः स्वर्यान्तीति'** भागवतमें कहा है। **"विशेषस्तुविकुर्वाणादम्भसोगंधवानभूत्"** (भा० २, ५, २९)में विशेष शब्द है।

※ तृतीयोऽध्यायः ※

तदन्तर प्रतिपत्तौरंहतिसंपरिष्वक्तः प्रश्ननिरूपणाभ्याम् ३, १, १

इससूत्रके अवतरणमें बलदेवविद्याभूषणने लिखा है कि ज्ञान वैराग्य युक्त भक्तिरूप साधनके अतिरिक्त भगवान् अपना धाम या पाद पद्म किसीको प्रदान नहीं करते अतः बुद्धिमान् व्यक्ति उन्हींके चरणोंका आश्रय ग्रहण करें[1]। वेदान्तके प्रथम और द्वितीयाध्यायमें सूत्रकारने सिद्ध किया कि जगत्का कारण, स्वरूप, निर्दोष और कल्याण गुणगणका सागर, सच्चिदानन्दमय पुरुषोत्तम तत्व ही मुमुक्षुओंको ध्येय है। तद्विषयक जितने भी विरोधी मत थे उनका परिहार करके अविरुद्ध भावसे ब्रह्मके स्वरूपका निरूपण किया है। इस तृतीयाध्यायमें उसी ब्रह्मकी प्राप्तिके उपायका निरूपण है। प्राप्य परतत्वसे व्यतिरिक्त अन्यत्र वैराग्य एवं प्राप्य परतत्वमें स्पृहा ही प्रधान साधनोपाय है। प्रथम पादमें पञ्चाग्नि विद्याके आश्रममें नानावस्थापन्न जीवकी जो गति प्राप्ति है उससे वैराग्य करनेके लिये उनमें दोष प्रदर्शित किया है और द्वितीयपादमें परमेश्वरमें अनुराग उत्पन्न करने हेतु उनकी महिमाका गान किया है। छान्दोग्योपनिषद्में यह पञ्चाहुति प्रकरण उल्लिखित है श्रीमद्भागवतमें— लिखा है कि "पुरुष उपाधिस्वरूप लिंग शरीरके साथ लोकान्तरमें जाता है और कर्मोंका फल भी भोगता है।

देहेन जीवभूतेन लोकाल्लोकमनुव्रजन्।
भुञ्जान एव कर्म्माणि करोत्यविरतं पुमन्। (भा० ३, ३१, ४३)

---

१. गोविन्द भाष्य—मङ्गलाचरण।

सूत्रके लोकान्तर भोगके प्रश्न[1]को भागवतकारने स्पष्ट कर दिया है। गीतामें भी ऐसा उल्लेख मिलता है। "**आब्रह्म भुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनोऽर्जुन**। (गीता ८,१६)।

त्र्यात्मकत्वात्तु भूयस्त्वात् ३, १, २

यहाँ यदि यह शंका हो कि केवल जल ही पुरुष देह को धारण करता है तो जीव पृथ्वी आदिके सहित परलोक गमनमें कैसे समर्थ होता है? उसके उत्तरमें सूत्रकारने यह लिखा है कि जलमें तीनों तत्त्व हैं आधिक्य जलका है। भागवतकारने इसे इस प्रकार लिखा है :—

क्लेदनं पिण्डनं तृप्तिः प्राणनाप्यायनोदनम्
तापापनोदो भूयस्त्वमन्नसो वृत्तयस्त्विमाः। (३, २६, ४३)

अर्थात् जलकी वृत्तियाँ निम्न हैं—आर्द्रीकरण, मृत्तिकादिको पिण्डीकरण, जीवितकरण, तृषाजनित वैक्लव्य निवारण, मृदुकरण, तापनिवारण, एवं बारम्बार कूपादिसे उद्गमन। इस श्लोकके भाष्यमें मध्वाचार्यने लिखा है कि देहमें जल तत्व अधिक रहता है[2]। और श्रुतियोंमें भी आया है "**आपोमयः प्राणः**" वृहदारण्यको०में लिखा है[3]— "**आप ऐवेदमग्र**" छान्दोग्यमें भी ऐसा आया है[4]। "**आप वावान्नाद्यस्तस्माद् यदा-सुवृष्टिर्नभवति व्याधीयन्ते ाणाः**" उपनिषद्में यह भी लिखा है कि स्त्रीके गर्भमें जिस वीर्यका आधान किया जाता है उसमें सभी भौतिक तत्त्व रहते हैं, जलाधिक्यसे वहाँ जलका ही वर्णन है। जल कथन शरीरके सभी तत्वोंको लक्ष्य करानेवाला है।

प्राणगतेश्च ३, १, ३

अर्थ :—जीवात्माके साथ प्राणके गमनका वर्णन होनेसे भी (यही बात सिद्ध है) प्राणगतिके वशसे अन्य भूतोंकी भी गति समझी जाती है, भागवतमें वर्णित है— **प्राणेन्द्रियात्मभिस्त्यक्तं हतास्मीत्यपतद्भुवि** (भा० ६, १४, ४६) प्राणके साथ इन्द्रियाँ भी चल देती हैं। कृतद्युतिरानीने अपने पुत्रको मृतावस्थामें देखकर मुक्तश्लोक कहा है कि प्राण-इन्द्रिय और जीवात्माने भी उसके शरीरसे विदा ली है। वृ० उ० में भी उल्लेख है। चित्रकेतुके प्रसंगको इस सूत्रसे सन्नद्ध किया गया है। प्रश्नोपनिषद्में

---

१. "कर्माण्यारभते येन पुमानिह विहायतम्॥ (भा० ४, २९, २८) तथा
येनैवारभते कर्म तेनैवामुत्र तत्पुमान्॥ (भा० ४, २९, ६०)।

२. माध्वभाष्य "पृथिव्यग्न्यापेक्षया भूयस्त्वं देहे"।
बंगला वे० सू० ८, १५।

३. वृ० उ० ५, ५, १। ४. छान्दोग्यो० ७, १०, १।

आश्वलायनने पिप्पलाद मुनिसे प्राणके विषयमें प्रश्न किये हैं[१]। पिप्पलादने जीवात्माके साथ प्राण इन्द्रियका गमन सिद्ध किया है। भागवतकारने इन दोनोंको ही यहाँ गृहीत किया है। प्राणका सहयोग सभी जगह है क्योंकि गति प्राणके अधीन है प्राणको जलमय बताया ही गया है अतः श्रुतिके समस्त वर्णनकी संगति बैठ जाती है।

अग्न्यादिगति श्रुतेरिति चेन्न भाक्तत्वात् ३, १, ४

मृत्युकालके समय वागादि इन्द्रिय अग्नि प्रभृति देवताओंके निकट चली जाती हैं अतः मृत्युके अनन्तर जीवात्मासहित भूतोंका परलोकगमन संगत है, अयुक्त है। कारण कि वृहदारण्यक[२]का यह वाक्य मुख्यार्थी नहीं गौणार्थमें प्रयुक्त है। भागवतमें इसे समल ढंगसे इस प्रकार समझाया है। अर्थात् उसने वाक् आदि इन्द्रिय समूहको मनके मध्य, मनको प्राणमें, प्राणको अपानमें मूत्र पुरीषादि परित्याग रूप कार्यके सहित अपानके अपने अधिष्ठातृ देव मृत्युमें, मृत्युको पञ्चभूतोंके ऐक्यस्वरूपमें लीन किया। (भा० १, १५, ४१) अन्य श्लोकमें भी यह प्राप्त होता है (भा० ३, २३, १७) देह पञ्चतत्त्वको प्राप्त करता है, तब देही कर्मानुग वशमें होकर जाता है। देहान्तरको प्राप्त करके ही वह पूर्व शरीरका त्याग करता है। भागवतके इस श्लोकमें भी गतिका निरूपण है[३]। वह गुणोंके साथ ही पुनः उत्पन्न होता है[४]। वसुदेवके कथनमें उक्त ब्रह्मसूत्रका अर्थ है।

प्रथमेऽश्रवणादितिचेन्न ता एवं ह्युपपत्ते ३, १, ५

अर्थ :—प्रथम आहुतिके वर्णनमें जलका नाम नहीं सुना गया है ऐसी बात है पूर्वापर संगतिसे श्रद्धाके नामसे जलका कथन है। प्रथम आहुति जलरूप नहीं है पाँच आहुति जलरूप हैं, ऐसा तो श्रुतिने कथन ही नहीं किया फलतः जलादि भूत गणोंके सहित जीवगति सम्भव नहीं है। इसके समाधान रूपमें सूत्रकारका कथन है कि प्रथम जलका उल्लेख असंगत नहीं है क्योंकि जिस प्रकरणमें श्रद्धा शब्दका उल्लेख किया गया है वहाँ श्रद्धाका अर्थ मनकी वृत्ति विशेष नहीं है, अपितु 'जल' है। **"श्रद्धावै आपः"** अतएव जल सहित जीवका परलोकगमन ही संगत है। भागवत (११, २८, १२)में आया है—**"संसारः फलवांस्तावदपार्थो प्यविवेकिनः"**। हे उद्धव!

---

१. प्र० उ० ३, १०।

२. बृ० उ० ३, २, १३ **"यत्रास्यपुरुषस्य मृतस्याग्निः वागप्येति" वातं प्राणश्चक्षूरादित्यं मनश्चन्द्रं दिशः श्रोत्रं"**।

३. भा० १०, १, ४१। ४. भा० १, १, ४२।

संसारका अस्तित्व नहीं है तथापि जबतक देह इन्द्रिय और प्राणोंके साथ आत्माका सम्बन्ध भ्रान्ति है, तबतक अविवेकी पुरुषको वह सत्य-सा स्फुरित होता है ।

अश्रुतत्वादिति चेन्न इष्टादिकारिणां ३, १, ६

अर्थ :—यदि यह कहें कि जलयुक्त जीवगतिका उल्लेख तो श्रुतिमें नहीं है इसके उत्तरमें सूत्रकारका कथन है कि छान्दोग्योपनिषद्‌में आता है कि इष्टापूर्तिकारी जीव चन्द्रलोकमें जाते हैं । **"अथ य इमे ग्राम इष्टपूर्ते दत्तमित्युपासते तेधूमम भिसंविशन्ति"** (छा० उ० ५, १०, ३) अर्थात् जो ग्राममें निवास करता हुआ यज्ञ' 'कूपादि प्रतिष्ठा' दान करता है वह मृत्युके पश्चात् धूमपथमें प्रवेश करता है । अतः पञ्चभूतोंके साथ ही जीव परलोकगमन करता है । भा०—**इष्टवेह देवतायज्ञैः-गंत्वा रंस्यामहे दिवि'** (११, २१, ३३) तथा **"गत्वा चान्द्रमसं लोके सोमपाः पुनरेष्यति** (३, ३२, ३१) चन्द्र सम्बन्धी लोकमें जानेकी उक्त घोषणा भी उपनिषदोंसे प्राप्त है **"आकाशाच्चान्द्रमसमेष सोमोराजा"** (छा० उ० ५, १०, ४) । गीतामें भी आया है :—**यज्ञैरिष्ट्वा स्वर्गतिं प्रार्थयन्ते** (गीता ९, २०)

भाक्तं वा अनात्मवित्वात् तथाहि दर्शयति ३, १, ७

अर्थ :—आत्मज्ञानीकी अपेक्षा उनको देवताओंका अन्न वतानेवाली श्रुति गौण है उनका हीनत्व और स्वर्गभोग्यत्व श्रुतिमें भी है । जीवका भक्ष्य 'सोम' लिखा है वह गौण है जीवका भक्ष्य तो अन्न है । श्रुतिने सिद्ध किया है कि आत्मज्ञानहीन जीव देवगणका सेवक बन जाता है । (वृ० उ० १, ४, १०) । **"स्वर्गोभिः पितृदेवेभ्योविभजन् कृष्णशुक्लयोः** (भा० ५, २०, १२)में लिखा है जो निखिल जीवोंको ज्ञानप्रदकी सेवा करता है वह निःशंक भावसे मृत्युके मस्तकपर पैर रख कर जाता है । भक्ति शून्यके स्वर्गादि फलदायी वचनोंके अनुसार कर्मकाण्डमें अपनेको पशुकी भाँति आबद्ध रखता है । (भा० १०, ८७, २७) मुनियोंने त्रिदेव परीक्षाके 'भृगु'को भेजा उनसे वृत्तान्त सुनकर विष्णु भगवान्‌में अत्यधिक श्रद्धाकी क्योंकि वहीं शान्ति है और अभय है । ऐसा वचन स्कन्दपुराणमें भी है[२] ।

---

१. वृ० उ० (६, २, १६)में लिखा है कि स्वर्गमें जानेवाला पुरुष देवताओंका अन्न है देवता लोग उसका भक्षण करते हैं । अतः पुण्यात्माओंका (जो स्वयं भोग्य हैं)का भोक्ता होना कैसे सिद्ध है ? इस शंकाके समाधानार्थ ऊपर सूत्र लिखा है ।

२. स्क० पु०—वासुदेवं परित्यज्ययोऽन्यं देवमुपासते ।
त्यक्तयामृतं मूढात्मा भुंक्ते हालाहलं विषम् ॥

कृतात्ययेऽनुशयवान् दृष्ट स्मृतिभ्याम् ३, १, ८

जो कर्म फलोन्मुख होकर किये हैं उनका क्षय भोग द्वारा हो जाता है और जीव मुक्तावशिष्ट किंचित् कर्मके साथ प्रत्यावर्तन करता है। यह बात लोकमें विभिन्नभावों द्वारा जन्ममें कर्मफल भोग द्वारा देखी जा सकती है? श्रुति-स्मृति दोनों इसका अनुमोदन करती हैं।

छा० उ० "तद् य इह रमणीय चरणा..........
श्वयोनिं वा शूकर योनिं वा चाण्डाल योनिं वा" (छा० उ० ५,१०)

तथा गौतमस्मृति (११, १)में भी यही भाव है—स्मृति भी पुराण है—

"ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं
क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति" । (गीता ९, २१)

भागवत (११, १०, ३२)में लिखा है कि गुण वैषम्यके कारण ही आत्मामें नानात्वका बोध होता है और जबतक नानात्वका बोध है तबतक ही पारतन्त्र्य है। कर्मवल्लीके आश्रयसे यदि जीव कथंचिद् नरकोंसे छूट भी जाता है तो संसार मार्गमें पुनः चलता और ऊपर लोकोंमें गया हुआ भी नरलोकमें आ जाता है (भा० ५, १४, ४१)। कृष्णको भूलनेसे ही ऐसा होता है। यह चै० च०कारने इस प्रकार लिखा है :—

कृष्ण भूलि सेइ जीव अनादि बहिर्मुख,
अत एव माया तोंरदेय संसार दुःख।
कभू स्वर्ग उठाय कभू नरके डुबाय,
दण्डयजने राजायेन नदीते चुवाय। (चै० च० म० २०, ११८)

यथेतमनेवचं[1] ३, १, ९

जिस प्रकार जीव चन्द्रलोकमें जाता है उसी प्रकार विपरीत भाव होनेपर उसी मार्गसे लौट आता है। यह बात गीतामें भी वर्णित है। भागवतमें पुण्यभोगके बाद प्रत्यावर्तनका का उल्लेख है।

चरणादिति चेन्नोपलक्षणार्थेति कार्ष्णाजिनिः ३, १, १०

यदि यह कहें कि **"रमणीय चरणाः"** श्रुतिमें चरण शब्दका उल्लेख है, वह यह सूचित करने के लिये है कि जीवात्मा मुक्त शेष कर्म संस्कारको साथ लेकर लौटता है अतः कोई दोष नहीं है। सूत्रकारने कार्ष्णाजिनि आचार्यका मत उद्धृत किया है। भागवत (३, ३०, ३४)में लिखा है कि जीव नरकादिको भोगकर कुत्ता,

---

१. इस सूत्रको गीताप्रेसने वेदान्तसूत्रमें पृथक् नहीं माना है। वंगीय संस्करणमें है।

श्रृगालादिकी यातना भोगकर पाप क्षय करके ही नरलोकमें आता है। चरण शब्द आचरणवाची है। भागवतमें आचरणका महत्व लिखा है :—**"आचरन् दासवन्नीचो गुरौ सुदृढसौहृदः"** (भा० ७, १२, १)।

आनर्थक्यमिति चेन्न तदपेक्षत्वात् ३, १, ११

सूत्रमें चरण शब्दका प्रयोग निरर्थक नहीं है क्योंकि कर्माशयके लिए आचरण अपेक्षित है। सदाचार विवर्जित व्यक्ति श्रौतस्मार्त कर्मका भी अधिकारी नहीं होता। भागवतमें स्पष्ट लिखा है कि "ब्रह्मचारीको पवित्रताके साथ एकाग्रचित्त होकर अग्नि, सूर्य, आचार्य, गौ, ब्राह्मण गुरु, वृद्धजन और देवताओंकी उपासना करनी चाहिए तथा सायंकाल और प्रातःकाल मौन होकर सन्ध्योपासना एवं गायत्रीका जप करना चाहिये। ब्राह्मणको तपस्या और विद्या कल्याणदायी हैं दुर्विनीतको ये 'अन्यथा' फलदायी हैं (भा० ६, ४, ७०)।

सुकृत दुष्कृते एवेति बादरिः ३, १, १२

'चरण' नामसे 'सुकृत', दुष्कृत प्रकरणमें शुभाशुभ कर्म ही कहे हैं ऐसा बादरि आचार्यका मत है। अतः जीवात्मा बचे हुए कर्म संस्कारोंको साथ लिये हुए लौटता है। बादरिने चरणको उपलक्षण नहीं माना जैसा कि पूर्वमत है अपितु, 'रमणीय चरण'से पुण्यकर्म और 'कपूय चरण'से पापकर्मको स्वीकार किया है। भागवत (३, ३२, ३)में :—

"तत् श्रद्धयाक्रान्त मतिः पितृदेवव्रतः पुमान्
गत्वा चान्द्रमसं लोकं सोमपाः पुनरेष्यति ॥

से सिद्ध किया है कि जीव चन्द्रलोकसे पुनः लौटकर आता है। जो जैसा कर्म करता है उसे वैसा ही फल प्राप्त होता है (भा० ६, १, ४५)।

अनिष्टादि कारिणामपि च श्रुतम् ३, १, १३

अशुभ आदि कर्म करनेवालोंका भी चन्द्रलोकमें जाना वेदमें सुना गया है। इसमें कौषीतकि उपनिषद्की एक शंका उठाई है इस उपनिषद्में लिखा है कि जो कोई इस लोकसे जाता है चन्द्रमाके लोकमें ही जाता है—**"ये वैके चास्माल्लोकात् प्रयान्ति चन्द्रमसमेव ते सर्वेगच्छन्ति"** (कौ० उ० १, २)। इससे बुरे कर्म करनेवालोंको भी चन्द्रलोक प्राप्त होगा सिद्ध है तो श्रुतिमें जो आया है कि "इष्टापूर्त और दानी धूममार्गसे चन्द्रलोकको जाते हैं इसके साथ श्रुतिका विरोध है (समाधान अगले सूत्रमें है)। ईशो० ३ में लिखा है आत्मघाती अन्धकारसे आवृत लोकोंमें हैं। भागवतमें लिखा है कि जो व्यक्ति अपने कर्मको नतो धर्मके लिये और न

विरागके लिये करता है न तीर्थ पद सेवाको ही कर्म करता है वह जीवित ही मृत है (भा० ३, २३, ५६)।

संयमनेत्वनुभूयेतरेषाभारोहावरोहौतद्गति दर्शनात् ३, १, १४

पापकर्म करनेवालोंका पापकर्मोंका फल यमलोकमें भोगनेके पश्चात् चढ़ना उतरना होता है उनकी गति श्रुतिमें उसी प्रकार वर्णित है। आशय यह है कि अच्छे कर्म करनेवाला ही चन्द्रलोकमें जाता है बुरे कर्म करनेवाला नहीं। "कठोपनिषद् १, २. २६)में लिखा है—प्रमादीको परलोक दिखलाई नहीं देता वह बारबार मेरे वशमें पड़ता है"। भागवत (३, ३०, ३३)में लिखा है कि अधर्मी व्यक्ति ही अन्ध-तामिस्र नामक नरकमें जाता है। और यह भी लिखा हैं कि सम्पूर्ण यातनाओंको भोगकर ही जीव क्रमशः नरलोकमें लौटकर आता है (भा० ३, ३०, ३४) तथा **"ययौ संयमनीमाशु"** (भा० १०, ८६, ४३)में संयमनी पद है।

स्मरन्ति च ३, १, १५

तथा स्मृतिमें भी इसी बातका समर्थन किया गया है। गीताके १६वें अध्यायके ७-१५ श्लोकोंमें आसुरी प्रकृतिवाले पुरुषोंके लक्षण बतलाकर उनके नरक-गमनका वर्णन है। अतः पापकर्मसे नरकगमन मानना ठीक है। भागवतमें आता हैं कि यमदूत मृत व्यक्तिको पाशोंसे गला बाँधकर बलपूर्वक उसे दीर्घमार्गकी ओर ले जाते हैं। जैसे राजाके भट दण्डनीय व्यक्तिको बलात् पकड़कर ले जाते है (भा० ३, ३०, २०)। तथा भागवतके पंचमस्कन्ध २६वें अध्यायमें यातनाओंका भी चित्रण है। अजामिल प्रसंग (६, ३, २८)में यमका वचन भी है कि यमलोकमें विष्णुसे बहिर्मुख पापियोंको लाना ही उचित है।

अपि सप्त ३, १, १६

इसके सिवा पापकर्म फल भोगनेके लिये प्रधान ७ नरकोंका वर्णन भी आया है। महाभारतमें ५ नरक अनित्य और २ नरक नित्य माने हैं। ७ नरकोंके नाम हैं :—रौरव, महारौरव, वन्हि, वैतरणी, कुम्भीपाक, तामिस्र, अन्धतामिस्र। भागवतमें प्रधान २१ नरकोंकी गणना की गई है इनमें महाभारतोक्त ७ हैं तथा इनमें पृथक् कालत्रय, असिपत्र वन, शूकरमुख, अन्धकूप, कृमिभोजन, सन्दंश, तप्त-शूर्मि, व्रजकण्टक, शाल्मली, पूयोद, प्राणरोध, विशसन्, लालाभक्ष, सारमेयादन-भवीचि अयःपान हैं। इनके पश्चात् क्षारकर्दम, रक्षोगण भोजन, शूलप्रोत, दन्दशूक, अवटनिरोधन, सूचीमुख नामके ७ नरकोंको और लिखा है। कुल २८ नरक गिनाये हैं। विश्वनाथ चक्रवर्तीने अपनी टीकामें लिखा है कि ये ७ नरक मतान्तरसे हैं जिन्हें भागवतकारने यहाँ लिखा है (भा० ५, २६; ७)।

तत्रापि च तद् व्यापारादविरोधः ३, १, १७,

यद्यपि नरकोंमें चित्रगुप्त आदि अधिकारी बतलाये गये हैं तथापि यमराजकी आज्ञानुसार कार्य होनेसे कोई विरोध नहीं है। भागवतकारने लिखा है कि यमराजके पुरुष ही पापियोंको बलपूर्वक नरकोंमें गिरा देते हैं। **"यम पुरुषैः बलान्निपात्यते"** (५, २६, ८) तथा **"यत्र ह वाव भगवान् वैवस्वतः"**……… (५, २६, ६)। तथा **"गुरु पुत्रमिहानीतं निजकर्मनिबन्धनम्"** (१०, ४५, ४५)में कृष्णने यमराजसे कहा कि—हे यम ! तुमने हमारे गुरुपुत्रको यहाँ बुलवाया है, "उसे मुझे दे दो"। इन कथनोंसे स्पष्ट है कि नरकोंका शासनकर्ता यमराज है।

विद्याकर्मणोरितितु प्रकृतत्वात् ३, १, १८

इस सूत्रमें कौषीतकि उपनिषद्‌की शंकाका समाधान है। उस सूत्रमें विशेषण रहित जीवोंका चन्द्रलोक जाना लिखा है। सूत्रकारका कथन है कि ज्ञान और शुभकर्म दोनोंका ही प्रकरण होनेके कारण ऐसा कथन उचित है। छान्दोग्योपनिषद् (५, १०, १-२)में विद्या और शुभकर्मोंका फल बतानेका प्रसंग आरम्भ करके देवयान और पितृयान मार्गकी बात कही है, उसी प्रकार इस उपनिषद्‌में भी ज्ञान और शुभ-कर्मोंका फल बतानेके प्रकरणमें उक्त कथन है। अतः अनिष्ट कर्मकारी चन्द्रलोक नहीं जाते क्योंकि उनका प्रकरण ही नहीं है। भागवत (३, ३, ३०)में यह वर्णित है कि पापी लोग नरकमें जाते हैं।

न तृतीये तथोपलब्धेः ३, १, १९

देवयान-पितृयानमें जो प्राणी नहीं जाते वे तृतीयस्थान "मृत्युलोक"में जन्मते-मरते रहते हैं अतः इस तृतीयमें यमलोक गमनरूप गतिका अन्तर्भाव नहीं होता क्योंकि उस वर्णनमें ऐसी बात मिलती है। जीव अपने कर्म और गुणोंके अनुसार देवयोनि, मनुष्ययोनि अथवा पशुपक्षियोंमें जन्म लेकर भी कभी स्त्री और कभी नपुंसक होता है (भा० ४, २९, ३१)।

स्मर्यतेऽपि च लोके ३, १, २०

स्मृतियोंमें चौथी गति (अधमगति)का समर्थन प्राप्त होता है और लोकोंमें भी यह बात प्रसिद्ध है। सतोगुणी ऊपरके लोकोंमें, रजोगुणी मध्यमें, तमोगुणी अधोलोकमें जाते हैं। द्रोणाचार्य, धृष्टद्युम्न आदिकी उत्पत्ति पाँच आहुतिकी घटनासे परे है। सीता, द्रोपदी आदिके जन्म भी ऐसे ही हैं (भा० ९, २२, ३)। वाल्मीकसे बाल्मीकि, जम्बूकसे जाम्बूक, कुशसे कौशिक, कलशसे अगस्तके जन्म भी सुने गये हैं (वज्र सू०)। भागवतमें कर्दमका जन्म छायासे लिखा है—**"छायायाः कर्दमो जज्ञे"**

(३, १२, २७) शरस्तम्बमें रेतके पतनसे एक जोड़ा हुआ कृप नामक लड़का और कृपी नामक लड़की (भा० ६, २१, ३६)।

दर्शनाच्च ३, १, २१

श्रुतिमें भी देखा जाता है अतः इस प्रकरणमें तीसरी गतिमें यम यातनाका अन्तर्भाव नहीं है। ईशावास्यो० (३ में असुरोंके लोकोंको दुःख क्लेशरूप अंधकारसे आच्छादित माना है। छान्दोग्यो० (६, ३, १)में लिखा है कि जीवोंकी ३ श्रेणियाँ है—अण्डज, जीवज, उद्भिज्ज। भागवतमें तो ३ का उल्लेख नहीं है २ और ४ का है। "**द्विविधाश्चतुर्विधा येऽन्ये जलस्थलनभौकसः**" (भा० २, १०, ३७-३६)। दोका तात्पर्य स्थावर और जंगम सृष्टिका है तथा चारसे अभिप्रेत हैं—जरायुज, अण्डज, स्वेदज और उद्भिज्ज। जल, स्थल और नभवासी जीवोंकी त्रिविध संज्ञा है।

तृतीतशब्दावरोधः संशोकजस्य ३, १, २२

छा० उ०में स्वेदजको क्यों नहीं गिना गया। सूत्रकारका कथन है कि स्वेदजका अन्तर्भाव उद्भिज्जमें है क्योंकि दोनों हीमें पृथ्वी और जलका संयोग है। भागवत (३, २७, २७)में लिखा है कि "पशु, देवता, मनुष्य, सरीसृप, पक्षी एवं जरायुज, स्वेदज, अण्डज और उद्भिज्ज सृष्टिका वर्णन कीजिये"। भागवतकारने उपनिषद् और ब्रह्मसूत्र दोनोंका समन्वय करके द्विविध-चतुर्विध सृष्टिका वर्णन किया है। स्वेदजका अन्तर्भाव नहीं किया है।

तत् सामाख्यापत्तिरुपपत्तेः ३, १, २३,

जीवको सदृश भावकी प्राप्ति होती है। जीवात्मा लौटते समय आकाशादिके रूपमें परिणत नहीं होता क्योंकि वे तो पहिलेसे ही विद्यमान हैं अतः वे आकाशादिके समान आकारवाले बनकर लौटते हैं। भागतवतमें स्त्रीके उदरमें प्रविष्ट जीवके प्रवेशका उल्लेख है "**स्त्रियाः प्रविष्ट उदरं पुंसो रेतः कणाश्रयः**" (३, २१, १)।

नातिचिरेण विशेषात् ३, १, २४

जीव उन आकाशादिके रूपमें अधिक कालतक न रहकर क्रमशः नीचे उतर आते हैं। लौटते समय कर्मभोग तो समाप्त हो जाते हैं अतः विलम्ब नहीं लगता।

देहेन जीवभूतेन लोकाल्लोकमनुव्रजन्।
भुंजान एव कर्माणि करोत्यविरतं पुमान्"॥ (भा० ३, ३१, ४३)

जीव उपाधिस्वरूप लिंगशरीरके साथ ही एकलोकसे अन्य लोकमें गमन करता है और कर्मफल भोगता है।

अन्याधिष्ठितेषु पूर्ववदभिलापात् ३, १, २५

धान, जौ आदिमें अपने कर्मोंका फल भोगनेके लिये जो दूसरे जीव पहलेसे ही स्थित हैं, उनसे संयुक्त होकर ही यह चन्द्रलोकसे लौटनेवाला जीवात्मा उनके साथ-साथ पुरुषके उदरमें चला जाता है, धान, जौ आदि स्थावर योनियोंको प्राप्त नहीं होता। (भा० १०, ८७, २०)में "अन्नंरेतः" ऐसा वर्णित है।

अशुद्धमिति चेन्न शब्दात् ३, १, २६

यदि यह कहें कि अन्नके प्रत्येक दानेमें जीव है, अतः अन्नका पीसना, पकाना और खाना तो बड़ा पापकर्म होगा क्योंकि अनेक जीवोंकी हिंसा करनेपर एक जीवकी उदर पूर्ति होगी, पर श्रुतिके वचनसे इसकी निर्दोषता सिद्ध होती है। छा० उ० (६, ६, २)में पुरुषको अग्नि बतलाकर उसमें अन्नका हवन बतलाया है। उन जीवोंकी उस कालमें सुषुप्ति अवस्था रहती है। पृथ्वी और जलके सम्बन्धसे जब जीव अंकुरित होते हैं तब उनमें चेतना आती है अतः अन्न भक्षणमें हिंसा नहीं है। भागवतमें भी ऐसा वर्णन है– अर्थात् जगत्में स्त्रीसंग, मांस भक्षण एवं मद्यपानमें लोककी प्रवृत्ति स्वतः ही है, शास्त्र विधानकी इसमें आवश्यकता नहीं है परन्तु इनकी निवृत्ति असम्भव है। अतः विवाह द्वारा स्त्रीसंग, यज्ञ द्वारा मांस भक्षण, सौत्रामणी द्वारा सुरापानका विधान बतलाकर नियन्त्रण किया गया है (भा० ११, ५, ११)। वेदका मुख्य उद्देश्य इनकी निवृत्ति ही है[1]।

रेतः सिग्योगोऽथ ३, १, २७

उसके वाद वीर्यका सेवन करनेवाले पुरुषके साथ उसका सम्बन्ध होता है। जीवात्मा अन्नके साथ पुरुषके पेटमें जाकर उसके वीर्यमें प्रविष्ट हो उस पुरुषसे संयुक्त होता है, इस कथनसे यह स्पष्ट हो जाता है कि आकाशादिसे लेकर अन्नतक सभी जगह केवल संयोगसे ही उसका तदाकार होना कहा है, स्वरूपसे नहीं। भागवतमें लिखा है कि—कपिलने अपनी माता देवहूतिसे कहा है कि—माताजी जब जीवको मनुष्य शरीरमें जन्म लेना होता है, तो वह भगवानकी प्रेरणासे अपने पूर्वकर्मानुसार देह प्राप्तिके लिए पुरुषके वीर्यकण द्वारा स्त्रीके उदरमें प्रवेश करता है। एक प्रकारसे पूरा अध्याय इसी सूत्रकी विस्तृत व्याख्या है। रामानुजाचार्य, मध्वाचार्य एवं निम्बार्काचार्यका भी यही मत है कि अन्न भक्षणके बाद जीवपुरुषके रेतमें आता है और पुनः उत्पन्न होता है[2]।

---

१. मनु०—न मांस भक्षणे दोषो न मद्ये न च मैथुने।
प्रवृत्तिरेषा भूतानां निवृत्तिस्तु महाफला॥

२. वेदान्तसूत्र बंगला पृ०–८२३।

योनेः शरीरम् ३, १, २८

स्त्रीकी योनिमें प्रविष्ट होनेके अनन्तर वह जीवात्मा फलभोगके अनुरूप शरीरको प्राप्त करता है। स्वर्गसे उतरकर वीर्यमें प्रविष्ट होनेतक उसका कोई जन्म या शरीर धारण करना नहीं है, केवल उन आकाशादिके आश्रित रहना मात्र कहा गया है। उन धान्य आदि शरीरोंके अधिष्ठाता जीव दूसरे ही हैं, भागवतमें लिखा है कि पुरुषका रेतःकण जब स्त्रीके गर्भमें पड़ता है तो एक रात्रिमें शोणितके साथ मिलकर कलल बनता है, पाँच रात्रिमें बबूला बनता है। दस दिवसमें फलका आकार धारण करता है :—

कललं त्वेकरात्रेण पञ्चरात्रेण बुद्बुदं।
दशाहेन तु कर्कन्धुः पेश्यण्डं वा ततः परम् ।। (भा० ३, ३१, २)

तृतीय अध्याय द्वितीय पादः

द्वितीय पादमें वर्तमान शरीरकी भिन्न-भिन्न अवस्थाओंपर विचार करने इस जन्म-मरणरूप संसार बन्धनसे छूटनेके लिए परमेश्वरका ध्यान रूप उपाय बताना है। प्रारम्भ सूत्र द्वयमें स्वप्नावस्थापर विचार आरम्भ किया है।

सन्ध्ये सृष्टिराह हि ३, २, १

स्वप्नमें भी जाग्रत्की भाँति सांसारिक पदार्थोंकी गणना होती है (बृ० उ० ४, ३, ६) उपनिषदोंमें ऐसा आता है। प्रश्नोपनिषद् (४, ५)में सृष्टिका होना लिखा है। माण्डूक्योपनिषद् (१, ७)में स्वप्नकी मीमांसा है। उपनिषदोंके सारका निरूपण और ब्रह्मसूत्रकी व्याख्या भगवान्ने चित्रकेतुको उपदेश देते समय वर्णित की है :— "जैसे स्वप्नमें सोया हुआ पुरुष स्वप्नान्तर होनेपर सम्पूर्ण जगत्को अपनेमें ही देखता है और स्वप्नान्तर टूट जानेपर स्वप्नमें ही जागता है तथा अपनेको संसारके एक कोनेमें स्थित देखता है, परन्तु वास्तवमें वह भी स्वप्न ही है, वैसे ही जीवकी जाग्रत् आदि अवस्थायें परमेश्वरकी ही माया हैं '**यथा सुषुप्तः पुरुषो**………… तथा **मन्यते स्वप्न उत्थितः** ।। (भा० ६, १६, ५३)। पुरञ्जनोपाख्यानमें पुरञ्जनका स्वप्न देखना ऐसे रूपमें वर्णित है कि वह ५ घोड़ोंके रथमें बैठकर मृगया खेलने गया आदि" (भा० ४, २६, १)।

निर्मातारं चैके पुत्रादयश्च ३, २, २

एक शाखावाले पुरुषको कामनाओंका निर्माता भी मानते हैं और पुत्रादि ही काम या कामनाके विषय हैं। सूत्रमें वर्णित तत्त्व कठो०का है जिसमें यह लिखा है कि "यह नाना प्रकारके भोगोंकी रचना करनेवाला पुरुष अन्य सबके सबके सो

जानेपर जागता रहता है और इसी उपनिषद्में पुत्र-पौत्र काम या कामनाके विषय कहे हैं। इससे यह सिद्ध है कि स्वप्नमें सृष्टि होती है। भागवतमें तो यह स्पष्ट ही है कि पुरञ्जन अपनी जायाका परित्याग कर धनुष-वाण लेकर मृगयाके लिये गया। **"चचार मृगयां तत्र"** (भा० ४, २६, ४)। इससे भी यह सिद्ध है कि स्वप्नकी सृष्टि सत्य है और जीव कर्तृक है। पुरञ्जनोपाख्यानका यह भाग इस सूत्रकी व्याख्या माना जा सकता है।

मायामात्रं तु कार्त्स्न्येनानभिव्यक्तस्वरूपत्वात् ३, २, ३

पूर्ण रूपसे उसके स्वरूपकी अभिव्यक्ति न होनेके कारण वह मायामात्र है। स्वप्नमें जिन वस्तुओंकी रचना करता है वे वास्तवमें नहीं हैं। प्रश्नो०में तो स्पष्ट ही कहा है कि स्वप्न सृष्टि जाग्रत्की भाँति सच्ची नहीं है। यही कारण है कि उस अवस्थामें किये हुए शुभाशुभ कर्मोंका फल जीवात्माको नहीं भोगना पड़ता। पुत्र-पौत्रादिकी बात जहाँ है वह स्वप्नावस्थाका प्रकरण नहीं है वहाँ विशेषण परमात्माके लिये है। सूत्रकारका मत है कि स्वाप्निकी सृष्टिका एकमात्र उपकरण ईश्वरकी माया है। भागवतमें लिखा है कि "सृष्टिकी रचना आदि कर्मोंका निरूपण करके पूर्ण परमात्मासे कर्म या कर्तापनका सम्बन्ध नहीं जोड़ा गया है, वह तो मायासे आरोपित होनेके कारण कर्त्तव्यका निषेध करनेके लिये ही है। (२, १०, ४६) असत् जगत्, मायासे सत् सा प्रतीत होता है, जैसे स्वप्न मायासे भासित होता है वैसे ही जगत् भी मायासे भासित होता है। अतः स्वप्नका माया मात्रत्व स्पष्ट ही है। **"तस्मादिदं जगदशेषमसत्स्वरूपम्"** (भा० १०, ६४, ३२)।

सूचकश्च हि श्रुतेराचक्षते च तद्विदः ३, २, ४

स्वप्न निरर्थक नहीं उनकी भी सार्थकता है—क्योंकि वह भविष्यके शुभा-शुभ परिणामका सूचक है यह श्रुतिसे भी सिद्ध है और स्वप्न शास्त्र ज्ञाता भी ऐसी बात कहते हैं। यह सूत्र छा० उ०से सम्बद्ध है इसमें यह स्वप्न सूचनकी बात इस उपनिषद्से ही आई है। इसमें यह लिखा है कि "जब काम्य कर्मोंके प्रसंगमें स्त्रीको देखे तो ऐसे स्वप्न देखनेका परिणाम यह समझना चाहिये कि उस किये जानेवाले काम्यकर्ममें भली-भाँति अभ्युदय होनेवाला है[1]। स्वप्नमें काले दाँतवाले काले पुरुषको देखना मृत्युका सूचक है[2]। भागवतकारने इस सूचक की व्याख्या कई स्थलोंपर की है :—

---

१. छा० उ० ५, २, ९—**यदा कर्मसु काम्येषु स्त्रियं स्वप्नेषु पश्यति।**
समृद्धिं तत्र जानीयात् तस्मिन् स्वप्न निदर्शने॥

२. **ऐतरेय आरण्यक ३, २, ४, १७।**

स्वप्ने प्रेत परिष्वङ्गः खरयानं विषादनम् ।
यायान्नलदमाल्येकस्तैलाभ्यक्तो दिगम्बरः ।। (१०, ४२, ३०)

कंसने रात्रिमें स्वप्न देखा कि वह प्रेतोंसे आलिंगित है, गदहेपर बैठकर विषभक्षण कर रहा है और कन्हैरकी पुष्पोंकी माला पहनकर तेलसे स्नान करके दक्षिण दिशाकी ओर जा रहा है आदि। कंसको मृत्युकी सूचना दी गई है। यह प्रकरण इसी सूत्रकी व्याख्या है और अन्यत्र भी स्वप्नकी सूचनाके प्रसंग आये हैं।

पराभिध्यानात्तु तिरोहितं ततोह्यस्य बंधविपर्ययः ३, २, ५

जीवात्मामें भी ईश्वरके समान गुण हैं किन्तु वे तिरोहित हैं परब्रह्मका ध्यान करनेसे वे प्रगट हो जाते हैं। क्योंकि उस परमात्मासे ही जीवका बन्ध और मोक्ष होता है। यह भाव श्वेत० उ०का है[1]। स्वप्न सृष्टि भी जागरणवत् सत्य है और पारमेश्वरी है। वृहदारण्यकमें इसका विशद वर्णन मिलता है कि ईश्वर ही तथाविध अर्थोंका रचयिता है[2]। "**तदेव शुक्रं तद् ब्रह्म**"[3] कठोपनिषद्के वाक्यसे भी इसकी पुष्टि होती है। भागवतमें लिखा है कि ईश विमुख है उसीको मायाकी स्मृति होती है। पराभिधान शब्दका ज्योंका-त्यों उल्लेख भागवतमें प्राप्त है :— "**एवं पराभिध्यानेन कर्तृत्वं प्रकृतेः पुमान्**" (३, २६, ६)। अपनेसे भिन्न प्रकृतियोंको ही अपना स्वरूप समझ लेनेसे पुरुष प्रकृतिके गुणों द्वारा किये जानेवाले कर्मोंमें अपनेको ही कर्ता मानने लगता है।

देहयोगाद्वा सोऽपि ३, २, ६

देह सम्बन्धके वशसे जो जागरण है वह भी परमेश्वरका कर्तव्य है। कठोपनिषद्में लिखा है कि जीवका जागरण परमेश्वर कर्तृत्व ही है इसके पूर्व पक्षमें यह कहा है कि "**स्वप्नान्तं जागरितान्तं चोभौ येनानुपश्यति धीरो नशोचति**"[4] जागरणकालके आधीन है या जीवके, सूत्रकारने इसका निरास किया है। भागवतमें भी सकल विषयका सृष्टिकर्ता परमेश्वरको ही माना है जीवको नहीं। "**जीवस्य यः संसरतो विमोक्षणं**" (भा० १०, ७०, ३६)। तथा—

यावद्देहेन्द्रिय-प्राणैरात्मनः सन्निकर्षणं ।
संसारः फलवांस्तावदपार्थोऽप्यविवेकिनः ।। (भा० ११, २८, १२)

तदभावो नाडीषु तच्छ्रुतेरात्मनि च ३, २, ७

सुषुप्ति अवस्थामें स्वप्न-जागरण दोनोंका अभाव हो जाता है उस समय

---

१. श्वे० उ० १, ११। २. वृ० आ० ६, ३, १०।
३. भा० ११, २, ३७। ४. कठो० २, १, ४।

जीवात्मा नाड़ियोंमें स्थित हो जाता है। श्रुतिमें कहा है तथा आत्मामें भी उसकी स्थिति बतलाई है। "**तद् यत्रैतत् सुप्तः समस्तः संप्रसन्नः स्वप्नं न विजानात्यासु तदा नाडीषु सुप्तो भवति**"[1]।

भागवतमें लिखा है कि :—"**यो जागरे बहिरनुक्षण धर्मिणोऽर्थान्**" (भा० ११, १३, ३२) जो जाग्रत् अवस्थामें समस्त इन्द्रियोंके द्वारा बाहर दीखनेवाले सम्पूर्ण क्षणभंगुर पदार्थोंका अनुभव करता है और स्वप्नावस्थामें हृदयमें ही जाग्रत्में देखे हुए पदार्थोंके समान ही वासनामय विषयोंका अनुभव करता है और सुषुप्ति अवस्थामें उन सब विषयोंको समेटकर उनके लयका भी अनुभव करता है, वह एक ही है। जाग्रत् अवस्थाके इन्द्रिय, स्वप्नावस्थाके मन और सुषुप्तिकी संस्कारवती बुद्धिका भी वह स्वामी है क्योंकि वह त्रिगुणमयी तीनों अवस्थाओंका साक्षी है। जो मैंने स्वप्न देखा, जो मैं सोया, वही मैं जाग रहा हूँ—इस स्मृतिके बलपर एक ही आत्माका समस्त अवस्थाओंमें होना सिद्ध होता है, जब यह सुषुप्ति अवस्थामें प्राप्त होता है तब कुछ भी नहीं जानता। शरीरमें बहत्तर हजार हिता नामकी नाड़ियाँ हृदयसे निकलकर शरीरमें व्याप्त हो रही हैं, उनमें फैलकर यह समस्त शरीरमें व्याप्त हुआ शयन करता है, उदान वायु इन्द्रियों सहित मनको हृदयमें ले जाकर मोहित कर देता है तब इसकी सुषुप्ति अवस्था होती है[3]। वह तेजसम्पन्न होता है[4]। भागवतमें लिखा है कि जबतक देह इन्द्रिय और प्राणोंसे आत्माका खिचाव होता है तबतक संसार फलवान् है (भा० ११, २८, १२)।

स एवतु कर्मानुस्मृति शब्द विधिभ्यः ३, २, ८

जो जीव शयन करता है वही उठता है, ऐसा नहीं कि अन्य सोता है और अन्य जागता है। मनुष्य जिस कर्मको आरम्भ करता है उसकी पूर्ति तीसरे दिनतक करता रहता है। ऐसा वृहदारण्यक उपनिषद् (४, ३, १६)में भी लिखा। भागवतमें लिखा है :—"**यो जागरे बहिरनुक्षण धर्मिणोऽर्थान्**" (भा० ११, १३, ३२) अतः सुषुप्तिका आश्रय सद्ब्रह्म ही है। एकादश स्कन्धमें—

"**एवंविमृश्यगुणतोमनसस्त्र्यवस्था ।**
मन्माययामयि कृता इतिनिश्चितार्था ॥ (११, १३, ३३)में

भी मायासे सावधान रहनेका और ज्ञान अवलम्बनका उत्साह दिया है। उक्त श्लोकमें मोक्ष प्राप्तिकी प्रेरणा है। यदि अन्य व्यक्ति विभिन्न अवस्थाओंमें माने जांय तो ये उपदेश व्यर्थ होंगे एक ही व्यक्ति सुषुप्तिमें ही नहीं अनेक मन्वन्तरोंतक अपना

---

१. छा० उ० ८, ६, ३।
२. वृ० उ० २, १, १९।
३. प्र० उ० ४, ६।
४. छा० उ० ८, ६, ३।

कार्य करता रहता है। जैसा कि भागवतमें वर्णित है :—"**वासुदेव प्रसंगेन परिभूत गतित्रयः**" (भा० ३, २२, ३५)।

मुग्धेऽर्द्ध सम्पत्तिः परिशेषात् ३, २, ९

मूर्च्छाँकालमें अधूरी सुषुप्ति अवस्था माननी चाहिये क्योंकि अन्य अवस्था शेष नहीं हैं। मूर्च्छावस्थामें ब्रह्मकी आधी प्राप्ति है क्योंकि उसमें दुःख सम्बन्ध है। मूर्च्छावस्था स्वप्नादि तीनों अवस्थाओंसे भिन्न है। भागवतमें लिखा है :— **मूर्च्छामाप्नोत्युरुक्लेशस्तत्रत्यैः क्षुधितैर्मुहुः** (३ ३१, ६)। गर्भावस्थामें जीवको कृमि चारों ओरसे खाते हैं, अतः वह मूर्च्छाको प्राप्त कर जाता है। सूत्रमें मुग्धे शब्दका अर्थ मूर्च्छा है। भागवतमें उसे मूर्च्छा रूपमें ही चित्रित किया गया है।

न स्थानतोऽपि परस्योभयलिंगं सर्वत्र हि ३, २, १०

स्थान सम्बन्धसे भी परमात्माका किसी दोषसे संसर्ग नहीं है। क्योंकि सर्वत्र ब्रह्मको उभयलिग निर्विशेष तथा दिव्यगुण सम्पन्न कहा है (कठो० १, २, २०)। वह जीवात्माके साथ हृदय गुहामें स्थित है (कठो० १, २, २१)। वह सब धर्मोंसे रहित है (कठो० १, ३, १५)। भूत और भविष्यका शासक है (२, १, १२)। उसमें नाना भेद नहीं हैं (कठो० २, १, ११)। उसके भयसे देव अपने कार्योंमें लगे रहते हैं (कठो० २, ३, ३)। यह एक प्रकार से उसकी महिमा ही है। भागवतमें लिखा है कि वह एक ही अनेक स्थानोंमें रहता है, द्वारकामें सोलहसहस्र एकसौआठ रानियोंके घर में रहनेकी घटना इस उप० सूत्रके तात्पर्यका प्रतिपादन करती है[1]। लघु भागवतामृतमें इसे इस ढंगसे कहा है :—

अनेकत्र प्रकटता रूपस्यैकस्य यैकदा।
सर्वथा तत्स्वरूपैव सप्रकाश इतीर्यते ॥

चैतन्य चरितामृतमें इस भावको इस प्रकार लिखा है :—

एकइ विग्रह यदि हय वहुरूप
आकारे त भेद नाहि एकइ स्वरूप।
महिषी विवाहे येछ यद्यकैल रास
इहाके कहिये कृष्णेर मुख्य प्रकाश ॥ (चै० च० आ० १, ६९)

एक ही विग्रह यदि आकारमें समाविष्ट होता है तो अनेक प्रकाश होते हैं और उसका नाम विलास होता है (चै० च० आ० १, १६)।

---

१. भा० १०, ६९, १।

न भेदादिति चेन्न प्रत्येकमतद्वचनात् ३, २, ११

सगुण और निर्गुणब्रह्मके पृथक् पृथक् दो स्वरूप माने गये हैं अतः एक ही ब्रह्म दोनों लक्षणवाला नहीं हो सकता, ऐसा नहीं। प्रत्येक श्रुतिमें एक परब्रह्मको ही दोनों प्रकारके लक्षणोंवाला बताया गया है[1]। वह सर्वथा निर्विशेष[2] और सूर्यके समान स्वयं प्रकाश है[3]। भागवतमें भी ऐसा वर्णन आता है (भा० ५, ११, १३)।

अपिचैवमेके ३, २, १२

एक शाखावाले विशेष रूपसे इस बातका प्रतिपादन करते हैं। भागवतमें लिखा है कि श्रुति, प्रत्यक्ष, ऐतिह्य और अनुमान, प्रमाणोंमें यह चार मुख्य हैं। भागवतके हंस गुह्यक प्रकरणमें यह लिखा है :—

"यच्छक्तयोवदतां वादिनां वै।
विवाद संवाद भुवो भवन्ति॥ (भा० ६, ४,२६)

भागवतमें भगवान्‌को विरुद्ध शक्तियोंका आश्रय कहा है :—

"**तस्मै समुन्नद्ध विरुद्धशक्तये** (भा० ४, १७, ३३) तथा (८, १८, १२) वामनावतारमें भी ऐसा वर्णन है। वाराहपुराणमें भी विरुद्ध शक्तिका वर्णन है :—

विरुद्ध शक्तयो यस्य नित्या युगपदेव च।
तस्मै नमो भगवते विष्णवे सर्वजिष्णवे॥

आचार्य शंकरने इस सूत्रकी व्याख्यामें अद्वैतवादकी व्याख्याकी है तथा रामानुजाचार्यने वेदकी एक शाखाका उल्लेख किया है और कहा है कि मुण्डकोपनिषद्में एक श्रुति है "**द्वा सुपर्णा**" और यह भागवतमें भी है :—"**सुपर्णावेतौ सदृशौ सखायौ**"[4] **प्रतिदृशमिव नैकधार्कमेकम्**" (भा० १, १९, २०)में स्पष्ट एक शब्द है।

अरूपवदेवहितत्प्रधानत्वात् ३, २, १३

भागवतमें—"**नयत्र माया किमुता परे हरेरनुव्रता यत्र सुरासुरार्चिता**" (भा० २, ८, १०) श्लोकमें भगवान्‌का स्वरूप मायाके निषेधसे अभौतिक सिद्ध किया है। भागवतमें इसको उभयविध सिद्ध किया है, अरूप और सरूप :—'**अरूपायो-रुरूपाय नम आश्चर्य कर्मणे**" (भा० ८, ३, ९)। भगवान्‌का प्राकृत रूप नहीं है अतः 'अरूपवत्' कहा गया है[6]। मत्स्यपुराणमें इसका विवरण स्पष्ट दिया है कि वह

---

१. बृ० उ० ३, ७, ३-२२।
२. मा० उ० ७।
३. श्वेताश्वतरो० ३, १, २।
४. भा० ११, १९, १७।
५. भा० ११, ११, ६।
६. जयतीर्थ टीका १३७ सि० क०।

रूपवान् कब है और अरूप कब है :—'**अरूपवानता प्रोक्तः क्व तदव्यक्ततः परः ।**'[१] चै० च०में भी इसके सम्बन्धमें लिखा है कि वह प्राकृत रूपवाला नहीं है[२]। भगवान्को पुरुषश्रेष्ठ कहा है और वैदिक, तान्त्रिक उपायों द्वारा उनकी मूर्तिकी पूजाका विधान है। श्रीधरस्वामीके मतको यहाँ विश्वनाथ चक्रवर्तीने उद्धृत किया है और कहा है कि श्रीस्वामी भगवान्का अपरिमेयत्व सिद्ध करते हैं[३]।

प्रकाशवच्चावैयर्थ्यम् ३, २, १४

प्रकाशस्वरूप सूर्यके न्यायकी भाँति ब्रह्मका विग्रह-स्वीकार, व्यर्थ नहीं है। भागवतमें कहा है :—

रूपं यत्तत् प्राहुरव्यक्तमाद्यं।
ब्रह्म ज्योतिर्निर्गुणं निर्विकारम् ।। (१०, ३, २४)

भगवान्का रूप (प्रकाश) अव्यक्त है। अलौकिक प्रकाश स्वरूपकी प्राप्तिका एकमात्र उपाय भक्ति है।

आह च तन्मात्रम् ३, २, १५

विग्रहको श्रुति, हेतुसे परमात्मस्वरूप बतलाती हैं अतः विग्रह प्रमाण-सिद्ध है। तात्पर्य यह है कि विग्रहकी कल्पना व्यर्थ नहीं है। भागवतमें लिखा है—"**गुणापाये समाहितः**" मुनियोंने उसके गुण रहित विग्रहको देखा है। भागवतमें स्पष्ट रूपमें चिन्मात्र शब्दका भी उल्लेख है "**चिन्मात्रमेकमविकल्पमविद्धवर्चः** (भा० ३, ९, ३)।

दर्शयति चाथो अपि स्मर्यते ३, २, १६

श्रुति एवं स्मृतियोंमें ब्रह्मके सगुण-निर्गुण दोनों ही रूप वर्णित हैं। ब्रह्माने भगवान्के स्वरूपके सम्बन्धमें ठीक ही कहा है।

"नातः परं परम यद्भवतः स्वरूप—
मानन्दमात्रमधिकल्पमविद्ध वर्चः। (३, ९, ३०)

रामानुजाचार्यने अपने ही भाष्यमें "**न तस्य कार्यं करणंच विद्यते**" (श्वेता) "**यः सर्वज्ञः सर्ववित्**")मु० उ०) "**यतो वाचो निवर्तन्ते**" (तै० उ०) श्रुतियाँ उद्धृत की हैं और गीताके "**योमामजमनादिं च**" (गी० १०, ३) आदि श्लोक उद्धृत किये हैं। परमात्माकी अनिर्वचनीय स्वरूप दिशा निर्धारित की है।

---

१. चै० च० म० ६, १४१।
२. सा० द ८, ६, १९।

अतएव चोपमासूर्यकादिवत् ३, २, १७

जीवात्मा–परमात्मासे भिन्न है या अभिन्न इसमें सूर्यकान्तमणिका दृष्टान्त दिया है, वस्तुतः जीव उपासक और भगवान्, उपास्य हैं, अतः भेद है। भागवतमें कहा है—**'यथेन्दुरुदपात्रेषुभूतान्येकात्मकानि च"** (११, १८, ३२) एक चन्द्रमा विभिन्न जलाशयोंमें विविध रूपसे प्रतिविम्बित होता है, इसी प्रकार परमात्मा विभिन्न देहोंमें भासित होता है। भा० दशमस्कन्धमें भी ऐसा वर्णन है :—**यथा ज्योतिर्यथानभः"** (भा० १०, ५४, ४४)। जीवात्मा परमात्मामें वैलक्षण्य भी नहीं है–(११, २२, ११)। इस प्रसंगमें जीवगोस्वामीने मायावादी मतका खण्डन किया है[१]। मायावादी मतका सार यह है कि ब्रह्मका कोई रूप नहीं, और जब रूप नहीं तो प्रतिबिम्ब किसका? भागवतके **"प्रतिदृशमिव नैकधार्कमेकम्"** (भा० १, ९, ४२) श्लोकको भी इस सूत्रके साथ सम्बद्ध किया है।

अम्बुवदग्रहणात्तु न तथात्वम् ३, २, १८

सूर्यादिसे दूर अवस्थित जलादि उपाधिसे परिच्छिन्न सूर्यादिका आभास गृहीत हो जाता है, किन्तु अविद्यासे परमात्माका आभास गृहीत नहीं हो सकता। अविद्या परमात्माकी शक्ति विशेष है। भागवत **"सर्वभूतेषु चात्मानं सर्व भूतानि चात्मनि"**[१] (३, २८, ४२)में यही बात कही है। यही तथ्य **"सर्वभूतस्थमात्मानं"** (गी० ६, २९) तथा (गोविन्द भाष्य ४, ८)में है।

वृद्धि ह्रास भाक्त्वमन्तर्भावादुभयसामञ्जस्यादेवम् ३, २, १९

जलमें प्रतिविम्बित सूर्यकी वृद्धि और ह्रास तो देखा है किन्तु प्राकृतसूर्यमें यह घटित नहीं है। लक्षणावृत्ति द्वारा जाना जाता है (गो० भा० ३, २, २०)। मूल सूर्य तो स्वतन्त्र है, वह जलसे कदापि संस्पृष्ट नहीं है उपाधि युक्त सूर्य संस्पृष्ट होता है, जलमें कम्पनादि होते हैं सूर्यमें भी कम्पनादि होता है। यही भाव भागवतमें है—**"यथा जले चन्द्रमसः कम्पादिस्तत् कृतो गुणः"** (भा० ३, ७, ११)। यह सूत्र परिमाणकृत भेदको हटानेके लिये कहा गया है, वस्तुतः भगवान् स्वभावसे ही बाल्य-कैशोर आदि परिमाणको धारण करते हैं। अन्तःकरणमें स्थित जो भक्तिरूप भाव है उससे ही गुणोंका वृद्धि-ह्रास होता है (भा० ३, ९, ११)। 'भक्त, स्वेच्छया बाल्य-किशोरादिका ध्यान करते हैं। स्वयं भगवान् भी अपने अनेक रूप प्रदर्शित करते हैं—कंसके रंग मण्डपमें—मल्लोंको वज्र, मनुष्योंको–श्रेष्ठ मानव, स्त्रियोंको कामदेवके रूपमें आप दिखलाई दिये (भा० १०, ४३, १७)।

---

१. **सर्वसंवादिनी–परमात्मसन्दर्भ ११, २२, ११।**

दर्शनाच्च ३, २, २०

साधर्म्यांश लौकिक प्रयोगोंमें भी देखा जाता है। जैसे लोकमें कोई 'देवदत्त सिंह' कहता है तो सर्वांशसिंह नहीं है अपितु तेजस्विता रूप साधर्म्यांश ही है। उलूखल बन्धनमें भागवतमें कहा है कि "न आपका आभ्यन्तर है न बाह्य" (भा० १०, ९, १३)।

प्रकृतैतावत्त्वं हि प्रतिषेधति ततो ब्रवीति च भूयः ३, २, २१

जीव परमात्मासे अभिन्न है इसका खण्डन करते हुए सूत्रकार श्रुतियोंका सार उद्धृत करते हैं। बृ० उ०में आया है, ब्रह्मके दो रूप हैं मूर्त और अमूर्त "**द्वे वाव ब्रह्मणो रूपे मूर्त्तञ्चैवामूर्त्तञ्च**" (बृ० २, ३, १) मूर्त्तका अर्थ है 'चाक्षुष रूप' अमूर्त्तका अर्थ है 'अचाक्षुष रूप' बादमें यह भी कहा है कि ब्रह्मसे परे कुछ भी वस्तु नहीं है (बृहदारण्यक २, ३, ६)। भागवतमें भी लिखा है, वह स्वच्छन्दतापूर्वक देह ग्रहण करता है—तथापि उनकी श्रीमूर्ति विशुद्ध ज्ञानमय है (भा० १०, २७, ११)। वस्तुतः ईश्वर अपनी अचिन्त्य शक्ति द्वारा ही जगत्‌का निमित्त कारण और उपादान कारण है। वह अरूप-सरूप है।

तदव्यक्तमाह हि ३, २, २२

ब्रह्मका स्वरूप स्वतः अव्यक्त है। कठोपनिषद्‌में कहा है कि इसे कोई देख नहीं सकता[1]। बृहदारण्यक (४, ४, २२) तथा गीतामें भी (८, २१) यह पक्ष सम्पुष्ट है। भागवतमें मनुके वाक्यमें यह सूत्र मिलता है :—**अव्यक्तास्याप्रमेयस्य** (भा० ४, ११, २३) तथा "**रूपंयत्तत् प्राहुरव्यक्तमाद्यम्**" (भा० १०,३,२४)में उनके अव्यक्त रूपका प्रतिपादन किया है।

अपि संराधने प्रत्यक्षानुमानाभ्याम् ३, २, २३

ईश्वरका प्रत्यक्ष, श्रुति और स्मृति वाक्यों द्वारा ही सम्भव है। अपिशब्द यहाँ पूर्वपक्षकी निन्दामें पठित है। कठोपनिषद्‌में यह भाव है कि "कोई धीर इस आत्माको प्रत्यक्ष देखता है[2]"। मुण्डकोपनिषद् (२, २, ८) तथा गीता (११, ५४)में भी यह भाव देखा जा सकता है। भागवतमें लिखा है कि भावके द्वारा ही भगवान्‌को गोपियोंने प्राप्त किया, गाय, पर्वत, मृग, नाग आदिने भी भावके कारण उन्हें प्राप्त किया था (भा० ११,१२,८) तथा "**भक्त्याहमेकया ग्राह्यः श्रद्धयात्माप्रियः**

---

१. "**न चक्षुषा पश्यति कश्चिदेनम्**" (क० २, ३, ९)।

२. **कठो० २, १, १ कश्चिद्धीरः प्रत्यगात्मानमैक्षत्**।

सताम् (११, १४, २१)में भी पूर्वपक्षकी पुष्टि की है। ज्ञानमार्गमें ब्रह्म वाङ्मनस गोचर नहीं है, किन्तु संराधननाम भक्ति मार्गमें सगुण ब्रह्म वाणी और मनसे दिखलाई पड़ सकता है, भक्तिके कारण भगवान्‌के प्राकट्यकी बात कई स्थलोंपर प्राप्त होती है। भक्ति और भगवान् दोनों एक ही हैं।

प्रकाशवच्चावैशेष्यात् ३, २, २४

प्रकाशमें कोई स्थूल-सूक्ष्म वैशिष्ट्य नहीं है इसी प्रकार आविर्भाव भी प्रकाशरूप है। तभी तो भागवतमें एक कृष्णका प्रकाश सोलह सहस्र एक सौ आठ रानियोंके गृहमें नारदने देखा। (भा० १०, २३, २१) लीला भेद होनेपर भी समस्त गृहोंमें एकरूपताका दर्शन सूत्रकी ज्योंकी-त्यों व्याख्या है। भगवान् सम्पूर्ण भूतोंमें अवस्थित हैं[1]। तथा हरिका सर्वत्र और सर्वदा श्रवण कीर्तन और स्मरण करना चाहिये—**"श्रोतव्यःकीर्तितव्यश्च स्मर्त्तव्यो भगवान् नृणाम्"** (भा० २, २, २६)। प्रह्लाद चरित्रमें स्पष्ट लिखा है कि अपने भक्तके वचनको सत्य करनेके लिये ही भगवान्‌ने स्तम्भसे आविर्भूत होकर अपना विचित्र नृसिंह स्वरूप प्रकट किया था[2]।

प्रकाशश्चकर्मण्यभ्यासात् ३, २, २५

'च' शब्द शंका निरासार्थ है। भगवान्‌का ध्यान करते-करते वे भक्तके निकट प्रकाशित हो जाते हैं। भक्तिका माहात्म्य श्रुतिमें भी देखा गया है :—

भक्तिरेवैनं नयति भक्तिरेवैनं दर्शयति
भक्तिवशः पुरुषो भक्तिरेव भूयसी" ॥

(म० भाष्य ३, ३, ५३ तथा बंगला सूत्र पृ० १९६)

भक्ति ही जीवात्माको भगवान्‌के निकट ले जाती है और भक्ति द्वारा ही जीवको भगवान्‌का दर्शन होता है। परमपुरुष भगवान् एकमात्र भक्तिके वश हैं। भागवतमें भी भगवान्‌की भक्तिवश्यता कही है :—**"भक्तियोगेन मनसि सम्यक् प्रणहितेऽमले** (भा० १, ७, ४)। देवर्षि नारदके वाक्यमें भी इसकी पुष्टि है (भा० १, ६, १६)। विश्वनाथ चक्रवर्तीने १४ अर्थोंमें भक्तिको रखा है :—

सतां कृपा महत्सेवा श्रद्धागुरुपदाश्रयः।
भजनेषु स्पृहा भक्तिरनर्थापगमस्ततः ॥
निष्ठारुचिरथासक्तिरतिः प्रेमाथदर्शनम्।
हरेर्माधुर्यानुभव इत्यर्थाः स्युश्चतुर्दश ॥

महाप्रभु चैतन्यने तो भजनमें भी भक्तिकी श्रेष्ठता कही है[3]।

---

१. भा० २, २, ३५।

२. भा० ७, १७ **"सत्यं विधातुं निजभृत्यभाषितम्"**।

३. चै० च० अ० ४ प **"भजनेर मध्ये श्रेष्ठ नवविधा भक्ति"**।

अतोऽनन्तन तथाहि लिंगम् ३, २, २६

ईश्वर ध्यानकर्ताको प्रत्यक्ष दर्शन देता है, यह निश्चित हुआ है। लीला अनन्त हैं अतः उनका रूप भी अनन्त है। **"एकं सन्तं वहुधादृश्यमानम्"** एक बहुत रूपमें दिखाई देता है। यह श्रुति भी कहती है। उन भगवान्का जैसा ध्यान किया जाता है, वे वैसा ही रूप धारण कर लेते हैं (भा० ३, ६, ११)। उनकी अनन्त-लीलाओंके सम्बन्धमें कहा है कि कृष्णके चरित अनन्त हैं :—**"वीर्याण्यनन्त वीर्यस्यसंत्यनन्तानि भारत"** (भा० ११, ४, २३) प्रकाशादिका ऐक्य तथा वीर्योंकी अनन्तता इससे सिद्ध है। तथा नारदने युधिष्ठिरसे कहा कि आप लोग धन्य हैं, जिनके गृहोंमें साक्षात् गूढ़ परंब्रह्म मनुष्य वेशमें रहता हैं (भा० ७, १०, ४८)। राजा परीक्षितको शंका हुई थी कि नन्दने ऐसा क्या पुण्यकर्म किया। और यशोदाने जो हरिने उनका स्तनपान किया (भा० १०, ८, ८६)। श्री शुकदेवने उलूखल बन्धनमें स्पष्ट कह दिया कि उनका भीतर बाहर कुछ भी नहीं है फिर भी अनन्तको यशोदाने प्राकृत शिशुकी भाँति उलूखलमें बाँध दिया (१०, ६ १३-१४)।

उभयव्यपदेशात्वहि कुण्डलवत् ३, २, २७

सर्प कुण्डलीकी भाँति ज्ञानानन्द स्वरूप ब्रह्मका विशेषण ज्ञानानन्द है। वृहदा०में लिखा है **"विज्ञानमानन्दं ब्रह्म"** (३, ६, २८) मुण्डकमें भी **"यः सर्वज्ञः सर्ववित्"** (१, १, ६) श्रुतिमें ब्रह्मका गुण और गुणीस्वरूप दोनों प्रकार कहे हैं। सर्प कुण्डलयुक्त है तो अभिन्न है। और कुण्डलरूपमें भिन्न है। इसी प्रकार ब्रह्म आनन्दस्वरूप है। अचिन्त्य शक्तिकी महिमासे वह उभय स्वरूपवाला है[1]। "गर्भ-स्तुति"में उन्हें **"सत्यव्रतं सत्यपरं त्रिसत्यं"** (भा० १०, २, २६) श्लोकमें सत्यस्वरूप कहा है। और उद्धवने उनको अनन्त पार, सर्वज्ञ, ईश्वर और नरनारायण कहा है। ब्रह्माने भी अपने स्तवनमें कहा है कि आप मनुष्योंकी बुद्धि भावनाके अनुसार शरीर धारण करते हो—

"त्वं भक्तियोग परिभावित हृत् सरोज"
"तत्तद्वपुः प्रणयसे सदनुग्रहाय" ॥ (३, ६, ११)

इससे भागवतमें उभयविध वर्णन है। ऐकात्म्य अनुभवी ज्ञानियोंको विकल्प रहित भी भूषणायुध्र लिंगाख्यशक्तियोंको वह धारण करता है (भा० ६, ८, ३२)।

---

१. (क) मध्व भाष्य ३, २, २८। (ख) भागवतसन्दर्भ ३, २, २८।

प्रकाशाश्रयवद्वातेजस्त्वात् ३, २, २८

जिस प्रकार प्रकाशस्वरूप सूर्य प्रकाशका आश्रय है उसी प्रकार ज्ञानात्मा हरि भी ज्ञानके आश्रय हैं। अन्धकारका विरोधी तेज है **"मांभजन्ति गुणाः सर्वे निर्गुणंनिरपेक्षकम्"** (भा० ११, १३, ४०) विरुद्ध स्वरूपका ऐक्य अंगीकर्तव्य है। शरीरोंके भेद होनेपर भी पंचभूतात्मकत्व जातिको लेकर ऐक्य कहा गया है। अवान्तर भेद ग्रहण करनेपर भी जातिमें ऐक्य है **"मनसा वचसा दृष्ट्या"** श्लोकमें भी यही बात कही गई है (भा० ११, १३, २४)।

पूर्ववद्वा ३, २, २९

ज्ञान और आनन्द ब्रह्मके धर्म हैं और 'धर्मी' ब्रह्ममें प्रतीत होते हैं। इस तथ्यको सूत्रकारने कालके दृष्टान्त द्वारा प्रकट किया है।

नमस्तुभ्यं भगवते पुरुषाय महात्मने।
वासुदेवाय कृष्णाय सात्वतां पतये नमः॥ (१०, २७, १०)

तथा—**"स्वच्छन्दोपात्तदेहाय"** (भा० १०, २७, ११)में भी यही बात सिद्ध की है कि यह **"पंचात्मकेषु"**से स्पष्ट है।

प्रतिषेधाच्च ३, २, ३०

ब्रह्म सम्बन्धमें गुण-गुणी भेद ज्ञानका निषेध है। भगवान्के गुण समूह भी भगवत् शब्द वाच्य हैं। उनमें सजातीय-विजातीय और स्वगत भेदका अभाव है— **"गुणात्मनस्तेऽपि गुणान् विमातु"** (१०, १४, ७)में तथा (११, १३, ४०)में इसे स्पष्ट किया है। चैतन्य चरितामृतमें भी यह भाव वर्णित है :—

ईश्वरेर नाहिकभू देह देही भेद।
स्वरूप देह चिदानन्द नाहिकविभेद॥ (चै० च० ५/१२२)

भागवतमें देह देहीके विभागको ईश्वरमें नहीं माना है[1]।

परमतः सेतून्मान सम्बन्ध भेद व्यपदेशेभ्यः ३, २, ३१

हरिकी परमानन्द–रूपता इससे व्यक्त की है। तथा **"एकस्त्वमात्मा पुरुषः पुराणः सत्यः स्वयं ज्योतिरनन्त आद्यः"** (१४, १४, २३)में भी यह स्पष्ट है।

सामान्यात्तु ३, २, ३२

जिस प्रकार एक घट शब्द, विभिन्न प्रकारके घटोंका ज्ञापक है, उसी प्रकार

---

१. लघु भागवता० **"देह देहि विभागोऽयं नेश्वरे विद्यते क्वचित्"**।

आनन्द शब्द लौकिक और अलौकिक सकल आनन्दका बोधक है। फलतः जीवज्ञानसे परमेश्वरका ज्ञान श्रेष्ठ है। वेदस्तुतिमें कहा है कि सर्वविध रस (आनन्द)के आकर—स्थानीय आपके चरण कमल हैं (भा० १०, ८७, ३४)।

बुद्ध्यर्थः पादवत् ३, २, ३३

ब्रह्मके पादका व्यपदेश श्रुतिमें कहा है। भागवतमें लिखा है—**"सर्वं पुरुषएवेदं भूतं भव्यं भवच्चयत्"** (२, ६, १६) **'पादेषु सर्व भूतानि पुंसः स्थितिपदो विदुः** (२, ६, १९) उक्तमें ब्रह्मके पादोंका वर्णन है।

स्थानविशेषात्प्रकाशादिवत् ३, २, ३४

प्रकाशमान पदार्थ प्रकाश जातिकी दृष्टिसे एक हैं किन्तु दीपक ग्रह-नक्षत्र-तारा-अग्नि आदिमें स्थान और शक्तिका भेद है और नानात्व है भागवतमें—**"नर्कार्हिचिन्मत्पराः शान्तरूप"** (३, २५, ३८) तथा **"त्वं भक्तियोगपरिभावित हृत् सरोज"** (३, ९, ११)में भी यह भाव वर्णित है। चैतन्य चरित्रमें भी लिखा है—

शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य, मधुर रस नाम।
कृष्ण भक्ति रस मध्ये ए पंच प्रधान॥
(चै० च० मध्य १९, १८३-१७५)

उपपत्तेश्च ३, २, ३५

उक्त सूत्रका अर्थ श्रुतिसे भी सिद्ध है। तथा कर्मके तारतम्यसे फलका तारतम्य भी देखा जाता है। उसी प्रकार भक्तकी भक्तिके तारतम्यसे श्रीभगवान्के प्रकाशमें भी तारतम्य देखा जाता है। भागवतमें भक्तकी इच्छासे रूप धारण करनेकी ओर संकेत किया है :—**भक्तेच्छोपात्त देहाय परमात्मन् नमोऽस्तुते**। (भा० १०, ५९, २५)।

तथान्यप्रतिषेधात् ३, २, ३६

परब्रह्म ही श्रेष्ठ है इसमें अन्य प्रतिषेध ही प्रमाण है। नाभि राजाके यज्ञमें प्रकट होकर भगवान्ने तो स्वयं अपने मुखसे ही श्रेष्ठत्व कहा है (भा० ५, ३, १७)। श्वेताश्वतर उप० (६, ८)में लिखा है कि न तो उससे कोई बड़ा है और न समान है—गीताके **'मत्तः परतरम्"** (७, ७)में स्पष्ट ही स्वयं की प्रशंसा है।

अनेनसर्वगतत्वमायामशब्दादिभ्यः ३, २, ३७

ब्रह्म सर्वत्र है, यह भेद-अभेद विवेचनसे सिद्ध है। श्रुत्युक्त ब्रह्म, वस्तु परिच्छिन्न है या व्यापक है। पूर्वपक्षमें उसे परिच्छिन्न कहा है। उत्तरपक्षमें कोई बाधा

नहीं है। क्योंकि आयाम आदि शब्द उसके व्यापकत्वको सिद्ध करते हैं। भागवतमें लिखा है—**अन्तर्बहिश्चाखिल लोकपालैः अदृष्टरूपौ विचरस्युरुस्वनः** (भा० ५, १८, २६) इससे व्यापकत्व कहा है।

फलमत उपपत्तेः ३, २, ३८

जीवोंके कर्मोंका फल परब्रह्मसे है। कालान्तरमें दान 'योगफल कर्त्तव्य परमेश्वरमें ही उत्पन्न होता है। (भा० ६, ६, ३१) भगवान् ही यज्ञादि जन्यस्वर्गादि फलका दाता है। सुख-दुःख दाता ईश्वर है। "**फलार्थोधान्यमादायययौसर्वफलप्रदः**" श्लोकमें फल शब्द महत्व रखता है।

श्रुतत्वाच्च ३, २, ३९

श्रुतिमें ब्रह्मको कर्मफल प्रदत्व कहा है। वृह० श्रुतिमें ऐसा निर्देश है :— "**विज्ञानमानन्दं ब्रह्म रातिर्दातुःपरायणम्**" (वृ० ३, ६, २८) कठश्रुति "**एकोबहूनां योविदधाति कामान्**" (२, २, १३)में लिखा है कि वह एक ही ब्रहुतोंकी कामना पूर्ति करता है। (१०, ४६, २६) ईश्वर ही कर्म और उसके फलसमूह की व्यवस्था करनेवाला है (भा० १०, ४६, २)।

पूर्ववत्तुवादरायणोहेतु व्यपदेशात् ३, २, ४०

सूत्रकारने अपना मत यहाँ प्रस्तुत किया है कि फलदाता केवल ईश्वर ही है। भागवतकारका भी मत है—

"**वेदप्रणहितो धर्मोऽह्यधर्मस्तद्विपर्ययः**"
वेदो नारायणः साक्षात् स्वयंभूरिति शुश्रुम (भा० ६, १, ४०)

इस यमदूत वाक्यमें तथा यम-वाक्यमें उसके व्याप्तत्वकी बात कही गई है। तथा— 'प्रायेण वेद तदिदं' (भा० ६, ३, ५)में भी यह तथ्य प्रस्तुत किया है।

॥ इति तृतीयाध्यायस्यद्वितीयःपादः ॥

※ तृतीयाध्यायः—तृतीयपादः ※

सर्ववेदान्त प्रत्ययं चोदनाद्यविशेषात् ३, ३, १

ब्रह्म समस्त वेदार्थ निश्चय द्वारा उत्पाद्य ज्ञानका विषय है। भागवतमें वेदोंको वासुदेव भगवान् परक ही माना है "**वासुदेवपरावेदाः वासुदेवपरा मखाः**" (१,२,२८) तथा "**भगवान् ब्रह्म कार्त्स्येन**" (२, २, ३४) तथा "**एतावान् सर्व वेदार्थः**" (११, २१, ४२)से भी यही सुस्पष्ट है[१]। गीतामें भी भगवान्ने कहा है कि 'वेद द्वारा' मैं ही वेद्य हूँ। आशय यह है कि सम्पूर्ण वेदान्तोंमें प्रतीयमान उपासना एक ही है पृथक्-पृथक् नहीं।

भेदादिति चेन्नैकस्यामपि ३, ३, २

सम्पूर्ण शाखाओंमें ब्रह्म एक है ऐसा प्रतीत नहीं होता। भागवतमें "**सत्य-ज्ञानानन्तानंदमात्रैक रसमूर्तयः**" (१०, १३, १५)में सच्चिदानन्दका स्वरूप भगवान्का सिद्ध किया है। ब्रह्माने भी अपने स्तवनमें भगवान्को निर्गुण, नित्य, अव्यय, सत्य और ज्ञानस्वरूप कहा है :—(भा० २, ६, ४०) इस सूत्रमें यह सिद्ध किया है कि भेद भासमान होनेपर भी भक्तिमें कोई भेद नहीं है :—(भा० २, ३, १०) "**मल्लानामशनिर्नृणां नरवरः**" (१०, ४३, १७) कंसकी सभामें श्रीकृष्णके अनेक रूप भक्तोंने देखे, मल्लोंने मल्ल और पुरुषोंने नरवर आदि" इससे उनका अनेक रूपत्व है।

स्वाध्यायस्य तथात्वेन हिसमाचारेऽधिकाराच्च ३, ३, ३

शिरोव्रतपालन अध्ययनका अंग है, आथर्वण शाखावाले ऐसा ही मानते[२]।

त एव ऋषयो वेदं स्वं स्वं व्यस्यन्ननेकधा।
शिष्यैः प्रशिष्स्तच्छिष्यैर्वेदास्तेशाखिनोऽभवन्॥ (भा० १, ४, २३-२४)

इसमें स्वाध्यायका क्रम वर्णित किया है, और वेदकी विभिन्न शाखाओंको व्यासने अपने शिष्योंको दिया यह भी स्पष्ट किया है (भा० १२, ६, १४-३६, १२, ७, १-७) शिरोव्रतादिधर्म के ही अंग हैं, विद्याके नहीं "**नाप्सु स्नायान्नमज्जेत**" इस पुंसवन व्रत विधानमें जो नियम कहे हैं, वे व्रतके अंग होनेपर भी भक्तिके भेदक नहीं है।

सववच्च तन्नियमः ३, ३, ४[३]

ब्रह्मोपासनासे सकल वेदकी विधि जानी जाती है। भागवतमें लिखा है कि प्रलयकालमें सब कुछ नष्ट हो जानेपर वेदके रूपमें वाणी ही प्रकट हुई है। ईश्वरने

---

१. "वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यः" गीता–१५, १५।
२. मु० उ० ३, २, १०।
३. गीताप्रेस वाले संस्करणमें इसे सूत्र संख्या तृतीयमें ही रखा गया है।

यह वेदवाणी सर्वप्रथम ब्रह्माको प्रदान की थी और मनुने इसे अपने पिता ब्रह्मा द्वारा प्राप्त किया था। (भा० ११, १४, ३)। पद्मपुराणमें लिखा है कि ये पुराण और आगमशास्त्र जनताकी बुद्धिको मोहित करनेके लिए हैं और विभिन्न पुराणोंमें विभिन्न देवताओंके वर्णन हैं, सिद्धान्ततः एक ही विष्णु भगवान् समस्त आगमोंके प्रतिपाद्य हैं।

व्यामोहाय चराचरस्य जगतस्तेते पुराणागमा—
स्तां तामेव हि देवतां परमिकां जल्पन्तु कल्पावधि।
सिद्धान्ते पुनरेक एव भगवान्विष्णुं समस्तागम—
व्यापारेषुविवेचनव्यतिकरं नीतेषु निश्चीयते॥

दर्शयति च ३, ३, ५

"सर्वे वेदायत्पदमामनन्ति" (कठो० १, २, १५) श्रुतिमें यह स्पष्ट है कि समस्त वेद उसीका प्रतिपादन करते हैं। 'च'का अर्थ यहाँ शक्ति है। आशय यह है कि यदि शक्ति हो तो समस्त शाखाओंमें वर्णित साधनाओं द्वारा उपासना की जा सकती है और शक्तिके अभावमें स्व शाखाके अनुसार साधनाकी जा सकती है। वेदस्तुति प्रकरणमें श्रुतियों द्वारा ईश्वर प्रतिपादनके सिद्धान्तको वर्णित किया है (भा० १०, ८७, १२)।

उपसंहारोर्थभेदाद् विधिशेषवत्समाने च ३, ३, ६

उपसंहारमें ब्रह्मका सर्ववेद वेद्यत्व प्रमाण द्वारा सिद्ध किया है। अक्रूरने भगवान् कृपाकी स्तुतिमें इस प्रकरणपर बल दिया है (१०, ४०, १६)। इस प्रकरणमें उन्हें निर्गुण–सगुण–राम–बुद्ध कल्कि–प्रद्युम्न–अनिरुद्ध आदि भी कहा है। **"क्रिया योगं समाचक्ष्व"** (भा० ११, २७, १)में जो पूजन प्रकार कहे हैं वे भगवान्की उपासनामें अभेद होनेके कारण अन्यत्र पूजा प्रकरणमें उपसंहार्य हैं।

अन्यथात्वं शब्दादिति चेन्नाविशेषात् ३, ३, ७

यदि कोई पूर्वपक्ष करे कि श्रुतिमें "आत्मा"की ही उपासना वर्णित है वहाँ गुणोपसंहारका कोई संकेत ही नहीं है। इसके उत्तरमें सूत्रकारने कहा है कि वहाँ केवल अनात्म वस्तुका ही निषेध किया गया है गुणोंका नहीं। राजाके दर्शनके साथ उसके छत्र चामरादिके दर्शनका निषेध नहीं है, ऐसे ही भगवान्के गुण समूह भी चिन्तनीय हैं। वैदूर्य मणिकी भाँति भगवान्के बहुरूप हैं और इन सबसे युक्त होकर परिपूर्ण कहलाता है। वह कहीं आंशिक प्रकाश करता है, कहीं समग्र गुणोंको प्रकाशित करता है। भागवतमें लिखा है कि अन्य अवतार अंश और कलाके हैं, भगवान् कृष्ण परिपूर्ण अवतार हैं:—**"एते चांश कला पुंसः कृष्णस्तु भगवान्**

स्वयम्" (भा० १, ३, २८)। देवों ऋषियोंमें मनुष्य–पशुपक्षियोंमें जलजन्तुओंमें आपका अवतरण खल निग्रहको ही होता है[1]। आपके अवतरणकी बात कोई जानता ही नहीं। आप कब, कहाँ, किस रूपमें अपनी योगमायाका निखार कर क्रीड़ा कर रहे हैं[2]। ब्रह्मसंहितामें भी लिखा है कि रामादिमें अपनी कलाओंसे आप अवतीर्ण होकर कृष्णरूपमें आप स्वयं प्रकट हुए हो (ब्र० सं० ४,३ ६)।

न वा प्रकरण भेदात् परोवरीयस्त्वादिवत् ३, ३, ८

सन्निष्ठ भक्तकी उपासनासे एकान्तीगणकी उपासनाका वैशिष्ट्य कहा गया है। नृसिंहोपासक और कृष्णोपासक दोनों ही उपासना करते हैं, किन्तु ध्यानमें उपास्यके रूपमें भेद है। भागवत (१०, २१, ६)में **बर्हापीडं नटवरवपुः**" श्लोकमें कृष्णको वृन्दावनमें प्रविष्ट होते हुए, गायोंके पीछे-पीछे चलते देखा है। इस प्रकरणमें हनुमानका एक श्लोक देखा जा सकता हैं :—वे कहते हैं श्रीनाथ (लक्ष्मीनारायण) और जानकीनाथमें कोई भेद नहीं है, तथापि मेरा मन कमललोचनमें ही रमता है :—

"श्रीनाथे जानकीनाथे अभेदः परमात्मनि।
तथापि मम सर्वस्वं रामः कमललोचनः"॥

भागवतमें यह कहा है सूर्य की उपासनाका वर्णन भगवान्‌के ही अंगको मानकर हैं— **"परोरजः सवितुर्जातवेदो"** (भा० ५, ३, १४) नाम ऐक्य मात्रसे ही विद्यामें ऐक्य नहीं है, अपितु प्रकरण भेदसे विद्या भेद है, सूत्र द्वयसे यह ज्ञातव्य है।

संज्ञातश्चेत्तदुक्तमस्ति तदपि ३, ३, ९

जिस प्रकार किसीकी ब्राह्मण संज्ञा है और उसीके गायत्रीकी उपासनाका विधान है। इस पूर्वपक्षका उत्तर तो पूर्वसूत्रमें ही दे दिया गया है। सन्निष्ठ भक्तसे एकान्ती भक्तका वैशिष्ट्य है। सन्निष्ठ भक्तमें भगवान्‌के सम्पूर्ण अवतारोंके सम्पूर्ण गुणोंके उपसंहारकी सामर्थ्य नहीं है। इस विषयमें श्रुति तथा स्मृति प्रमाण हैं। भागवत (७, ६, २७)में भी कहा है :—यह ज्ञान बड़ा ही कठिन है, नरके सखा नारायणने इसे नारदको दिया था। भागवतमें यह भी लिखा है कि संज्ञा एक होनेसे भी विद्यासे अभेद है। तथा भगवान्‌के गुण अनन्त है :—

"नान्त गुणानामगुणस्य जग्मुः।
योगेश्वरा ये भवपाद्ममुख्याः"॥ (१, १८, १४)

व्याप्तेश्चसमञ्जसम् ३, ३, १०

भगवान्‌की बाल्यादि लीलाके गुण समूहके उपसंहारार्थ यह प्रकरण आरम्भ

१. भा० १०, १४, २०। २. भा० १०, १४, २१।

किया है। इस सूत्रमें एक शंकाका निराकरण है, वह यह है कि, यदि कोई व्यक्ति यशोदा स्तन्यपायी भगवान् कृष्णकी उपासना करता है और कृष्णमन्त्रका प्रसिद्ध अधिदेव मानता है, तो कृष्णके जन्मादि और बाल्यादि स्वीकार करने पड़ते हैं। ऐसी ही स्थिति श्रीरामके सम्बन्धमें होगी, किन्तु श्रुतिमें एकरसका निरूपण किया है। इसपर सूत्रकारका कथन है, कि भगवान् विभु हैं और बाल्यादि धर्म विशिष्ट होनेपर भी व्याप्तिवश न्यूनाधिक्य भाव उनमें प्राप्त नहीं है। (भा० १०, ६, १३)में इस तथ्यको प्रकट किया है। विश्वनाथ चक्रवर्तीने भगवान्को नन्दका नित्यपुत्र लिखा है। "पशुपांगजाय" भा० १०, १४, १। तथा वे भक्तोंकी इच्छाके अनुरूप विग्रहधारी हैं। (भा० १०, ५६, २५)में उनको देहकी उपाधि द्वारा भी नहीं समझा जा सकता, उनका न वध है, न मोक्ष। (भा० १०, ४८, २२) कुछ लोग यह भी मानते हैं कि ब्रह्म सर्वत्र व्याप्त है, अतः ब्रह्मविद्याओंमें समानता है। भगवान् उनका परिकर और लीला, अभेद एवं नित्य हैं।

सर्व भेदादन्यत्रेमे ३, ३, ११

भगवान् सबसे अभिन्न रूप हैं, अतः संज्ञा प्रकरण और शब्दसे इनकी अभिन्नता ही सिद्ध है। ब्रह्माण्ड अनन्त है कहीं उनकी प्रकट लीला हैं कहीं अप्रकट। फलतः भागवतमें लिखा है :—"**को वेत्ति भूमन् भगवन्परात्मन्**" (१०, १४, २१-२२)। वे अक्षर हैं योगगम्य हैं, अतीन्द्रिय हैं और अनन्त हैं (भा० ८, ३, २१)। वासुदेव उपनिषद्में उनके नित्यावतार और नित्य मूर्ति, नित्यैश्वर्यको स्वीकार किया है :—

नित्यावतारोभगवान् नित्यमूर्तिर्जगत्पतिः।
नित्यरूपो नित्य गन्धो नित्यैश्वर्यसुखानुभूः॥

सद्रूपमव्ययं ब्रह्म मध्याद्यन्त विवर्जितम्।
स्व प्रभुं सच्चिदानन्तं भक्त्या जानाति चाव्ययम्॥ (वा० उ० ६, ५)

उसके गुण अप्रसिद्ध हैं, अतः वह अनामा है, अर्थात् नाम रहित कहा जाता है :—"**अप्रसिद्धेस्तद्गुणानां अन्नामासौ प्रकीर्तितः**" (वासुदेवाध्यात्मे)।

आनन्दादयः प्रधानस्य ३, ३, १२

आनन्द आदि परमात्माके धर्म हैं। "**आनन्द संप्लवमखण्डमकुण्ठबोधम्**" १०, ८३, ३-४ तथा १०, ६६, ४५, १०, ८५, ५८-५६,में भी उनके अनन्तगुण और भक्तिका माहात्म्य ज्ञापित किया है। "**सत्यं ज्ञानमनन्तानन्द मात्रैकरसमूर्तयः**" में वर्णित गुण "**तमद्भुतंबालकम्बुजेक्षणं**" (भा० १०, ३, ६ में उपसंहर्तव्य है।

प्रियशिरस्त्वाद्यप्राप्तिरुपचयापचयौ हि भेदे ३, ३, १३

प्रिय उसका सिर है, मोद प्रमोद हैं। इस प्रकार पक्षीका रूपक देकर जो अंगोंकी कल्पना की है, यह ब्रह्मका स्वरूपगत धर्म, नहीं है। अतः अंगप्रत्यंगके भेदसे ब्रह्ममें भेदमान होनेपर उनमें बढ़ने-घटनेके दोषकी आशंका होगी, आनन्दमय विष्णुका पुरुषाकार है, अतः पक्षि रूपत्व वास्तव नहीं है। जैसा कि भागवतमें स्पष्ट है :—(भा० २, ६, १४) प्रिय शिरस्त्वादिकी प्राप्ति सर्वत्र नहीं है, जहां सुने गये हैं वहीं उपास्य हैं। भागवतमें **"पृष्ठे भ्राम्यदमन्दमन्दरगिरिः"** (भा०१२,१३,२) इत्यादिसे जो कूर्मावतारका वर्णन है वह—**"तमद्भुतं बालकमम्बुजेक्षणम्"** (१०, ३, ९) श्लोक द्वारा वर्णित कृष्णावतार प्रसंगमें ले जाने योग्य नहीं है।

इतरेत्वर्थसामान्यात् ३, ३, १४

इतरे=जो आनन्दादि धर्म हैं उन्हें अन्यत्र भी ग्रहण किया जा सकता है क्योंकि उन सब स्थलोंमें अर्थकी समानता है (भा० १०, २७, ४)। **"श्रियः पति-र्यज्ञपतिर्धरापतिः"** (भा० २, ६, १४)में वर्णित, गुण, सर्वत्र लागू नहीं है किन्तु **"शाश्वत् प्रशान्तमभयं प्रतिबोधमात्र"** (भा० २, ४, ४७)में वर्णित गुण सर्वत्र जा सकते हैं।

आध्यानायप्रयोजनाभावात् ३, ३, १५

आध्यानः=उसके चिन्तनके लिये ही उसका तत्वरूपक द्वारा समझाया गया है। **"पृष्ठे भ्राम्यदमन्द"** इत्यादिसे कूर्म–मत्स्य–नृसिंहादि धर्म तत्तत् देवोंके ध्यानके लिये उन-उन वाक्योंमें कहे हैं। श्रीकृष्ण रूपमें चिन्त्य नहीं हैं और कृष्णके धर्म इन मत्स्य–कूर्म–वाराह–नृसिंह आदि अवतारोंमें चिन्त्य नहीं है—

"तद्वा इदं भुवन मंगल मंगलाय।
ध्याने स्म नो दर्शितं त उपासकानाम्"॥ (३, ९, ४)में

भी उपासकों के ध्येय रूपका वर्णन है।

आत्मशब्दाच्च ३, ३, १६

आत्म शब्दका प्रयोग होनेसे भी यह सिद्ध है, कि श्रुतिमें आत्माको आनन्दमय कहा है। भागवतमें भी **"आत्मानन्देन पूर्णस्य करवाणि किमल्पकः"** (१०, ८५, ३८) श्लोकमें आनन्दको संश्लिष्ट कहा है।

आत्मगृहीतिरितरवदुत्तरात् ३, ३, १७

आत्म शब्दसे परमात्माका ग्रहण होता है। **आत्मा तथापृथग् द्रष्टा भगवान् ब्रह्मसंज्ञितः** (भा० ३, २८, ४१)में भी यह तथ्य स्पष्ट है। तैत्तरीयोपनिषद्में

"अन्योऽन्तर आत्मा मनोमयः" आदिसे उनका मनोमयत्व, विज्ञानमयत्व कहा है— **"पुरुषविधोऽन्वयोऽत्र चरमोऽन्नमयादिषु च"** (भा० १०, ८५)में उसे चरम (आनन्द) रूप भगवान् ही कहे हैं।

अन्वयादिति चेत्स्यादवधारणात् ३, ३, १८

निर्धारित किये जानेके कारण आनन्दमय ही ब्रह्म है। श्रुतिमें **"तस्माद्वा-एतस्मादात्मनः आकाशः सम्भूतः"** (तै० २, १, ३) **"आत्मा ज्ञानमयः शुद्धो व्यतिरिक्तोगुणान्वयः"** (भा० १०, ४७, ३१)में स्पष्ट आत्माको ज्ञानमय कहा है। सम्पूर्ण गुणोंका अन्वय आत्म शब्दमें हो जाता है।

कार्याख्यानादपूर्वम् ३, ३, १९

सत्य–ज्ञान–अनन्त लक्षणवा आनन्दमय आत्मा अन्नरसमय पुरुषसे भिन्न सबका अन्तरात्मा है। श्रुतिमें भगवान्को माता-पिता-भ्राता आदि रूपमें वर्णित किया है। अतः आत्माकी ही उपासना करना उचित है, पर सूत्रकार का कथन है कि पितृत्वादि रूपका चिन्तन भी ग्राह्य है, भागवतमें कपिलदेवने कहा है :—**"येषा-महं प्रिय आत्मा सुतश्च सखा गुरुः सुहृदो दैवमिष्टम्"** (३, २५, ३८) गीतामें भी **"पिताहमस्य जगतो माताधाता पितामहः"** (९, १७)में जगत्का पिता-माता-पितामह अपनेको भगवान्ने कहा है। अपूर्वम् शब्दसे पूजनका विधान माना गया है, सन्ध्यो-पासनामात्र ही नहीं है :—

"सन्ध्योपास्त्यादि कर्माणि वेदेनाचोदितानि मे।
पूजां तैः कल्पयेत् सम्यक् संकल्पः कर्मपावनीम्॥" (भा० ११, २७, ११)

समान एवञ्चाभेदात् ३, ३, २०

चक्षुरादि सहित आत्मामें कोई भेद नहीं है। कुछ लोग निराकारी उपासनाको ही श्रुति सम्मत स्वीकार करते हैं, किन्तु सूत्रकार उनके मूर्तरूपोपासनाकी दृढ़ता यहाँ सिद्ध करता है, और चक्षु आदिके वैलक्षण्ययुत होनेपर भी आत्माके अभेद सिद्धान्त द्वारा उसे समझाता है। **"गूढं परं ब्रह्म मनुष्यलिंगम्"** (७, १०, ४८) तथा **"यत्रावतीर्णो भगवान् परमात्मा नराकृतिः"** (१०, ४४, १३) तथा **"देहाद्युपाधेर-निरूपितत्वात्"** (१०, ४८,२२)से यह सिद्ध है, कि भगवान्का मूर्तरूप है। वे मनुष्य-लिंगमें गूढ़ परब्रह्म है। श्री अक्रूरने तो स्पष्ट ही कहा है आपकी देहादि उपाधि निरूपित नहीं है। विश्वनाथ चक्रवर्तीने इस स्थलपर लिखा है कि अन्य जीवोंकी भाँति आपका जन्म नहीं होता, क्योंकि आपके देहमें उपाधित्वका अभाव है, अतः पैतृक धातुसम्बन्धीय जन्मादि भगवान्के नहीं है (१०, ४८, २२)। भागवतमें अनेक

स्थलोंपर यह बात कही गई है। **"गूढैश्वर्ये परेऽव्यये** (भा० ११, ५, ४६) **तमेकं गोविन्दं सच्चिदानन्द विग्रहं" "द्विभुजं मौन मुद्राढ्यं वनमालिनमीश्वरम्" "ईश्वरः परमः कृष्णः"** आदि वाक्य संहिताओंमें प्राप्त होते हैं। ऋग्वेदमें भी **"अपश्यं गोपामनिपद्यमानसा"** (१, २२, १६६, ३१) **"तदुरुगायस्य वृष्णः परमंपदमवभातिभूरि"** ऋ० १, ५४, ६) और गीतामें भी **"अवजानन्तिमांमूढाः"** श्लोकमें भगवान्ने अपनी विग्रहवत्ता प्रकट की है। अन्य भाष्यकारोंने इस सूत्रमें शाखामें विद्याकी एकता समझानेकी बात कही है[1]। तथा कुछ टीकाकार इसमें **"विदितोऽसि भवान् साक्षात्"** जो 'वासुदेव' स्तुतिका वाक्य है 'उद्धृत करते हैं, और सिद्ध करते हैं कि जिन गुणोंसे वसुवदेजीने स्तुति की है, देवकी ने अधिक गुण वैशिष्ट्यसे नहीं की, पर इससे रूपमें भेद नहीं, वह तत्त्व एक ही है[2]।

सम्बन्धादेवमन्यत्रापि ३, ३, २१

अन्यत्र—भगवदाविष्ट कुमार आदि उपास्योंमें भी भगवद्धर्मका उपसंहार है। क्योंकि भगवच्छक्ति ही आवेश हेतु है। भागवतमें स्पष्ट कहा है कि भगवान् प्रथम कुमारके रूपमें प्रकट हुए, तदनन्तर अन्य अवतार हुए। **"स एव प्रथमं देवः कौमारः सर्गमाश्रितः"** (भा० १, ३, ६)। शाण्डिल्य विद्यामें गुणोंका उपसंहार एक विद्या होनेके कारण वर्णित है, ऐसे ही प्रकृतमें भी दो हेतु साम्य है। भागवतमें भद्राश्व खण्ड आदिमें हयग्रीव आदि उपास्योंके मन्त्र व पूजन प्रकार पृथक्-पृथक् कहे हैं, किन्तु धर्मोंमें भेद नहीं है।

न वा विशेषात् ३, ३, २२

सनत्कुमारादि भगवदाविष्ट जीवमें निखिल भगवद्धर्मोंका उपसंहार देखा नहीं गया, क्योंकि जीवत्व धर्ममें कोई वैलक्षण्य नहीं है। भगवत् प्रियत्व हेतुसे ही उन अवतारोंका आदर है। भागवतमें स्वरूप वैशिष्ट्य वर्णित है—**"त्वमकरुणः स्वराट् अखिल कारक शक्तिधरः"** (१०, ८७, २८)। तथा हयशीर्ष आदि धर्म भेदसे उपासनाका भेद भी भागवतमें वर्णित है।

दर्शयति च ३, ३, २३

'तं मां' इत्यादि श्रुति द्वारा भगवदाविष्ट नारदकी भी जिज्ञासा प्रवृत्ति देखी गई है।

देव देव नमस्तुभ्यं भूत भावन पूर्वज।
तद्विजानीहि यज्ज्ञानमात्म तत्त्वनिदर्शनम्॥ (भा० २, ५, १)

---

१. वेदान्तदर्शन गी० गो० ३, ५, २०।
२. हस्तलिखित भागवतानुसारी भाष्य, अज्ञातनामा—श्रीजी कुञ्ज वृन्दावन।

यह जिज्ञास्य भाव दिखाया गया है (भा० १, ६, ३६)। इस सूत्रसे हयग्रीव आदि उपासना भेदकी पुष्टि की गई है[1]।

संभृतिद्युव्याप्त्यापि चातः ३, ३, २४

पूर्णता और सर्वलोक व्यापकत्व रूप, ये दो ही गुण आवेशावतारमें ग्रहणीय नहीं हैं, क्योंकि आवेशावतार समूह भी महत्तम जीव स्वरूप है। सर्वश्रेष्ठ तो ब्रह्म है। छान्दोग्योपनिषद्के "**एव म आत्माऽन्तर्हृदये ज्यायान्**" (छा० उ० ३, १४, ३) तथा "**यावान् वा अयमाकाशः**" (छा० ८, १, ३)में इसका निरूपण है। एवं भागवतके प्रसंगोंमें विष्णुके वीर्य अनन्त कहे हैं, और उनका पार शेषने भी नहीं पाया है, स्पष्ट प्राप्त होता है :—

विष्णोर्नु वीर्यं गणनां कतमोऽर्हतीत ।
यः पार्थिवान्यपिकविर्विममे रजांसि ॥ (२, ७, ४०)

× × ×

"**शेषोऽधुनापि समवस्यति नास्यपारम्**"। (२, ७, ४१)

स्वरूपगत भेद न होनेसे भी वामनरूप और त्रिविक्रम रूपमें ऐक्य समावेशके अभावसे उपासनामें भेद आता है।

पुरुषविद्यायामिव चेतरेषामनाम्नानात् ३, ३, २५

पुरुषविद्या = पुरुषसूक्तमें जिस प्रकार परमेश्वरको सर्वभूतोंका उपादान सिद्ध किया है, अन्यके सम्बन्धमें ऐसा कथन नहीं है। भागवतमें—

"**तं त्वां विदाम भगवन् परमात्मतत्त्वम्**
सत्त्वेन सम्प्रति रतिं रचयन्तमेषाम्"। (भा० ३, १५, ४७)में

सनत्कुमारने भगवान्की स्तुतिमें यह स्पष्ट किया है। तथा (भा० ३, २५, २१), (भा० ११, ११, २६)में भी दृष्टव्य है।

वेधाद्यर्थ भेदात् ३, ३, २६

शक्रवेधादि गुण मुमुक्ष, गणके पक्षमें उपास्य नहीं है। क्योंकि वहाँ फलभेद है। भागवतमें लिखा है—

"**निवृत्तं कर्म सेवेत प्रवृत्तं मत्परस्त्यजेत् ।**
जिज्ञासायां सम्प्रवृत्तो नाद्रियेत् कर्मचोदनाम्"। (११, १०, ४)

भगवान् कहते हैं कि मुझमें चित्त लगानेवाला पुरुष, काम्यकर्मके परित्याग

---

१. **भागवतानुसारि ब्रह्मसूत्रभाष्य ३, ३, २३।**

एवं नित्य नैमित्तिक कर्मकी सेवा नहीं करता। आत्म विचारमे प्रवृत्त व्यक्ति निष्काम कर्म विधिका भी आदर नहीं करता[१]। ब्रह्मको वेधका लक्ष्य भी कहा है, जो मुण्डकोपनिषद्में वर्णित है :—

धनुर्गृहीत्वौपनिषदं महास्त्रं।
शरंह्युपासा निशितं सन्धयीत॥ (मु० उ० २, २, ३)।

हानौतूपायन शब्दशेषत्वात् कुशाच्छन्दस्तुत्युपगानवत्तदुक्तम् ३, ३, २७

जहाँ दुःख, शोक, पुण्य, पाप आदिके नाशका वर्णन है, ऐसी स्तुतिमें भी नामरूप परमधामकी प्राप्ति आदि फलका भी अध्याहार कर लेना चाहिये, क्योंकि वह वाक्यका शेष भाग है। परमेश्वरके अभिध्यानका फल है। जीवको अकायिक भागवतपद प्राप्ति एवं तभी उसका पूर्ण मनोरथ होता है। भागवतमें कहा है 'मेरे गुण श्रवण मात्रसे मनकी अविच्छिन्नमति हो जाती है'':—"**मद्गुण श्रुतिमात्रेण मयि सर्वं गुहाशये**" (भा० ३, २९, ११) एवं "**विमृश्य सुधियो विरमन्ति शब्दात्** (७, ९, ४९)। नवयोगेश्वर सम्वादमें "**धर्मान् भागवतान् ब्रूत**" इत्यादिसे भागवत धर्म वर्णित है (भा० ११, २)।

सांपराये तर्त्तव्याभावात्तथाह्यन्ये ३, ३ २८

भगवान्के प्रियको संसारका बन्धन नहीं होता।

"तस्मान्मद्भक्तियुक्तस्य योगिनो वैमदात्मनः।
न ज्ञानं न च वैराग्यं प्रायः श्रेयो भवेदिह॥" (भा० ११, २०, ३१)

ज्ञान और वैराग्य भक्तिके ही अंग हैं (भा० माहा० १, ४५)।

'एवंगुरूपासनयैकभक्त्या विद्या कुठारेण शितेनधीराः।'
(भा० ११, १२, २४)

अन्य भाष्यकार योनिको दग्ध करके ही विराम कथन करते हैं। "**यत् साम्पराये सुकृतात् षष्ठमंशम्**" (भा० ४, २०, १४)में '**सांपराये**' शब्द आया है।

छन्दत उभयाविरोधात् ३, ३, २९

केवल प्रेमसे ही ईश्वरकी प्राप्ति नहीं, अपितु माधुर्य ज्ञानप्रवृत्त भक्ति और ऐश्वर्य ज्ञान प्रवृत्त भक्तिसे उसकी प्राप्ति है। प्रेमतारतम्यसे भक्त महत्वके भी त्रिविध तारतम्य हैं—उत्तम, मध्यम, कनिष्ठ, (भा० ११, २,४५-४७)। भागवतमें सत्संगतिको इसीलिये महत्त्व दिया गया है। "**जनस्य तर्ह्यच्युत सत्समागमः**"। (भा १०, ५१, ५३)। उद्धवका कथन है :—"**आसामहो चरणरेणु जुषामहंस्याम्**" (१०,४७,६१)।

गतेरर्थवत्वमुभयथान्यथाहिविरोधः ३, ३, ३०

दोनों प्रकारकी भक्ति सार्थक है। विधि भक्ति द्वारा ऐश्वर्य लीलामय वैकुण्ठनाथकी प्राप्ति होती है और रागानुगा भक्ति द्वारा लीलामय गोकुलनाथकी प्राप्ति होती है। ऐश्वर्य और माधुर्य दोनों ही भगवान्‌के गुण हैं। तथा **"यदि प्रमास्यन्नृप पारमेष्ठ्यम्"** इत्यादिसे गतिका कथन सिद्ध।

उपपन्नस्तत्लक्षणार्थोपलब्धेर्लोकवत् ३, ३, ३१

रुचिपथमें श्रीहरिके भजनकारी ही श्रेष्ठ हैं। भक्तकारी भक्त ही उपपन्न हैं। पूर्वपक्षमें विधिभक्तकी श्रेष्ठता कही गई है, उसके उत्तरमें सूत्रकारने रुचिभक्तिकी श्रेष्ठता कही है भगवान् रागानुग भक्तके ही निकट स्थित रहते हैं। जो प्रसाद गोपियोंने प्राप्त किया वह ब्रह्मा–शिव और लक्ष्मीको भी दुर्लभ था (भा० १०, ६, २०)। मुझमें भक्ति करनेसे अमृतत्वकी प्राप्ति होती है, यह सुन्दर बात है कि तुम्हारा स्नेह मुझमें इतना प्रगाढ़ बना हुआ है (भा० १०, ८२, ४५)। कुछ भाष्यकार सविशेष विद्याओंमें रतिको अर्थवती मानते हैं, निर्विशेषमें नहीं, सविशेषमें भी किन्हीं की गति होती है, किन्हीं की नहीं।

अनियमः सर्वासामविरोधः शब्दानुमानाभ्याम् ३, ३, ३२

'ध्यान–जप–भजन' यह समुदाय मुक्तिका साधन है, ऐसा कोई नियम नहीं है। इनमेंसे प्रत्येक मुक्तिका साधन है, इस सूत्रका सम्बन्ध अथर्ववेदकी उपनिषद्से है जिसमें यह लिखा है कि "अष्टादशाक्षर मन्त्रस्वरूप परमब्रह्मके ध्यान-जप और भजन करनेसे मुक्ति लाभ होता है।" पृथक्-पृथक् उपासना साधनोंसे भी कहीं श्रुतियोंमें भेद नहीं है।

मर्त्यो यदा त्यक्त समस्तकर्मा
निवेदितात्मा विचिकीर्षितो मे।
तदामृतत्वं प्रतिपद्यमानो
मयात्मभूयाम च कल्पते वै॥ (भा० ११, २६। ३४)

जब मनुष्य समस्त कर्मोंका परित्याग कर, अपनी आत्माको मुझे समर्पित कर देता है तब वह अमृतत्वको प्राप्त करता है।

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनं।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्"॥ (भा० ७, ५, २३-२४)

इसमें एक-एक अंग भक्तिके कहे हैं, जो मुक्तिके हेतु हैं। अम्बरीषकी भक्ति सर्वांग है।

यावदधिकारमवस्थितिराधिकारिकाणाम् ३, ३, ३३

अधिकार प्राप्त पुरुषोंके अधिकारकी समाप्ति उनकी इच्छानुसार होती है।

वशिष्ठ-व्यास आदि भी इसी कोटिके पुरुषोंमें आते हैं, उनकी सभी क्रियाएं साधारण पुरुषोंसे विलक्षण होती हैं। भागवतमें लिखा है :—

सृजामि तन्नियुक्तोऽहं हरो हरति तद्वशः।
विश्वं पुरुष रूपेण परिपाति त्रिशक्ति धृक्॥ (भा० २, ६, ३२)

"**अहं भवो दक्ष भृगु प्रधाना**" (भा० ६, ४, ५४)में भी स्पष्ट किया है कि समस्त देव एक अधिकारमें ही उपनिबद्ध हैं।

अक्षरधियां त्ववरोधः सामान्य तद्भावाभ्यामौपसदवत्तदुक्तम् ३, ३, ३४

परमात्माके निर्गुण, निराकार, विषयक लक्षणोंका भी सब जगह अध्याहार करना उचित है। ब्रह्मके सभी विशेषण समान हैं, तथा उसीके स्वरूपको लक्ष्य करानेवाले भाव हैं। उपसत् कर्म सम्बन्धी मन्त्रोंकी भांति। बृ० उ० (३, ८, ८)में ब्रह्मको विलक्षण बतलाया है। मुण्डकोपनिषद् (१, १, ५. ६)में अक्षर ब्रह्मके विशेषण कहे गये हैं। भागवतमें "**शाश्वत प्रशान्तमभयं प्रतिबोधमाम्**"में भी औपनिषदिक तथ्य स्पष्ट किया है। गजेन्द्र मोक्ष प्रसंगमें भागवतमें लिखा है कि "वह न तो देव है, न असुर, न मर्त्य और न स्त्री है, न पुरुष, न षण्ढ न जन्तु, (भा० ८, ३, २४)। भागवतमें निर्विशेषका उल्लेख भी है :—"**एवं गजेन्द्रमुपवर्णित निर्विशेषम्**" (८, ३, ३०)।

इयदामनात् ३, ३, ३५

सर्वत्र इयत्ताका वर्णन समान है। मुण्डक (३, १, १), श्वेता० (४, ६)में पक्षीके दृष्टान्तसे जीव और ईश्वरको मनुष्यके हृदयमें स्थित बतलाया है। कठोपनिषद्में छाया तथा धूपकी भाँति हृदयमें स्थित कहा है, परन्तु फिर भी कहा है कि सबका वर्णन समान है। भागवत "**सर्वेषामपिवस्तूनां भावार्थो भवति स्थितः** (भा० १०, १४, ५६) तथा "**एकायनोऽसौद्विफलस्त्रिमूलः**" (भा० १०, २, २७)में भी विद्याके एकत्वकी पुष्टि है।

अन्तराभतग्रामवत् स्वात्मनः ३, ३, ३६

वह परमात्मा साधकके आत्माका भी अन्तरात्मा है। देवकी-वसुदेवके स्तवनीय एक ही हैं। राजा जनककी सभामें याज्ञवल्क्यसे चक्रायणके पुत्र उषस्तने कहा कि जो अपरोक्ष ब्रह्म है, जो सबका अन्तरात्मा है, उसको मुझे समझाइये। याज्ञवल्क्यने कहा—जो तेरा अन्तरात्मा है, वही सबका है। (बृ० उ० ३, ४, १, २)। सबका अन्तरात्मा परब्रह्म पुरुषोत्तम ही है, जीवात्मा सबका अन्तरात्मा नहीं हो सकता (श्वेता० उ० ६, ११) वेदस्तुतिके इस श्लोकमें भी यही भाव है :—"**जय**

जय जह्यजामजितदोषगृभीतगुणाम्'' (१० ८७, १४)। नारायणीयोप०के **''अनिद्रिया अनाहास''**से भी यही सिद्ध किया है कि जीवात्माका वैलक्षण्य है।

अन्यथा भेदानुपपत्तिरिति चेन्नोपदेशान्तरवत् ३, ३, ३७

जीवात्मा परमात्मामें अभेद सिद्धि हो जायगी, दूसरे उपदेशकी भाँति। (छा० उ० ६, ८, १)में ६ बार पृथक्-पृथक् दृष्टान्त देकर कार्य कारणकी एकता समझाई गई है। (भा० १०. १४, १८)।

व्यतिहारो विशंषन्ति हीतरवत् ३, ३, ३८

परस्पर व्यत्यय करके अभेदका वर्णन है, अतः उपाधिकृत वेद सिद्ध नहीं होते **''तद योऽहं सोऽसौ योऽसौ सोऽहम्''** (भा० २, ४, ३) अर्थात् जो मैं हूँ, सो वह है, जो वह है, सो मैं हूँ''। हे भगवन्! निश्चय ही 'तुम' मैं हूँ और 'मैं' तुम हो (वराहोपनिषद् २,३४)। उद्गीथ ही प्रणव है, जो प्रणव है, उद्गीथ है (छा० उ० १, ५, १) **''तस्मान्मच्छरणं गोष्ठंमन्नाथमत्''** (भा० १०, २५, १८) श्लोकमें भगवान्ने अपनेको ही सब रूपोंमें व्यक्त किया है। अर्थात् अभेद सिद्ध किया है। सि० कणकारने इस प्रसंगमें लोक=वैकुण्ठादिधाम एवं लोकी हरि भगवान्की, उपासना समभावमें सिद्ध की है। चै० च० में कहा है—

कृष्णनाम, कृष्णगुण कृष्ण लीला वृन्द।
कृष्णेर स्वरूप सम सब-चिदानन्द॥ (मध्य १७, १३५)
नाम – विग्रह – स्वरूप तिन एकरूप।
तिन भेद नाहि – नित चिदानन्दरूप॥ (१७, १३१)।

सैव हि सत्यादयः ३, ३, ३९

भगवान्की परानाम्नी स्वरूप शक्तिसे सत्यादि विशेष धर्म समूहका प्रकाश होता है, अर्थात् गुणसमूह, भगवान्से अभिन्न हैं **''परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते''** (कठो० ६, ८)। **''सत्यं शौचं दया शान्तिस्त्यागः सन्तोष आर्जवम्''** (भा० १, १६, २७-३०) सत्य, शौच, दया, शान्ति, त्याग, सन्तोष, आर्जव, शम, दम, तप, साम्य, तितिक्षा, उपरति, श्रुत, ज्ञान, विरक्ति, ऐश्वर्य, शौर्य, तेज, जल, स्मृति, स्वातन्त्र्य, कौशल, कवि, धैर्य तथा—**''सत्यं परं धीमहि''** (१, १, १)से भगवान्को सत्यस्वरूप भी कहा गया है।

कामादीतरत्र तत्रचायतनादिभ्यः ३, ३, ४०

भगवान्के श्रीवैशिष्ट्य गुणके उपसंहारका यहाँ निरूपण है। यजुर्वेदमें भगवान्की दो पत्नियोंका उल्लेख है। श्री और लक्ष्मी। श्रीको कोई वाग्देवी मानते

हैं। भगवान्‌की यह श्रीशक्ति परा है और नित्य है। भगवान् कामादि पूरणार्थ लीला विस्तारकी यह सहयोगिनी भी है। भागवतमें लिखा है—कि वह श्रीसेवित है।

या वै श्रियार्चितमजादिभिराप्तकामैः।
योगेश्वरैरपि यदात्मनि रासगोष्ठ्याम्॥ (भा० १०, ४७, ६२)
"एकान्त धाम यशसः श्रिय ऐश्वरस्य" (१०, ४४, १४)

अन्य पुराणों भी इसकी चर्चा है[1]।

आदरादलोपः ३, ३, ४१

श्री देवीके आदरसे भक्तिके विलोपकी सम्भावना नहीं है। भागवतमें गोपियोंने प्रार्थना की—हे देव! ब्रह्मादि देवगण भी आपकी कृपाके अभिलाषी हैं। लक्ष्मीदेवी, जो आपके वक्ष देशपर शोभित हैं, उसके एवं तुलसीदेवीके सहित आपके चरणकमलों की धूलिका कण चाहते हैं''। अन्यत्र भी कहा गया है[2] (भा० १०, २९, ३७) "श्रीर्यत्पदाम्बुजरजश्चकमे तुलस्या"।

उपस्थितेऽतस्तद्वचनात् ३, ३, ४२

शक्ति और शक्ति के आश्रयसे विशेषत्वके अनुसार ज्ञान प्राप्त कर शृङ्गाराभिलाषादि उदित होती हैं? अतः ये सिद्ध हैं? अर्थवशिरा उपनिषद्‌में इसका प्रमाण भी है।

रेमे रेमेशो व्रज सुन्दरीभि—
र्यथार्भकः स्वप्रतिबिम्ब विभ्रमः। (भा० १०, २३, १६)

विश्वनाथ चक्रवर्तीने अपनी सारार्थदर्शिनी टीकामें लिखा है कि व्रजसुन्दरी ल्हादिनी शक्तिके कारण उनकी स्वरूपभूता ही थीं[3]।

---

१. (क) देवी कृष्णमयी प्रोक्ता राधिका परदेवता।
सर्व लक्ष्मीमयी सर्व कान्तिः सम्मोहिनी परा॥ "वृहद्गौतमीयतन्त्रे"
(ख) "ल्हादिनी सन्धिनी संवित् त्वय्येका सर्व संस्थितौ" (वि०पु० १, १२, ६९)
(ग) आनन्द चिन्मय रसप्रति भाविताभिस्ताभिर्य एव निजरूपतया कलाभिः।
गोलोक एव निवसत्यखिलात्मभूतो गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि॥
ब्र० संहिता ५, ३३

२. राधा पूर्ण शक्ति पूर्ण शक्तिमान।
दुइवस्तु भेद नाहि शास्त्र परमान॥ (कै० च० आदि ४, ९६-९८)

३. भक्ति रसामृत सिन्धु—१—में कहा है:—
अखिल रसामृतमूर्तिः प्रसृमर रुचिरुद्ध तारकापालिः।
कलित श्यामा ललितो राधप्रियान् विधुर्जयति॥

तन्निर्धारणानियमस्तद्-दृष्टेः पृथक् ह्यप्रतिबन्धः फलम् ३, ३, ४३

श्रीकृष्णत्व रूपकी उपासनामें कोई नियम नहीं है। श्रीकृष्णके आत्मस्वरूप बलदेव आदिकी उपासना भी देखी गई है। "उन कृष्णका न कुछ वाह्य है, न अन्तर, न पूर्व, न पश्चिम[1] (भा० १०, ६, १३) तथा "**यजन्ति स्वन्मयास्त्वांवै बहुमूर्त्येकमूर्तिकम्**" (भा० १०,४०,७) भगवान्के अर्पण करने देनेवाले कर्मसे, फल कुछ और ही होता है।

प्रदानवदेवतदुक्तम् ३, ३, ४४

प्रसन्न गुरु, अपने शिष्यको ब्रह्म प्राप्तिके हेतु भूत श्रवणादिको देता है, उसी प्रकार फल प्राप्ति भी होती है। यहाँ गुरुका उल्लेख आता है। मुण्डकोपनिषद्में भी यह वर्णित है "**तद्विज्ञानार्थं सगुरुमेवाभिगच्छेत्**" (मु० १, २, ३२) "**आचार्यवान्पुरुषो वेद**" (छा० उ० ६,१४,१२) '**यस्यदेवे परा भक्तिः**" (श्वेता० ६, २३)। भागवतमें भी कहा गया है :—'**एवं गुरूपासनयैकभक्त्या**" (भा० ११, १२, २४) तथा "**लब्धानुग्रह आचार्यात्तेनसन्दर्शितागमः**" (भा० ११, ३, ४८)में आचार्यका वर्णन है[2]।

लिंग भूयस्त्वात्तद्धि वलीयस्तदपि ३, ३, ४५

यद्यपि गुरुकी उपासना, प्रबल तथापि श्रवणादि आवश्यक हैं। भागवतमें "**गुरु शुश्रूषया भक्त्या सर्वलाभार्पणेन च**" (भा० ७, ७, २६-३१) तथा ११, २, ३७ ११, ३, २१-२२ श्लोकोंमें गुरु माहात्म्य वर्णित है।

पूर्व विकल्पः प्रकरणात् स्यात् क्रियामानसवत् ३, ३, ४६

पूर्वोक्त भक्ति ही विकल्प है अर्थात् "**सोऽहम्**"की भावना भक्ति ही प्रकारान्तर है। यहाँ तक यह वर्णन किया है कि श्रीप्रभृति गुणादिविशिष्ट भगवान्की उपासना, गुरुदेवके अनुग्रहसे ही फलवती होती है। भागवतमें लिखा है—हरिको दूर देखकर उत्कण्ठित होना, कभी विलज्ज होकर नृत्य करना आदि (भा०७,४,१०)। भा० १०, ३०, ३में '**-गतिस्मित प्रेक्षण भाषणादिषु**"में भी यही वर्णित है।

अतिदेशाच्च ३, ३, ४७

भगवान्के नित्य अतिशय प्रियत्व एवं आत्मदानका पात्र भक्ति है। अतः केवल अभेदवादित्व यहाँ सम्भव नहीं। भागवत "**तस्मिन् ह वा उपशमशीला परम ऋषयसकल जीवनिकायारामस्य भगवतो वासुदेवस्य—समीयुः**" (भा० ५, १, २७)

---

१. गो० ता० में लिखा है :—"तस्मात् कृष्ण एवपरो देवस्तं ध्यायेत्"।

२. गुरूपासनासे भगवान् प्रसस्न होते हैं। (भा० १०, ८०, ३४)

अहं भक्त पराधीनो ह्यस्वतन्त्र इव द्विज ।
साधुभिर्ग्रस्त हृदयो भक्तैर्भक्त जनप्रियः ॥
(भा० ६, ४, ६३, ६४, ६६, ६८)

कृष्णने कहा है कि मैं भक्तोंके आधीन हूँ ।

विद्यैव तु तन्निर्धारणात् ३, ३, ४८

विद्या ही मुक्तिका कारण है, कर्म व ज्ञान नहीं । ब्रह्म विद्या ही उपासना शब्द बाच्य है । **"तमेवविदित्वातिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय"** (श्वे० उ० ३, ८) । भागवतमें—**"तत्कर्म हरि तोषयत् सा विद्या तन्मतिर्मया"** (भा० ४, २९, ४९) । प्रहलादने—श्रवण कीर्तन आदिको ही उत्तम माना है (भा० ७,५,२३-२४) ।

"एकस्यैवममांशस्य जीवस्यैव महामते ।
बन्धोऽस्यविद्ययाऽनादिर्विद्यया च तथेतरः ॥" (भा० ११, ११, ४)में

अविद्यासे बन्धन कहा है और विद्यासे मुक्ति । गीतामें भी लिखा है । **"राजविद्या राजगुह्यम्"** (९, २) ।

दर्शनाच्च ३, ३, ४९

वहिः साक्षात्कार द्वारा ही सम्पूर्ण अनर्थोंकी निवृत्ति होती है, ऐसा मु० उ०में लिखा है । **'भिद्यते हृदय ग्रन्थिः** (मु० २, २, ९) । **"भिद्यतेहृदयग्रथिश्छिद्यन्ते-सर्वसंशयाः"** (भा० १, २, २१) । भागवतके ११, २०, ३० श्लोकमें भी यह तथ्य वर्णित है । यज्ञको ब्रह्मविद्या भी कहा गया है ।

श्रुत्यादिवलीयस्त्वाच्च न बाधः ३, ३, ५०

विद्या ही मुक्तिका कारण है । श्रुतियोंका इसमें प्रमाण है । किन्तु सूत्रके आदिपदसे लिंग एवं युक्ति भी संगृहीत हैं । भागवतमें लिखा है :—**"नसाधयति मां योगो०"** (भा० ११, १४, २०) अर्थात् मुझे योग, सांख्य, स्वाध्याय, तप, त्याग वशमें नहीं कर पाते, पर भक्तिसे मैं वशमें हो जाता हूँ (भा० ११, १४, २०) । **"भज-वासुदेवम्"** (भा० ४, २२, ३९) एवं **"नाहं मखोर्वै सुलभः"** (भा० ४, २०, १६) एवं **"प्रीयतेऽमलयाभक्त्या"** (भा० ७, ७, ५२)से उक्त भक्तिकी बातकी पुष्टि की गई है । चै०ने भी कहा है :—

भक्ति विनोंकान साधन दिते नारेफल ।
सब फल देय भक्ति स्वतन्त्र प्रबल ॥ (चै० च० म० २४ प)

श्रीरामानुज एवं मधवका भी यही मत है ।

अनुबन्धादिभ्यः ३, ३, ५१

सन्तोंकी सेवा, आदि पदसे भगवततीर्थ सेवा, अन्य देवोंकी निन्दाका परित्याग

करनेसे मुक्ति होती है। अनुबन्धः=अर्थात् महदुपासना निर्बन्धः। भागवतमें रहूगणसे जड़ भरतने कहा है—हे रहूगण ! बिना बड़े लोगोंकी चरण सेवाके मेरी प्राप्ति नहीं होती (भा० ५, १२, ११ । भगवान्‌ने भी कहा है "मैं सत्संगसे अवरुद्ध होता हूँ"— **"यथावरुन्धे सत्संगः सर्वसंगापहो हिमाम्"** (भा० ११, १२, १-२)। कपिलदेवने भी कहा है भा० ३, २५, २४। प्रह्लादने भी महत्सेवाकी महिमा गाई है भा० ७, ५, ३२। महत्सेवा ही मुक्तिका द्वार है (भा० ५, ५, २)।

प्रज्ञान्तर पृथक्त्ववद् दृष्टिश्च तदुक्तम् ३, ३, ५२

प्रज्ञा दो हैं, एक 'शाब्दबोधात्मक', द्वितीय 'उपासनात्मक'। विद्यामय क्रतुसे क्रियामय क्रतु पृथक् है। **"श्रेयान् द्रव्यमयाद्यज्ञात् ज्ञानयज्ञः परन्तप"** (गीता ४,३३)। भागवतमें **"एवं एव यजन्ति त्वां सर्वदेवमयेश्वरम्"** लिखा है।

× × ×

भागवतमें भी लिखा है—**"विशन्ति सर्वतः सिन्धुं तद्वत्वंगतयोऽन्ततः"** (भा० १०, ४०, ९)। जैसे नदियाँ सिन्धुमें पड़ती हैं वैसे ही पूजा भी समस्त देवोंसे होती हुई विष्णुको प्राप्त होती है।

नसामान्यादप्युपलब्धेर्मृत्युवन्न हि लोकापत्तिः ३, ३, ५३

साधारण भावसे दृष्टि ही मुक्ति कारण नहीं है। मृत्युका नाम मुक्ति नहीं है, दृष्टिका फल उत्तमलोक प्राप्ति है। भगवान् अवतीर्ण होते हैं तो सर्वसाधारणकी दृष्टि उनपर पड़ती है, किन्तु सबकी मुक्ति नहीं होती, हाँ उन्हें उत्तमलोककी प्राप्ति हो जाती है। विद्याधर नामक सर्प भगवान् कृष्णके पादस्पर्शसे सर्प रूपको त्याग कर विद्याधर रूपको प्राप्त हो गया (भा० १०, ३४, ९)। राजा नृग भगवान् कृष्णके करका स्पर्श पाकर कूएमें-से कृकलास रूपको त्यागकर स्वर्ग चला गया (भा० १०, ६४, ६)। इसके साथ भागवतमें भीष्मस्तुतिमें यह सिद्ध किया है कि भगवान्‌के स्वरूपको देखकर जिनकी मृत्यु हुए वे सरूपताको प्राप्त हो गये **"यमिह-निरीक्ष्य हता गताः सरूपम्"** (भा० १, ९, ३९)। विश्वनाथ चक्रवर्तीने यहाँ व्याख्यामें लिखा है कि—युद्धमें अन्य व्यक्तियोंके द्वारा भी मारे गये असुरस्वभाव-वाले ज्ञानहीन भी सायुज्य मोक्षको प्राप्त कर गये[1]। प्रलम्ब-बक आदि असुर भी मुक्त हो गये (भा० २, ७, ३४-३४)। भीष्मने कहा है "जिन व्यक्तियोंने अपना मन भगवान्‌में लगाया उन्होंने प्राप्त शरीरको त्यागकर हरिको प्राप्त किया। (भा० १, ९, २३) तथा ३, ९, १५ एवं १०, ४६, ३२में भी इसकी संपुष्टि की गई है[2]।

---

१. सा० द० १, ९, ३९।

२. गीता ८, ५-६—"अन्तकाले च मामेव स्मरन् मुक्त्वा कलेवरम्"।

परेण च शाब्दास्य ताद्विध्यं भूयस्त्वात्वनुबन्धः ३, ३, ५४

ब्रह्म विद्या द्वारा ही मुक्ति प्राप्त होती है। उपनिषदोंमें कहा है "**नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो**........ '**खाम्**' (मु० उ० ३, २, ३) तथा (क० १, २, २३)। कुछ विद्वान् केवल भगवान् द्वारा वरणसे ही मुक्ति मानते हैं, कुछ ज्ञान-वैराग्य युक्त भक्ति द्वारा भगवान्का साक्षात्कार मानते हैं[1]। तात्पर्य यह है कि भगवान्के साक्षात्कारके अव्यवहित पूर्व भक्तको 'प्रभु' वरण करता है। '**वशे कुर्वन्ति मां भक्त्या सत्स्त्रियः सत्पतिं यथा** (भा० ९, ४, ६६)। भगवान् जिनपर जब अनुग्रह करते हैं तब वह लोक वेदमें परिनिष्ठित बुद्धिको भी त्याग होता है (भा० ४, २९, ४६)।

एक आत्मनः शरीरे भावात् ३, ३, ५५

कुछ विद्वान् (वेदशाखानुयायी) शरीरके मध्य जठर, हृदय और ब्रह्मरन्ध्रमें आत्मरूपी विष्णुकी उपासना सिद्ध करते हैं।

उदरमुपासते य ऋषि वर्त्मसु कूर्पदृशः ।
परिसरि पद्धतिं हृदयमारुणोयो दहरम् ।। (भा० १०, ८७, १८)

इस श्लोकमें शरीर स्थित उदर, हृदय और शिरस्थित उपासनाका वर्णन है। "**केचित् स्वदेहान्तर्हृदयावकाशे**" (भा० २, २, ८) श्लोकमें हृदयमें प्रादेश मात्र स्थानमें आराधनाकी प्रेरणा है।

व्यतिरेकस्तद्भाव भावित्वान्नतूपलब्धिवत् ३, ३, ५६

भगवान्के ध्यानानुरूप स्वरूपकी प्राप्तिसे अतिरिक्त ध्यानातिरिक्त स्वरूपकी प्राप्ति भी होती है। "**यच्छ्रद्धया श्रुतवत्या च भक्त्या**" (भा० ३, ४२)में इसकी पुष्टि है। पति-पुत्र-सुहृद्-भ्रातृ-पितृकी भाँति जो हरिको ध्याते हैं उन्हें भी नमस्कार है। (भक्ति रसा० सि० सा० स १६२)।

अंगावबद्धास्तु न शाखासु हि प्रतिवेदम् ३, ३, ५७

जिस प्रकार ऋत्विक्गण यजमान निर्दिष्ट कर्मके लिये अध्वर्यु, होता, उद्गाता और ब्रह्मा, रूप वरण करते हैं, व तथा उनके द्वारा निर्दिष्ट कर्म ही किया जाता है। उसी प्रकार उपासना द्वारा तद्रूप प्राप्ति होती है। "**परावरेशे त्वयि जायतेमतिः**" (भा० १०, ५१, ३४) तथा "**भक्तियोगश्चसिद्धिदः**" (भा० ११, २०, ८)में भी भक्तियोगकी प्रशंसा की है।

---

१. भा० ११, २, ५५, भा० ११, २९, ३४, भा० ६, ११, २३, भा० ७, ७, ५१-५२, भा० ८, ६, २७, भा० १०, १४, ५।

मन्त्रादिवद् वा विरोधः ३, ३, ५८

जिस प्रकार एक मन्त्र अनेक कर्मोंमें प्रयुक्त होता है और कोई दो कर्मोंमें, कोई एक कर्ममें प्रयुक्त होता है। कालका दृष्टान्त भी यहाँ उपादेय है। वसन्त ऋतुमें पत्र पुष्पादिका उद्गम होता है, शीतऋतु, पत्रादिके प्रभावका हेतु बनता है, ऐसे ही उपासनाके अनुसार मुक्तिसे स्वरूपका प्रकाश होता है अतः कोई असंगति नहीं है। उद्धव सम्वादमें यह कहा गया है :—"**त्वं हि नः परमः चक्षुः सुहृन्मन्त्रार्थ तत्ववित्**" (भा० १०, ७०, ४६)। आप ही हमारे चक्षु हो सुहृत् हो।

भूम्नः क्रतुवत्ज्यायस्त्वम् तथाहि दर्शयति ३, ३, ५९

सम्पूर्ण उपासनासे ही बहुभावात्मक गुण चिन्तनीय है। भूमाकी चिन्ता सकल उपासनासे ही कर्त्तव्य है। भागवतमें "अनन्त शक्ति सम्पन्न, परेश अरूप बहुरूप आश्चर्यकारी परमात्माको ध्यान किया गया है (भा० ८, ३, ९)।

नाना शब्दादि भेदात् ३, ३, ६०

सकल रूपोंकी उपासना एक प्रकारकी नहीं है, नानाविध होती है। इस कारण ही उपास्यवाचक नृसिंह शब्द, मन्त्र, आकार और कर्मकी विलक्षणता है। अतः स्वरूपसे एक होनेपर भी उपासनाका भेद स्वीकर्तव्य है। भागवतमें स्पष्ट लिखा है, कि चारों युगोंमें केशव अनेक वर्ण, नाम और आकार द्वारा ध्यान किया जाता है :—

कृतं त्रेता द्वापरञ्च कलिरित्येषु केशवः।
नाना वर्णमथाकारो नानेव विधिनेज्यते॥ (भा० ११, ५, २०)

विकल्पोऽविशिष्टफलत्वात् ३, ३, ६१

प्रत्येक उपासनाका फल एक समान अर्थात् मोक्ष और भागवत् साक्षात्कार रूप फल सर्वत्र एक है। "**तत्तद्वपुः प्रणयसे सदनुग्रहाय**" (भा० ३, ९, ११)। अर्थात् जिस बुद्धिसे भक्त आपकी भावना करता है आप उसे उसी रूपसे प्राप्त होते हो।

काम्यास्ते यथाकामं समुच्चीयेरन् न वा पूर्व हेत्वभावात् ३, ३, ६२

सकाम उपासक, कामनाके अनुसार 'सकामउपासना' समुच्चय रूपमें भी कर सकता है, नहीं भी। भागवतमें लिखा है :—ब्रह्मवर्चस कामनावाला ब्रह्माकी उपासना करे। इन्द्रियकी कामनासे इन्द्रकी और प्रजा (सन्तान)की कामनासे प्रजापतिकी, लक्ष्मीकी कामनासे मायादेवीकी, ओजकी कामनाके लिये विभावसुकी उपासना करनी चाहिये (भा० २, ३, २-९)। मोक्ष कामनाके लिये श्री विष्णु

भगवान्‌की उपासनाका विधान भी वहाँ कहा है (भा० २, ३, १०-११)। गीतामें भी इसकी पुष्टि की है (गी० ७, २०)।

अंगेषु यथाश्रय भावः ३, ३, ६३

मुखादि अंग समूहमें आश्रयानुसार ध्यान करना चाहिये। गो० ता०में मुख नेत्रादिकी सुषमा और मन्दहास्यादिका वर्णन है।

प्रसादाभिमुखं शाश्वत् प्रसन्न वदनेक्षणम्।

× × ×

तरुणं रमणीयांगमरुणोष्ठेक्षणाधरम्।
प्रयताश्रयणं नृम्णं शरण्यंकरुणार्णवम्॥

× × ×

स्मयमानमभिध्यायेत् सानुरागावलोकनम्। (भा० ४, ८, ४५-५१)

गोपियोंने भी इनके प्रसन्न वदन और प्रेमवीक्षणके रूपका ध्यान किया है :—

"**प्रहसितं प्रियप्रेमवीक्षणम् विहरणं च ते ध्यान मंगलम्**" (भा० १०, ३१, १०)

शिष्टेश्च ३, ३, ६४

इस रूपसे ध्यानका उपदेश भी है। ब्रह्माको भी उपदेश हुआ है (भा० ३, ९, २५) इसमें भगवान्‌के प्रसन्न वदनकी शोभाका वर्णन है।

समाहारात् ३, ३, ६५

कृपा दृष्टि द्‌वारा ही प्रिय भाषणादि गुणका संग्रह होता है।

प्रसन्न वदनांभोजं पद्मगर्भारुणेक्षणम्।
नीलोत्पलदल श्यामं शंख चक्र गदाधरम्॥ (भा० ३, २८, १३)में

चित्तस्थापनके लिए सुन्दर ध्यान करनेका उपदेश है।

गुणसाधारण्य श्रुतेश्च ३, ३, ६६

"**सर्वतः पाणिपादान्तं**" श्रुति सिद्ध करती है कि उसके अंग सर्वत्र हैं। ब्रह्म-संहितामें भी लिखा है कि परमेश्वरके सकल अंग ही सकल इन्द्रियोंमें वर्तते हैं।

"**तत् सर्वव्यापकंचित्तमाकृष्यैकत्र धारयेत्।**
नान्यानि चिन्तयेत् भूयः सुस्मितं भावयेन्मुखम्॥

(भा० ११, १४, ४५–४७)

न वा तत् सहभावाश्रुतेः ३, ३, ६७

जिस अंगका जो गुण पठित है उसके साहचर्यसे अन्य गुण समुदाय सुना नहीं गया है। आश्रयके अनुसार ही ध्यानकर्तव्य है। ब्रह्माने अपने स्तोत्रमें पढ़ा है :—

नौमीड्यतेऽभ्रवपुषेतडिद्म्बराय ।

\+ \+ \+

लक्ष्मश्रिये मृदुपदे पशुपांगजाय । (भा० १०, १४, १)

इससे उनके विभिन्न अवयवोंकी स्थिति यथास्थान वर्णित की गई है ।

दर्शनाच्च ३, ३, ६८

भगवान्‌के मुखादिसे ही मन्द हास्य आदिका ध्यान करना चाहिए । भागवतमें गोपियाँ ध्याती हैं लिखा है—

वीक्ष्यालकावृतमुखं तव कुंडल श्री—
गंडस्थलाधरसुधं हसितावलोकम् । (१०, २६, ३६)

रुक्मिणीने अपने पत्रमें भी भगवान्‌के सुन्दर रूपका वर्णन किया है :—"**श्रुत्वागुणान् भुवन सुन्दर श्रृण्वतां ते**" (भा० १०,५२,३७) तथा "**यस्याननंमकर कुंडल चारुवर्ण**" (६, २४, ६५)में भी यह वर्णन है ।

॥ इति तृतीयः पादः ॥

❋ तृतीयस्य चतुर्थः पादः ❋

पुरुषार्थोऽतः शब्दादिति बादरायणः ३, ४, १

भगवान् विद्या द्वारा ही परितुष्ट होकर भक्तकी सम्पूर्ण कामनाओंको पूर्ण करते हैं । यदि मुक्ति भिन्न फलकी कामना होती है तो कर्दमादिकी भाँति सम्बन्ध वशसे उसे भी उसी विद्या द्वारा फलान्तरमें अर्पित करते हैं । विद्या स्वातन्त्र्यमें अनेक वाक्य हैं :—"**एतद्ध्येवाक्षरम् ज्ञात्वा** (कठो० १, २, १६), "**वेदाहमेतं**" (श्वेताश्वतर ३, ८), "**तमेवं विद्वान् इहभवति**" (मुण्डक ३, २, ८), "**तरतिशोक-मात्मविद्**" (छा० उ० ७, १, ३) ।

शेषत्व त् पुरुषार्थवादो यथान्येष्विति जैमिनिः ३, ४, २

जैमिनिका मत है कि विद्या कर्मका अंग है । विद्यासे जो फल श्रुति है वही अर्थवाद है । वस्तुतः जैमिनिका पक्ष यह कि कर्म और देवता यज्ञके अंग हैं । बादरायण इससे सहमत नहीं हैं :—

कर्माकर्म विकर्मेति वेदवादो न लौकिकः ।
वेदस्य चेश्वरात्मत्वात्तत्र मुह्यन्ति सूरयः ॥ (भा० ११, ३, ४३)

यह वचन अज्ञ व्यक्तियोंके लिये है । ज्ञानी व्यक्तियोंके लिए आगे कहा है :—

य आशु हृदयग्रन्थिर्निजिहीर्षुः परात्मनः ।
विधिनोपचरेद्देवं तन्त्रोक्तेन च केशवम् ॥ (भा०११, ३, ४७)

आचार दर्शनात् ३, ४, ३

कर्मानुष्ठान आवश्यक है । दान-व्रत-तप-हवन-जप, स्वाध्याय, संयम आदि द्वारा, श्रीकृष्ण भक्ति प्राप्त की जाती है। इस प्रकार स्पष्ट ही भागवतमें कर्मानुष्ठानका प्रतिपादन किया है । (भा० १०, ४७, २४) ।

तच्छ्रुतेः ३, ४, ४

छान्दोग्योपनिषद्के कारण भी विद्याको कर्मका अंग कहा है । वेदोक्त कर्म करनेकी आज्ञा भागवतमें भी प्राप्त है :—"**वेदोक्तमेव कुर्वाणो निःसंगोऽर्पितमीश्वरे**" (भा० ११, ३, ४६) ।

समन्वारम्भणात् ३, ४, ५

विद्या और कर्मानुष्ठान दोनों ही मुक्तिको देते हैं ।

विद्याविद्येममतनू विध्द्युद्धव शरीरिणाम् ।
मोक्ष बन्धकरी आद्ये मायया मे विनिर्मिते ॥ (भा० ११, ११, ३)

इस श्लोकमें विद्या और अविद्या दोनोंको भगवान्ने अपना अंग कहा है ।

तद्वतो विधानात् ३, ४, ६

ब्रह्मविद्या भी कर्मका अंग है । ब्रह्मज्ञान सम्पन्नको ही ब्रह्मारूपमें वरण किया जाता है । भागवतमें विश्वरूपको आचार्य वरण करते समय देवोंने कहा—हम आप ब्राह्मिष्ठको अपना उपाध्याय वरण करते हैं (भा० ६, ७, ३२) ।

नियमाच्च ३, ४, ७

ब्रह्मविद् व्यक्ति भी कर्मानुष्ठानको आवश्यक मानता है । ईशो०में "**कुर्वन्नेवेह कर्माणि**" द्वारा कर्मानुष्ठानकी ही पुष्टि की है । "**कर्मणा जायन्तेजन्तुः कर्मणैवविलीयते**" (भा० १०, २४, १३)से कर्मकी ही श्रेष्ठता कही है । भगवद्गीतामें भी ऐसा लिखा है-"**नहिकश्चित् क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्**" (३, ५) ।

अधिकोपदेशात्तु बादरायणस्यैवं तद्दर्शनात् ३, ४, ८

प्रथम सूत्रतक जैमिनिका मत रखा गया है कि ब्रह्मविद्या भी कर्मानुष्ठानका

अंग है। इसका अपवाद करते हुए वादरायणने कहा है कि, जैमिनिका मत ठीक नहीं है, क्योंकि मुक्तिका प्रधान कारण कर्म नहीं, 'विद्या' ही है। यही श्रुति सम्मत है। अतः कर्मसे श्रेष्ठ विद्या ही है। भागवतमें भी कहा है (भा० ५, ११, १५)।

तुल्यन्तु दर्शनम् ३, ४, ९

विद्या कर्मका अंग नहीं है। इसके लिए तुल्य साधक श्रुति प्राप्त होती है। दोनों पक्षोंमें अधिक निर्देश इसपर दिया है कि, विद्या कर्मका अंग नहीं है। वृहदारण्यक (४, ४, २२) एवं कौषीतकि (२, ५)में इसकी पुष्टि प्राप्त होती है। इनमें लिखा है कि विद्वान्‌को चाहिये कि समस्त कामनाओंका परित्याग करना चाहिये। अतः विद्याके उदयमें कर्मका त्याग ही श्रेष्ठ है। विद्वान्‌को अहंकार नहीं करना चाहिए। (भा० ११, ११, ९)।

असार्वत्रिकी ३, ४, १०

"यदेव विद्यया करोति" इस श्रुति वाक्यसे इसे सर्व विद्या विषयक नहीं समझा जा सकता, भागवतमें कृष्णका कथन है :—

मर्त्यो यदा त्यक्त समस्त कर्मा।
निवेदितात्मा विचिकीर्षितो मे॥ (भा० ११, २९, ३४)

'जब मनुष्य सम्पूर्ण कर्मोंको त्यागकर मेरा बन जाता है तब वह श्रेय भागी बनता है।'

विभागः शतवत् ३, ४, ११

विद्या और कर्मका फल पृथक् है। 'शतवत्' यह एक उदाहरण है, जैसे—धेनु और बकरीका मूल्य १०० रु० है तो ९० रु० गायके और १०-०० रु० बकरीके विभक्त किये जाते हैं। इसी प्रकार विद्याका फल है मोक्ष, और कर्मका फल है स्वर्गादिकी प्राप्ति। **"भगवन् जीवलोकोऽयं मोहितस्त्वमायया"** (भा०१०, ४०, २३)। श्रीरामानुजने विभागकी व्याख्या यह की है कि मृत्युसे परे विद्या और कर्म, स्वतन्त्र भावसे अपना फल देते हैं।

अध्ययनमात्रवतः ३, ४, १२

केवल वेदाध्ययनरत व्यक्तिको ही ब्रह्मरूपमें वरण करनेका अधिकार है। अतः विद्या कर्मका अंग नहीं है आशय यह है कि वेदपाठी और ब्रह्मज्ञमें भेद है। ब्रह्मा वरणके लिए वेदपाठकी योग्यता अपेक्षित है। इस प्रसंगमें ब्रह्मज्ञका उल्लेख नहीं है।

तच्छ्रद्दधाना मुनयो ज्ञानवैराग्य युक्तया।
पश्यन्त्यात्मनि चात्मानं भक्त्या श्रुत गृहीतया॥ (भा० १, २, १२)

तस्मात् मद्भक्तियुक्तस्य योगिनो वै मदात्मनः ।

न ज्ञानं न च वैराग्यं प्रायः श्रेयोभवेदिह ।। (भा० ११, २०, ३१)

नाविशेषात् ३, ४, १३

"कुर्वन्नेवे कर्माणि" श्रुतिके आधारपर जैमिनिके पूर्वपक्षकी व्यवस्था थी, किन्तु तैत्तरीय श्रुतिमें आया है—"न कर्मणा..........अमृतत्व मानशुः" इससे पूर्वोक्त श्रुतिका वैशिष्ट्य सिद्ध नहीं। आश्रय भेदसे कर्मत्याग और कर्मानुष्ठानकी ही व्यवस्था है। भागवतमें भी लिखा है कि, कर्म तभीतक करना चाहिये जबतक वैराग्य उदित न हो अथवा मेरी कथा श्रवणादिमें श्रद्धा उत्पन्न न हो (भा० ११, २०, ६)।

स्तुतयेऽनुमतिर्वा ३, ४, १४

यावज्जीवन कर्मानुष्ठानकी बात विद्याकी प्रशंसाके लिये है। कर्म करते हुए भी विद्वान्को उसमें लिप्त नहीं होना चाहिए। भागवतमें—"देहस्थोऽपि न देहस्थो विद्वान् स्वप्नाद् यथोत्थितः" (भा० ११, ११, ८-६)के द्वारा देहमें रहते हुए भी स्वप्नोत्थित दृष्टान्त द्वारा कर्मोंसे युक्त ज्ञानी होना लिखा है।

कामकारेण चैके ३, ४, १५

लोकके अनुग्रहके लिये यदि स्वेच्छापूर्वक कर्मानुष्ठान करनेपर उससे सम्भावित दोष-गुणका लेप ब्रह्मवेत्ताको नहीं होता तो ब्रह्मज्ञकी अग्निसे सम्पूर्ण दोषराशि रूपी तृण भस्म हो जाते हैं। "नमय्येकान्त भक्तानां गुणदोषोद्भवाः गुणा" (भा० ११, २०, ३६)। मेरे भक्तको विहित-निषिद्ध कर्मजन्य गुण-दोषका संस्पर्श नहीं होता।

उपमर्दश्च ३, ४, १६

विद्या द्वारा सम्पूर्ण कर्मके ध्वंसका समर्थन श्रुति और स्मृति करती हैं। श्रुति—भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः। (मुण्डको० २, २, ६)। स्मृति—यथैधांसि समृद्धाग्निर्भस्मसात् कुरुतेऽर्जुन। (गीता ४, ३७)। भागवत—भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्व संशयाः। (भा० १, २, २१)।

ऊर्ध्व रेतःसु च शब्दे हि ३, ४, १७

ऊर्ध्वरेता महाविद्या सम्पन्न यतिके सम्बन्धमें शास्त्रमें यथेष्ट आचरणका उल्लेख है, अतः विद्याका स्वातन्त्र्य ही देखा गया है। वृहदा० उ० (४, ४, २२ में लिखा है—"एतमेव प्रव्राजिनो लोकमिच्छन्तः प्रव्रजन्ति"। भागवतमें लिखा है—

अहंकारकृतं बद्धमात्मनोऽर्थविपर्ययम् ।

विद्वान् निर्विद्य संसार चिन्तां तुर्यस्थितस्त्यजेत् ।।(भा०११,१३, २६)

परमार्शं जैमिनिरचोदना चापवदति हि ३, ४, १८

जैमिनिका पक्ष प्रस्तुत किया गया है। जैमिनिका कथन है कि विद्वान्को कर्मका त्याग नहीं करना चाहिए। यदि सन्यास ग्रहण करनेके पश्चात् भी अनुष्ठेय कार्य करना है तो सन्यास आश्रमकी सार्थता ही क्या है? भागवतमें स्पष्ट लिखा है कि 'यदि स्वधर्म त्याग कर हरिके चरणोंका आश्रय ग्रहण कर ले और फिर भी इतस्ततः भ्रमण कर कर्म करे तो उसका उपयोग ही क्या ?

त्यक्त्वा स्वधर्मं चरणाम्बुजं हरे—
भंजन्नपक्वोऽथ पतेत् ततोयदि। (भा० १, ५, १७)

भागवतमें स्पष्ट लिखा है :—**धर्मान् सन्त्यज्य यः सर्वान् मां भजेत स सत्तमः।** (११, ११, ६२)। गीताके "**सर्वधर्मान् परित्यज्य**" (१८, ६६)का भी यही मत है।

अनुष्ठेयं बादरायणः साम्य श्रुतेः ३, ४, १९

अनुष्ठेय कर्मोंमें कुछका आचरण करना चाहिये, कुछका नहीं। श्रुतिने साम्यकी ही घोषणा की है। जैमिनिका यह कथन कि त्याग, श्रुति पंगु व्यक्तियोंके लिये ठीक नहीं है। "**न कर्मणा न प्रजया**" इत्यादि श्रुतिसे कर्मके द्वारा मुक्ति लाभ नहीं होता, उसका त्याग ही उचित है।

एकश्चरेन्महीमेतां निः संगः संयतेन्द्रियः।
आत्मक्रीड आत्मरत आत्मवान् समदर्शनः॥ (भा० ११, १८, २०)

ज्ञाननिष्ठो विरक्तोवा मद्भक्तो वानपेक्षकः।
सलिंगानाश्रमांस्त्यत्वा चरेदविधिगोचरः॥ (भा० ११, १८, २८)

इत्यादि प्रमाणोंसे भागवतकार सम्पूर्ण कर्मोंके परित्यागको ही सिद्ध करके भगवान्की शरणका माहात्म्य प्रतिपादित करता है?

विधिर्वा धारणवत् ३, ४, २०

जिस प्रकार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यको वेदग्रहणका विधान है उसी प्रकार "**केन स्यात् येन स्यात्तेनेदृशः**" (वृ० ३, ५, १) इत्यादि श्रुति वर्णित विधि परिनिष्ठित ज्ञानीके पक्षमें है। असमर्थ व्यक्तिके पक्षमें नहीं है।

शौचमाचमनं स्नानं न तु चोदनया चरेत्।
अन्यांश्च नियमान् ज्ञानी यथाहं लीलयेश्वरः॥ (भा० ११, १८, ३६)

प्रकृतिस्थो व्यसंसक्तो यथा खं सवितानितः। (भा० ११,११, ४५)

इत्यादिसे भागवतमें सिद्ध किया है कि शौच, आचमन एवं स्नान आदिका आचरण भी वेदकी आज्ञासे न करें।

स्तुतिमात्रमुपादानादिति चेन्नापूर्वत्वात् ३, ४, २१

पूर्वपक्षीका यह कथन कि कर्म करना ज्ञानीको यथेच्छ रूपमें विधान है, स्तुतिमात्र है, ठीक नहीं है। क्योंकि अपूर्वत्व ही हेतु है। "**ज्ञाननिष्ठोविरक्तो वा मद्भक्तो वानपेक्षकः**। (भा० ११, १८, २८)।

भावशब्दाच्च ३, ४, २२

मु० उ०में भाववाचक श्रुति गाई है—"**प्राणोचयेष**.........**एषब्रह्मविदां वरिष्ठम्**" (३, १, ४) ज्ञानीको तो समयाभाव है, अतः यह श्रुति लोकसंग्रहके निमित्त कर्मानुष्ठानके निमित्त है। किन्तु ब्रह्मविद्या कर्मनिरपेक्ष भावसे ही युक्तिप्रद है। "**शौचमाचमनं स्नानं**" (भा० ११, १८, ३६)में यही सुस्पष्ट है।

परिप्लवार्था इति चेन्न विशेषितत्वात् ३, ४, २३

सम्पूर्ण आख्यानोंका एक अर्थ ग्रहण नहीं किया जा सकता। क्योंकि आख्यान विशेषोंकी विधि अनर्थक हो जायगी। वृहदारण्यकोपनिषद्में कुछ श्रुतियोंमें ब्रह्म-विद्याका निरूपण है, कुछमें पारिप्लव (यज्ञ कर्मांग विशेष)का वर्णन मिलता है। अतः समस्त वेदान्तका तात्पर्य पारिप्लवार्थक नहीं है। भागवतमें—

वेदा ब्रह्मात्म विषयास्त्रिकाण्ड विषया इमे।
परोक्षवादा ऋषयः परोक्षं च मम प्रियम्॥ (भा० ११, २१, ३५)

\+ \+ \+

मायामानूद्यान्ते प्रतिषिध्य प्रसीदति। (भा० ११, २१, ४३)

उक्त अंशमें कहा गया है कि वेदोंमें ब्रह्म और आत्माका विषय है और ये त्रिकाण्ड विषय भी हैं, अर्थात् कर्मकाण्ड भी इनमें है। परोक्षकी बात कहना ऋषयोंको अच्छा लगता है और मुझे भी परोक्ष प्रिय है, प्रत्यक्ष नहीं। श्री निम्बार्क भाष्यमें भी वेदान्तकी आख्यानपरक श्रुतियोंको विशेष सहित ही सिद्ध किया है। चैतन्यदेव तो वेदका तात्पर्य केवल कृष्ण निरूपण ही मानते हैं :—"**वेदेरप्रतिज्ञा केवल करये कृष्ण के**" (चै० च० म० २०, १४६)।

तथा चैकवाक्यतोपबन्धात् ३, ४, २४

ब्रह्मविद्या निरूपणमें जो आख्यायिकायें वर्णित की गई हैं, वे बुद्धिमें सहजरूपसे आनेके लिये हैं। वैसे ब्रह्मविद्या स्वतन्त्र है, उसे कर्मकी अपेक्षा नहीं है (भा० २, २, ३४)। "**वेदैश्चसर्वैरहमेववेद्यः**" गीता (१५, १५)से भी यही सम्पुष्टि प्राप्त होती है।

अत एवचाग्नीन्धनाद्यनपेक्षा ३, ४, २५

विद्याको स्वातन्त्र्य प्राप्त है, उसका फल मुक्ति है, परन्तु उसे अग्निहोत्रादि-

कर्मकी अपेक्षा नहीं है। अतः यह जो कथन किया गया था कि ज्ञान और कर्मके समुच्चयसे ही मुक्ति लाभ होता है व्यर्थ हो गया। भागवतमें स्पष्ट कहा गया है:— **प्रीयतेऽमलया भक्त्या हरिरन्यत् विडम्बनम्।** (भा० ७, ७, ५१-५२)। हरि केवल शुद्ध भक्तिसे प्रसन्न होते हैं। प्राप्त करनेके लिये न देवत्व न ऋषित्व अपेक्षित है, न बहुज्ञता और न दान-तप-यज्ञ-शौच-व्रतादि। श्री शंकराचार्यने भी स्वीकार किया है कि ब्रह्मज्ञानसे मोक्ष होती है, अतः विद्यासे आगे कर्मकी अपेक्षा नहीं है (शां०भा०)।

सर्वापेक्षा च यज्ञादि श्रुतिरश्ववत् ३, ४, २६

विद्याके अधिकारीका वर्णन :—"जैसे किसी ग्राममें जानेके लिए अश्व आदिकी अपेक्षा है, प्राप्तिके पश्चात् नहीं। इसी प्रकार ब्रह्मविद्या प्राप्तिके लिये यज्ञ जप और शमदमादिकी अपेक्षा है उसके प्राप्त हो जानेपर नहीं।

वेदोक्तमेव कुर्वाणो निःसंगोऽर्पितमीश्वरे।
नैष्कर्म्यां लभते सिद्धिं रोचनार्था फलश्रुतिः॥ (भा० ११, ३, ४६)

फलश्रुति रोचनार्था कहकर भागवताकारने ब्रह्मविद्याकी महत्ताको ही सिद्ध किया है।

शमदमाद्युपेतस्तुस्यात् तथापि तु तद्विधेस्तदंगतया तेषामवश्यानुष्ठेयत्वात् ३, ४, २७

श्रुतिके विधानानुसार यज्ञादि वहिरंग साधन एवं शमदमादि अन्तरंग साधन हैं, अतः विद्याप्राप्तिके लिये ब्रह्मविद्याके इन दोनों अंगोंका अनुष्ठान अपेक्षित है।

अग्निहोत्रञ्च दर्शश्च पौर्णमासञ्च पूर्ववत्।
\+ \+ \+
मां तपोमयमाराध्य ऋषिलोकादुपैतिमाम्॥ (भा० ११, १८, ८-९)

अग्निहोत्र, दर्श, पौर्णमास आदि यज्ञोंका महत्व बतलाया है तथा तपस्या द्वारा भगवान्‌की प्राप्ति ही है। तपस्याके लिए शम—दम प्रथम आचरणीय हैं। इन शम-दमादिके लक्षणोंका वर्णन भी भागवतमें है (भा० ११, १८, २३ ११, १९, २५, ३६-३८)।

सर्वान्नानुमतिश्च प्राणात्यये तत्दर्शनात् ३, ४, २८

परान्नभक्षण विधि नहीं है, अनुमति मात्र है, प्राण संकट पड़नेपर परान्न-भक्षणकी कथा छान्दोग्योपनिषद्‌में प्राप्त होती है।

यद्यस्य वानिषिद्धं स्यात् येनयत्रयतो नृप।
स तेनेहेत कार्याणि नरो मान्यैरनापदि॥ (भा० ७, १५, ६६)

अबाधाच्च ३, ४, २९

सम्पूर्ण जातिके अन्नभक्षणसे चित्तमें कोई दोष नहीं आता, परन्तु ब्रह्मज्ञानीके लिये यह भी आपत्तिकालमें ही है। प्राण धारणके बिना तत्वज्ञान भी सम्भव नहीं

है, अतः भागवतकारने आज्ञा दी है (११, १८, ३४-३५) अन्न, वास-शय्या प्राप्त करनेमें भी दोष नहीं है।

अपि स्मर्यते ३, ४, ३०

इस आपत्तिकालके लिये अनुमति स्मृतियोंने भी दी है (भा० ७, १३, २)। विश्वनाथ चक्रवर्तीने इसकी व्याख्यामें लिखा है कि आपत्तिमें तो त्यक्त वस्तुको भी ग्रहण कर लेना चाहिये। देह रक्षा प्रथम कर्त्तव्य है। सा० द० ७, १३, २)।

शब्दश्चातोकामचारे ३, ४, ३१

विद्वान् व्यक्तिको अनापत्कालमें यथेष्ट भक्षणादि नहीं करने चाहिये।

जघन्यो नोत्तमां वृत्तिमनापदि भजेन्नरः।
ऋते राजन्यमापत्सु सर्वेषामपि सर्वशः॥ (७, ११, १७)

कौण्डिन्य श्रुतिमें लिखा है कि आत्मदर्शी व्यक्ति स्वेच्छाचार न करे। श्री मध्वाचार्यने इसके साथ पद्मपुराणका मत भी उद्धृत किया है। निम्बार्क भाष्यमें **'सुरां न पिबेत्'** वाक्य भी रखा है।

विहितत्वाच्चाश्रमकर्मापि ३, ४, ३२

विद्वान् व्यक्तिको विद्या वृद्धिके लिये आश्रम विहित कर्त्तव्य निष्काम भावसे पालन करने चाहिये।

यद्यनीशो धारयितुं मनोब्रह्मणि निश्चलम्।
मयि सर्वाणि कर्माणि निरपेक्षः समाचर॥ (भा० ११, ११, २२)

इसमें कर्म करते हुए निरपेक्ष रहनेकी आज्ञा है। गीता (३, २७)में भी इसका निरूपण है।

सहिकारित्वेन च ३, ४, ३३

अग्निहोत्रादि कर्म विद्याके सहकारी भावरूपमें ही अनुष्ठेय हैं।

वर्णाश्रमवतां धर्म एष आचार लक्षणः।
स एव मद्भक्तियुतो निःश्रेयसकरः परः॥ (भा० ११, १८, ४७)

'दानादि' मनोनिग्रहके लिये किये जाने चाहिये।

सर्वथापि तत्र वोभय लिंगात् ३, ४, ३४

वर्णाश्रमादि धर्मानुष्ठान परित्याग द्वारा ही भागवत धर्मका अनुष्ठान ब्रह्मवेत्ताको करना चाहिये। भागवत धर्मके अवरोधसे स्वधर्म पालन लोक संग्रहार्थ गौणभावसे ही करना चाहिये। श्रुति और स्मृति इसमें प्रमाण हैं। श्रुति—**"तमेवैकं जानथ"** (मु० २, २, ५)। स्मृति—**"महात्मानस्तु मां पार्थ देवी प्रकृतिमाश्रिताः"** (गीता ९-१३-१४)।

विसृज्यसर्वानन्यांश्च मामेवं विश्वतोमुखम् ।

+ + +

तीव्रेण भक्तियोगेन मनोमय्यर्पितं स्थिरम् ।। (भा० ३, २५, ४०, ४४)

अनभिभवञ्चदर्शयति ३, ४, ३५

अपने वर्ग और आश्रम के उचित कर्म न करनेसे दोष नहीं है। भागवत— जो योगी मेरी भक्ति करता है, उसे न ज्ञानकी अपेक्षा है, न वैराग्य की। (भा० ११, २०, ३१) तथा 'मेरे द्वारा ही उपदिष्ट धर्मोंका परित्याग कर ,मुझे भजनेवाला भक्त ही श्रेष्ठ है। (भा० ११, ११, ३२)।

अन्तरा चापि तु तद् दृष्टेः ३, ४, ३६

आश्रम धर्म विहीन हो जानेपर भी पूर्व जन्मार्जित धर्मादि द्वारा विशुद्ध चित्त होता है, इससे वैराग्यवान्को ब्रह्मविद्या प्राप्त होती है, इसमें गार्गीका उदाहरण है। श्रीभरतके प्रसंगमें यह सूत्र घटित है। वे आश्रम धर्मका परित्याग करते हैं किन्तु पूर्व जन्मानुष्ठानके कारण ही किसीसे, हरिण योनिमें, पुनः ब्राह्मण योनिमें, भी वार्तालाप नहीं करते। (भा० ५, ६, ३) तथा एकादश स्कन्ध (११, २, ३५)में यही वर्णित है।

अपिस्मर्यते ३, ४, ३७

ऋभुगणोंके सम्वादमें इसका उल्लेख भी है। **"पिबन्ति ये भगवत आत्मनः सतां"** (भा० २, २, ३७)। जब भरतने रहूगणको उपदेश दिया है कि जो फल तपस्या, इज्या आदिसे प्राप्त नहीं होता, वह महान् पुरुषोंकी चरणरजसे प्राप्त होता है (भा० ५, १२, १२, १३)। श्री निम्बार्काचार्य जपसे ही सिद्धि मानते हैं।

विशेषानुग्रहश्च ३, ४, ३८

सत्संगके द्वारा भगवान् प्रसन्न होते हैं और विशेष अनुग्रह करते हैं—

न रोधयति मांयोगो न सांख्यं धर्म एव च।

+ + +

यथावरुन्धे सत्संगः सर्वसंगापहो हि माम् ।। (११, १२, १-२)

समदर्शी साधु, मुझे ऐसे वश कर लेते हैं, जैसे सत्कुलोत्पन्न स्त्री, सम्पत्तिको वशमें कर लेती है।

अतस्त्वितरत् ज्यायो लिंगाच्च ३, ४, ३९

आश्रमी याज्ञवल्क्य और निराश्रमी गार्गीमें, गार्गीकी श्रेष्ठता कही है। भागवतमें कहा गया है कि भगवान्के पादपद्मोंसे बढ़कर और कुछ भी नहीं है

(भा० ३, ४, १५)। तथा—"यन्नाम श्रुतिमात्रेण पुमान् भवति निर्मलः" (भा० ६, ५, १६)।

तद्भूतस्य तू नातद्भावो जैमिनेरपि नियमातद्रूपाभावेभ्यः ३, ३, ४०

गृहस्थी व्यक्तिका भाव ईश्वरसे न भी हटे, किन्तु वैराग्यनिष्ठामें व्यवधान पड़ सकता है। किन्तु जैमिनि और वादरायण दोनोंका मत है कि निराश्रमी निरपेक्ष अधिकारी है, वह ब्रह्मरतिसे स्खलित नहीं होता।

"कामादिभिरनाविद्धं प्रशान्ताखिल वृत्ति यत्।

चित्तं ब्रह्म सुख सृष्टं नैवोत्तिष्ठेत कर्हिचित्॥ (भा० ७, १५, ३५)

उतम भक्तसे पूर्व प्रथम भक्तके सम्बन्धमें भी यह लिखा कि—मेरा भक्त विषयोंसे बाध्य होता हुआ भी उनसे तिरस्कृत नहीं होता। (भा० ११, १४, १८)।

न चाधिकारिकमपि पतनानुमानातृतदयोगात् ३, ४, ४१

ब्रह्मविद्यासे स्वर्गादिफल भी प्राप्त होते हैं, तथापि सन्निष्ठ अधिकारीको इन्द्रादि पदकी आशंका नहीं रहती।

न पारमेष्ठ्यं न महेन्द्रधिष्ण्यं।

\+ +

मर्य्यर्पितात्मेच्छति मद्विनान्यत्॥ (भा० ११, १४, १४)

मुचुकुन्दने भी भगवान्से पद प्राप्तिका वर नहीं मांगा।(भा० १०, ५१, ५५)।

उपपूर्वमपिस्त्वेके भावमशनवत् तदुक्तम् ३, ४, ४२

निरपेक्ष ऐकान्तिक भक्तको भगवदुपासनाजनित प्रेमास्वादके अतिरिक्त अन्य कोई भोग नहीं है। यह प्रेम ही आस्वाद्य योग्य है। भा०—

एकान्तिनो यस्य न कंचनार्थं गायन्त आनन्द समुद्र मग्नाः। (भा० ८,३,२०)में भी यही वर्णित है।

बहिस्तूभयथापिस्मृतेराचाराच्च ३, ४, ४३

निरपेक्ष भक्त, प्रपंचमें रहता हुआ भी प्रपंच से दूर रहता है **"विसृजति हृदयं न यस्यसाक्षात्** (११, २, ५५)।

स्वामिनः फलश्रुतेरित्यात्रेयः ३, ४, ४४

श्री भगवान् ही भक्तगणकी देह यात्रा निर्वाहका प्रबन्ध करते है। यह आत्रेय ऋषिका भी मत है। भागवत—

विषयान् ध्यायतश्चित्तं विषयेषुविज्जते।

मामनुस्मरतश्चित्तं मय्येव प्रविलीयते॥ (भा० ११, १४, २७)

विषयोंका ध्यान करनेसे मन विषयोंकी ओर दौड़ता है और मेरा स्मरण करनेसे मेरी ओर। परीक्षितको तो भूख-प्यास भी हरिकथाके समय नहीं लगी थीं (भा० १०, १, १३)। मेरे भक्त, मेरे सिवाय और कुछ प्राप्त नहीं करना चाहते। (भा० ११, २०, ३४)।

भोजनाच्छादनेचिन्तां व्यर्थाः कुर्वन्ति वैष्णवः।
योऽसौ विश्वम्भरो देवः कथंभक्तानुपेक्षते ।।

आर्त्विज्यमित्यौडुलोमिस्तस्मै हि परिक्रीयते ३, ४, ४५

निरपेक्ष धर्मकी रक्षा करना हरिका ऐकान्तिक धर्म है। जैसे ऋत्विक्का कर्म वैसे ही हरिका है। भक्तिके द्वारा भक्त, भगवान्को क्रय कर लेते हैं। दक्षिणाके विनमयसे ऋत्विक अपनेको विक्रय कर देते हैं।

न पारयेऽहं निरवद्य संयुजां।
स्व साधु कृत्यं विबुधाऽयुषापि वः।। (भा० १०, ३२, २२)

भक्तोंके आगे वे अपनी आत्माकी भी प्रशंसा नहीं करते "**नाहमात्मानमाशासेमद्भक्तैः साधुभिर्विना**" (भा० ६, ४, ६४)। अम्बरीश उपाख्यानमें उन्होंने भक्तोंकी महिमाका गान मुक्तकण्ठसे किया है। चै० च०में लिखा है :—

कृष्ण के तुलसी जल देय येइजन।
तार ऋण शोधिते कृष्ण करेन चिन्तन।।
जल तुलसीर सम किछु चरे नाहि धन।
तवे आत्मा वेचि करे ऋणेर शोधन।।
(चै० च० अ० ३, १०४, १०६)

श्रुतेश्च ३, ४, ४६

ऋत्विक् यजमानसे पूछता है, तुम्हारा कौन-सा मनोरथ है, "**कं ते काममागायनि**" जैसे ऋत्विक् दक्षिणा लेकर अपना विक्रय करता है, फल यजमानको मिलता है, ऐसे ही भगवान् भी भक्तके वशमें हो जाते हैं। अम्बरीषोपाख्यानके श्लोकोंमें ही इसका अर्थ है। "**वशे कुर्वन्ति मां भक्ता सत्स्त्रियः सत्पतिं यथा**"।

सहकार्यन्तर विधिः पक्षेण तृतीयं तद्वतो विध्यादिवत् ३, ४, ४७

शम-दम आदि साधनोंका निरूपण वृहदा० (४, ४, २३७)में विद्यालाभसे पूर्व ही किया है। अर्थनादि सकलसाधनोंके मध्य ध्यान श्रेष्ठ है। भागवत—

सर्वं ब्रह्मात्मकं तस्यविद्ययात्ममनीषया।
परिपश्यन्नुपरमेत् सर्वतोमुक्तसंशयः।। (भा० ११, २६, १८)

× × ×

तथा—"**ध्यान प्राप्ताच्युताश्लेषनिर्वृत्याक्षीणमंगलाः**"। (भा० १०, २६, ६-१०)।

कृत्स्नभावात्तु गृहिणोपसंहारः ३, ४, ४८

छान्दोग्योपनिषद्‌में आचार्यकुलात् वेदमधीत्य""""नच""""नच""""पुनरावर्त्तते" प्रसंग द्वारा गृहस्थ धर्मकी श्रेष्ठता ही सिद्ध की है। गृहस्थाश्रमी यथाविधि कर्मानुष्ठान द्वारा ही ब्रह्म प्राप्ति कर सकता है।

एतैरन्यैश्चवेदोक्तैर्वर्त्तमानः स्वकर्मभिः।
गृहेप्यस्य गतिं यायाद्राजंस्तद्भक्तिभाङ्नरः॥ (भा० ७, १५, ६७)

मौनवदितरेषामप्युपदेशात् ३, ४, ४९

सकल धर्म गृहस्थाश्रमके मध्य ही पल्लवित होते हैं। मौनन्यायकी भाँति अन्य आश्रमोंका भी उपदेश है। भागवत—

यदाधर्म विपाकेषु लोकेषु निरयात्मसु।
विरागो जायते सम्यङ् न्यस्ताग्नि प्रव्रजेत्ततः॥ (११, १८, १२)

\+ \+ \+

हृदि कृत्वा हरिं गेहात् प्रव्रजेत् स नरोत्तमः। (भा० १, १३, २७)

अनाविष्कुर्वन्नन्वयात् ३, ४, ५०

विद्या अर्थात् तत्वज्ञान गुह्यभावसे ही उपदेश किया है, श्रुतिमें भी आता है :–

यस्यदेवे पराभक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ।
तस्यैतेकथिताः ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः॥ (श्वेता० ६, २३)
वेत्सि तं सोम्य तत् सर्वं तत्वतस्तदनुग्रहात्।
ब्रूयुः स्निग्धस्य शिष्यस्य गुरवो गुह्यमप्युत॥ (भा० १, १, ८)

ऐहिकमप्रस्तुतप्रतिबन्धे तद्दर्शनात् ३, ४, ५१

यदि प्रतिबन्ध न हो तो विद्याका फल इस जन्ममें ही प्राप्त हो जाता है, यदि प्रतिबन्ध होता है तो जन्मान्तरमें फल होता है। वामदेव ऋषिको गर्भावस्थामें ही विद्याका लाभ हुआ था। भागवतमें भी आया है कि इस जन्ममें ही भागवत गुणोंके सुसंगसे, ज्ञानरूपी तलवारसे, अज्ञानका विनाश कर, भगवान्‌के गुण, कर्म आदि लीला कथा श्रवण और कीर्तन द्वारा उनकी ही स्मृतिका लाभ करता है और संसारसे पार हो जाता है (भा० ५, १२, २६)। भरतने तो तीन जन्मोंमें भगवान्‌के दर्शनोंका लाभ प्राप्त किया था।

"अहंपुरा भरतो नाम राजा"

× ×

"मृगोऽभवं मृगसंगाद्धतार्थः"। (५, १२, १४)

देवर्षि कृपा-प्राप्त ध्रुवने एक जन्ममें ही अल्पकालकी आराधनामें भगवान्‌के दर्शनोंका लाभ प्राप्त किया था। (भा० ४, ९, २)। प्रह्लादने गर्भावस्थामें तत्वज्ञान प्राप्त कर लिया था (भा० ७, ७ १५)। अनेक जन्मोंके अर्जित साधनसे मुक्ति प्राप्तिका उल्लेख गीतामें भी है :—**"अनेक जन्म संसिद्धस्ततोयाति परां गतिम्"** (६, ४५)।

मोक्ष प्राप्ति :— विद्या द्वारा मोक्षकी प्राप्ति होती है, ऐसा श्रुतिमें कहा गया है—**"तमेवमन्य आत्मनं विद्वान् ब्रह्मामृतोमृतन्"** (वृहदा० ४, ४, १७)। यहाँ संशय है कि जिस शरीरसे विद्या लाभ होता है, उसकी मोक्ष होती है या शरीर पतनके बाद मोक्ष होती है। पूर्वपक्षीका कथन है कि मोक्ष तो शरीरके पतनान्तर ही होती है। बादरायणका कथन है कि मुक्तिलाभके विषयमें कोई नियम स्थिर नहीं नहीं है, कि इस जन्ममें होगी या पुनर्जन्ममें, प्रारब्धक्षय होनेके बाद ही मुक्ति हो सकती है। प्रारब्ध रूप प्रतिबन्ध न होनेपर देहपातके पश्चात ही मुक्ति होगी, यदि प्रारब्ध है तो देहान्तरकी अपेक्षा होगी। छान्दोग्योपनिषद्‌में लिखा है—**"आचार्यवान् पुरुषोवेद"** (छा० ६, १४, २)। भागवतमें भी आता है—**"आरब्धकर्मानिर्वाणो न्यपतत् पाञ्चभौतिकः"** (भा० १, ६, २९)। लब्धस्वरूप भक्त निरुपाधिक होकर स्थूल प्रापंचिक शरीरका त्याग करता है। स्वरूपसिद्ध भक्तको ही भगवान्‌की सेवोपयोगी उपकरणरूप स्वीयचिन्मयी प्रतीति ही शुद्ध भगवती तनू कही गई है[1]। यही तत्त्व निम्न सूत्रमें प्रतिफाति है :—

"एवं मुक्तिफलानियमस्तदवस्था धृतेस्तदवस्था धृतेः" ३, ४, ५२

जैसे विद्या साधन सम्पन्न मुक्तिके लिये विद्या प्राप्तिका कोई नियम नहीं है ऐसे मुक्तिका भी कोई नियत नियम नहीं है।

॥ तृतीयाध्यायः चतुर्थपादः समाप्तः ॥

१. प्रनुपादिविवृत्ति ३, ४, ५२।

❋ चतुर्थोऽध्याय प्रथमपादः ❋

चतुर्थोध्यायमें फलकी विचारणामें उसके अन्तरंग साधनरूप श्रवण आदिका विचार किया जाता है। श्रवणादि एक बार करने चाहिये या बारं-बार, इसपर ब्रह्म-सूत्रकारका कथन है कि वे बार-बार करने चाहिये।

आवृत्तिरसकृदुपदेशात् ४, १, १

भागवतमें पृथुचरितमें कहा है कि इस प्रसंगको प्रतिदिन सुनना चाहिये।

"अनुदिनमिदमादरेणश्रृण्वन्" (भा० ४, २३, ३६)

+ +

"अहोविरज्येत विना नरेतरम्" (भा० ३, १३, ५२)

संसारमें पशुओंको छोड़कर अपने पुरुषार्थका सार जाननेवाला ऐसा कौन पुरुष होगा, जो आवागमनसे छुड़ा देनेवाली भगवान्‌की प्राचीन कथाओंमें-से किसी भी अमृतमयी कथाका अपने कर्णपुटोंसे एक बार पान करके फिर उनकी ओरसे मन हटा लेगा। चैतन्य चरितामृतमें इसे इस प्रकार कहा है—

निरन्तर कर कृष्णनाम संकीर्तन।
हेलायमुक्ति पारे पारेप्रेमधन॥ (चै०च०म० २५, १८६)

भाष्यकार श्रीरामानुज, माध्व एवं निम्बार्कने भी यहाँ भाष्योंमें बार-बार अभ्यासपर बल दिया है।

लिंगाच्च ४, १, २

महाजनों का आचरण भी ज्ञापक (प्रमाण) होता है, अतः असकृत् श्रवणादि करने चाहिये। भागवत—जैसे-जैसे मनुष्य मेरी पुण्य कथाओंका श्रवण करता है आत्मा स्वच्छ होती है और देहधारी सूक्ष्म वस्तुको भी जान लेता है (भा० ११, १४, २६) और भी—यदि अन्त्यज भी एक बार उन्हीं भगवान्‌के श्रीनामका ग्रहण करले तो उसी क्षण अविद्याके बन्धनसे वह मुक्त हो सकता है। (भा० २, ४, १५ तथा ६, २, १०)। स्कन्दपुराणमें भी ऐसा लिखा है कि जो श्रद्धापूर्वक या निरादरपूर्वक एक बार भी भगवान्‌के नामका उच्चारण करता है उसे कृष्णका नाम तार देता है—

सकृदपि परिगीतं श्रद्धया हेलया वा।
भृगुवर नरमात्रं तारयेत कृष्णनाम॥ (स्कन्द-पुराण)

विश्वनाथ चक्रवर्तीने अपनी टीकामें लिखा है, कि अजामिल नामक पापीका उद्धार नामाभाससे ही हो गया, क्योंकि प्रेमपूर्वक उसने ईश्वरका नाम नहीं लिया, अपने

पुत्रका नाम लिया था 'नारायण'[१]। श्रीनिम्बार्कने अपने भाष्यमें **"अभ्यास योगेन ततो"** गीताके श्लोक द्वारा अभ्यासकी महत्ता सिद्ध की है[२]। लिंगका अर्थ स्मृति वाक्यसे आचार्योंने गृहीत किया है, अतः विष्णुपुराणके **"तद् ध्यानं प्रथमैः षड़भिरंगैर्निष्पाद्यते तथा"**[३] श्लोकका उद्धरण भी दिया है। ईश्वरकी उपासना ईश्वरकी बुद्धिसे की जानी चाहिये या आत्मबुद्धिसे, इसपर विचार किया गया है तथा श्रुति द्वारा ऐसा प्राप्त भी होता है कि ईश्वर बुद्धिसे ही उसकी उपासना करनी चाहिये, इसके उत्तरमें सूत्रकारका कथन है कि ईश्वरकी उपासना आत्मबुद्धिसे करनी चाहिये और ऋषियोंने भी शिष्योंको ऐसा उपदेश दिया है :—

"आत्मेति तूपगच्छति ग्राहयति च" ४, १, ३

भागवतमें भी श्री कपिलदेवने कहा है कि—सर्वतो भावेन मुझमें ही रति करनी चाहिये—**"अहमात्मात्मनांधातः प्रेष्ठः सन् प्रेयसामपि"**[४] तथा—

मोर पुत्र मोर सखा मोर प्रानपति।
एईभावे येई मोरे करे शुद्धभक्ति॥ (चै०च० आदि ४, २१)

चैतन्यमहाप्रभुने भी पुत्रादि भावसे स्नेह करनेका आदेश दिया है। श्रीरामानुजने भी कहा है कि उपासकको चाहिये वह आत्मस्वरूपमें ही उपास्यकी उपासना करें[५]।

न प्रतीके न हिसः ४, १, ४

प्रतीक अर्थात् मन प्रभृति इन्द्रिय समुदायमें आत्मबुद्धि नहीं करनी चाहिये क्योंकि 'प्रतीक' ईश्वर नहीं है। मन तो केवल उसका अधिष्ठान मात्र है। मनमें ब्रह्मबुद्धि करनेकी चर्चा, छा० उ०में आई है (३, १८, १)। स्मृतिमें भी आता है कि आकाश प्रभृति श्रीहरिके शरीरके अवयव हैं (गो० भा० ४, ४, ४)। भागवतमें स्पष्ट है :—आकाश, वायु, अग्नि, जल, भूमि, चन्द्र, सूर्यादि ज्योतिष मण्डल प्राणिसमुदाय, दिग्मण्डल, वृक्ष, नदी, समुद्र एवं सम्पूर्ण स्थावर-जंगम श्रीहरिके अवयव स्थानीय हैं, इन्हें भी प्रणाम करना चाहिए (भा० ११, २, २१)। चैतन्य चरित्रमें भी कहा है[६]। **"न प्रतीके ब्रह्मदृष्टिः कार्य्या"** प्रतीकमें ब्रह्मदृष्टि नहीं करनी चाहिये। ऐसा माध्वाचार्यने भी लिखा है। निम्बार्कने इसे और भी स्पष्ट करते हुए लिखा है कि प्रतीक उपासनाका आत्मा नहीं है, अतः प्रतीकमें स्वात्मानुसन्धान नहीं करना चाहिये (वे० पारि० ४, १, ४)।

---

१. सा० द० ६, २, १०।
२. वेदान्त पारिजात ४, १, २।
२. विष्णु पुराण ६, ७, ९१।
४. भा० ३, ९, ४२।
५. श्री भा० ४, १ ३।
६. चै० च० म० (८, २७२-२७३)।
७. मा० भा० ४, १, ४।

ब्रह्मदृष्टिरुत्कर्षात् ४, १, ५

ईश्वरके ऊपर आत्म दृष्टिकी भाँति ब्रह्म दृष्टि भी सर्वदा करणीय है। उत्कर्ष ही इसमें हेतु है। ईश्वर अनन्त कल्याण गुणमय वस्तु है। बृहदा० उप०में लिखा है, कि यह आत्मा ब्रह्म है "**अयमात्मा ब्रह्म**" श्रीमद्भागवतमे भी लिखा है—वे मायाके लेशसे रहित, केवल ज्ञानस्वरूप अन्तरात्माके रूपमें एक रसमें स्थित हैं। तीनों कालोंमें सत्य एवं परिपूर्ण हैं। आदि-अन्त रहित हैं। तीनों गुणोंसे रहित सनातन एवं अद्वितीय हैं (भा० २, ६, ३९)। तथा वे निर्गुण, निर्विकार आद्य, अव्यक्त हैं, सत्ता मात्र हैं "**ब्रह्मज्योतिर्निर्गुणं निर्विकारम्**" (१०, ३, २४)।

आदित्यादिमतयश्चांग उपपत्तेः ४, १, ६

उस परमेश्वरकी चक्षुरादिमें सूर्यादिकी बुद्धि करनी चाहिये। क्योंकि उससे भगवान्की ही चक्षुरादिका उत्कर्ष सिद्ध होता है। भागवतमें लिखा है :—"**चक्षुषांशेन रूपाणां प्रतिपत्तिर्यतो भवेत्**" (भा० सा० द० ३, ६, १५)। त्वष्टाका अर्थ सूर्य है[1]। "**यच्चक्षुरासीत्तरणिर्देवयानम्**" (भा० ८, ५, ३६)। इसके द्वारा सूर्य भी भगवान्का अंग कहा है।

आसीनः सम्भवात् ४, १, ७

आसनपर बैठकर ही हरिका स्मरण करना चाहिये, श्वेताश्वतरमें कहा है—"**त्रिरुन्नतं स्थाप्य समं शरीरम्**" (२, ८) अर्थात् शरीरको समरूपमें स्थिर करके बैठना चाहिये। "**सम आसनमासीनः**" (भा० ११, १४, ३१)। सम आसन (ऊँचा-नीचा न हो)पर बैठकर कायाको सीधाकर, सुखपूर्वक बैठे, अपने हाथोंको गोदमें रखकर दृष्टिको नासिकाके अग्रभागपर लगाये। श्री कपिलदेवने भी आसनका महत्त्व माता देवहूतिको बतलाया है :—'शुद्ध देशमें आसन लगाकर, पद्मासन या स्वस्तिकासनसे बैठना चाहिये और सीधा शरीर कर अभ्यास करना चाहिये :—

शुचौदेशे प्रतिष्ठाप्यविजितासन आसनम्।
तस्मिन् स्वस्तिक मासीन ऋजुकायः समभ्यसेत्॥ (भा० ३, २८, ८)

चित्तकी एकाग्रताके लिए आसन आवश्यक है (श्री० ४, १, ७)। भगवद्गीतामें भी आसनका महत्त्व "**नात्युच्छ्रितं नातिनीचम्**" (६, ११) कहकर कहा गया है। मध्व[1] एवं निम्बार्क[2]ने भी बैठकर उपासनाका महत्त्व कहा है।

ध्यानाच्च ४, १, ८

जो निद्रा आदिसे अभिभूत है, वह ध्यान नहीं कर सकता। ध्यान द्वारा उस

१: मा० भा० ४, १, ७। २. वे० पा० ४, १, ७।

तत्त्वको पहिचाना जाता है। "**ते ध्यानयोगानुगता अपश्यन्**" (श्वे० उ० १, ३)। "**ध्यायन् भगवतो रूपं नाद्राक्षीत् किञ्चनापरम्**" (भा० ४, ८, ७७)। ध्रुवने आसनपर बैठकर केवल भगवान्का ध्यान किया। भगवान्के अतिरिक्त उसे कुछ भी दिखलाई नहीं देता था। वृह० उ०के "**निदिध्यासितव्यः**" (६, ५, ६)में लिखा है अर्थात् उसका ध्यान करना चाहिये (श्री० भा० ४, १, ८)। श्री माध्वने परिभाषा भी दी है :—

स्मरणं सर्वदा योग्यं ध्यानोपासनमासने।
नैरन्तर्यं मनो वृत्तिर्ध्यानमित्युच्यते बुधैः।
आसीनस्य भवेत्तच्च न शयानस्य निद्रया॥ (मा० भा० ४, १, ८)

'ध्यान' आसनपर ही विघ्न रहित सम्भव है। "**ध्यायतश्चरणाम्भोजं भावनिर्जित-चेतसा**" (भा० १, ६, १७)। अतः ध्यानके लिये आसन आवश्यक है।

अचलत्वञ्चापेक्ष्य ४, १, ९

देहमें स्थिरता लानेके लिये ध्यान शब्दका प्रयोग है और ध्यानके लिये अथवा स्थिरता लानेके लिये आसन आवश्यक है। ध्यानका महत्व छा० उ०में भी लिखा है—"**ध्यानं वावचित्ताद्भूयो ध्यायतीव ध्यानमुपास्स्वेति**" (छा० उ० ७, ६, १)। इन्द्रियोंको उनके अर्थोंसे खींचकर बुद्धिको सारथि बनाकर सर्वतः मुझे प्रणाम करे—"**प्रणमेन्मयि सर्वतः**" (भा० ११, १४, ४२)। "**प्राणस्यशोधयेन्मार्गं पूर कुम्भकरेचकैः**" (भा० ३, २८, ९)। प्राणायामकी विधि द्वारा अचलता आती है, और ध्यानके लिये निश्चल होना आवश्यक है।

स्मरन्ति च ४, १, १०

ऐसा स्मृतियोंमें भी आता है (गी० ६, ११, १४)। भागवत—धीर व्यक्ति गृहसे सन्यास लेकर पुण्य जलवाले तीर्थोंमें स्नान करता हुआ, पवित्र भूमिमें विधि-पूर्वक आसन लगाकर बैठे और ब्रह्मका ध्यान करे। "**शुचौदेशेप्रतिष्ठाप्यस्थिरमासन-मात्मनः**" (भा० २, १, १६)। पवित्र देशमें स्थिर आसन लगाना चाहिये।

यत्रैकाग्रता तत्राविशेषात् ४, १, ११

जिस देश, दिक् और कालमें चित्तकी एकाग्रता हो उस समय श्रीहरिका ध्यान करना चाहिये। इस ध्यान विधिमें दिक्प्रभृतिका कोई विशेष नियम नहीं है। मनकी अनुकूलता ही अपेक्षित है। श्रीभागवतके—

तत्र सर्वव्यापके चित्तमाकृष्यैकत्र धारयेत्। (भा० ११, १४, ४३)
काष्ठां भगवतो ध्यायेत् स्वनासाग्रावलोकनः। (भा० ३, २८, १२)

श्लोकोंमें भी चित्तकी एकाग्रतापर बल दिया है। **"काले च देशे च मनो न सज्जयेत्"** किसी काल या देशकी प्रतीक्षा मनके लिये नहीं है।

आप्रायणात् तत्रापि हि दृष्टम् ४, १, १२

मुक्ति पर्यन्त उपासना करनी चाहिये तथा मुक्तिसे परे भी उपासनाकी कथा श्रुतियोंमें प्राप्त होती है, इस सूत्रका मूल प्रश्नोपनिषद्में है :—**"स यो ह वै तद्भगवन्मनुष्येषु प्रायणान्तमोंकारमभिध्यायीत"** (प्र० ५, १)। भगवान्‌में आत्माराम मनुष्यकी अहैतुकी भक्ति करते हैं (भा० १, ७, १०)। मुक्त लोग भी लीलाका शरीर धारण करके भगवान्‌का भजन करते हैं। **"मुक्तानामपि सिद्धानाम्"** (भा० ६, १४, ५)से भी सिद्ध भी है कि मुक्त भी भजन करनेके अधिकारी हैं।

तदधिगम उत्तरपूर्वाघयोरश्लेष विनाशौ तद्व्यपदेशात् ४, १, १३

ब्रह्मविद्या प्राप्तिके पश्चात् क्रियमाण कर्मके लेपका अभाव तथा संचित पापका विनाश होता है। पुष्करपलाशकी भाँति क्रियमाण पापका आश्लेष तथा **'तद्यथेषीकातूलम्'** इत्यादिसे कृत पापका विनाश होता है 'पुष्कर पलाश'का प्रयोग छा० उ०में किया है[1]। कमलपत्र जलमें रहता हुआ भी जलमें श्लिष्ट नहीं होता। उपासनाके प्रभावसे निर्लिप्तता आयी है। इस प्रकार भगवान्‌की प्रेममयी भक्तिसे जब संसारकी समस्त आसक्तियाँ मिट जाती हैं, हृदय आनन्दसे भाता है। तब भगवान्‌के तत्वका अनुभव अपने आप हो जाता है।

एवंप्रसन्न मनसो भगवद्भक्तियोगतः।
भगवत्तत्वविज्ञानं मुक्तं संगस्य जायते॥ (भा० १, २, २०)

इतरस्याप्येवमसंश्लेषः पाते तु ४, १, १४

परवर्ती और संचित पुण्यसे भी परे पापकी भाँति लेपाभाव और विनाश विद्या द्वारा होता है। प्रारब्धनाशके पश्चात् मुक्ति तुरन्त हो जाती है। प्रारब्धका क्षय देहपातके बाद होता है, अतः वह परमात्माको प्राप्त होता है। भागवत (४, २२, ३९) में लिखा है कि सन्तलोग जिन भगवान् वासुदेवके चरणकमलोंकी भक्तिसे कर्माशयकी परम्पराको क्षीण कर देते हैं, उनका भजन करना चाहिये। पुण्य और पाप दोनोंसे ही बन्धन है, अतः दोनोंका ही परित्याग करना चाहिये (भा० ५.५,५)। गीता (४, ३७,)में भगवान्‌ने अर्जुनसे कहा कि हे अर्जुन! ज्ञानरूपी अग्निसे सम्पूर्ण कर्मोंका नाश होता है। छा० उ० (८, ४, १) एवं कौषीतकि (१, ४)में भी पुण्य पापसे दूर होकर ही परम साम्यकी प्राप्ति कही गई है। मध्व एवं निम्बार्कने भी इसका स्पष्टीकरण अपने भाष्योंमें किया है।

---

१. (क) छा० उ० ४, १४, ३। (ख) छा० उ० ५, २४, ३।

अनारब्धकार्ये एव तु पूर्वे तदवधेः ४, १, १५

संचित पुण्य और पाप जबतक फल उपपादन नहीं करते, तबतक ही विद्या द्वारा नाश मुखमें पड़ सकते हैं; किन्तु आरब्धफलक पुण्य-पापका नाश विद्या द्वारा सम्भव नहीं है। भागवत (१०, ८७, ४)में लिखा है कि—हे भगवन्! आपके वास्तविक स्वरूपको जाननेवाला पुरुष आपके दिये हुए पुण्य और पाप कर्मोंके फल सुख एवं दुःखोंको नही जानता, नहीं भोगता। वह योग्य और भोक्तापनके भावसे ऊपर उठ जाता है, उस समय विधि-निषेधके प्रतिपादक शास्त्र भी उससे निवृत्त हो जाते हैं, क्योंकि वे देहाभिमानीके लिये हैं। अन्यत्र भी ऐसे प्रमाण मिलते हैं।

अप्रारब्धफलं पापं कूटं बीजंफलोन्मुखम्।
क्रमेणैव प्रलीयन्ते विष्णुभक्ति रतात्मनाम्॥
(सिद्धा० कण० ४, १, १५)

अग्निहोत्रादि तु तत्कार्यायैव तद्दर्शनात् ४, १, १६

अग्निहोत्रादि विहित कर्मोंका अनुष्ठान विधान उन विहित कर्मोंकी रक्षा करनेके लिये ही है, यह श्रुतियों और स्मृतियोंसे सिद्ध है। नित्यकर्म कभी नष्ट नहीं होता "**कर्मणा पितृलोकः**"से स्वर्गप्रापक पुण्यांशका अवश्य विनाश देखा गया है[1] भागवत—**प्रवृत्तञ्चनिवृत्तञ्चद्विविधं कर्म वैदिकम्।**
आवर्त्तते प्रवृत्तेन निवृत्तेनाश्नुतेऽमृतम्॥ (भा० ७, १५, ४७)

वैदिक कर्म दो प्रकारके हैं, प्रवृत्तिपरक और निवृत्तिपरक। प्रवृत्तिपरक कर्मोंसे संसारमें आवागमन बना रहता है, निवृत्तिपरक कर्मसे अमृतपद प्राप्त करता है।

अतोऽन्यापि ह्येकेषामुभयोः ४, १, १७

अनन्य भक्ति सम्पन्न परमार्त्त विरले ही किसी निरपेक्ष भक्तके ही प्रारब्ध कर्मोंका क्षय भोगके बिना सम्भव हो जाता है। "**तत् सुकृत दुष्कृते धुनुते**"[2] ऐसा वाक्य भी उपनिषदोंमें आता है जिसका अर्थ है कि वह कुकृत और दुष्कृत दोनोंको क्षीण कर देता है। भगवान्में ऐसी सामर्थ्य है कि वे बिना किये भोग ही भक्तका उद्धार कर दें। भागवत (५,१,३५)में कहा है—हे राजन्! जिन्होंने भगवच्चरणारविन्दोंकी रजके प्रभावसे शरीरके भूख, प्यास, शोक, मोह और जरा. मृत्यु इन छःको जीत लिया है उन भगवद्भक्तोंका ऐसा पुरुषार्थ होना कोई आश्चर्यकारक नहीं है। क्योंकि वर्ण बहिष्कृत चाण्डाल आदि नीच योनिका पुरुष भी भगवान्के नामका केवल एक बार उच्चारण करनेसे तत्काल संसार बन्धनसे मुक्त हो जाता है। घोर कष्टमें भी भगवान्का नाम रक्षक है[1]।

---

१. भागवत १, ४, १४ २, ४, १५ २, ४, १८ ३, ६, १५ ३, ३, ६ ७, ७, ५४ १२, ३, ४४ आदिमें भी नाम माहात्म्य का निरूपण है।

यदेव विद्ययेति हि ४, १, १८

जिस प्रकार विद्याकी शक्ति कर्मसे बढ़कर दिखाई गई है, उसी प्रकार ईश्वरका अनुग्रह भी जीवके प्रारब्धसे बढ़कर है। छा० श्रुति (१, १, १०)में आता है कि—जैसे कर्म, विद्या, श्रद्धा और रहस्य ज्ञानके सहित किया जाता है, वह अधिक सामर्थ्य सम्पन्न हो जाता है। यह श्रुति उद्गीथ आदिकी उपासनाके प्रकरणकी है, ब्रह्मविद्या नहीं है। भागवत (६ २, ४६)में अजामिलके उदाहरण द्वारा सिद्ध किया है कि वह भगवान्का नाम लेकर अपने बन्धनोंको काटकर तर गया। भगवान्का परम भक्त ध्रुव मृत्युके मस्तकपर अपना चरण रखकर विष्णुलोकको गया (भा० ४, २, २७)। ज्ञानीके प्रारब्ध कर्मोंका नाश कैसे होता है, इस जिज्ञासाका निराकरण अगले सूत्रमें किया है।

भोगेन त्वितरे क्षपयित्वा संपद्यते ४, १, १९

संचित और क्रियमाणके सिवा दूसरे प्रारब्ध रूप शुभाशुभ कर्मोंको तो उपभोगके द्वारा क्षीण करके (वह ज्ञानी) परमात्माको प्राप्त हो जाता है। गौड़ीय सम्प्रदायके अनुसार इस सूत्रका अर्थ इस प्रकार है :—"करुणामय श्रीभगवान्की इच्छानुसार अपने भक्तको पार्षद रूप देकर उसके स्थूल शरीर और सूक्ष्म शरीरका विनाश करते हैं। गजेन्द्र भगवान्के स्पर्शसे अज्ञानके बन्धनसे छूट गया और भगवान्का-सा रूप धारण कर लिया (भा० ८, ४, ६)। इससे भगवान्का-सा रूप प्राप्त होना सिद्ध है। विश्वनाथ चक्रवर्तीका भागवत (४, १, १६)में कथन है कि स्पर्श, मन और वाणी द्वारा हुआ तभी अज्ञान बन्धनसे निवृत्ति गजेन्द्रकी हुई थी। स्पर्शमणि न्याय द्वारा भगवान्के स्पर्शसे भगवान्का रूप प्राप्त हुआ था। "**भोगेन कुशलं पुण्येन पापम्**" (भा० ७, १०, १३) श्लोकमें सूत्रका पद भोगेन ज्योंका त्यों है। इसका अर्थ है कि भोगके द्वारा पुण्य कर्मोंके फल और निष्काम पुण्य कर्मोंके द्वारा पापका नाश करते हुए समयपर शरीरका त्याग करके समस्त बन्धनोंसे मुक्त होकर तुम मेरे पास आ जाओगे। देवलोकमें भी लोग तुम्हारी विशुद्ध कीर्तिका गान करेंगे।

॥ इति चतुर्थाध्यायस्य प्रथमः पादः समाप्तः ॥

※ चतुर्थाऽध्यायः द्वितीयः पादः ※

वाङ्मनसि दर्शनात् शब्दाच्च ४, २, १

छा० उ० (६, ८, ६)में लिखा है कि पुरुष जब प्रयाण करता है तब वाक् मन-में मन-प्राणमें, प्राण-तेजमें, तेज परदेवतामें, मिलता है। उपनिषद् और ब्रह्मसूत्रका यह आशय भागवतमें इस प्रकार वर्णित है—**"वाचं जुहाव मनसि तत्प्राण इतरे च तम्"** (भा० १, १५, ४१)। "युधिष्ठिरने दृढ़ भावनासे वाणीको मनमें, मनको प्राणमें लगाया।"

अतएव च सर्वाण्यनु ४, २, २

इसीसे यह भी समझना चाहिये कि उनके साथ-साथ समस्त इन्द्रियाँ मनमें स्थित हो जाती हैं। भागवतमें **"वाचं जुहाव मनसि तत्प्राण इतरे च तम्"** (१, १५, ४१)में ही इसकी व्याख्या हो चुकी है।

तन्मनः प्राण उत्तरात् ४, २, ३

उत्तरात्=सकल इन्द्रिय सहित मन, प्राणसे संयुक्त होता है **"प्राणान् नियच्छे-न्मनसा जितासुः"** (भा० २, २, १५)में स्पष्ट है कि प्राणोंको वशमें करना चाहिए।

सोऽध्यक्षे तदुपगमादिभ्यः ४, २, ४

जीवात्माके गमन आदिके वर्णनसे यह सिद्ध है कि वह प्राण, मन और इन्द्रियोंके साथ अपने स्वामी जीवात्मामें स्थित हो जाता है। **"सर्वमात्मन्यजुहवीद् ब्रह्मण्यात्मानमव्यये"** (भा० १, १५, ४२)। आत्मामें सब प्राणोंकी सत्ता सिद्धकी गई है। श्रीनिम्बार्कने भी कहा है **"प्राणोजीवेन संयुज्यते"** (वे०सू० ४, २, ४)।

भूतेषु तच्छ्रुतेः ४, २, ५

श्रुति प्रमाणसे यह सिद्ध होता है कि प्राण, पांच सूक्ष्मभूतोंमें स्थित होता है। जब देह पंचत्वको प्राप्त होता है, देही जीव कर्मके वश होकर देहान्तरोंको प्राप्त करके पूर्व धृतशरीरको त्याग देता है (भा० १०, १, ३९)।

नैकस्मिन्दर्शयतो हि ४, २, ६

एक तेजस्तत्त्वमें स्थित होना नहीं माना जा सकता, क्योंकि श्रुति और स्मृति, दोनों जीवात्माको पांच भूतोंसे मुक्त होना दिखलाती हैं। तेज कथनसे पांचों तत्वोंका ग्रहण है (ब्र० सू० ३, १, २)। **"तत्तेवयंलोकसिसृक्षयाद्य"** (भा० ३, ५, ४८)में इसका वर्णन है।

समानाचासृत्युपक्रमादमृतत्वंचानुपोष्य ४, २, ७

देवयान मार्ग द्वारा ब्रह्मलोकमें जानेका क्रम आरम्भ होनेतक दोनोंकी गति समान ही है। क्योंकि सूक्ष्म शरीरको सुरक्षित रखकर ही ब्रह्मलोकमें अमृतत्व लाभ करना ब्रह्मविद्याका फल बताया गया है। "**उदरमुपासते य ऋषिवर्त्मसु कूर्पदृशः**" इस वेदस्तुतिमें विभिन्न वादोंका संकेत दिया है, तथा समान गतिमें भी वैमत्य सिद्ध किया है।

तदापीतेः संसार व्यपदेशात् ४, २, ८

ग्रन्थोंमें बार-बार जन्म ग्रहणका कथन है, अतः उसका वह सूक्ष्मशरीर, मुक्तावस्था तक रहता है। इसलिये नूतन स्थूल शरीर प्राप्त होनेके पहले-पहले उनका परमात्मामें स्थित रहना प्रलयकालकी भाँति है। खट्वांग नामक राजर्षि अपनी मुहूर्त पर्यन्त आयुकी अवधि जानकर हरि भगवान्‌की शरणमें पहुँच गया (भा० २, १, १३-१५)।

सूक्ष्मंप्रमाणतश्च तथोपलब्धे ४, २, ९

भूत समुदाय सूक्ष्म है, यह वेदसे भी प्रमाणित है। विद्वान् व्यक्ति इसी जीवनमें अमृतत्व प्राप्त कर लेता है और उसका शरीर सम्बन्ध भी बना रहता है। प्राण जब निकलते हैं किसीको दिखाई नहीं देते, अतः प्रत्यक्ष प्रमाण से भी भूतोंकी सूक्ष्मता सिद्ध है।

देवेन जीवभूतेन लोकाल्लोकमनुव्रजन्।
भुञ्जान एव कर्माणि करोत्यविरतं पुमान्॥ (भा० ३, १३, ४३)

देहसे यह जीव लोकोंसे लोकोंमें चला जाता है।

नोपमर्देनातः ४, २, १०

उपमर्द=स्थूल शरीरके दाहादि हो जानेपर भी सूक्ष्म भूत समुदायका नाश नहीं होता।

"**न यावदेतां तनुभृन्नमरेन्द्र**"
× ×
वेदातथ तत्त्वं भ्रमतीह तावत्" (भा० ५, ११, १५)में

यही बात कही गई है कि जबतक आत्म तत्त्वका ज्ञान नहीं है, तबतक विश्वमें जीवका भ्रमण रहता है।

तस्यैव चोपपत्तेरेष ऊष्मा ४, २, ११

शरीरमें ऊष्मा सूक्ष्म शरीरकी ही है। युक्तिसिद्ध यह तथ्य है कि क्योंकि सूक्ष्म शरीरके निकल जानेपर स्थूल शरीर गरम नहीं रहता। "**विकर्षतोऽन्तर्हृदयात्**

द्दासीपतिमजामिलम्" (भा० ६, १, ३१)। अजामिलके शरीरसे प्राणोंको खींचा गया, इसका वर्णन इसमें किया गया है। तृतीय स्कन्धमें भी कहा है कि भूतेन्द्रिय मनोमय देह, जीवके पीछे निकल जाता है। उनका विरोध ही मरण और आविर्भाव ही, जन्म कहा गया है (भा० ३, ३१, ४४)।

प्रतिषेधादिति चेन्न शारीरात् ४, २, १२

प्रतिषेध होनेके कारण (गमन नहीं होता) यह ठीक नहीं। क्योंकि प्रतिषेध वचनके द्वारा जीवात्मासे प्राणोंको अलग होनेका निषेध किया गया है (भा० ३, ३१, ४४)।

स्पष्टोह्येकेषाम् ४, २, १३

माध्यन्दिन शाखाध्यायीके अनुसार शरीरसे प्राणोंके उत्क्रमण न होनेकी बात कही है। अन्यत्र भी ऐसा लिखा है[1]। महापुरुषका लोकान्तरमें गमन नहीं होता[2]। उत्तानपादके पुत्र ध्रुवने मृत्युको देखा और उसके सिरपर पैररखकर विष्णुके लोकको चला गया (भा० ४, १२, ३०)। 'ध्रुव' शरीर एवं प्राण सहित ही विष्णुलोकमें गया, प्राणोंसे रहित नहीं।

स्मर्यते च ४, २, १४

स्मृतिमें भी यह सिद्ध है। विजितात्मा पुरुष, शान्त ब्रह्मको प्राप्त होते हैं (गीता ५, २५)। भागवतमें लिखा है :—योगी पादमूल (एड़ी) द्वारा गुद द्वारको रोककर प्राणोपाधि युक्त आत्माको, क्रमशः हृदय, वक्ष, कण्ठ और मस्तकमें लेजाकर, ब्रह्मरन्ध्र द्वारा ब्रह्मके समीप ले जाता है, देह यहीं रह जाता है। (भा० ११, १५, २४)

तानि परे तथा ह्याह ४, २, १५

प्राण-इन्द्रियाँ, सूक्ष्मभूत तथा इन्द्रियाँ परब्रह्ममें लीन होते हैं। ऐसा छा० श्रुति (६, ८, ६)का मत है। भागवतके **"उदरमुपासते"** (१०, २७, १८)में इसका व्याख्यान है।

अविभागो वचनात् ४, २, १६

'ब्रह्मज्ञानी' विभाग रहित होकर अपने कारणभूत ब्रह्ममें मिल जाता है। नदी जैसे समुद्रमें विलीन हो जाती है, यह दृष्टान्त दिया गया है। **"निरोधोऽस्या-**

---

१. (क) नृसिंहो० ५।
(ख) वृ० उ० ४, ४, ७ अत्र ब्रह्म समश्नुते।
२. प्रश्नो० ४, ११।

नुशयनम्" (भा० २, १०, ३)। मरणकालमें साधारण मनुष्यका जीवात्माके सहित उस परमदेवमें स्थित होना कहा गया है तथा अपने कर्मानुसार भिन्न-भिन्न योनियोंमें कर्मफलका उपयोग करनेके लिये वहीं से उनका जाना भी बताया गया है। (कठो० २, ५, ७)। परन्तु ब्रह्मज्ञानी पुरुष परमात्मामें विलीन होता है।

तदोको प्रज्वलनं तत् प्रकाशित द्वारोविद्यासामर्थ्यात्तत् शेषगत्यनुस्मृति योगाच्चहार्दानुग्रहीतः शताधिकया ४, २, १७

स्थूल शरीरसे निकलते समय उस जीवात्माका निवास स्थान जो हृदय है उसके अग्रभागमें प्रकाश हो जाता है। ब्रह्मज्ञानी विद्वान्, गमन विषयक संस्कारकी स्मृतिके योगसे, हृदयस्थ परमेश्वरकी कृपासे अनुग्रहीत हुआ, एक सौ नाड़ियोंसे अधिक सुषुम्णा नाड़ीके द्वारा ब्रह्मरन्ध्रसे निकलता है। (भा० २, २, २४) जीवात्माके आकाश मार्गमें गमन और सुषुम्णाका उल्लेख इस श्लोकमें है जो ब्रह्मसूत्रमें 'शताधिकया' पद कहा है, यह सुषुम्णाके लिये ही है।

रश्म्यनुसारी ४, २, १८

ब्रह्मवेत्ता, सूर्य किरणोंके अनुसार अनुसरण करता है। रात्रिमें भी मृत्यु होनेपर कोई अन्तर नहीं आता है, क्योंकि श्रुतिमें सूर्य किरणोंका ही उल्लेख है। **"सूर्य द्वारेण ते यान्ति पुरुषं विश्वतोमुखम्"** (भा० ३, ३२, ७)। इस भागवत श्लोकमें भी सूत्रकी सम्पुष्टि प्राप्त होती है।

निशि नेति चेन्न सम्बन्धस्य यावद्देह भावित्वात् दर्शयति च ४, २, १९

रात्रिकालमें रविकी रश्मियोंका सम्बन्ध धटित नहीं होता है, ऐसा कथन ठीक नहीं है, क्योंकि जबतक देह सम्बन्ध है तबतक शिरा-रश्मि सम्बन्ध है। ग्रीष्मकालमें रात्रिमें भी ज्वाला उपलब्ध होती है। अन्य समयमें शीतकी प्रतिबन्धकता भागवत द्वितीय स्कन्ध **"तस्मात् भवोरन्तरमुन्नयेत"**में भी दिखलाया गया है।

अतश्चायनेऽपि दक्षिणे ४, २, २०

दक्षिणायन सूर्यमें मृत्युको प्राप्त विद्वान् व्यक्ति भी विद्याका फल प्राप्त करता है। पूर्वपक्षमें शंका की गई थी कि मुक्तिका लाभ उत्तरायण सूर्यमें ही सम्भव है। भीष्म पितामहकी भी उत्तरायण सूर्यकी प्रतीक्षा इसकी पोषक है। परन्तु सूत्रकारका कथन है कि दक्षिणायन समयमें मुक्ति सम्भव है, असम्भव नहीं है। भगवान् श्रीकृष्णके नाम संकीर्तनका स्मरण करता हुआ भक्त, मुक्ति प्राप्त कर लेता है। समयका कोई बन्धन नहीं है। "**त्यजन् कलेवरं योगी मुच्यते काम कर्मभिः** (भा० १, ८, २३)। श्री निम्बार्कने भी स्पष्टरूपेण दक्षिणायनमें मुक्ति लाभ लिखा है।

योगिनः प्रतिस्मर्यते स्मार्त्ते चैते ४, २, २१

ब्रह्मनिष्ठको चन्द्रगति हेय है, अर्चिरादि मार्ग गति ग्रहणीय है ।

एते सृती ते नृप वेदगीते ।
त्वयाभिपृष्टे च सनातने च ॥ (भा० २, २, ३२)

सद्योमुक्ति और क्रममुक्तिका वर्णन शुकदेवजीने राजाको सुनाया है । श्रीनिम्बार्क, मध्वाचार्य एवं श्रीरामानुजका कथन है कि मुक्तिके लिये काल विशेष अपेक्षित नहीं है ।

॥ चतुर्थाध्यायस्यः द्वितीयः पादः समाप्तः ॥

※ चतुर्थाऽध्यायस्यः तृतीयः पादः ※

अर्चिरादिना तत् प्रथितेः ४, ३, १

इस पादमें ब्रह्मलोककी प्राप्ति या विष्णुलोककी प्राप्तिका निरूपण है, तथा ब्रह्मके स्वरूपका भी विवेचन है । निजी उपासनाके फलस्वरूप ही अर्चि आदि मार्गकी प्राप्ति हो जाती है । विभिन्न श्रुतियोंमें विभिन्न स्थानोंपर विभिन्न रूपसे गमनकी कथाका उल्लेख है, यहाँ यह संशय उत्पन्न होता है कि ब्रह्मलोक गमनमार्ग नाना प्रकारका है अथवा नाम पृथक्-पृथक् हैं और मार्ग एक ही है । पूर्वपक्षीयका कथन है कि मार्ग भिन्न-भिन्न हैं । उत्तरपक्षीय सूत्रकारका कथन है कि विद्वान् व्यक्ति अर्चि आदि पथसे ही विष्णुलोकको जाते हैं । विभिन्न मार्गोंका उल्लेख गुणोपसंहार नामसे होता है ।

अग्निः सूर्यो दिवाप्राह्णः शुक्लो राकोत्तरं स्वराट् ।
विश्वोऽथ तैजसः प्राज्ञस्तुर्य आत्मा समन्वयात् ॥ (भा० ७, १५, ५४)

भागवतकारने विद्वान्की मुक्तिका मार्ग इसमें कहा है । 'ज्ञानी' अग्नि, सूर्य, दिन, सायंकाल, शुक्लपक्ष, पूर्णमासी और उत्तरायणके अभिमानी देवताओंके पास जाकर ब्रह्मलोकमें पहुँचता है, यह देवयान मार्ग है ।

वायुमन्दादविशेष विशेषाभ्याम् ४, ३, २

वायुलोकको सम्वत्सरके पश्चात् (और सूर्यसे पहिले समझना चाहिये) क्योंकि

वायुका वर्णन समान भावसे है, और कहीं विशेष भावसे है। कौषीतकि उपनिषद्में वायुका उल्लेख है। भागवतमें भी कहा है :—

देवयानमिदं प्राहुर्भूत्वा भूत्वानुपूर्वशः ।
आत्मयाज्युपशान्तात्मा ह्यात्मस्थो न निवर्त्तते ॥ (भा० ७,१५,५५)

पितृयान–देवयान दोनों ही वेदोक्त मार्ग हैं। छा० उ०में देवयान मार्गका वर्णन इस प्रकार है—"जो वनमें रहकर, श्रद्धापूर्वक, सत्यकी उपासना करते हैं, वे अर्चि (ज्योति, अग्नि, सूर्य किरण)को प्राप्त होते हैं। अर्चिसे दिनको दिनसे शुक्लपक्षको, शुक्लपक्षसे उत्तरायणको, उससे संवत्सरको, संवत्सरसे सूर्यको, सूर्यसे चन्द्रमाको तथा चन्द्रमासे विद्युत्को वहाँसे अमाश्व पुरुष इनको ब्रह्मके पास पहुँचा देता है (छा० उ० ५, १०, १-२)। वृहद् श्रुतिका कथन है कि—जब मनुष्य ब्रह्मलोकको जाता है, तब वह वायुको प्राप्त होता है, फिर सूर्यको, फिर चन्द्रमाको, फिर ब्रह्मलोकको प्राप्त करता है (वृह० ५, १०, १)। कौषीतकिमें कहाहै—देवयान मार्गसे अग्निलोक, वायुलोक, सूर्यलोक, वरुणलोक, इन्द्रलोक, प्रजापतिलोक होकर ब्रह्मलोकमें जाता है। वायु-लोकको संवत्सरके बाद और सूर्यके पहिले मानना चाहिये। वरुणलोक आदिका अर्चि आदि मार्गमें वर्णन नहीं है, अतः ये कहाँ हैं इस जिज्ञासामें अगला सूत्र कहा है।

तडितोऽधिवरुणः सम्बन्धाद् ४, ३, ३

विद्युत्से ऊपर वरुणलोक है। क्योंकि दोनोंका परस्पर सम्बन्ध है। वरुणसे परे इन्द्र और प्रजापतिका सन्निवेश है। अतएव अर्चिसे लेकर प्रजापति पर्यन्त १२ या १३ सोपान माने गये हैं। **"अग्निः सूर्यो दिवा प्राण्हः"** (भा० ७, १५, ५४ में भी इन सोपानोंका उल्लेख है।

अतिवाहिकास्तल्लिगात् ४, ३, ४

अर्चि आदि जड़ नहीं हैं, वे अभिमानी पुरुष हैं। श्रुतिमें वैसे लक्षण देखे गये हैं[1]।

निशम्य म्रियमाणस्य मुखतो हरिकीर्तनम्।
भर्त्तुर्नाम महाराज पार्षदाः सहसा पतन् ॥ (६, १, ३०)

अजामिलने जैसे ही भगवान्का नाम उच्चारण किया भगवान्के पार्षद आगये। अतः अमानवोंका अस्तित्व सिद्ध है, जो मरनेवालेको विष्णुलोकतक पहुँचाते हैं।

उभयव्यामोहात्तत् सिद्धेः ४, ३, ५

अर्चि आदिको जड़मात्र माननेसे वे ब्रह्मलोक आदिमें प्राप्त नहीं करा सकते अतः अभिमानी देव ही मानना उचित है। पूर्वोक्त सिद्धान्तकी पुष्टि इस सूत्रका लक्ष्य है।

वैद्युतेनैव ततस्तच्छ्रुतेः ४, ३, ६

ब्रह्मलोकतक विद्युत्‌लोकमें प्रकट हुए अमानव पुरुष द्वारा ही जीव पहुँचाये जाते हैं। श्रुतिमें ऐसा ही कहा है। भागवतमें अमानवोंको दुर्दर्श कहा है।

कार्यात् बादरिरस्य गत्युपपत्तेश्च ४, ३, ७

बादरि आचार्यका मत है कि वे हिरण्यगर्भ (कार्यब्रह्म)को प्राप्त होते हैं। ब्रह्मविद्याकी उपासना करनेवालोंको जो ब्रह्म प्राप्ति कही गई है, वह परब्रह्म नहीं है, कार्यब्रह्म है, क्योंकि परब्रह्म तो सर्वत्र है।

यच्चक्षुरासीत्तरणिर्देवयानम् ।

त्रयीमयो ब्रह्मण एव धिष्णयम् ।। (भा० ८, ५, ३६)में भी इस कार्यब्रह्मका निरूपण है।

विशेषितत्वाच्च ४, ३, ८

विशेषण देकर स्पष्ट किया है, अतः कार्यब्रह्मकी ही प्राप्ति माननी चाहिये। यहाँ ब्रह्माकी सभामें देवोंका गमन स्पष्ट कहा है (भा० ८, ५, १८)।

सामीप्यात्तु तद्व्यपदेशः ४, ३, ९

ब्रह्मा उस परब्रह्मका पहला कार्य है, अतः वह कथन ब्रह्मकी समीपताके कारण है। **"यद् गत्वा न निवर्तेत योगीलिंग विनिर्गमे"** (भा० ३, २७, २८-२९)में इसीकी पुष्टि की गई है।

कार्यात्यये तदध्यक्षेपेणसहातः परमाभिधानात् ४, ३, १०

कार्यरूप ब्रह्मलोका नाश होनेपर उसके स्वामी ब्रह्माके सहित इससे श्रेष्ठ परमात्माको प्राप्त होनेका कथन है (मु० ३, २, ६)। पुनरावृत्ति न होनेका भी यही रहस्य है। ब्रह्माकी आयु दो परार्द्ध मानी गई है और तभीतक लोकोंकी सत्ता है, उसकी आयुके साथ-साथ लोकोंका भी क्षय हो जाता है (भा० ३, ३२, ८)।

स्मृतेश्च ४, ३, ११

स्मृतिमें भी ऐसा प्रमाण उपलब्ध है। सत्यलोक गत भगवदुपासक गण महाप्रलयकालमें ब्रह्मा सहित श्रीहरिके पद अर्थात् वैकुण्ठमें प्रवेश करते हैं।

"ब्रह्मप्रधानमुपयान्त्यगताभिमानाः" (भा० ३, ३२, १०)

ब्रह्मणा सह ते सर्वे संप्राप्ते प्रतिसंचरे ।
परस्यान्ते परात्मानः प्रविशन्तिपरंपदम् ॥

में भी उसकी सम्पुष्टि की गई है। श्रीमध्वाचार्य एवं श्रीरामानुजाचार्यने अपने भाष्योंमें उद्धृत किया है, और यह भी कहा है कि यह वादरि आचार्यका मत है।

परं जैमिनिर्मुख्यत्वात् ४, ३, १२

जैमिनिका मत है कि ब्रह्म शब्दसे परब्रह्म ही मानना चाहिये, ब्रह्मा नहीं। ब्रह्म शब्दका उल्लेख छा० उ० (४, १५, ५)में हुआ है। कार्य ब्रह्मका बोध, मुखवृत्ति (अभिधा)से नहीं होता। परब्रह्मपरमात्माके व्यापक होते हुए भी उनके लोकमें उपासकोंके गमनका वर्णन आता है (कठ० १, ३, ६), (प्रश्न० १, १० आदि उपनिषदों एवं गीता (१५, ६)में भी इसकी पुष्टि की गई है। ब्रह्मकी प्राप्तिके अनेक मार्ग हैं। स्थूल दृष्टिवाले, मणिपुर चक्रमें अग्नि रूपसे आपकी उपासना करते हैं। अरुण वंशके ऋषि, नाड़ियोंके निकलनेके स्थान हृदयमें, आपके परम सूक्ष्म सूक्ष्म स्वरूप दहर ब्रह्मकी, उपासना करते हैं (भा० १०, ८७, १८)। यहाँ श्रीधरस्वामीका मत है कि उनके चिन्तन करनेसे मृत्यु भयका नाश होता है।

दर्शनाच्च ४, ३, १३

ब्रह्म शब्दसे परब्रह्मका बोध होता है, इसमें और भी प्रमाण हैं। सुषुम्णा नाड़ी द्वारा ऊपर उठकर अमृतत्वकी प्राप्ति छा० उ० (८, ६, ६)में लिखी है। भगवान्‌की नाभिसे कमल हुआ और इस कमलसे विश्वरचयिता ब्रह्माकी उत्पत्ति हुई (भा० १, ३, २)।

न च कार्येप्रतिपत्ताभिसन्धिः ४, ३, १४

ब्रह्मविद्याके उपासकोंका प्राप्ति विषयक संकल्प भी कार्य ब्रह्मके लिये नहीं है। श्वेताश्वतरोप० (४, १६)में भी ऐसा वर्णन है। भागवतमें भी कहा है—हे उद्धव ! अनेकों प्रकारके गुण और कर्मोंसे युक्त देह, इन्द्रिय आदि पदार्थ पहले अज्ञानके कारण आत्माके अभिन्न मान लिये गये थे. उनका विवेक नहीं था, आत्मदृष्टि हानेपर अज्ञान और उसके कार्योंकी निवृत्ति हो जाती है। (भा० ११, २८, ३३)।

अप्रतीकालम्बनान्नयतीति बादरायण उभयथादोषात्तत्क्रतुश्च ४, ३, १५

वाणी आदि प्रतीकका अवलम्बन करके उपासना करनेवालोंके सिवा अन्य सब उपासकोंको अर्चि आदि देवगण देवयान मार्गसे ले जाते हैं। दोनों प्रकारकी मान्यतामें कोई दोष नहीं है, अतः परब्रह्म और कार्यब्रह्म दोनोंको प्राप्त कराना सिद्ध होता है। ऐसा व्यासदेवका मत है (भा० ३, ३३, ११)। तथा—"यह सम्पूर्ण जगत् ब्रह्म ही है। जब यह सम्पूर्ण जगत् नहीं रहता, आप तब भी बने रहते हैं। आप पृथ्वीके समान विकारी भी नहीं हैं। आप एक रस हैं। हम चाहें जिस नाम या रूपका वर्णन करें, वह आपका ही नाम, आपका ही रूप है (भा० १०,८७,१५)।

विशेषं च दर्शयति ४, ३, १६

प्रतीकोपासनावालोंको अर्चि मार्गसे न ले जानेका कारण छा०श्रुति (७, २, २)में स्पष्ट है। प्रतीकोपासनाका फल ही पृथक् है। अतः उपासक देवयान मार्गसे न तो कार्यब्रह्मके लोकमें जानेके अधिकारी हैं, और न परब्रह्म परमेश्वरके धाममें ही जानेके अधिकारी हैं। अतः इस मार्गके अधिकारी देवताओंका अर्चि मार्गसे उनको न ले जाना उचित ही है।

ये तु सर्वाणि कर्माणि मयि सन्यस्य मत्पराः।
अनन्येनैव योगेन मां ध्यायन्त उपासते ॥

भगवान्‌के पार्षदोंने कहा कि हे ध्रुव! भगवान् विष्णुका वह परम धाम सारे संसारका वन्दनीय है, आप उसमें पधारें। (भा० ४, १२, २६)।

॥ इति चतुर्थाध्यायस्य तृतीयः पादः समाप्तः ॥

※ चतुर्थाध्यायस्य चतुर्थः पादः ※

सम्पद्याविर्भावः स्वेनशब्दात् ४, ४, १

परमधामको प्राप्त होकर (इस जीवका) अपने वास्तविक स्वरूपसे प्राकट्य होता है, श्रुतिमें भी ऐसा कथन है।

निरोधोऽस्यानुशयनमात्मनः सह शक्तिभि।
मुक्तिर्हित्वाऽन्यथा रूपं स्वरूपेण व्यवस्थितिः॥ (भा० २,१०,६)

जब भगवान् योगनिद्रा स्वीकार करके शयन करते हैं, तब इस जीवका अपनी उपाधियोंके साथ उसमें लीन हो जाना विरोध है, अनात्म भावका परित्याग करके अपने वास्तविक स्वरूपमें (परमात्मा)में स्थित होना ही 'मुक्ति' है (भा० २,१०,६)। मुक्त लोग भी लीलासे विग्रह धारण करके भगवान्‌को भजते हैं (भा० ७,७,३६)।

मुक्तः प्रतिज्ञानात् ४, ४, २

'मुक्त' सब प्रकारके बन्धनोंसे मुक्त होता है। मु० उ० (३, २, ६)में भी कहा है, आत्मतत्व अत्यन्त दुर्ज्ञेय है। मायारचित जीवोपाधिक मनकी विभूतियाँ

अनन्त हैं, ये सब अनादिकालसे हैं। ये जाग्रत् और स्वप्नावस्थामें आविर्भूत होती हैं और सुषुप्ति एवं समाधि अवस्थामें तिरोहित होती हैं। संसार मुक्त क्षेत्रज्ञ जीव ही इसका दृष्टा है (भा० ५, ११, १२)।

आत्मा प्रकरणात् ४, ४, ३

प्रकरणसे यह सिद्ध होता है कि आत्मा, परमात्माके समान शुद्ध स्वरूपसे युक्त हो जाता है (गीता १४, २)। आत्मा शब्दसे जीवात्मा और परमात्मा दोनोंका ही बोध होता है। परम ज्योतिको प्राप्त करके जीव अपने स्वाभाविक स्वरूपमें प्रतिष्ठित हो जाता है (मु० उ० ३, १, ३)। वह परम ज्योति श्रीहरि हैं। जगत्से विमुख जीव श्रीहरिका आश्रय प्राप्त करके अपने स्वरूपको प्राप्त करता है। आपका स्वरूप समस्त जीवोंका ही अपना स्वरूप है। जो गुरुरूप सूर्यसे तत्त्वज्ञानरूपी दिव्य दृष्टि प्राप्त करके उससे आपको अपने स्वरूपके रूपमें साक्षात्कार कर लेते हैं, वे इस झूठे संसार सागरको मानो पार कर लेते हैं (१०, १४, २४)।

अविभागेन दृष्टत्वात् ४, ४, ४

उस मुक्तात्माकी स्थिति उस परब्रह्ममें अविभक्त रूपसे होती है, क्योंकि यही बात श्रुतिमें देखी गई है। मुक्तात्मा, उस परब्रह्म परमात्मामें अविभक्त रूपसे ही स्थित होता है। मुण्डकोप० (३, २, ८)में नदीका दृष्टान्त दिया है कि जैसे नदी समुद्रमें मिल जाती है, ऐसे जीव परमात्मामें स्थित हो जाता है। मूल मुक्ति सायुज्य ही है, सालोक्य आदि मुक्ति उसीके प्रकार हैं।

परम भक्ति योगानुभावेन परिभावितान्तर्हृदयाधिगते ।
भगवति सर्वेषां भूतानामात्मभूते प्रत्यगात्मन्येवात्मनस्तादात्म्यमविशेषणसमीयुः ॥
(भा० ५, १, २७)

ब्रह्मेण जैमिनिरुपन्यासादिभ्यः ४, ४, ५

जैमिनिका मत है कि वह जीवात्मा ब्रह्मके सदृश रूपसे स्थित होता है। वह निर्मल होकर परम समताको प्राप्त होता है (मु० उ० ३, १, ३)।

प्रयुज्यमाने मयि तां शुद्धां भागवतीं तनूम्।
आरब्ध कर्म निर्वाणो न्यपतत् पाञ्च भौतिकः ॥ (भा० १, ६, २६)

शुद्ध भागवती तनूमें और निर्मल स्वरूपमें भेद नहीं है।

चितितन्मात्रेण तदात्मकत्वादित्यौडुलोमिः ४, ४, ६

मुक्तात्मा अपने वास्तविक चैतन्यमात्र स्वपरूपसे स्थित होता है, (वृह० ४, ५, १३)। "**यर्हि संसृति बन्धोऽयमात्मनो गुण वृत्तिजः।**" (भा० ११, १३, २८)। बुद्धि-

वृत्तियोंके द्वारा होनेवाला यह बन्धन ही आत्मामें त्रिगुणमयी वृत्तियोंका दान करता है, इन तीनों अवस्थाओंसे विलक्षण और उनमें अनुगत मुझ तुरीय तत्त्वमें स्थित होकर इस बुद्धिके बन्धनका परित्याग कर दे। तब विषय और चित्त दोनोंका युगपत् त्याग हो जाता है।

एवमप्युपन्यासात् पूर्वभावादविरोधं बादरायणः ४, ४, ७

बादरायणका कथन है कि पूर्वोक्त दोनों मतोंमें कोई विरोध नहीं है। 'मुक्तात्मा'का स्वरूप परमात्माके सदृश दिव्यगुणोंसे सम्पन्न है। 'मुक्तात्मा' चेतनमात्र है। जैमिनिका मत है।

सूत्र (४, ४, ४)में अभिन्न रूपसे स्थित होनेका वर्णन मिलता है। अतः यह मानना चाहिये कि मुक्तोंकी भावनानुसार उसकी तीनों प्रकारकी ही स्थिति हो सकती है।

त्वं नित्य मुक्त-परिशुद्ध विशुद्ध-आत्मा।
कूटस्थ आदिपुरुषो भगवांस्त्र्यधीशः॥ (भा० ४, ६, १५)

संकल्पादेव तच्छ्रुतेः ४, ४, ८

भोगोंकी प्राप्ति तो संकल्पसे ही होती है। छा० श्रुति (८, १२, ५-६)में भी कहा है। कर्दमजीके संकल्प करते ही मनके सम्बन्धसे चलनेवाला विमान आगया।

प्रियायाः प्रियमन्विच्छन् कर्द्दमोयोगमास्थितः।
विमानं कामगं क्षत्तस्तर्ह्येवाविरचीकरत्॥ (भा० ३, २३, १२)

अतएवचानन्याधिपतिः ४, ४, ९

इसीलिये तो मुक्तात्माको, ब्रह्माके सिवा अन्य स्वामीसे रहित बताया गया है। भगवान्ने दुर्वासासे कहा कि, साधु मेरे हृदय हैं, और मैं साधुओंके हृदयमें रहता हूँ, वे मेरे सिवाय औरको नहीं जानते और मैं किसी अन्यको नहीं जानता।

साधवो हृदयं मह्यं साधूनां हृदयंत्वहम्।
मदन्यत्ते न जानन्ति नाहं तेभ्यो मनागपि॥ (भा० ९, ४, ६५-६८)

अभावं बादरिराह ह्येवम् ४, ४, १०

बादरिआचार्यका कथन है कि मुक्तात्माका शरीर नहीं होता है। वह केवल मनसे ही उन भोगोंको भोगता है (छा० उ० ८, १२, ५)। भागवत (७, १, ३४)में भी वर्णित है।

भावं जैमिनिर्विकल्पामननात् ४, ४, ११

जैमिनि मुक्तात्माके शरीरका अस्तित्व मानता है।

वसन्ति यत्र पुरुषाः सर्वे वैकुण्ठ मूर्त्तयः।
ये निमित्त निमित्तेन धर्मेणाराधयन्हरिम् ।। (भा० ३, १२, १४)

भागवतमें वैकुण्ठ मूर्ति रूपमें मुक्तात्माओंका विष्णुलोकमें रहना लिखा है।

द्वादशाहवदुभयं बादरायणोऽतः ४, ४, १२

वेदव्यासका कथन है, कि दोनों मतोंसे द्वादशाह यज्ञकी भाँति दोनों प्रकारकी स्थिति उचित है। अर्थात् उपासकके संकल्पानुसार शरीरका रहना और न रहना दोनों ही सम्भव हैं। द्वादशाह यज्ञ, अनेक कर्त्तक होनेपर सत्र और नियत कर्त्तक होनेपर 'अहीन' माना गया है, इसी प्रकार मुक्तात्माका स्थूल शरीरसे युक्त होकर दिव्य भोगोंका भोगना और बिना शरीरके केवल मनसे ही उनका उपभोग करना भी सम्भव है।

तन्वभावेसन्ध्यवदुपपत्तेः ४, ४, १३

शरीरके अभावमें स्वप्नकी भाँति (भोगोंका उपभोग होता है) मुक्त पुरुषके मानसिक सुखको दूर नहीं किया जा सकता है।

दृष्टिं ततः प्रतिनिवर्त्य निवृत्ततृष्णः।
तूष्णीं भवेन्निज सुखानुभवोनिरीहः ।।

भावे जाग्रद्वत् ४, ४, १४

शरीर होनेपर जाग्रत् अवस्थाकी भाँति उपयोग होता है। उद्धवने श्रीकृष्णसे कहा—हे प्रभो ! हमने आपकी धारण की हुई माला पहनी, आपके लगाये चन्दन लगाये, आपके उतारे हुए वस्त्र पहने, अतः हम आपकी मायापर विजय अवश्य प्राप्त कर लेंगे। (भा० ११, ६, ४६)।

प्रदीपवदावेशस्तथाहि दर्शयति ४, ४, १५

दीपककी भाँति सभी शरीरोंमें मुक्तात्माका प्रवेश हो सकता है। एक ही मुक्तात्मा अपने संकल्पसे रचे हुए समस्त शरीरोंमें प्रविष्ट होकर दिव्यलोकके भोगोंका उपयोग कर सकता है (छा० ७, २६, २)। ध्रुवने भगवान्‌की स्तुति करते हुए कहा है :—हे प्रभो ! आप सर्वशक्ति सम्पन्न हैं, आपने ही मेरे अन्तःकरणमें प्रवेशकर, अपने तेजसे मेरी इस सोयी हुई वाणीको सजीव किया है तथा हाथ, पैर, कान और त्वचा आदि अन्यान्य इन्द्रियों एवं प्राणोंको भी चेतनता दी है। (भा० ४, ६, ६)।

स्वाप्ययसम्पत्योरन्यतरापेक्षमाविष्कृतं हि ४, ४, १६

श्रुतियोंमें जो किसी प्रकारका ज्ञान न रहनेकी, और समुद्रमें नदीकी भाँति-

उस परमात्मामें मिल जानेकी बात कही गई है, वह कहीं (वृह० ४, ३, ३६) सुषुप्ति अवस्थाको लक्ष्यमें रखकर कही है, कहीं प्रलयकालको लक्ष्य करके (प्रश्न० ६, ५)। कहीं परब्रह्मकी प्राप्ति अर्थात् सायुज्य मुक्तिको लेकर वैसा कहा गया है (मु०३,२,८)। वृह० उप० (२, ४, १२)में भी ऐसा कहा है। उद्धवने कहा—हे ! भगवन् आपकी मोहिनीने मेरा ज्ञानदीप छीन लिया था, अब आपने कृपा करके फिर अपने सेवकको लौटा दिया (भा० ११, २६, ३८)।

जगद्व्यापार वर्जं प्रकरणादसन्निहितत्वाच्च ४, ४, १७

जगत्‌की रचना आदि व्यापारको छोड़कर और बातोंमें ही उनकी सामर्थ्य है, जगत्‌को उत्पति-प्रलयका निरूपण जहाँ भी श्रुतियोंमें[1] आया है, वहाँ 'कार्य' उस परब्रह्मका ही बताया गया है। सूत्रमें भी वर्णन है[2]। भागवतमें प्रारम्भमें ही कहा गया है[3] कि इस जगत्‌की उत्पत्ति–रक्षा और प्रलयका कर्ता भगवान् ही है। शंकराचार्यकी व्याख्या युक्तियुक्त नहीं है, अन्य समस्त आचार्योंकी युक्त है[4]।

प्रत्यक्षोपदेशादितिचेन्नाधिकारिक मण्डलस्थोक्तेः ४, ४, १८

लोकोंमें इच्छानुसार कार्य करनेका अधिकार बताया गया है, ऐसी बात नहीं है, वह वर्णन भोगोंका उपयोग करनेके लिये ही है। भागवतमें स्पष्ट कहा गया है, कि मुक्त लोगोंकी गन्धर्व, यक्ष, नर किन्नर, नागलोकोंमें अव्याहत गति होती है, वे विभिन्न लोकोंमें यथेष्ट विचरण करते हैं (भा० ११, २, २३)। भागवतमें— "**येनस्वरोचिषा विश्वं**" (भा० २, २, ११) तथा "**सृजामितन्नियुक्तोऽहं**" (२,६,२)में भी इसकी पुष्टि की है।

विकारावर्ति चेत्तथा हि स्थितिमाह ४, ४, १९

पुण्यात्मा जन्मादि विकारोंसे रहित ब्रह्मरूप फलका अनुभव करता है।

वसन्ति यत्र पुरुषाः सर्वे वैकुण्ठ मूर्त्तयः।
येऽनिमित्त निमित्तेन धर्मेणाराधयन्हरिम्॥ (भा० ३, १५, १४)

---

१. (क) तै० उ० ३, १ (ख) छा० उ० ६, २, १-३
(ग) ऐ० १, १ (घ) वृ० उ० ३, ७, ३-२३
(ङ) शतपथब्रा० १४, ३, ५, ७ से ३१।

२. ब्र० सू० १, १, २। ३. भागवत १, १, १।

४. सिद्धान्तकण ४, ४, १७ (बंगला)।

दर्शयतश्चैवंप्रत्यक्षानुमाने ४, ४, २०

ब्रह्म द्वारा ही जीवको अनन्त आनन्दका लाभ होता है, ऐसा श्रुति-स्मृति[1] से भी सिद्ध है (भा० १०, ८७, २१ में तथा—"**आत्मारामाश्च मुनयो निर्ग्रन्था अप्युरुक्रमे**" (भा० १, ७, १०)में आत्मारामोंकी अहैतुकी भक्तिक. निर्देश किया है। "**आत्माराम पर्यन्त करे ईश्येर भजन**" (चै० च० म० ६, १५८) ।

भोगमात्रसाम्यलिंगाच्च ४, ४, २१

मुक्त पुरुषका केवल भोग मात्रमें साम्य है स्वरूप साम्य नहीं है।

गतिस्मित प्रेक्षण माषणादिषु।
प्रियाः प्रियस्य प्रतिरूढमूर्त्तयः॥
असावहस्त्वित्यवलास्तदात्मिका ।
न्यवेदिषुः कृष्णविहार विभ्रमाः॥ (भा० १०, ३०, ३)

गोपीगण—कृष्णकी गति, चितवन, भाषणादि द्वारा अपनेको कृष्ण ही कहने लगी थीं। यह प्रेमविकार या महाभाव कहा जाता है। भगवान्‌का भी कथन है कि मुझमें भक्ति करनेसे अमृतत्व प्राप्त होता है।

मयिभक्तिर्हि भूतानाममृतत्वाय कल्पते ।
दिष्टयायदासीन्मत्स्नेहो भवतीनां मदात्मनः॥ (भा० १०.८२,४४)

चैतन्य चरितामृतमें भी कहा है :—

दास्य, सख्य, वात्सल्य, श्रृङ्गार चारिरस
चारिभावे भक्तयतकृष्णतार वश
दास सखा पिता माता प्रेयसीगणलक्ष्य
व्रजे क्रीडा करे कृष्णप्रेमाविष्ट इक्ष।
(चै० च० आदि० ३, ११-१२)

अनावृत्तिः शब्दादनावृत्तिः शब्दात् ४, ४, २२

ब्रह्मलोकमें गये हुए आत्माका पुनरागमन नहीं होता है, श्रुतिमें बार-बार यह बात कही गई है कि ब्रह्मलोकमें गया हुआ साधक वापस नहीं लौटता[2]।

नर्कार्हिचिन्मत्पराः शान्तरूपे ।
नंक्ष्यन्ति नो ये निमिषो लेढि हेतिः॥ (भा० ३, २५, ३८)

---

१. तै० २, ७, १ '**रसंह्येवायंलब्ध्वानन्दी भवति**' तथा—
गीता १४, २७ 'ब्रह्मणोहिप्रतिष्ठाऽहम्'।

२. (क) वृ० उ० ६, २, १५ (ख) प्र० उ० १, १०
(ग) छा० उ० ८, ६, ६ ४, १५, ६ ८, १५; १।

मनुष्य समस्त कर्मोंका परित्याग कर मेरी शरणमें जब आता है, तब अमृतत्व प्राप्त कर लेता है। (भा० ११, २६, ३८)। शुकदेवने यह भी कहा है कि जो संसाररूपी सागरको पार करना चाहें, वे पुरुषोत्तम भगवान्की लीलाओंको देखें, कथाओंको सुनें। भगवान्के चरणकमलोंकी नौकाके सिवाय और कोई उपाय भवसागर तैरनेका नहीं है।

संसार सिन्धुमति–दुस्तरमुत्तितीर्षो–
र्नान्यः प्लवो भगवतः पुरुषोत्तमस्य।
लीला-कथा-रस-निषेवणमन्तरेण
पुंसो भवेद्विविध दुःखदवार्दितस्य॥ (भा० १२, ४, ४०)

भगवान्को प्राप्त करनेवालेका पुनर्जन्म नहीं होता। आचार्य शंकरने इतना तो स्वीकार किया है, कि देवयान मार्गसे जानेवाला पुनः जन्म लेकर नहीं आता। मध्वाचार्य, निम्बार्काचार्य, श्रीरामानुजाचार्य एवं बलदेव विद्याभूषणने अपने भाष्योंमें अनावृत्तिका प्रतिपादन किया है। ब्रह्ममें निर्गुण, सगुण भेद नहीं है वह तो सर्वदा निर्गुण है।

हरिर्हि निर्गुणः साक्षात् पुरुषः प्रकृतेः परः।
ससर्वदृगुपदृष्टा तं भजन्निर्गुणो भवेत्॥ (भा० १०, ८८, ५)

॥ इति चतुर्थाध्यायस्य चतुर्थः पादः समाप्तः॥

श्रीमद्भागवतके विभिन्न कथनोंका स्रोत उपनिषद् वाङ्मय है। ईश्वरके संकल्पसे सृष्टिका वर्णन तृतीयस्कन्धमें वर्णित है । तैत्तरीयउपनिषद् (६)में भी **"सोऽकामयत। बहुस्यां प्रजायेयेति"** अर्थात् उसने इच्छा की, मैं बहुत हो जाऊँ। **सतपोऽतप्यत।** भागवतमें सृष्टि रचनाका एक क्रम है। ऐतरेयो० (१, २)में लिखा है, कि सृष्टि रचनाके पूर्व एक ही आत्मा परमेश्वर था, सबसे पहले जल रचा, पुनः विविध लोकोंकी रचना हुई। विराट्को तपाया और विराट्का मुख निर्भेदन हुआ। विराट्में मनुष्यादि देह बन गये। मुखसे वाणी हुई और वाणीसे उसका देवता अग्नि प्रकट हुआ। आदि। भागवतका प्रसिद्ध देवासुर संग्राम वर्णन जो षष्ठस्कन्धमें है (छा० उ० १, १)में भी वर्णित है। किन्तु यह वर्णन आध्यात्मिक विषयोंको लेकर है। इसके अतिरिक्त भागवतका प्रारम्भ गायत्रीके 'धीमहि' (१, १, १) पदसे है गायत्रीकी उपासना **"परोरजः सवितुर्जातवेदः"** पंचमस्कन्धमें भी है (छा० उ०३,१२, १)में गायत्रीकी उपासनाका महत्व है। गायत्री मन्त्र ही सब सारोंका सार है। गायत्री इस लोककी शक्ति है। गायत्रीके ४ चरण हैं। सनत्कुमार और नारदका कथोपकथन भागवत माहात्म्य (अ० १)में वर्णित है। नारद भक्तिकी तरुणावस्था एवं ज्ञान, वैराग्यकी वृद्धावस्थाके कारण दुःखित होकर सनत्कुमारके समीप हरिद्वारके समीप वनमें गये और वहाँ सत्संग प्रारम्भ हुआ। छा० उप० (७, १, १)में भी सनत्कुमारने नारदको उपदेश दिया है। परमेश्वरका नाम सत्य है, ऐसा छा० उ० (८, ३, ४)में वर्णित है और भागवतके प्रथम श्लोकमें **"सत्यं परं धीमहि'** सत्यको नमस्कार किया है। **"तद्ह वा ब्रह्मणोनाम सत्यम्"**। इन्द्र—विरोचन भागवतके बहुर्चचित पात्र हैं और इनका वर्णन इस छा० उपनिषद् (८, ७, १-२)में भी प्राप्त है और दोनोंको देव और असुर लिखा।

गौतम और भारद्वाज—इनका वर्णन नवमस्कन्धमें है। वृहदारण्यकोपनिषद् (२, २, ४)में आत्म सम्बन्धमें गौतम, भारद्वाज ऋषियोंका उल्लेख है। इस प्रकरणमें विश्वामित्र, यमदग्नि, वशिष्ठ, कश्यप, अत्रिके नाम भी हैं जो भागवतमें अनेकत्र वर्णित हैं। गालव, अंगिरस, त्वष्ट्रविश्वरूप, अश्वि, दधीचि, विप्रचित्ति, जनक, पाराशर्य, जातूकर्ण्यके उल्लेख भागवतमें हैं, और वृ० उ० (३, १, २)में भी। याज्ञवल्क्यका अनेकशः दोनोंमें उल्लेख है। कुरुपंचालका वर्णन भी वृह० (३,६,१६)में है। उपनिषदोंका मूल वेद है और वैदिक आख्यानोंसे भागवतके आख्यानोंका साम्य है। तालिकासे स्पष्ट इन्हें देखा जा सकता है :—

ऋग्वेद और भागवत

ऋग्वेद	मण्डल सूक्त ऋचा	भागवत स्क० अ०
१. वामनावतारका संकेत	३, ५४, १४	८, १८
२. शुनःशेपकी कथा	१, १६०, ६	
	१, २४, २५	६, ७
३. इन्द्र व्रत्र युद्ध	१, १, ३२	६, १२
४ दधीचिकी हड्डीसे वज्र निर्माण	१, ८४, १३	६, १०
५. सूर्यकी किरणसे चन्द्रमें प्रकाश	१, ८४, १५	५, २२
६. मान्धाताकी रक्षा	१, ११२, १३	६, ६
७. जीवात्मा परमात्मा	१, १६४, २०	४, २६
८. हिरण्यकशिपुके पुरोहित शण्डामर्क	२, ३०, ८	७, ४
६. समुद्रसे उच्चैःश्रवा घोड़ेकी उत्पत्ति	३, ३५, ६	८, ८
१०. गायत्री मन्त्र	३, ६२, १०	५, ५
११. सुदासराजा	७, ८७, ७-६	६, २
१२. युद्धकर्ता विष्णु	८, २५, १२	१०
१३. राजावेनके वंशज	६, ८५, १०	४, १४
१४. राजा नहुषके वंशज	६, ६१, २	६, १८
१५. यम-यमी सम्वाद	१०, १०	६, ६
१६. पितृयान-देवयान	१०, १८, १	२, २
	१०, ८८, १५	
१७. युवा-युवतियोंका वरण	१०, ३०, ६	४, १
१८. सपत्नीसे दुःख	१०, ३३, २	४, ८
१६. दध्यङ्ऋषिका सिर काटना	१०, ४८, २	६, १०
२०. पुरुषसूक्त	१०, ६०	२, ६
२१. राजा वेन-राय	१०, ६३, १४	६, १०
२२. उर्वशी-पुरूखा सम्वाद	१०, ६५	६, १४
२३. देवापि	१०, ६८	६, २०
सृष्टि सूक्त	१०, ११६	२, ४
हिरण्यगर्भ	१०, १२१	
प्रलयावस्था	१०, १२६	१२, ४
वनवर्णन	१०, १४६	१०, २०

उपनिषदोंके प्रमुख पात्र और भागवत

उपनिषदोंके प्रमुख पात्रोंमें क्षत्रिय, राजा एवं ब्राह्मण महर्षियोंके उपाख्यान अनुस्यूत हैं। अनेक प्राकृतिक देवगण भी मानवीकरण रूपमें चित्रित किये गये हैं। श्रीमद्भागवतमें भी उनके सम्बन्धमें कथाऐं लिखी गई हैं।

अग्नि :—इसका विग्रहधारी रूप केनोपनिषद् (३, ३)में वर्णित है। भागवत (१०, ५८, २५)में दावानल पानके वर्णनकी कथाके अतिरिक्त कई स्थलोंपर नाम्ना निर्देश है।

वायु :—वायुका वर्णन केनोपनिषद् (३, ६) और भागवत (१०, ५, १६) दोनोंमें है।

उमा :—के० उ० (३, १३)में नाम्ना निर्देश भी है और उसके पर्यायवाची शब्द भी उल्लखित हैं। ये शिवकी पत्नी हैं और दाम्पत्यके लिये उमाकी पूजाविधि वर्णित है।

गौतम :—उपनिषद् और भागवत (६, २१, ३४) दोनोंमें इन्हें महर्षिके रूपमें उपस्थित किया है। ऋषियोंका जहाँ-जहाँ उल्लेख है वहाँ गौतम मुनिका नाम अवश्य दिखलाई देता है।

भरद्वाज :—प्रश्नोपनिषद् (१, १)में भरद्वाजको तत्त्वचिन्तक रूपमें रखा है। भागवतमें **"मूढे भरद्वाजमिमम्"** (भा० ६, २०, २८)के द्वारा भरद्वाजकी व्युत्पत्ति भी दी है।

शिवि :—शिविकी उदार नृपतियोंमें गणना है। महाभारतमें कपोत-श्येनकी कथाका उल्लेख है। राजा शिविने कपोतकी रक्षाके लिये अपनी जंघाका मांस श्येन रूपधारी इन्द्रको समर्पित किया था। यह उशीनर देशका राजा था। (भा० ८,२०,७)

कौसल्य :—कौशल देशके प्रसिद्ध राजाओंमें कौसल्यका नाम है (प्रश्न० १, १) तथा भागवत (६, १५, १५)में उनका नाम है।

भृगु :—यह पुराणयुगके प्रसिद्ध महर्षि हैं। इनका उल्लेख वेदमें भी उपलब्ध है **"यमीरिरे भृगवः"** अग्निसूक्तमें इन्हें स्मृरण किया है। भागवतके माहात्म्यमें वर्णन उपलब्ध है कि सनत्कुमारने जब कथारम्भ की तो भृगुमुनिने समस्त महात्मा एवं सन्तोंको निमन्त्रण देनेका कार्य अपने हाथमें लिया। **"भृगुर्वशिष्ठश्च्यवनश्चगौतमो"** (भा० ३, १३)। "कहा विष्णुको घट गयो जो भृगु मारी लात" उक्तिका मूल भागवतके दशमस्कन्ध ८६ अध्यायमें त्रिदेव परीक्षामें उपलब्ध होता है। भृगुके चरणचिह्नको आज भी मूर्तिके वक्ष भागपर उट्टंकित करनेकी पृथा है।

कवन्धी :—प्रश्नोप० (१, १)में कवन्धीका उल्लेख है। भागवतमें कवन्धका (भा० ६, १०, १२)।

पिप्पलाद :—पिप्पलको ही भोजन करनेके कारण उनका पिप्पलाद नाम प्रसिद्ध हुआ। प्रश्नोप० (१, १)के साथ भा०माहात्म्य (३,१३)में उनका उल्लेख है। ये सनत्कुमारकी कथा सुनने गये थे। द्वादशस्कन्धमें पिप्पलायन नामके ऋषि भी कहे हैं। (१२, ७, २)

प्रजापति :—प्रश्नोपनिषद् (१, १६)में प्रजापति तत्त्व वेत्ता है। भागवतमें अनेक प्रजापतियोंका उल्लेख है; किन्तु कथारूपमें दक्ष प्रजापति और द्वितीय दक्ष प्रजापतिके नाम उल्लेखनीय हैं। प्रथम तो शिवजीके श्वसुर हैं। सती चरित्रका प्रसिद्ध पात्र प्रजापति है। द्वितीय शबलाश्व, हर्यश्व नामक पुत्रगणोंका जनक हुआ है। सृष्टि पूर्ण करनेमें इसका विशिष्ट योगदान है।

रुद्र :—प्रश्नो० (२, ६)में रुद्रका उल्लेख है। भागवतमें सती चरित्र प्रभृति अनेक उपाख्यान रुद्रकी गाथाओंसे भरे पड़े हैं। रुद्रकी व्युत्पत्ति **"रोदनात् रुद्र"** लिखी गई है। जन्म लेते ही इन्होंने रुदन किया, अतः ब्रह्माने इनका नाम रुद्र रखा था।

सूर्य :—प्र० उ० (२, ६)में सूर्य वर्णित है। भागवतके नवमस्कन्धका प्रारम्भ सूर्य कथासे है। वैवस्वत पर्यायवाची नाम है, इसकी कथाऐं बहुचर्चित हैं। द्वादश-स्कन्ध, अध्याय ११में, द्वादश सूर्योंका उल्लेख है। ये सूर्य धाता-विधाता-पूषा-आदि चैत्र-वैशाख आदि द्वादश मासोंके अधिपति लिखे हैं।

वैवस्वत :—कठोप० (१, ७)में वैवस्वत यमका उल्लेख है। नचिकेता वैवस्वत यमके लोकमें गया, वहाँ उसे यमने ३ वरदान दिए। भागवतमें वैवस्वतको यम कहा है। नवमस्कन्धमें इसका उपाख्यान है।

अथर्व :—अथर्वण वेदके ज्ञाता अथर्व मुनि, मुण्डकोपनिषद् (१,३)में स्वीकार किये हैं और व्यासकी शाखाओंके ज्ञातारूपमें भागवतमें। **"अथर्ववित् सुमन्तुश्च"** (भा० १२, ७, १)।

अंगिरा :—छा० उ० (१, २, १०)में अंगिराका उल्लेख है। भागवतमें अंगिरा ऋषिने शूर देशके राजाको हर्ष-शोक देनेवाले पुत्रका वर प्रदान किया है। राजाकी एक कोटि रानियोंमें किसीके सन्तान नहीं थी। अंगिराके वरदानसे पुत्र हुआ, उसे रानियोंने ईर्ष्याके कारण विष देकर मार दिया। अंगिराने राजाका

---

१. भाग० ६, १४-१५ अध्याय।

शोकापनोदन करते हुए उसे अध्यात्म तत्त्वका उपदेश दिया है[१]। भागवतमें अन्यत्र भी इनका उल्लेख है[१]।

शुनक :—छा० उ० (१, ९, ३)में शुनकका नाम है। भागवतमें शुनक पुत्रका उल्लेख है। वैसे १८ पुराणोंके श्रोतारूपमें शौनक तो अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। भागवतका प्रारम्भ भी—शौनकोंके छः प्रश्नोंके द्वारा ही पल्लवित होता है। **'कुमुद: शुनको ब्रह्मन्'** (भा० १२, ७, ३)में स्पष्ट शुनकमुनि ही हैं।

क्षत्ता :—छा० उ० (४, १. ८)में तत्त्ववेत्ताके रूपमें क्षत्ताका उल्लेख है। भागवतमें तृतीयस्कन्धमें जो परम्परा चली है भागवत परम्पराको क्षत्ताने नया रूप दिया है[२]।

वसिष्ठ :—छा० उ० (५, १, २)में उसका वर्णन है। भागवतके अनेक कथानकोंमें वसिष्ठ हैं। नवमस्कन्धमें इनकी उत्पत्तिका वर्णन है। वसिष्ठ एक बड़े पुरोहितके रूपमें वर्णित हैं। सूर्यवंशसे इनका घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है[३]। भगवान् श्रीरामकी कथाके मुख्य पात्ररूपमें ये जनसाधारणमें परिचित हैं। विश्वामित्रके प्रतिद्वन्द्वीके रूपमें इन्हें पुराणोंमें रखा गया है। भागवतमें भी इनकी शत्रुताकी कथा कही गई है[४]। आडवीक युद्ध महाभारतमें भी वर्णित है।

आरुणि :—छा० उ० (५, ३, ५)में आरुणिका वर्णन है। भागवत (१०, ८, १८)में भी इसका वणन है। आरुणेयोपाख्यान महाभारतमें भी प्रसिद्ध है। आरुणिकी गुरुभक्ति प्रसिद्ध है। गुरुकी आज्ञासे यह गाय चराने जाता था, वहाँ गायोंका दूध पीकर स्थूल शरीरधारी हो गया, गुरुने परीक्षा ली और दूध न पीनेका आदेश दिया, इसने वत्सोंके मुखसे टपकनेवाले झागोंको पीना प्रारम्भ किया। गुरुने उसका भी निषेध किया, तब आकके पत्ते खानेसे अन्धा होकर बिना पानीके कूपमें गिर गया। गुरुने कृपापूर्वक इसका वहाँसे उद्धार किया और सम्पूर्ण शास्त्रोंका ज्ञाता बना दिया। वेद स्तुतिमें **"आरुणयो बहरम्"** आरुणि सम्प्रदायके लोग दहर-ब्रह्मकी उपासना करते हैं लिखा है। निःसन्देह यह अंश छा० उ०से सम्बन्धित है। क्योंकि इस उपनिषद्में भी दहरविद्याकी बड़ी महिमा गाई गई है।

इन्द्रद्युम्न :—छा० उ० (५, १४, १)में तथा भागवत (८, ४, ७)में इसका उल्लेख है। इन्द्रद्युम्न नामक राजा गज-ग्राहमें युद्धमें वर्णित है। यह पाण्ड्य देशका राजा था। एक बार यह मौन व्रत लिये भगवदाराधनामें मग्न बैठा था। कहींसे अगस्त्य मुनि आये, राजा उनसे नहीं बोला, उन्होंने अपमान देखकर इसे हाथी होनेकाशाप दिया था।

---

१. भा० १, १९, ९।
२. भा० ३, १; १।
३. भा० ९, १।
४. भा० ९, १३।

सनत्कुमार :—छा० उ० (७. ३, १)में उल्लिखित हैं। भागवतके प्रमुख वक्ता हैं। नारद जब समस्त भूतलपर भ्रमण करते वृन्दावन आये और वृन्दावनमें भक्तिसे भेंट हुई तो इसके कष्टको दूर करनेके लिये नारद सनत्कुमारके पास गये और उन्होंने आनन्द वनमें भागवत पुराणका सप्ताह पारायण सुनाया जिसे श्रवणकर भक्तिका कष्ट दूर हुआ[1]।

प्रसिद्ध हिरण्याक्ष–हिरण्यकशिपु एवं रावण–कुम्भकर्णके जन्म कथानक सनत्कुमारसे मिले हैं। सनत्कुमारके शापके कारण ही जय विजय भगवान्‌के पार्षद उक्त असुरोंके रूपमें जन्मे थे। ये भगवान्‌के प्रियरूपमें चित्रित हैं और प्रायः चार भाई सनक–सनन्दन–सनातन–सनत्कुमार साथ-साथ रहते हैं। हमारे पूर्वजोंके पूर्वज होनेपर भी सदा ५ वर्षकी अवस्थावाले बालकके समान रहते हैं। सृष्टि उत्पन्न करनेके ब्रह्माके अनुरोधके उल्लंघन करनेके कारण इनका शरीर बालकोंके समान ही रहा।

ब्रह्मदत्त :—वृह० उ० (१, ३, २४)में तथा भागवत (९, २१, २५)में चर्चित हैं। ये शुकमुनिके दौहित्र हैं, अतः ब्रह्मवेत्ता होना स्वाभाविक है।

गार्ग्य :—वृह० उ० (२, १, ४) तथा भागवत (९, २१, १९)में इनका उल्लेख है। अन्यत्र कालनेमिको गार्ग्य पुत्र कहा है।

याज्ञवल्क्य :—वृह० (२, ४, १) तथा भागवत (९. १२, ३)में इनकी कथा है। याज्ञवल्क्यने वैशंपायनसे कहा कि आप अपने समस्त शिष्योंसे प्रायश्चित्त की न कहें, इकला मैं ही समर्थ हूँ। वैशंपायन प्रायश्चित्त कराना चाहते थे, याज्ञवल्क्यकी अहंवादितासे उन्होंने शाप दिया और याज्ञवल्क्यने पठित विद्या उगल दी पुनः सूर्यनारायणकी उपासनासे नवीन यजुष् ग्रहण किये और शुक्लयजुर्वेदके द्रष्टा ऋषि बन गये। शुल्क कृष्ण यजुर्वेदके भागके कर्ताके रूपमें याज्ञवल्क्यकी भागवतमें विस्तृत चर्चा है[2]। उपनिषदोंमें याज्ञवल्क्यकी कात्यायनी–मैत्रेयी पत्नियोंका नाम भी सादर ग्रहीत है। भागवतमें मैत्रीका उल्लेख (४, १, ४८)में है।

कौशिक :—वृह० (२, ६, १), भागवत (६, ८, ४८)में इनका उल्लेख है। कौशिक विश्वामित्रकी अनेक कथा हैं। कुशिक ऋषिकी सन्तानका नाम कौशिक पड़ा। चरुके व्यत्ययके कारण (क्षत्रिय, भार्याका चरु ब्राह्मणीने खाया, ब्राह्मणीका

---

१. भा० माहात्म्य १, ३, ४।
२. भा० १२, ६, ६२।

चरु क्षत्रियाणीने खाया अतः) परशुराम तो जमदग्निके घर क्षत्रिय धर्मा प्रकट हुए और कुशिकके घर ब्राह्मणत्व विशिष्ट धर्मा विश्वामित्र प्रकट हुए थे।

आग्निवेश्य :—वृह० (२, ६, २) तथा भागवत (९, २, २१)में उल्लिखित है। इनकी कोई विशिष्ट कथा भागवतमें नहीं है।

पाराशर्य :—वृह० (२, ६, २)में तथा भागवत (१०, ७४, ८) एवं पराशर नाम "**योगेश्वरौ व्यासपाराशरौ च**" माहा० (३, ४)में एवं अन्यत्र अनेक प्रसंगोंमें है। पाराशर्य व्यासका नाम है। भागवतके रचयिता भी पाराशर्य हैं। ब्रह्मसूत्र रचयिता भी यही हैं, इन्हींका नाम बादरायण है।

जातूकर्ण्य :—वृह० (२, ६, ३) एवं भागवत (९, २, २१)में इनका उल्लेख है। "**जातूकर्ण्यश्च तच्छिष्यः**" भागवत (१२, ६, ५८)में भी स्पष्ट जातूकर्ण्यका उल्लेखकर वैदिक परम्पराके निर्वाहक रूपमें इसे रखा है।

विश्वरूप :—वृह० (२, ६, ३), भागवत (६, ६, ४४)में उल्लिखित मुनिका नाम है। विश्वरूपके ३ मस्तक थे, जिनसे वह अन्न, सुरा और सोमरस पान करता था। यह त्वष्टाका पुत्र था और देवताओंने इसे कुछ दिन अपना आचार्य मनोनीत था। यह सुर-असुर दोनोंसे सम्बन्धित था और असुरोंकी ओर रुचि होनेके कारण उनकी वृद्धिकी कामनाके लिये हवन कर्म करता था। एकबार इन्द्रने पता लगाकर इसके तीनों मस्तकोंका उच्छेद कर दिया, जिनसे कपिंजल, कलविंक और तित्तिर पक्षी उत्पन्न हो गये। इन्द्रको ब्रह्महत्या लगी, जिसे बादमें स्त्री, जल, भूमि और वृक्ष चारोंमें विभक्त किया। यह विश्वरूप तान्त्रिक था। इन्द्रके लिये नारायण कवच विद्याको इसीने प्रकाशित किया था। उपनिषदोंमें चर्चित विश्वरूपके साथ जोड़नेका कारण वहाँ त्वष्टाका उल्लेख है।

त्वाष्ट्र :—इसका नाम वृह० (२, ६, ३)में नाम आया है और भागवत (६, ७, २५)में अतः विश्वरूपको ब्रह्मवेत्ता मानना पड़ता है।

अश्विनी :—ये युगलदेव हैं। वृह० (२, ६, ३) एवं भागवत (९, ३, १६)में वर्णित हैं। भागवतमें ये दधीचिकी अन्ध चक्षुः-को ज्योति प्रदान करते हैं, वृद्धत्व दूर करते हैं।

दधीचि :—वृह० (२, ६, ३), भागवत (६, ११, २०)में वर्णित है। देवगण इनसे अस्थि माँगते हैं और उनका वज्र बनाते हैं। इसी वज्रसे प्रसिद्ध दैत्य वृत्रासुरका विनाश करते हैं। ये अथर्ववेदके तत्त्वज्ञ मुनि थे।

सनक :—वृह० (२, ६, ३) तथा भागवत (३, १२, ४)में इनका उल्लेख है। सनत्कुमारके ये भाई हैं।

परमेष्ठी :—वृह० (२, ६, ३) तथा भागवत (२,३,६)में इनका उल्लेख है।

स्वयंभु :—वृह० (२, ६, ३), भागवत (२, ७, २)में वर्णित हैं।

जनक :—वृह० (३, १, १), भागवत (९, १३, १३)में चर्चित हैं। प्रसिद्ध सीतादेवीके पितृरूपमें समस्त जनवर्गमें समाहृत हैं।

शाकल्य :—वृह० (३, ९, २४), भागवत (१२, ६, ५७)में उल्लेख है। **"शाकल्यस्तत्सुत:"**में वह वेदशाखा प्रवक्ता है।

आत्रेय :—वृह० (२, ६, ३), भागवत माहात्म्य (३, ६)में **"अत्रिज पिप्पलादाः"** अत्रिपुत्र आत्रेय ही हैं।

उपनिषदोंके तथा भागवतके स्थल विशेष

ब्रह्मलोक :—कठोपनिषद् (६, ५)में ब्रह्मलोकका वर्णन है। भागवतमें तो ब्रह्मा नामक देव ब्रह्मलोकसे ही अपने भक्तोंको दर्शन देने आते हैं। भागवतके अनेक स्थलोंमें ब्रह्मलोकका वर्णन है[1]।

भूः भुवः स्वः :—छान्दोग्योपनिषद्में भूः भुवः स्वः लोकरूपमें भी वर्णित है[2]। वैसे ये तीनों व्याहृतियाँ हैं।

भूर्लोकः कल्पितः पद्भ्याम् भुवर्लोकोऽस्य नाभितः (भा० २, ५, ३८) श्लोकमें तीनों लोकोंका उल्लेख है। देवगण स्वर्गसे गर्भस्तुति करने आये, वहीं लौटकर गये। (भा० १०, २, ४२)।

नैमिषारण्य :—छा० उ० (१, २, १३)में नैमिषारण्यका उल्लेख है। यह स्थल इतना पवित्र है कि इसका वर्णन १८ पुराणोंमें, उपपुराणोंमें, अधिपुराणोंमें तथा समग्र कथा साहित्यमें उपलब्ध होता है। इसकी महत्ता इस कारण भी है कि समग्र ऋषियोंने कथा यज्ञके लिये निरापद भूमिकी कामनासे भगवान्से प्रार्थना की, उन्होंने अपना एक मनोमय चक्र बनाकर वैकुण्ठसे छोड़ा एवं ऋषियोंने कहा कि जिस स्थानपर चक्रकी नेमि रुक जाय, वहाँ आप लोग बैठकर, श्रवण यज्ञ करें। सीतापुरके समीप आजकल यह स्थान है, इसे नैमिषारण्य कहते हैं। श्रीमद्भागवतके कारण यह जन-जनमें प्रसिद्ध हो गया है। प्रसिद्ध सत्यनारायणकी कथा यहीं हुई थी, अतः यह अति प्रसिद्ध स्थान बना है। ईश्वरने नैमिश असुरको इस स्थानपर मारा था, अतः यह स्थान प्रसिद्ध हो गया। नैमिषारण्यमें सहस्रों वर्ष बैठकर शौनक

---

१. भा० २, ५, ३९। २. छा० उ० १, ८, ५।

सूतने विभिन्न पौराणिक कथाओंको प्रकट किया था। उपनिषदोंमें उल्लेख होनेसे इसका महत्व और भी बढ़ा है यह निःसन्देह है। भागवतमें कई स्थानोंपर इसका उल्लेख है[1]।

पंचाल देश :—छा० उ० (५, ३, १)में पंचाल देशका उल्लेख है तथा भागवत (४, ५४, २१)में इसका उल्लेख है। इसे ही कुछ विद्वान् पाञ्चाल देश मानते हैं और पाञ्चाली शब्द द्रोपदीके लिये प्रसिद्ध है। वैसे कई स्थानोंपर कुरु-पञ्चाल देश साथ-साथ वर्णित हैं। श्रीकृष्णने हस्तिनापुरसे द्वारकाकी यात्रा पञ्चाल देशमें प्रविष्ट होकर की थी। (भा० १, १०, ३४)

काशी :—वृह० उ० (२, १, २)में काशीका उल्लेख है। श्रीमद्भागवतके (६, ७, १४)में काशीका उल्लेख है। इतना ही नहीं, इसके सम्बन्धमें भागवतमें कई उपाख्यान हैं। प्रसिद्ध सान्दीपनि आचार्यको 'काश्यं' लिखकर काशी निवासी स्वीकार किया है। सान्दीपनि आचार्य उज्जयिनीमें निवासकर विद्यादान करते थे। भगवान् श्रीकृष्ण बलरामने इन्हींसे विद्या अर्जितकी थी। काशीको कृष्णके सुदर्शन नामक चक्रने जलाया था। जैसे हनुमान्‌ने लङ्का जलाई थी। (भा० १०, ६६, ४२)। काशीपति भूतनाथका अनेकत्र उल्लेख है।

कुरुदेश :—छा० उ० (१, १०, १)में कुरुदेशका वर्णन है। प्रसिद्ध कौरवोंका नाम इस देशसे सम्बन्धित है। कुरु नामक राजर्षिने जिस भूमिपर यज्ञादि किये थे वह कुरुक्षेत्र स्थान बना। कुरु देशकी सीमा व्यापक थी। कुरुका उल्लेख भागवतमें कई स्थलोंपर वर्णित है। "**कुरु जांगल पञ्चालान् शूरसेनान् सयामुनान्**" (भा० १०, १०, ३४)में कुरुके साथ कुरुक्षेत्र भी पढ़ा है।

भद्रदेश :—वृह० (३, १, १३)है भद्रदेशका वर्णन है। यह स्थान सुप्रसिद्ध पाण्डवोंके भाई नकुल-सहदेवके कारण ख्याति प्राप्त है। पाण्डुकी दो पत्नी थीं—कुन्ती और माद्री। कुन्तीके पुत्र—युधिष्ठिर, अर्जुन, भीम और माद्रीके पुत्रोंका नाम—नकुल और सहदेव था। महाभारत, भागवत आदि प्रसिद्ध ग्रन्थोंमें इसकी चर्चा बहुधा आती है।

सूर्यलोक :—छा० उ० (१, ८, ५)में सूर्यलोकका वर्णन है। भागवतमें देवोंके लोकोंमें सूर्यलोकका वर्णन आता है।)भा० ५, २२, ५)।

चन्द्रलोक :—प्रश्नोपनिषद् (१, ६)में चन्द्रमाके लोकका वर्णन है। भागवतमें सूर्यलोकके ऊपर चन्द्रलोकका वर्णन उपलब्ध है। "**एवं चन्द्रमा अर्क गभस्तिभ्य उपरिष्टात् लक्ष योजनत उपलभ्यमानः**" (भा० ५, २२, ६)।

---

१. भा० ३, २०, ७।

देवलोक :—वृह० उ० (१, ५, १६)में देवलोकका वर्णन है। भागवतके कंसके कारागारमें देवगण देवलोकसे भगवान्की स्तुति करने आते हैं। देवलोकका विभिन्न कथानकोंमें उल्लेख मिलता है। इसे स्वर्गलोक या दिवि शब्द कहा गया है। **"देवाः प्रतिययुः दिवम्"** (भा० १० २, ४२)।

मनुष्यलोक :—वृह० (१, ५, १६)में मनुष्यलोकका वर्णन मिलता है। भागवतमें मर्त्यलोक या मनुष्यलोककी ही समग्र श्रीकृष्णपरक कथाऐं हैं। भूलोक ही मनुष्यलोक है। भूलोकका वर्णन भागवत (११, २४, १२)में है। भारतवर्षका (भा० ११, २, १७) तथा अन्य अनेक स्थानोंपर वर्णन है।

नक्षत्रलोक :—वृह० (३, ६, १)में नक्षत्रलोकका उल्लेख है। भागवत पंचम-स्कन्धमें शिशुमार चक्रका वर्णन (खगोल वर्णन) नक्षत्रलोकका ही वर्णन है। (भा० ५, २३, २४)।

प्रजापतिलोक :—वृह० (३, ६, १)में प्रजापतिलोकका वर्णन है। भागवतमें यह लोक प्रजापति ब्रह्मासे सम्बन्धित है, अतः यह ब्रह्मलोकका पर्यायवाची शब्द बनाकर व्यवहृत किया है। **'परमेष्ठी प्रजापतिः'** यह ब्रह्माके लिये ही व्यवहृत है। लोकरूपमें भागवत (५, २३, १-५)में व्यवहृत है।

विदेह :—वृ० (३, १, १)में प्रसिद्ध तत्त्ववेत्ता विदेह राजाकी आख्यायिका वर्णित है। विदेह एक प्रसिद्ध राजा है, इसे जनक राजाके परिवारसे संयुक्त माना गया है। भगवान् श्रीकृष्णका परमप्रिय भक्त श्रुतदेव विदेहदेशमें ही रहता था। एकबार भगवान्ने विदेहकी यात्रा की और मैथिलदेशके राजा बहुलाश्वका मनोरथ भी पूर्ण किया।

"स उवास विदेहेषु मिथिलायां गृहाश्रमी"। (भा० १०, ८६, २०) विदेह नगरका उल्लेख भागवत (११, ८, २२)में है। [ब्रह्मलोकका (११, २३, ३०)में वर्णन है।]

ब्रह्मसूत्रके प्रमुख पात्र

ब्रह्मसूत्रमें किसी ऋषि वंशका वर्णन है और न किसी आख्यायिकाको ही इसमें प्रमुखता दी गई है; किन्तु विभिन्न सिद्धान्तोंके स्थापनमें जिनका उल्लेख परम आवश्यक समझा गया गया है, उन्हें ही इसमें उल्लिखित किया है। ऋषियोंके नाम

बादरायण :—(ब्रह्मसूत्र ४, ३, १५) उक्त सूत्रमें बादरायणका नामोल्लेख करते हुए कहा है कि उपनिषदोंमें ब्रह्मकी प्रतीक उपासनाका वर्णन है ऐसा उनका मत है। बादरायण व्यासका नाम है और भागवतके तो रचयिता भी यही हैं।

बादरि :— बादरिका उल्लेख (४, ४, १०)में है। बादरिका कथन है कि उस लोकमें स्थूल शरीर नहीं मिलता, केवल मनसे ही भोगोंको भोगता है। 'बादरि' बादरायणसे भिन्न आचार्य हैं, इनका नाम्ना निर्देश भागवतमें नहीं मिलता। भागवत (३, ४, ४)में बादरिका उल्लेख अवश्य है। बादरिका नाम वदरि शब्दसे संयुक्त किया जा सकता है।

आश्मरथ्य :—'अभिव्यक्तेरित्याश्मरथ्यः' (१, २, २९)में आश्मरथ्य नामक आचार्यका उल्लेख है। भक्तोंपर अनुग्रह करनेके लिये देश विशेषमें ब्रह्मका प्राकटच होता है, अतः कोई विरोध नही है। यह आश्मरथ्यका मत है। **'अश्मकान्मूलको जज्ञे'** (भा० ९)में अश्मक शब्द प्राप्त होता है, किन्तु इसका उक्त ऋषिसे कोई सम्बन्ध रहा हो निश्चय नहीं कहा जा सकता है।

काशकृत्स्न :—'अवस्थितेरितिकाशकृत्स्नः (१, ४, २२) काशकृत्स्न आचार्यका मत है कि प्रलयकालमें सम्पूर्ण जगत्की स्थिति परमात्मामें होती है। भागवत (बंगला सं०) ४, १३, १६में कृत्स्न शब्द मिलता है, सम्भव है काशके साथ वह जुड़ा हो।

औडुलौमि :—'आर्त्विज्यमित्यौडुलोमिस्तस्मैहि परिक्रीयते' (३, ४, ४५)। औडुलोमि आचार्य मानता है कि कर्तापन ऋत्विक्का है, क्योंकि वह यजमान द्वारा वरण किया जाता है, हाँ फल यजमानको प्राप्त होगा, ऋत्विकको नहीं। औडुलोमिका मत १, ४, २१में भी प्रदर्शित किया है। महर्षिपाणिनिने भी इसकी व्युत्पत्ति उडुलोमन् शब्दसे प्रदर्शित की है।

कार्ष्णाजिनि :—(३, १, ९)में कार्ष्णाजिनिका पक्ष प्रस्तुत किया है।

जैमिनि :—"ब्राह्मेणजैमिनिरुपन्यासादिभ्यः (४, ४, ५) सूत्रमें जैमिनि आचार्यका मत रखा गया है। मुक्तात्मा ब्रह्मके सदृश रूपसे स्थित होता है, ऐसा आचार्य जैमिनिका मत है। इसके अतिरिक्त (१, ३, ३१ ३, ४, ४० ३, ४, १८ १, ४, १८ १, २, २७) आदिमें जैमिनि आचार्यका मत उद्धृत किया गया है। श्रीमद्भागवतके द्वादशस्कन्धमें लिखा है कि व्यासने जैमिनि नामक शिष्यको सामवेदकी शाखा दी। **"साम्नां जैमिने प्राह तथा छन्दोग संहिताम्"** (भा० १२, ६, ५३)।

'जैमिनेः सामगस्यासीत्' (१२, ६, ७५)में भी जैमिनिको सामवेद ज्ञाताके रूपमें स्मृत किया है। तथा भागवत (१, ४, २१)में **'सामगो जैमिनिः कविः'** लिखा है, आत्रेय=भागवतमें अत्रिसम्प्रदाय उपलब्ध है। अत्रिकी प्रसिद्ध कथा हैं। मुख्य पात्र जैमिनि और बादरायण हैं जिनका श्रीमद्भागवतसे घनिष्ठ सम्बन्ध हैं। इस अध्यायका प्रयोजन दोनों कृतियोंके एककर्तृत्व सिद्ध करनेके लिये किया है। सम्पूर्ण

उपनिषदोंका अनुशीलन करनेसे निष्कर्ष यह देखा गया कि विभिन्न अल्पज्ञात उपनिषदोंके बहुतसे पात्र तो भागवतमें उपलब्ध हैं तो उनकी पुनरावृत्तिसे ग्रन्थका कलेवर बढ़ जाता है और अध्ययनकी उपयोगितामें कोई महत्व न रहेगा, इस विचारसे प्रसिद्ध उपनिषदोंके मुख्यपात्र ही यहाँ तालिका रूपमें प्रस्तुत किये गये हैं। ब्रह्मसूत्रोंमें न तो अधिक पात्र हैं और न स्थान। पात्रोंके आधारपर उपनिषदोंका आश्रय लेकर ऊहापोह करके स्थानोंका अन्वेषण करना मुख्य ध्येय नहीं है, अतः केवल दिग्दर्शन मात्र कराके इसे यहीं विश्राम दिया गया है। उपनिषदोंके पात्रोंका अध्ययन भागवतके वैशिष्ट्यका द्योतन करानेवाला है, अतः अध्ययन सार्थक ही रहा है।

भागवतके पात्र और ऋग्वेद

न केवल उपनिषदोंके पात्रोंकी चर्चा ही भागवतमें है अपितु ऋग्वेदमें भी उनकी आख्यायिकाएं हैं या वे ऋषिरूपमें मन्त्रोंके द्दृष्टा हैं। भागवतके पात्र जो ऋग्वेदमें हैं निम्नलिखित हैं।

प्रथम मण्डल

पराशर :—शक्तिपुत्र पराशर जो भागवतकारके पिता हैं इनका उल्लेख ऋग्वेदके प्रथम मण्डल में है। भागवतमें तो अनेक स्थलोंपर इनका नाम उल्लिखित है[1]।

गौतम :—रहूगणके पुत्र गौतमका उल्लेख ऋग्वेदके प्रथम मण्डलमें है और **"भृगुर्वसिष्ठश्च्यवनश्च गौतमो०"** भागवत मा०में ही इनका उल्लेख है[2]।

कश्यप :—मरीचिपुत्र कश्यपका नाम महत्त्वपूर्ण है। समस्त सृष्टिके मूलमें कश्यपका नाम सादर गृहीत होता है। देव, असुर, गन्धर्व, यक्ष, किन्नर, राक्षस, मानव उच्चयोनियोंके ही नहीं अपितु जलचर, थलचर और नभचर, स्थावर, जंगम सभीके ये पिता हैं[3]। कश्यपके पुत्र ही वामन हुए, जिन्होंने राजा बलिको छलकर तीनों लोकोंका राज्य देवोंको सोंपा था।

---

१. भा० मा० ३, १४। **२. भा० मा० वही।**

३. भा० ३, १४, ४३।

अम्बरीष :—भागवत नवमस्कन्धमें भी अम्बरीष भक्तकी कथा वर्णित है। यह क्षत्रियवंशोत्पन्न नृपति था और भगवान् विष्णुका अनन्य भक्त था। दुर्वासामुनि उसे शाप ग्रस्तकर स्वयं पछताये थे[४]।

सहदेव :—भागवतमें दो सहदेवोंके नाम उल्लिखित हैं। प्रसिद्ध युधिष्ठिरके भाई और जरासन्धका पुत्र। इनका सम्बन्ध ऋग्वेदके ऋषियोंसे अयुक्त प्रतीत होता है। किन्तु तत्व विचारके शब्द ऋषियों जैसे हैं[५]।

कुत्स :—कुत्सऋषिका उल्लेख ऋषियोंकी नामावलीमें है।

दीर्घतमा :—इनकी कोई विशेष गाथा भागवतमें नहीं है, किन्तु उल्लेख मात्र है।

लोमश :—लोमशऋषिका भी उल्लेख आता है।

अगस्त्य :—महर्षि अगस्त्यने इन्द्रद्युम्नको शाप दिया था। गजकी योनिमें इन्हीं महर्षिकी कृपासे उसने अपना उद्धार कर लिया था। अगस्त्याश्रमका भी कई स्थानोंपर उल्लेख है, अतः यह निश्चित है कि महर्षि अगस्त्यने प्रथम मण्डलमें समागत वेदकी ऋचाओंको प्रत्यक्ष किया हो। महर्षि अगस्त्य भारतके विशिष्ट सन्तोंमें गिने जाते हैं।

इन्द्र :—यद्यपि इन्द्र शब्दसे देवराज इन्द्रका ही ज्ञान होता है तथापि ऋग्वेदमें इन्द्रके सूक्त हैं तथा इन्द्रका अनेक बार प्रयोग किया है। (१, १५, ८)।

लोपामुद्रा :—ऋषिपत्नियोंमें लोपामुद्राका नाम उल्लेखनीय है।

द्वितीय मण्डल

गृत्समद[१] :—वेदमें गृत्समद ऋषिकी चर्चा आती है। इन्द्रसूक्तमें गृत्समदके सम्बन्धमें आख्यायिका वर्णित है। एकबार असुरोंने इन्द्रदेवको मारनेके लिये चारों ओरसे घेर लिया था। वहाँ इन्द्रदेवने गृत्समदका वेष धारणकर अपने प्राणोंकी रक्षा की, जब वे यज्ञमें घुसे तो वैसे ही आकारके गृत्समदको देखकर विचार करने लगे कि यही कपटी इन्द्र है। गृत्समदने उत्तर दिया कि—**'स जनास इन्द्रः'** अरे मनुष्यो! वह इन्द्र है, मैं नहीं हूँ।

भृगु :—भृगुऋषि अग्निके पूजक थे। वेदीमें उन्होंने सर्वप्रथम अग्निको प्रतिष्ठित किया था, भागवतमें **"भृगुर्वसिष्ठः"**में भृगुकी कथा है। भागवत सुननेमें जो

---

१. भा० ६, ५।   २. भा० १०, ७४, २५।

३. भा० १, ६, ७।

आलस्य कर रहे थे उन्हें सादर निमन्त्रण देकर भृगु लाये थे। त्रिदेव परीक्षा भृगु करने गये थे और विष्णु भगवान्की छातीमें लात मारकर परीक्षा भी इन्होंने ली थी। (भा० १०, ८९)।

ऋग्वेद तृतीय मण्डल

विश्वामित्र :—ऋग्वेदमें विश्वामित्र, मन्त्र द्रष्टाके रूपमें आते हैं और इनकी अनेक आख्यायिकाएं भी वर्णित हैं। भागवतमें भी इनका उल्लेख है। ये हरिश्चन्द्रोपाख्यानमें प्रसिद्ध है। (भा० १०, ७४, ८)।

गाधी :—कुशिकके अपत्य गाधी वैदिक ऋषि हैं। भागवतमें इन्हें अनेकत्र स्मृत किया है। (भा० ३, १४)।

यमदग्नि :—परशुरामके पिता यमदग्नि थे। भागवत नवमस्कन्धमें इन्द्रकी कथा वर्णित है, रेणुका स्त्रीका नाम भी कई स्थानोंपर लिया है। (भा० १, ९, ६)

चतुर्थ मण्डल

वामदेवा —वामदेवऋषि ऋग्वेदके ज्ञाता हैं और भागवतमें ऋषियोंके साथ रहते हैं। (भा० १२, ७४, ८)।

त्रसदस्यु :—भागवतमें त्रसदस्युकी वंशावली वर्णित है; किन्तु मन्त्रभागसे इनका सम्बन्ध विचारणीय है। (भा० ९, ७,)।

पंचम मण्डल

अत्रि :—महर्षि अत्रिके नयनाश्रुसे चन्द्रमाका जन्म हुआ था, अत्रिकी पत्नी अनुसूया थी। अनुसूयाके स्नान करते समय उनकी नग्नावस्था देखकर त्रिदेवों (ब्रह्मा, विष्णु, शिव)ने उपहास किया, तब पतिव्रत धर्मके प्रभावसे अनुसूयाने तीनों देवोंको अपना पुत्र बनाया। विष्णुके अंशसे दत्तात्रेय, शिवके अंशसे दुर्वासा और ब्रह्माके अंशसे चन्द्रमा प्रकट हुआ था। (भा० १, ९, ७)।

बुध :—भागवत और वेदमें यह अत्रिवंशीय कहा है। भागवतमें इसका विस्तार है। चन्द्रमाकी ताराकी मित्रता थी, अतः ताराका अपहरण करके चन्द्रमा अपने साथ ले गया और वहीं बुध नामक देव गर्भमें आ गया। ब्रह्माकी सभामें इसका निर्णय लिया गया। वृहस्पतिका कथन था कि यह मेरा पुत्र है; किन्तु सभामें ताराने कहा कि यह गर्भस्थ शिशु चन्द्रमाका है। चन्द्रमा अत्रिपुत्र था लिखा जा चुका है। (भा० ९, १४)

षष्ठ मण्डल

भरद्वाज :—भरद्वाज ऋषिकी वंशावली भागवत नवमस्कन्धमें है। भरद्वाज

ऋग्वेदके दृष्टा हैं किन्तु इन्हें सामवेदमें गिना जाता है। इनकी शाखाके अनुयायी सामवेदी हैं। यह गोत्र सम्बन्ध किस प्रकारसे चला विचारणीय है।(भा० १,९,६)

वीतहव्य :—भागवतमें इनकी पृथक् कथा नहीं है, वीतहोत्रका उल्लेख है। (भा० १०, ४७, ९)

गर्ग :—गर्गका उल्लेख दोनोंमें है। (भा० १०, ७४, ८)

सप्तम मण्डल

वसिष्ठ[१] :—वसिष्ठ सूर्यवंशके कुलगुरु हैं। मनुने इनको आचार्य बनाकर पुत्रेष्टि यज्ञ किया था, किन्तु मनुके कन्या उत्पन्न हुई। वशिष्ठने कहा कि तुम्हारी पत्नीने यज्ञके होता ब्राह्मणोंसे कन्याके नामकी आहुतियाँ पड़वाई थीं, अतः पुत्री उत्पन्न हुई है। मनुके आग्रहपर वशिष्ठने शिवकी आराधना की, और शिवकी आराधनासे वह पुत्री बनी उसका नाय सुद्युम्न रखा गया। एकबार वह बालकोंके साथ पार्वतीके शापित वनमें गया, उस वनमें पार्वतीने शाप दे रखा था कि जो कोई पुरुष इसमें प्रवेश करेगा स्त्री बन जायगा। सुद्युम्न अपने साथियोंके सहित एवं घोड़ोंके सहित पुरुषसे स्त्रीरूपमें परिवर्तित हो गया। पुनः मनुके आग्रहपर वशिष्ठने शिवकी आराधना की और शिवने एकमास पुरुष और एकमास स्त्री बने रहनेका वरदान दिया—"**मासं पुमान् भविता मासं स्त्री तवात्मजः**" (भा० ९, १, ३९)। स्त्री-पुरुष दोनों रूपमें सृष्टिका आरम्भ इससे सिद्ध होता है, तत्पश्चात् वर्गीकरण हो गया। इस प्रकार वशिष्ठकी अनेक चमत्कारी कथा भागवतमें हैं।

अष्टम मण्डल

कण्व :—ये शाखाके प्रवर्तक थे। (भा० १०, ७४, ७)।

सौभरि :—मान्धाता राजाकी ५० कन्याओंके साथ महर्षि सौभरिने विवाह किया था। ये वृन्दावनवासी थे।

मनु :—नवमस्कन्धमें तो मनुकी वंशावली भरी है, समस्त भागवतमें मनु ओतप्रोत हैं। (भा० ९, १)।

भार्गव :—भार्गवका उल्लेख भी कई स्थानोंपर है। (भा० १०, ७४, ९)।

सुपर्ण :—यह नाम भागवतमें गरुड़के लिये प्रयुक्त है। (भा० १२,११,१९)।

नवम मण्डल

शुनः शेप :—शुनो लांगूलका भाई शुनःशेप था। ऋषि अजीगर्त इसके

---

१. भा० १०, ७४, ७।

पिता थे । हरिश्चन्द्रने वरुणको जलोदरका श्राप दे दिया था । हरिश्चन्द्रका पुत्र अपने पिताकी रक्षाके लिये शुनःशेपको खरीदकर लाया था; किन्तु मामा विश्वामित्रने रास्तेमें वरुणको प्रसन्न करनेवाला मन्त्र दे दिया था, उसका उच्चारण करनेपर वरुण प्रसन्न हो गया और शुनःशेपकी मुक्ति करा दी तथा राजाका उदर रोग दूर हो गया था । वेदमें शुनःशेपको कूपमें डालनेकी कथाऐं आती हैं । (भा० ६, ७) ।

असित[1] :—इध्मवाहके नाम भी दोनोंमें हैं ।

रहूगण :—भागवत पंचमस्कन्धमें रहूगणका उपाख्यान है, यह तत्त्ववेत्ता था । यह राजा सिन्धु देशका निवासी था । जडभरतजीसे इसने ज्ञान प्राप्त किया था । उशना[2], मन्यु[3], उपमन्यु, व्याघ्रपादके उल्लेख भागवतमें है ।

ययाति[2] :—ययाति नामक राजाकी कथा नवमस्कन्धमें है, वृषपर्वाकी कन्या शर्मिष्ठा और शुक्राचार्यकी पुत्री देवयानीकी परस्परमें मैत्री थी । एकबार वे वनमें गई और वहाँ परस्परमें कलह हो गई तथा देवयानीको शर्मिष्ठाने कूपमें ढकेल दिया । राजा ययाति प्याससे वहाँ पहुँचे, कूपमें देवयानीकी ध्वनि सुनकर हाथ पकड़कर उसे बाहर निकाला और शुक्राचार्यकी अनुमतिसे विवाह भी किया । इन्हीके सुप्रसिद्ध यदु नामक राजाका जन्म हुआ, जिनके वंशमें भगवान् श्रीकृष्णका प्राकटच हुआ था । ययाति राजाने अपना वृद्धत्व यदुको दिया और यौवन चाहा, परन्तु यदुने अस्वीकार कर दिया, फलतः यदुवंशी राजाओंको गद्दीपर बैठनेका अधिकार समाप्त कर दिया । इस आदेशका पालन भगवान् श्रीकृष्णने भी किया था । ऋग्वेद और भागवत दोनोंमें यह नहुष पुत्र स्वीकार किया है । (भा० ६, १८)

नारद :—भागवतका प्रारम्भ नारदके द्वारा व्यासको उपदेशसे है । भागवत (१, ६, ६) नारद सर्वत्र व्याप्त हैं ।

सप्तऋषि :—कश्यप आदि सप्तऋषियोंके उल्लेख वेद, भागवत दोनोंमें है । (भा० ५, २२, १७) ।

दशम मण्डल

वैवस्वत यम :—भागवतमें भी इनके वंशका वर्णन है । (भा० ६, १)

शर्याति :—शर्याति राजाकी कन्या सुकन्या थी । वनमें सुकन्याने महर्षि च्यवनके नेत्रोंमें कांटे डालकर ज्योति नष्ट कर दी थी, तब शर्याति राजाने अपनी पुत्री उन्हें भेंट कर दी थी । इन्होंने कई यज्ञ भी कराये थे । (भा० ६, ३) ।

१. भा० १०, १४, ७ । २. भा० ४, १, ४५ ।
३. भा० ३, १२, १२ ।

अरुण[1] :—नारायणका नाम महर्षियोंमें गृहीत होता है।

पुरूखा :—राजा पुरूखा और उर्वशीके प्रेमालापकी कथा प्रसिद्ध हैं। (भा० ९, १४)।

सरमा :—सरमासे सारमेयगणोंकी उत्पत्ति भागवतमें वर्णित है। वेदकी सरमासे साम्य विचारणीय है। (भा० ६, ६, २६)।

मान्धाता :—युवनाश्व राजाका पुत्र मान्धाता था। यह युवनाश्वके उदरसे उत्पन्न हुआ था। राजा युवनाश्व ही एक ऐसे राजा हैं, जिनके गर्भसे पुत्र उत्पन्न हुआ। भागवतमें कथामें लिखा है कि एकबार राजा युवनाश्वने पुत्रेष्टि यज्ञ किया। रातमें प्यास लगनेपर वह पुत्र प्रदान करनेवाला कलश जल पी लिया। महर्षि वशिष्ठके आश्वासनपर राजा जीवित रहा और गर्भ पूर्ण होनेपर उसके उदरको विदीर्णकर मान्धाताको निकाला। इन्द्रने 'मान्धाता' अर्थात् मैं इसकी रक्षा करूँगा कहा, अतः मान्धाता नाम पड़ा था। (भा० ९, ६)।

विश्वावसु :—गन्धर्व है। (भा० ६, ३, १४)।

इन्द्राणी :—इन्द्राणीकी कथा नहुषके उपाख्यानमें आती है। (भा० ६, ७)।

पृथु :—वेदमें इसे वेनपुत्र लिखा है। भागवतमें श्रीवेनका पुत्र लिखा है। इसीके नामसे पृथ्वी नाम पड़ा है। राजा पृथुने पृथ्वीका दोहन किया था और १०० अश्वमेध यज्ञ किये। (भा० ४, १५-२३ अध्याय)।

यमी :—यम और यमी दोनोंका साथ-साथ जन्म हुआ था। (भा० ६,६,४०)।

शिवि :—शिवि राजा परम उदार था। (९, २०)।

त्वष्टा :—यह विश्वरूपका पिता था। विश्वरूपकी मृत्यु हो जानेपर इसने इन्द्रको नष्ट करनेवाले पुत्रकी कामना की थी; किन्तु स्वरदोषके कारण इन्द्रसे मरनेवाला वृत्रासुर उत्पन्न हुआ। (भा० ६, ९)।

॥ इति द्वितीयः खण्ड समाप्तः ॥

---

१. भा० ९, ७, ३।   २. भा० ५, ४, ५।

तृतीय-खण्ड

१. भागवतका आविर्भाव ।

२. उपनिषदों और ब्रह्मसूत्रोंमें प्रतिपादित ब्रह्म ।

३. उपनिषद् और ब्रह्मसूत्रोंमें प्रतिपादित सृष्टिका भागवतमें विचार ।

४. कर्म-ज्ञान और भक्तिका सामान्य विचार।

५. उपसंहार ।

६. 'अर्थोऽयं ब्रह्मसूत्राणां'का विवेचन ।

श्रीभागवत का आविर्भाव

भागवत कर्ता व्यास—

'व्यास' शब्दका अर्थ विस्तार है। व्यास शब्दकी सिद्धि वि-अस्-घञ् सदस्यसे होती है[1]। शब्दरत्नावलीमें इसका पर्यायवाची शब्द 'मान भेद' रखा है। कालान्तरमें व्यास शब्द कथावाचकके अर्थमें व्यवहृत होने लगा जो विस्पष्ट, अद्भुत, शान्त, स्पष्टाक्षर, लयके साथ एवं रसभावसे संपृक्त कर बोलनेवाला, ग्रन्थके अर्थका तात्पर्य जाननेवाला ब्राह्मण, व्यास कहलाता है :—**"य एवं वाचयेत् ब्रह्मन् स विप्रो व्यास उच्यते[2]"**।

मध्य रेखाके लिये भी व्यास शब्दका प्रयोग हुआ है :—**"तद् व्यास संख्या च सखे विचिन्त्य[3]"**।

मुनिवाचक शब्दकी व्युत्पत्तिमें वि-आ-उपसर्ग अस्, धातुसे अच् प्रत्यय किया गया है। इस शब्दकी व्युत्पत्तिपर महाभारतमें प्रकाश डाला गया है :—

यो व्यस्य वेदांश्चतुरस्तपसा भगवानपि।
लोके व्यासत्वमापेदे कार्ष्णात् कृष्णत्वमेव च॥

वेदव्यास कन्यावस्थामें पराशरसे उत्पन्न हुए[4]। व्यास श्रीकृष्णकी पांच कलाके अवतार हैं[5]। एकबार व्यासने बाल्मीकि मुनिसे पुराणोंसे सूत्रके सम्बन्धमें प्रश्न किये। तब वाल्मीकिने जगदम्बिकाका स्मरण करके व्यासको पुराण ज्ञान दिया। व्यासने १०० वर्ष पर्यन्त पुष्करमें निवास करके देवीकी कृपासे वरदान प्राप्त किया, तब पुराणोंकी रचना की। **"तदा वेद विभागं च पुराणंच चकार ह"**। (ब्र० वै० प्र० ४)।

विभिन्न कथा—

१—अपान्तरतमा नामक व्यास सरस्वतीके पुत्र हैं। जगत् स्रष्टाने सरस्वतीको बुलाया और वहीं सरस्वतीसे अपान्तरतमा उत्पन्न हुए। ब्रह्माने वेद विभागकी

---

१. शब्दकल्पद्रुम पृ० ५५२ व्यास। २. म० पुराण तिथिनादितत्व।
३. लीलावती। ४. म० भा० १, १०५, १४।
५. ब्रह्म वै० प्रकृति खण्ड ४ अध्याय—"व्यासः पंचकलोद्भवः"।

प्रेरणा दी, तब अपान्तरतमाने वेदोंका विभाग किया। यह विभाग स्वायम्भु मन्वन्तरमें किया गया। भगवान् हरिने इन्हें वरदान दिया कि मन्वन्तरोंमें तुम जैसे ही पुत्र वेद रक्षा करनेवाले होंगे[1]।

२—काली-पराशरके संयोगसे कृष्णद्वैपायनका जन्म हुआ।

काली पराशरात् जज्ञे, कृष्णद्वैपायनं मुनिम्।
द्वैपायनायसख्यां वै शुको जज्ञे गुणान्वितः॥

(बह्निपुराण प्रजापति सर्ग)

३—**युगभेदसे व्यासोंमें भेद** :—महर्षियोंने २८ बार वेदोंका विभाग किया है, अतः २८ व्यास हो गये हैं। प्रथमद्वापरमें स्वयंभुने ही वेदोंका विभाग किया। द्वितीय द्वापरमें प्रजापति व्यास बने, पुनः उशना, वृहस्पति, सविता, मृत्यु, इन्द्र, वशिष्ठ, सारस्वत, त्रिधामा[१०]—त्रिवृष, भारद्वाज, अन्तरीक्ष, धर्मी, त्रय्यारुण, धनंजय, क्रतंजय, ऋतञ्जय, भरद्वाज, गौतम[२०]—उत्तम, हर्यात्मा, वेण, वाजश्रवा, सोम, मुख्यायन, तृणविन्दु, ऋक्ष, भार्गव, वाल्मीकि, शक्ति पराशर, जातुकर्ण कृष्णद्वैपायन।

तस्मादस्मत् पिता शक्तिर्व्यासस्तस्मादहं मुने।
जातुकर्णो भवन्मत्तः कृष्णद्वैपायनस्ततः।
अष्टाविंशतिरित्येते वेदव्यासाः पुरातनाः।

कृष्णद्वैपायनके पश्चात् अगले द्वापरमें द्रोणाचार्यका पुत्र अश्वत्थामा व्यास बनेगा।

भविष्ये द्वापरे चापि द्रौणिर्व्यासो भविष्यति।
व्यतीते मम पुत्रेऽस्मिन् कृष्ण द्वैपायने मुनौ॥

(वि० ३ अंश, ३ अध्याय)

कूर्मपुराणके अनुसार १२वें द्वापरमें शततेजा नामक व्यास, १३वेंमें धर्म, १३वेंमें तद्क्षु, १५वेंमें त्र्यायण और १८वेंमें ऋतञ्जयका, २१वेंमें वाजश्रवा, २२वेंमें मुष्मायण, २३वेंमें तृणविन्दु, २४वेंमें बाल्मीकि, २५वेंमें विष्णु रखे हैं। इनका विस्तार देवी भागवतमें लिखा है[2]।

व्यासकी माता :—त्रिकाण्डशेषमें—वेदव्यासजननी नाम है। पर्यायवाची शब्द हैं—सत्यवती, वासकी, गन्धकलिका, योजनगन्धा, दासेयी, शलंकायन[3] जीवसू,

---

१. म० भा० मोक्षधर्म। **२. देवी भा० १, ३।**
३. हेमचन्द्र कोष।

काली, झषोदरी, विचित्रवीर्यसूः, चित्रांगदसूः, योजनगन्धिका, गन्धकाली, सत्या और दास नन्दिनी[1]।

वेदव्यासः—"वेदं व्यस्यति पृथक् करोतीति" अर्थात्-वेदका जो विस्तार करता है वह वेदव्यास है। यह शब्द अण् प्रत्यायान्त है। इसके पर्यायवाची शब्दोंमें माठर, द्वैपायन, पाराशर्य, कानीन, बादरायण, व्यास, कृष्णद्वैपायन, सत्भारत, पाराशरि, सात्यवत, बादरायणि, सत्यवतीसुत, सत्यरत, पाराशर प्रमुख हैं। **"वेदव्यासाभिधानात्तु सा सा मूर्तिर्मधुद्विषः"** (वि० पु०)।

व्यास जन्मके प्रमुख तीन कारण उपलब्ध हैं—प्रथम तो यह है कि 'परमेश्वर' कारण विशेषसे ही महान् विभूतियोंमें अंश या कला द्वारा अवतार ग्रहण करता है। भागवतमें विभिन्न अवतारोंके विभिन्न कारण निर्दिष्ट किये हैं, उनमें वेदरूपी वृक्षकी शाखाका कार्य सत्रहवें अवतारमें व्यासरूपसे किया[2]। यह अवतार प्रत्येक द्वापरमें जाना जाता है[3]। उक्त श्लोकमें भी 'वेद विस्तार हेतु' स्पष्ट निर्दिष्ट है। द्वितीय कारणमें महाभारतकी घटनाका उल्लेख किया जा सकता है जिसके अनुसार पराशरने शिवकी आराधनासे पुराण कर्ता पुत्रकी कामना की और वह पूर्ण हुई[4]।

तृतीयकारण स्कन्दपुराणमें वर्णित उपाख्यान है, इसके अनुसार "एक समय देवगण धर्म मार्गमें किंकर्तव्य विमूढ़ हो गये थे। तब वे नारायणकी शरणमें गये और उनसे अपना कष्ट निवेदन किया, भगवान्ने धर्म संशय निवारणार्थ उन्हें आश्वासन दिया तथा सत्यवतीमें उनके कार्यकी सिद्धिके लिये जन्म ग्रहण किया[5]।

---

१. शब्द रत्नावली कोष।

२. ततः सप्तदशे जातः सत्यवत्यां पराशरात्।
चक्रे वेदतरोः शाखा दृष्ट्वा पुंसोऽल्पमेधसः॥ (भा० १, ३, २१)

३. आविर्हितस्त्वनु युगं स हि सत्यवत्यां।
वेदद्रुमं विटपो विभजिष्यतिस्म॥ (भा० २, ७, ३६)

४. महा० अनु० अ० १८।

५. एतस्मिन्नन्तरे मूढा धर्म मार्गे सुरर्षयः।
संकीर्ण बुद्धयो देवा ब्रह्म रुद्र पुरोगमाः॥
शरण्यं शरणं जग्मुर्नारायणमनामयम्।
तैर्विज्ञापित कार्यस्तु भगवान् पुरुषोत्तमः॥
अवतीर्णो महायोगी सत्यवत्यां पराशरात्॥
(स्कन्द पुराण वैष्णव खण्ड अ० ७, पृ० १८५)

'महर्षि व्यास' ईश्वरके सत्रहवें अवतार हैं, तथापि लोक मर्यादाके लिये मानवजातिसे सम्बन्ध मानकर ही लोकप्रवृत्ति मान्य होती है।

महर्षि व्यासकी माता सत्यवती तथा पिता पराशर मुनि थे। "**जयति पराशर सूनुः सत्यवतीहृदय नन्दनो व्यासः**[१] उक्ति सर्वत्र प्रसिद्ध है। इनके पूर्वजोंका सम्बन्ध प्रजा स्रष्टा ब्रह्मासे सीधा था। ब्रह्माके मानसपुत्र वशिष्ठ थे, वशिष्ठके पुत्र शक्ति तथा शक्तिके पुत्र पराशर थे, जो व्यासजीके पिता थे।

(अ) निर्माण हेतु—

श्रीमद्भागवत वैष्णवोंका परम धन है, श्रीधर स्वामी इसमें ज्ञानकी महत्ता भी स्वीकार करते हैं[२]। इसकी रचना वेदव्यासकी आत्माको शान्ति प्राप्त करनेके हेतु हुई थी[३]। सत्रह पुराण एवं महाभारतादिकी रचना करनेसे भी व्यासके चित्तमें अशान्ति ही बनी रही, तब उनके समीप देवर्षि नारद आये और उन्होंने श्रीकृष्णकी महिमाका प्रतिपादन किया[४]। इससे यह स्पष्ट है कि श्रीमद्भागवत आत्म शान्ति प्राप्त करनेका एकमात्र साधन है।

सांसारिक बन्धनोंसे निवृत्त करनेवाले अन्य शास्त्र भी अपना महत्व रखते हैं किन्तु उनके अध्ययनका अधिकार अधिकारी विशेषको दिया गया है, एक भागवत शास्त्र ही सबके लिये समान भावसे सुलभ है। उत्तम, मध्यम, अधम, त्रिविध प्रकारके अधिकारी इसकी, रसमयी, आनन्दमयी कथाओंका पान कर सकते हैं। इस विषयमें नारद द्वारा अपने पूर्व जन्मके वृत्तान्त वर्णनका प्रसंग भी महत्वपूर्ण है, क्योंकि 'नारद' स्वयं पूर्व जन्ममें एक दासीके पुत्र थे, केवल भगवान्‌की कृपाके कारण ही वे द्वितीय जन्ममें ब्रह्माजीके पुत्र बने[५]।

श्रीमद्भागवतके टीकाकार उपर्युक्त मूल प्रसंगकी प्राथमिकता स्वीकार करते हुए भी अन्य हेतुओंका उल्लेख करते हैं। श्रीजीवगोस्वामी श्रीमद्भागवतकी रचना ब्रह्मसूत्रोंका रहस्यस्फोटनके लिये मानते हैं और वे प्रमाण भी प्रस्तुत करते हैं— श्रीमद्भागवत ब्रह्मसूत्रोंका अर्थ है, भारतके अर्थका निर्णायक है तथा गायत्रीका भाष्य एवं वेदार्थका विस्तार है"।

---

१. महाभारत आदि पर्व के प्रारम्भ में–गीताप्रेस गोरखपुर हिन्दी टीका संस्करण १४।

२. भावार्थ दीपिका १, १, १ 'श्रीमद्भागवत पुराणममलं यद्वैष्णवानां धनम्'।

३. भा० १, ४, १७-३१। ४. भा० १, २, ६।

५. भा० १, ५, १०-२७।

अर्थोऽयं ब्रह्मसूत्राणां भारतार्थ विनिर्णयः।
गायत्रीभाष्यरूपोऽसौ वेदार्थ परिबृंहितः॥
"ब्रह्मसूत्राणामर्थस्तेषामवकृत्रिम भाष्य भूत इत्यर्थः॥
पूर्वं सूक्ष्मत्वेन मनस्याविर्भूतं तदेव संक्षिप्य सूत्रत्वेन—
पुनः प्रकटितम्, पश्चाद्विस्तीर्णत्वन साक्षाच्छ्रीभागवतमिति[1]।

श्रीवीराघवाचार्यने वेदान्तार्थ उपवृंहणात्मक श्रीमद्भागवतको माना है[2]। मध्वसम्प्रदायके आचार्य विजयध्वजने वेदान्तार्थका विस्तार मानते हुए यह भी लिखा है कि ब्रह्मसूत्रोंके अध्ययनका अधिकार सर्वसाधारणको सुलभ नहीं था, अतः इस भागवतपुराणकी रचना की गई[3]। शुद्धाद्वैत सम्प्रदायके आचार्य वल्लभ एवं गौड़ीय सम्प्रदायाचार्य विश्वनाथ निम्बार्क सम्प्रदायके विद्वान् शुकसुधीने 'भक्तिकी श्रेष्ठता' ज्ञापन हेतु इस ग्रन्थ रत्नकी रचना स्वीकार की है। राधामोहन तर्क वाचस्पतिने श्रीमद्भागवतका निर्माण परमार्थसाधन सिद्धिके लिए लिखा है[4]। व्यासकी रचनाओंमें पूर्वापर निर्णय अत्यन्त क्लिष्ट है। सभी पुराणोंमें प्रायः सभी पुराणोंके नाम प्राप्त होनेसे यह समस्या और भी कठिन बन जाती है। ज्ञात होता है कि व्यास एकके साथ अन्य रचना भी प्रारम्भ कर देते तथा एकके पश्चात् दूसरी कृतिका संशोधन भी करते रहते थे। अतः प्रारम्भमें उन्होंने भागवत निर्माणका विचार किया और उसे संक्षिप्त रूपसे बना दिया, तदनन्तर अन्य पुराणोंमें उसका उल्लेख किया एवं अन्य पुराण पूर्ण होनेके उपरान्त अठारहवीं संख्यावाले इस विशालकाय ग्रन्थका निर्माण हो। हम इसे व्यासकी अन्तिम कृति कहें तो कोई विसम्वाद नहीं होना चाहिए।

रचना काल

बाह्यसाक्ष्य :—

भारतीय प्राचीन मत—भारतीय प्राचीन मतके अनुसार श्रीमद्भागवतकी रचना किसी कालविशेषमें नहीं हुई, यह दिव्य ग्रन्थ है और इसमें भगवान्‌की नित्य-

---

१. तत्त्वसन्दर्भ पृष्ठ ४८ अच्युतग्रन्थमाला काशी २०१४।

२. भाग० चं० चं० १, १, १ "वेदान्तार्थोपपृंहणात्मकं श्रीमद्भागवताख्यपुराण-म्लंचिकीर्षुः"।

३. पद० १, १, १ "अथ कलिमलापनुत्तये.........
विभक्त वेदस्तदर्थं निर्णयेच्छुर्विरचित ब्रह्मसूत्रस्तदनधिकारि जनापवर्गाय प्रकाशित पुराण संहितो":।

४. दीपिकादीपनी १, १, १ में उद्धृत वाक्य।

लीलाओंका निरूपण है। यह आध्यात्मिक भावना है। भागवतका पुराणोंमें उल्लेख है और यह भी उल्लेख है, कि भागवतकी रचना १७ पुराणों एवं महाभारतकी रचनाके बाद हुई, अतः इसकी रचनाका कोई निश्चित समय नहीं है। प्रत्येक द्वापरके अन्तमें, भागवत शास्त्रका आविर्भाव होता है और यह कार्य व्यासके द्वारा ही होता है। जैसे वेदोंके सम्बन्धमें यह धारणा है कि प्रलयके पश्चात् विधाता उन्हें ज्योंका-त्यों प्रसारित कर देता है, ऐसा ही नियम श्रीमद्भागवतके सम्बन्धमें माना जाता है। परन्तु गवेषकोंको इतने कथनमात्रसे सन्तुष्टि नहीं होती। उनके मतसे ऐसे ग्रन्थोंका भी कोई कालविशेष, तिथिविशेष होता है। इस मान्यताके कारण ही श्रीमद्भागवतकी रचना बारहवीं शताब्दी पर्यन्त आ गई है। यहाँतक कि स्वामी दयानन्द सरस्वती जैसे भारतीय विद्वान्ने भी इसकी रचना १३वीं शताब्दीमें स्थिर की थी।

पाश्चात्यविद्वानोंने प्रमुखतः विलसन साहव[1] कोलब्रुकने[2] इस कृतिका कर्ता वोपदेवको माना था, वेदव्यासको नहीं। परन्तु वोपदेवकी कृतियोंमें भागवतका कहीं भी उल्लेख नहीं है।

दयानन्दकी भ्रान्ति—स्वामी दयानन्दने वोपदेवको जयदेवका भाई लिखा है। परन्तु वोपदेवके पिताका नाम केशव था, और जयदेव जातिका बंगाली एवं इसके पिताका नाम, भोजदेव था। वोपदेव, हेमाद्रिके सम-सामयिक थे, अतः वोपदेवसे पूर्व भागवतका अस्तित्व था, इसमें कोई भी सन्देह नहीं रह जाता है। इसके अतिरिक्त अन्य प्रमाण भी हैं :—

(१) मध्वाचार्य (११९९ ई०)का ग्रन्थ 'भागवततात्पर्य निर्णय' मिलता है। यह ग्रन्थ, भागवतपर लिखा गया है।

(२) रामानुजाचार्य (१०१७ ई०)ने अपने वेदान्त तत्वसार ग्रन्थमें श्रीमद्भागवतका नाम ग्रहण करते हुए कई उद्धरण दिये हैं, जिनमें एकको एकादश-स्कन्ध और एकको वेदस्तुतिके नामसे अभिहित किया है।

(३) टीकाकारोंमें प्रमुख 'श्रीधर स्वामी' माने जाते हैं इन्होंने अपनी टीकामें चित्सुखाचार्यका उल्लेख किया है। चित्सुखाचार्यका समय शंकराचार्यके पश्चात् है। आचार्य शंकरका समय ७८८–८२० ई०से निश्चितपूर्व है। चित्सुखकृत भागवत संग्रहमें एक श्लोक है :—

ग्रन्थोऽष्टादश साहस्रो द्वादशस्कन्धसम्मितः।
गायत्र्याश्चसमारम्भस्तद्वै भागवतं विदुः[1] ॥

---

१. विष्णुपुराण की भूमिका—विलसन।
२. एशियाटिक रिसर्चेज भाग ८, पृष्ठ ४६७।

(४) महमूद गजनवीकी चढ़ाईका समय ६६७–१०३० ई० है। उस समय अल्वेरूनीने संस्कृतका अध्ययन किया। इसने भागवत पुराणको पांचवां पुराण लिखा है[१]। उस समय वासुदेव शब्दका पर्याय अल्वेरूनीने किया है। अतः देवी भागवत होकर यही भागवत पुराण मानना पड़ता है और यह भी कि यह पुराण अल्वेरूनीसे बहुत पहिले प्रसिद्ध हो गया था।

अभिनवगुप्तपादाचार्य—यह दशम शताब्दीके प्रसिद्ध विद्वानोंमें हैं। ये शैवसम्प्रदायके सबसे बड़े आचार्य थे। इनकी गीतापर एक टीका है उसमें भागवतके नामसे द्वितीयस्कन्ध एवं एकादशस्कन्धके श्लोक उद्धृत किये हैं। यहाँ यह भी विचारणीय है कि वर्तमान श्रीमद्भागवतको दक्षिणकी कृति माना जाता है और काश्मीर जहाँ अभिनवगुप्त थे सुदूर उत्तरमें थे और साथ ही शैवाचार्यभी थे, वैष्णव नहीं। दक्षिणसे उत्तरतक, भागवतकी प्रसिद्धि होनेमें पर्याप्त समय लगा होगा अर्थात् शताब्दीका समय इसके मध्यमें मानना पड़ेगा, अतः यह दशम शताब्दीसे पूर्वकी रचना है।

गौडपादाचार्य—सांख्यकारिकाकी वृत्ति एवं माण्डूक्यकारिकाके रचयिता अभिन्न थे[२]। गौडपाद शंकराचार्यके दादागुरू थे। ये किसी भी मतसे ७वीं शताब्दीके बादके नहीं हैं। इनकी माठरवृत्तिमें भागवतके श्लोक दिये गये हैं।

"एतद् ध्यातुरचित्तानां"। (भा० १, ६, १५)
"यथापङ्केन पङ्काम्भः"। (भा० १, ८, ५२)

गोडपादको ५०० ई०का माना जाना राममहाशयके मतानुसार है[३]। अतः भागवतका रचनाकाल इसके शताब्दियों पूर्व माना जा सकता है।

उत्कीर्ण लेख—छठी शताब्दीके उत्कीर्ण लेखोंमें, प्रतिमाओंमें राधाकृष्ण–बलराम आदिके दर्शनसे यह निश्चित होता है कि भागवतकी लीलाओंका प्रसार इस शताब्दीतक पर्याप्त हो चुका था[४]। इन स्पष्ट प्रमाणोंसे जब भागवतका रचनाकाल ईसाके लगभग पहुँच जाता है, तो क्या कारण है कि इसकी प्राचीनतामें सन्देह किया जा सके। ईस्वी पूर्वका युग अन्धकार युग है। इसमें तो अन्तःसाक्ष्यका अवलम्बन

---

१. अलबेरूनीका भारत भाग २ पृष्ठ ३६।

२. वसुमलिक लेक्चर—कलकत्ता यूनिवर्सिटी १६२५, पृ० १८६।

३. इण्डियन हिस्ट्री क्वाटर्ली पृ० ४६-५३।

४. पहाड़पुर खुदाई पृ० १३०।
गंगा पुरातत्वांक जनवरी १६३२।

ही उपयुक्त बैठ सकता है, अतः इस वाह्यसाक्ष्यके साथ अन्तःसाक्ष्यपर दृष्टिपात उचित है। वर्तमान समयमें उपलब्ध श्रीमद्भागवत पुराण अत्यन्त प्राचीन है, तथापि कतिपय विद्वान् इसे १३वीं शताब्दीके आस-पासकी रचना मानते हैं। नीलकण्ठ शा०ने इसे वोपदेवकी कृति लिखा है[1]। स्वामी दयानन्द सरस्वतीने अपने सत्यार्थ-प्रकाश, नामक ग्रन्थमें न केवल इसे आधुनिक माना है अपितु इसका रचयिता भी प्रसिद्ध विद्वान् वोपदेवको स्वीकार किया है, यह स्पष्ट लिखा है कि यह ग्रन्थ व्यासकी रचना नहीं है[2]। किन्तु यह निर्मूल है क्योंकि उस ग्रन्थमें वोपदेवको गीतगोविन्दकार जयदेवका भाई माना है। परन्तु वोपदेवके पिताका नाम केशद वैद्य था, जब कि जयदेवके पिताका नाम भोजदेव था। जयदेव बंगाली ब्राह्मण थे। धातुपाठमें वोपदेवने केशवको 'वैद्य' लिखा है[3]। अतः वोपदेव तथा जयदेव कथमपि भाई नहीं थे। वोपदेव हेमाद्रिके समकालीन थे, हेमाद्रि महादेवके मन्त्री थे, इनका राज्य समय १२६०-१२७१ई० माना गया है। हेमाद्रिके लिये वोपदेवने तीन ग्रन्थ भी रचे थे—

१. परमहंस प्रिया २. हरिलीला ३. मुक्ताफल

ये तीनों ग्रन्ध भागवतपर लिखे गये हैं। हेमाद्रिने वोपदेव कृत 'मुक्ताफल' नामक ग्रन्थकी टीका भी की थी, जिसे कैवल्यदीपिका कहते हैं। हेमाद्रिने वोपदेदको भागवतका कर्ता नहीं लिखा, यदि इन्होंने भागवतका निर्माण किया होता तो अवश्य हेमाद्रि उल्लेख करता। हेमाद्रिने वोपदेवके ग्रन्थोंका उल्लेख करते हुए लिखा है कि वोपदेवने व्याकरणके १०, वैद्यकके ६, तिथि निर्णयका १ तथा साहित्यके ३ एवं भागवत तत्त्वके ३ ग्रन्थ लिखे थे[4]। उक्त प्रमाण से भागवतकी प्राचीनता सिद्ध होती

---

१. देवी भागवत उपोद्घातमें स्पष्ट लिखा है कि—
"द्वितीयैकपक्षैकदेशिनोऽपि विष्णु भागवतं वोपदेव कृतमिति वदन्ति।"
(पुराणविमर्श पृ० ११६)

२. सत्यार्थप्रकाश उल्लास ११, पृ० ३३५।

३. विद्वद्धनेश शिष्येण भिषक् केशव सूनुना।
तेन वेद पदस्थेन वोपदेव द्विजेन यः॥ (पुराणविमर्श पृष्ठ ११७)।

४. यस्य व्याकरणे वरेण्य घटना स्फीताः प्रबन्धा दश
प्रख्याता नववैद्यकेऽपि तिथि निर्धारार्थमेकोद्भुतः।
साहित्ये त्रय एव भागवत तत्त्वोक्तौ त्रयस्तस्य च
भूगीर्वाण शिरोमणेरिह गुणाः के के न लोकोत्तराः॥
(श्रेय भागवतांक संख्या २, पृष्ठ ११)

है, क्योंकि हेमाद्रिने लिखा है कि वोपदेवने भागवत तत्त्व प्रबोधनार्थ, तीन ग्रन्थोंका प्रणयन किया था। अतः कोलब्रुक-विलसन आदि पाश्चात्य विद्वान्, जो श्रीमद्भागवतपुराणको १२वीं शतीकी रचना मानते हैं, उनका मत निर्मूल सिद्ध हो जाता है[१]।

अन्तः साक्ष्य :—

भागवतके प्रसिद्ध टीकाकार, श्रीधर स्वामीका समय १२००–१३५० विक्रमके मध्य सर्व सम्मत है। इन्होंने श्रीचित्सुखाचार्यका उल्लेख किया है। चित्सुखाचार्यका समय नवम शताब्दी माना जाता है। चित्सुखाचार्यने श्रीमद्भागवतकी टीका भी की थी। चित्सुखाचार्य शंकरकी परम्परामें थे एवं शंकराचार्यका समय सप्तम शतीका उत्तरार्द्ध है[२]। शंकराचार्यके कतिपय स्तोत्रोंपर भागवतका स्पष्ट प्रभाव है, प्रबोध सुधाकर आदि शंकराचार्यकी कृतियाँ मानी जाती हैं, उसमें कृष्णकी बाललीलाओंका वर्णन उपलब्ध है जो भागवतसे अनुप्राणित है[३]। शंकराचार्यने इस लीला वर्णनमें व्यासका उल्लेख भी किया है—

कापि च कृष्णायन्ती कस्याश्चित्पूतनायंत्याः।
अपिवत् स्तनमिति साक्षाद् व्यासो नारायणः प्राह॥

(प्रबोध सुधा०)[४]

फलतः 'भागवत' शंकराचार्यसे पूर्व रचित है, यह स्वतः सिद्ध है। आचार्य शंकरके गुरु गोविन्दपाद थे और उनके गुरु गौडपादाचार्य। गौडपादने पंचीकरण व्याख्यानमें **"जगृहे पौरुषं रूपं" 'इति भागवतमुपन्यस्तम्'** ऐसा लिखा है, उक्त श्लोक भागवतके (१, ३)का प्रथम श्लोक है।

गौडपादने उत्तर गीतामें—भागवतके **"श्रेयः सृतिं भक्तिमुदस्य ते विभो"** (भा० १०, ३०, १५)के श्लोकको उद्धृत किया है[५]। अद्वैत सम्प्रदायकी किम्वदन्तीके अनुसार 'गौडपाद'–श्रीशुकदेव मुनिके शिष्य थे[६]। भागवतके अन्तःसाक्ष्यके आधारपर

---

१. सरस्वती भवन पुस्तकालय (संस्कृत विश्वविद्यालय वाराणसी)में वंगाक्षरों (पु० वि० पृ० ११६)में भागवतकी प्रति विद्यमान है। यह प्रति वोपदेवसे २०० वर्ष प्राचीन है।

२. ३. ४. पुराण विमर्श—बल्देव उपाध्याय, पृष्ठ ११६, चौखम्बा काशी।

५. उत्तर गीता अ० २ श्लोक ४८।

६. वेदान्तांक—पृष्ठ ६३८ (भाग ११, अगस्त सन् १९३६)।

इसका अन्तिम रूप आजसे ५०३७ वर्ष पूर्व माना जा सकता है। भागवतके तीन संस्करण हुए हैं, भागवतमें इन अधिवेशनोंकी चर्चा है।

शौनकने सूतसे इसकी चर्चा करते हुए तीन प्रश्न किये—

१. गोकर्णने धुन्धकारीको कब सुनाया।

२. सनत्कुमारने नारदको तथा

३. शुकदेवने परीक्षितको कब सुनाया था[1]।

शुक-परीक्षित सम्वाद—कृष्णके भूतल त्यागके ३० वर्ष उपरान्त गंगातटपर भाद्रपद नवमीसे प्रारम्भ हुआ[2]। वर्तमान कलियुगाब्द ५०६७ है। यही कृष्णके परमधाम प्रवेश करनेकी वर्ष संख्या है[3], कृष्णके ३० वर्ष उपरान्त यदि मानें तो ५०४४ वर्ष, भाद्रपद मास शुक्ल पक्ष नवमी (सं० २०३०)के दिवस पूर्ण होंगे[4]। कतिपय विद्वान् कृष्णका २५ वर्ष कलिमें निवास मानते हैं, उनके अनुसार ५०११ वर्ष हुए। श्रीमद्भागवतका द्वितीय संस्करण परीक्षित कथा श्रवणके २०० वर्ष उपरान्त हुआ था—

परीक्षिच्छ्रवणान्ते च कलौ वर्ष शतद्वये।
शुद्धे शुचौ नवम्यांच धेनुजोऽकथयत् कथाम्॥ (भा० मा० ६, ८६)

अर्थात् आजसे ४८३७ वर्ष पूर्व द्वितीय संस्करण हुआ, इसकी आरम्भ तिथि आषाढ़ शुक्ल नवमी थी।

श्री सनत्कुमारने गोकर्णके प्रसंगके ३० वर्ष पश्चात् 'भागवत सप्ताह' नारदके लिये सुनाया था। आज (सं० २०३०)से ४८१४ वर्ष पूर्व[5]। चतुर्थ संस्करण सूत शौनक प्रसंगके कारण नैमिषारण्यमें हुआ[6]। यह प्रसंग अधिकसे अधिक १० वर्ष

---

१. भा० माहात्म्य ६, ८४।

२. यस्मिन् कृष्णो दिवं यातस्तस्मिन्नेव तदाहनि।
प्रतिपन्नं कलियुगमिति प्राहुः पुराविदः॥ (भाग० १२, २, ३३)।

३. आकृष्णनिर्गमात्त्रिंशद्वर्षाधिक गते कलौ।
नवमीतो नभस्ये च कथारम्भं शुकोऽकरोत्॥ (भाग० माहात्म्य ६, ८४)।

४. पु० तत्त्व समीक्षा—कृष्णमणि त्रिपाठी, पृ० १६४।

५. तस्मादपि कलौप्राप्ते त्रिंशद्वर्ष गते सति।
ऊचुरूर्जे सिते पक्षे नवम्यां ब्रह्मणः सुताः॥ (भाग० माहात्म्य ६, ८६)।

६. नैमिषेऽनिमिश क्षेत्र ऋषयः शौनकादयः। (भा० १, १, ४)।

पश्चात् भी मानें तो ४४८७७ वर्ष पूर्व और इस कथानकको व्यासजी द्वारा पुनः उपनिवद्ध किया माना जाय और ५ वर्षका समय अधिक मान लें तो ४७८८ वर्ष पूर्व भागवतका वह रूप निश्चित हो चुका था जो अद्यावधि प्राप्त है, इसके आगे भागवत रचनाकाल कथमपि संगत नहीं बैठ सकता। विस्तारके लिए लेखकका पी-एच० डी०को प्रस्तुत शोध प्रबन्ध द्रष्टव्य[1]।

भागवत सम्प्रदाय परम्परा

श्रीमद्भागवतमें ही इस ग्रन्थकी दो परम्पराएें होती हैं। द्वितीयस्कन्धके अनुसार यह स्पष्ट है कि नारदने व्यासको भागवतका उपदेश दिया था, एवं नारदको यह उपदेश ब्रह्मासे प्राप्त हुआ था, तथा ब्रह्माको भगवान्से[2]। तृतीयस्कन्धके अष्टमाध्यायमें संकीर्णने सनत्कुमारको और उनसे सांख्यायनने भागवतपुराण ग्रहण किया। अतः पाराशरने और उनसे मैत्रेय ने, तब सूतने। इस परम्परामें कृष्णद्वैपायनका नाम ही नहीं हैं[3]।

दोनों परम्पराओंका क्रम निम्नलिखित है :—

प्रथम परम्परा	द्वितीय परम्परा
परमेश्वर	संकर्षण
ब्रह्मा	सनत्कुमार
नारद	सांख्यायन
व्यास	पराशर-वृहस्पति
शुक	मैत्रेय
सूत	सूत

---

१. श्रीमद्भागवतके वैष्णव टीकाकारोंकी टीकाओंका विश्लेषणात्मक अध्ययन।

२. देवर्षि परिपप्रच्छ..........भा० २, ९, ४२।

तस्मा इदं भागवतं पुराणं दश लक्षणम्।
प्रोक्तं भगवता प्राह प्रीतः पुत्राय भूतकृत्॥
नारदः प्राह मुनये सरस्वत्यास्तटे नृप।
ध्यायते ब्रह्म परमं व्यासायामिततेजसे॥ (भाग० २, १०, ४४)

३. "आसीनमुर्व्यां भगवन्तमाद्यं संकर्षणंदेवमकुण्ठ सत्वम्" (भा० ३, ८, ३)।

सनत्कुमाराय स चाह पृष्टः सांख्यायनायांग धृतव्रताय।
जगाद सोऽस्मद्गुरवेऽन्विताय पराशरायाथ वृहस्पतेश्च॥
प्रोवाच मह्यं सदयालुरुक्तोमुनिः पुलस्त्येन पुराणमाद्यं।
सोऽहं तवैतत् कथयामि वत्स श्रद्धालवे नित्यमनुव्रताय॥ (भा० ३, ८, ९)

प्रथम परम्पराके वक्ता–शुकदेव हैं। द्वितीय परम्पराके वक्ता–मैत्रेय। दोनों परम्पराओंमें सूतका उल्लेख आवश्यक है, क्योंकि वे नैमिपारण्यमें शौनकादिकोंके समक्ष भागवत कथा कह रहे हैं।

उपनिषदों और ब्रह्मसूत्रोंमें प्रतिपादित ब्रह्म

उपनिषदोंमें वर्णित ब्रह्म सर्वशक्तिमान् है, सर्वव्यापी है और समस्त प्राणियोंका अन्तर्यामी है। मा० उ०में लिखा है—**"एष सर्वेश्वर एष सर्वज्ञ एषोऽन्तर्याम्येष योनिः सर्वस्य"**[1] (मा० ६)। आगे इसी उपनिषद्में यह भी लिखा है कि "जो न भीतरकी ओर प्रज्ञावाला है, न बाहरकी ओर प्रज्ञावाला है, न दोनों ओर प्रज्ञावाला है, न प्रज्ञानघन है, न जाननेवाला है, न नहीं जाननेवाला है, जो देखा नहीं गया है, जो व्यवहारमें नहीं लाया जा सकता, जो पकड़नेमें नहीं आ सकता, जिसका कोई लक्षण नहीं, जो चिन्तन करनेमें नहीं आ सकता, एकमात्र आत्माकी प्रतीति ही जिसका सार है, जिसमें प्रपंचका सर्वथा अभाव है, ऐसा सर्वथा शान्त, कल्याणमय, अद्वितीयतत्त्व, परब्रह्म परमात्माका चतुर्थपाद है, वह परमात्मा है, वह जानने योग्य है" (मा० ७)। तै० उ०में लिखा है कि "ये सब प्रत्यक्ष दीखनेवाले प्राणी जिससे उत्पन्न होते हैं, जिसके सहारे जीवित रहते हैं, अन्तमें प्रवेश करते हैं, उसकी जाननेकी इच्छाकर, वही ब्रह्म है :—

यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते, येन जातानि जीवन्ति।
यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति तद्विजिज्ञासस्व तद्ब्रह्म॥

(तै० उ० ३, १)

उपनिषदोंमें ब्रह्मको अकर्ता, अभोक्ता, असक्त, अव्यक्त, अगोचर, अचिन्त्य, निर्गुण, निरञ्जन तथा निर्विशेष बताया है। इसके विपरीत ब्रह्मसूत्रमें ब्रह्मको जगत्की उत्पत्ति, स्थिति एवं प्रलय का कर्ता बताया है। इस विपरीत तथ्यका विचार करनेपर यह मानना पड़ता है कि देवता, दैत्य, दानव, मानव, पशु, पक्षि आदि अनेक जीवोंसे परिपूर्ण सूर्य-चन्द्रमा, तारा तथा नाना लोकान्तरोंसे सम्पन्न, इस अनन्त ब्रह्माण्डका कर्ता-हर्ता कोई अवश्य है। इसका कर्ता ब्रह्म है और इसीके परमेश्वर, परमात्मा और भगवान् आदि विविध नाम हैं। यह दृश्यमान् जगत् उसकी अपार शक्तिके किसी एक अंशका दिग्दर्शन मात्र है।

ब्रह्मसूत्रकारने इस ब्रह्मको जगत्का कर्ता **"जन्माद्यस्ययतः"** (१, १, २)से मानते हुए उसके प्रामाण्य सिद्ध करनेके लिये **"शास्त्रयोनित्वात्"** (१, १, ३) सूत्रसे जगत् कर्तृत्व सिद्ध किया है। वेदमें उसका लक्षण **"सत्यंज्ञानम-**

नन्तं ब्रह्म" कहा है तो तैत्तरीयोपनिषद्में उसका कारणत्व **"यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते"**से सिद्ध किया है। ब्रह्म, निमित्त कारण ही नहीं, उपादान कारण भी है (ब्र० १, २, ४)। उपनिषदोंमें सृष्टि प्रकरणमें ईक्ष क्रियाका प्रयोग आया है। **"सदेव सौम्येदमग्रआसीत् एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म"**से प्रकरण प्रारम्भ कर **"तदैक्षत बहुस्यां प्रजायेय"** (छा० उ० ६, २, ३)। उस सत्ने ईक्षण-संकल्प किया कि "मैं बहुत हो जाऊँ" ऐसा कहा है। ईक्षण या संकल्प अचेतनमें नहीं घटित होता, इसे ब्रह्म-सूत्रकारने भी लिखा है—**"ईक्षतेर्नाशब्दम्"** (१. १, ५)। जिन उपनिषदोंमें आत्मा शब्दका उल्लेख है वहाँ वह परब्रह्म परमात्माके लिये है, जड, प्रकृतिके लिये नहीं है। **"तदात्मानंस्वयमकुरुत"** (तै० उ० २, ७)। उस ब्रह्मने स्वयं ही अपने आपको इस जड चेतनात्मक जगत्के रूपमें प्रकट किया। इस परमात्मासे ही आकाश उत्पन्न हुआ है (तै० उ० २, १)। परमात्मासे ही सब कुछ उत्पन्न हुआ है[१]। प्राणका जन्म भी उसीसे है[२] है। पाँच तत्व भी उसीसे उत्पन्न होते हैं[३]। इस प्रकार उक्त उपनिषद् वाक्योंमें समान रूपसे चेतन परमात्माको ही जगत्का कारण बताया है।

इन उपनिषद् वाक्योंका सार **"गतिसामान्यात्"** (ब्र० सू० १, १, १०)में अन्तर्निहित किया गया है। उस परमात्माका कोई जनक नहीं है, न उसका कोई स्वामि है (श्वेता० उ० ६, ९)। वही विश्वका स्रष्टा है (श्वे० ६, १६)। उससे ही समुद्र और पर्वत उत्पन्न हुए हैं (मु० ३, १, ९)। श्रुतत्वाच्च (१, १, ११)ने इसकी ओर ध्यानाकर्षित किया है। श्रुतियोंमें ब्रह्मके लिये आनन्द शब्दका प्रयोग भी आता है **"रसं ह्येवायं लब्ध्वाऽऽनन्दी भवति"**[४] आनन्दमय ही रस स्वरूप है। सचमुच यह परमात्मा ही सबको आनन्द प्रदान करता है। **"सैषाऽऽनन्दस्यमीमांसा भवति"** (तै० २, ८) तथा **"आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान् न बिभेति कुतश्चन"** (तै० उ० २, ९)। **"आनन्दो ब्रह्मेति व्यजानात"** (तै० उ० ३, ६)। **"विज्ञानमानन्दं ब्रह्म"** (बृ० उ० ३, ९, २८)। आनन्द एवं आनन्दमयके प्रयोग परब्रह्मके लिये आये हैं। ब्रह्मसूत्रोंमें **"आनन्दमयोऽभ्यासात्"** (१, १, १२)के द्वारा इस ओर ध्यानाकृष्ट किया गया है। मयट् प्रत्ययके २ अर्थ हैं विकार और प्रचुरता[५]। अतः मयट् केवल विकारार्थ ही नहीं है, इसे ब्रह्मसूत्रकारने सुस्पष्ट किया है। उपनिषदोंमें इस प्रकारकी व्याख्याका अभाव था, जिसे ब्रह्मसूत्रकारने पूर्ण किया है (ब्र० सू० १, १, १३)। जीवात्मा

---

१. छा० उ० ७, २६, १ **'आत्म एवेदं सर्वम्'**।

२. प्र० उ० ३, ३ **'आत्मन एव प्राणो जायते'**।

३. मु० उ० २, १, ३ **'एतस्माज्जायते प्राणोमनः सर्वेन्द्रियाणि च'**।

४. तै० उ० २, ७। ५. अष्टाध्यायी ५. ४, २१।

आनन्दमय नहीं है इसे भी ब्रह्मसूत्र **"नेतरोऽनुपपत्तेः"** (१, १, १६)ने स्पष्ट किया है। आनन्दमय परमात्माने जगत् निर्माणका संकल्प किया। जीवात्मा स्वल्प शक्तिवाला है, अतः वह ब्रह्म नहीं है।

परमात्मा आनन्ददाता है, जीवात्मा आनन्दयुक्त होनेवाला है :—'**भेद व्यपदेशाच्च**' (१, १, १६)। वह ब्रह्म विशालमय है, सूर्यमण्डलके भीतर हिरणमय है, आकाश शब्द, परब्रह्मका वाचक है। छा० उ० (१, ९, १)में वर्णन आता है कि समस्तभूत आकाशसे उत्पन्न होते हैं और आकाशमें ही विलीन होते हैं। **"सर्वाणि ह वा इमानि भूतान्याकाशादेवसमुत्पद्यन्तः"**। आकाशके जो विशेषण आये हैं वे भूताकाशके लिए सम्भव नहीं हैं। आकाश, प्राण, ज्योति, तैजस, गायत्री शब्द ब्रह्मके वाचक हैं (१, १, २२)। कौषीतकि उ० (३, ८)में लिखा है कि वाणी आदि कार्य और कारणके अध्यक्ष जीवात्माको जाननेके लिये कहा है।

उपासना

ब्रह्मकी उपासना करनी चाहिये, इसकी प्रेरणा छा० उ०से प्राप्त होती है। इस उपनिषद्में कहा गया है कि यह सम्पूर्ण चराचर जगत् निश्चित्त ही ब्रह्म है, क्योंकि यह उसीसे उत्पन्न हुआ है। साधकको रागद्वेष रहित शान्तिचित्त होकर उसकी उपासना करनी चाहिये[1]। इस उपनिषद्में प्रथम सम्पूर्ण जगत्को ब्रह्मरूप समझकर उसकी उपासना करनेके लिये कहा गया है। श्रीमद्भागवतमें भी द्वितीय-तृतीय स्कन्धमें विराट् पुरुषका वर्णन है जो ब्रह्मकी व्यापकता सिद्ध करता है और उक्त उपनिषद्का सार है। वह उपास्यदेव मनोमय-प्राणरूप शरीरवाला, प्रकाशस्वरूप सत्यसंकल्प आकाशके सदृश व्यापक, सम्पूर्ण जगत्का कर्ता पूर्णकाम सर्वगन्ध, सर्वरस इस समस्त जगत्को सब ओरसे व्याप्त करनेवाला, वाणी रहित संभ्रमशून्य है। वह ब्रह्म मनका भी मन तथा प्राणका भी प्राण है (के० १, २)। जीवात्मा मरनेके बाद उसे प्राप्त करता है :—**"एतद् ब्रह्मैतमितः प्रेत्याभि संभवितास्मि"** (छा० उ० ३, १४, ४)। **"एष मे आत्मा अन्तर्हृदय"** (छा० उ० ३, १४, ४)में षष्ठचन्त पद आया है। यह षष्ठचन्तपद भिन्न रूपसे उपासक जीवात्माके लिये प्रयुक्त है। स्मृतियोंमें भी उपास्य और उपासकका भेद सिद्ध होता है :—

"मय्येव मन आधत्स्व मयि बुद्धिं निवेशय"। (गी० १२, ८)

तथा **"अन्तकाले च मामेव स्मरन् मुक्त्वा कलेवरम्**॥ (गी० ८, ५)।

ब्रह्मसूत्रोंमें भी इस रहस्यका उद्घाटन किया है (ब्र० सू० १, २)। जिस प्रकार

---

१. छा० उ० ३, १४, २ **"सर्वं खल्विदं ब्रह्म् तज्जलानिति शान्त उपासीत"**।

उपनिषदोंमें परब्रह्मका निरूपण है[1]—भागवतमें भी परब्रह्मका निरूपण है। विशेषतः चतुश्लोकीमें तो अद्वय ब्रह्मकी महत्ताका ही वर्णन है। कर्मफलके नेतृत्वमें आत्मा-परमात्माका ही वर्णन है। बुद्धिरूपी गुहामें छिपे हुए तथा सत्यका पान करनेवाले दो हैं, वे दोनों छाया और धूपकी भाँति परस्पर विरुद्ध स्वभाववाले हैं। जीवात्मा-परमात्माका वर्णन छाया-धूपके रूपमें हुआ है। ब्रह्मसूत्रमें भी इसे व्यक्त किया गया है[2]। श्रीमद्भागवतमें तो स्पष्ट ही जीवात्मा-परमात्माके पार्थक्यका निरूपण है। भागवतमें ब्रह्मका निरूपण आश्रयरूपमें किया है :—इस चराचर जगत्की उत्पत्ति और प्रलय जिस तत्त्वसे प्रकाशित होते हैं, वह परब्रह्म ही आश्रय है। शास्त्रोंमें उसीको परमात्मा कहा है।

आभासश्च निरोधश्च यतश्चाध्यवसीयते।
स आश्रयः परं ब्रह्म परमात्मेति शब्द्यते॥ (भा० २, १०, ७)

आश्रय शब्दका अर्थ है जीवोंके शरण लेने योग्य भगवान् अथवा व्यक्त, अव्यक्त आभास और निरोधका अधिष्ठान निरपेक्ष साक्षी ब्रह्म।

सगुण साकार रूप आश्रयका वर्णन दशमस्कन्धमें तथा निर्गुण निराकार आश्रयका १२वें स्कन्धमें विशेष निरूपण है। यह ब्रह्म नहीं, यह ब्रह्म नहीं, इस प्रकार निषेधकी पद्धति और "यह ब्रह्म है"। इस प्रकार इस अन्वयकी पद्धतिसे यही सिद्ध होता है कि सर्वातीत एवं सर्वस्वरूप भगवान् ही संवेद्य और सर्वत्र स्थित है, यही वास्तविक तत्त्व है जो आत्मा और परमात्माका तत्त्व जानना चाहते हैं, उन्हें केवल इतना जाननेकी आवश्यकता है (भा० २, १०, १०)।

भागवतमें ब्रह्मके विषयमें तीन बातोंको प्रधानता दी है—

अधिष्ठानता—साक्षिता—निरपेक्षिता।

पुरुषके तीन रूप हैं—आध्यात्मिक, आधिदैविक, आधिभौतिक। आध्यात्मिक पुरुषका अर्थ है—नेत्रादि इन्द्रियोंका अभिमानी 'जीव'। आधिदैविक पुरुषका अर्थ है—नेत्रादि इन्द्रियोंका अधिष्ठातृदेव और आधिभौतिक पुरुषका अर्थ है—नेत्रगोलक आदिवाला स्थूल शरीर, ये तीनों सापेक्ष हैं। इन तीनोंके भाव और अभावको देखनेवाला आत्मा इनका निरपेक्ष साक्षी है। श्रीमद्भागवतमें श्रीकृष्ण और ब्रह्मको एक ही माना है। ब्रह्मसूत्रके ब्रह्म, गीताके पुरुषोत्तम और श्रीमद्भागवतके श्रीकृष्ण एक ही वस्तु हैं। कृष्णरूप ब्रह्मके विषयमें लिखा है :—

वदन्ति तत्तत्त्वविदस्तत्त्वं यज्ज्ञानमद्वयम्।
ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते॥ (भा० १, २, ११)

१. कठो० १, ३, १ ऋतं पिवन्तं। २. ब्र० सू० १, २, ११।

तत्त्ववेत्ता लोग ज्ञाता और ज्ञेयके भेदसे रहित अखण्ड अद्विवतीय सच्चिदानन्द रूप ज्ञानको ही तत्त्व कहते हैं। उसको कोई ब्रह्म, कोई परमात्मा, नामसे पुकारते हैं। प्रथमस्कन्धमें नारायण, वासुदेव, सात्वतपति और कृष्ण, सभी ब्रह्मके नाम आ गये हैं। भागवत के अनुसार भगवान्‌में शरीर और शरीरीका भेद नहीं है। जीव अपने शरीरसे पृथक् होता है। शरीर उसका ग्रहण किया हुआ है और वह उसे छोड़ सकता है। भगवान्‌का शरीर जड नहीं चिन्मय है। भगवान्‌का शरीर और गुण जीवोंकी दृष्टिमें है, भगवान्‌की दृष्टिमें नहीं। भगवान् तो निज स्वरूपमें समत्वमें स्थिर रहते हैं,वहाँ गुण और गुणीका भेद नहीं है। इस प्रकार श्रीकृष्ण ही परब्रह्म स्वरूप आश्रयतत्त्व हैं। भागवतकारने उपनिषद् ब्रह्मसूत्रोंकी सांकेतिक ब्रह्मवादकी गुत्थियोंको एक प्रकारसे बड़े ही सरल ढंगसे सुलझा दिया है।[१]

साकार—निराकार ब्रह्म

उपनिषदोंमें ब्रह्मके सविशेष अथवा सगुण रूप निर्विशेष अथवा निर्गुण रूपका वर्णन मिलता है। इनमें भेदनिर्देशके अभिप्रायसे निर्विशेष भावको कहीं परब्रह्मकी संज्ञा दी गई है, कहीं सविशेष भावको अपर ब्रह्म या शब्द ब्रह्म कहा गया है।

निर्विशेषब्रह्म—वह है जिसे किसी विशेषण या लक्षणसे लक्षित नहीं किया जा सकता, किसी चिन्हका परिचय नहीं दिया जा सकता, जिसके द्वारा उसे पहिचाननेमें हम समर्थ हो सकते हैं, ऐसे गुण का उल्लेख नहीं किया जा सकता' जिससे उसे धारण किया जा सके। इसलिये इस निर्विशेष भावको निर्गुण, निरुपाधि तथा निर्विकल्प आदि संज्ञाओंसे अभिहित करते हैं।

सविशेषब्रह्म—निर्विशेष ब्रह्म ठीक इसके विपरीत होता है। इसमें गुण, चिन्ह, लक्षण तथा विशेषणोंकी सत्ता विद्यमान रहती है, जिनके द्वारा उसका उक्तरूप हृदयंगम किया जा सकता है। इन दोनों भावोंको प्रदर्शित करनेके लिये उपनिषदोंने दो प्रकार के वाक्यों का प्रयोग किया है। एक निर्विशेषलिंग, दूसरा सविशेषलिंग। सविशेषलिंग प्रतिपादिका श्रुतियां सर्वकर्मा, सर्वकामः, सर्वरसः इत्यादि हैं। निर्विशेषलिंग श्रुतियां अस्थूलम्, अनघ अह्रस्वम्, अदीर्घम् आदि है। **सन्ति उभयलिंगाः श्रुतयो ब्रह्मविषयाः। "सर्व कर्मेत्याद्याः**

---

१. भागवतदर्शन - (डा० हरवंशलाल) भूमिका प० ६

सविशेषलिंगाः अस्थूलमनणु इत्येवमाद्याश्च निर्विशेषलिंगाः'' (शांकर भाष्यम्) सविशेषब्रह्मके लिये पुलिंग शब्दोंका प्रयोग किया गया है, यथा सर्वरसः, सर्वकामः आदि। परन्तु निर्विशेष ब्रह्मके लिये नपुंसकलिंगका प्रयोग मिलता है। यही कारण है कि परब्रह्म, तत्पद द्वारा निर्दिष्ट किया जाता है, स पद द्वारा नहीं। निर्विशेष तथा सविशेष-भाव विभेदके सूचक हैं, इनमें वस्तुगत विभेदका सर्वथा अभाव है। सगुण तथा निर्गुण, सोपाधि तथा निरुपाधि आदि शब्द एक ही ब्रह्म तत्वके निर्देशक हैं, क्योंकि ब्रह्म तत्त्वको, प्रतिपादक श्रुतियोंके एक ही मन्त्रमें उभयलिंगका प्रयोग कर बतलाया है—**''यत् तद् अद्रेश्यमग्राह्यम् अगोत्रम्, अवर्णम्''** निर्विशेष ब्रह्मके सूचक शब्द हैं-तथा—**''नित्यं विभुं सर्वगतं सुसूक्ष्मम् तदव्ययम्''** पदोंमें सविशेष ब्रह्मका निर्देश है (मु० उ० १, १, ६)। भाष्यकारोंमें उभयलिंग वाक्योंको लेकर गहरा मतभेद है, आचार्य शंकर श्रुतिको निर्गुण ब्रह्म प्रतिपादक ही मानते हैं, पर आचार्य-रामानुज उसे सगुणब्रह्म प्रतिपादक स्वीकार करते हैं। अपर या सगुण ब्रह्मका परिचय उपनिषद्में दो प्रकारसे दिया गया है। किसी वस्तु परिचयके लिये उसके लक्षणकी आवश्यकता होती है। लक्षणके दो भेद हैं, तटस्थ लक्षण और स्वरूप लक्षण।

स्वरूप लक्षण—जिसके द्वारा वस्तुके शुद्ध स्वरूपका परिचय प्राप्त किया जाता है, वस्तुके तात्विकस्वरूपकी उपलब्धि होती है, वह स्वरूप लक्षण है[1]

ब्रह्म-सविशेष निर्विशेष

'सर्वकर्मा' तदेतच्चतुष्पाद ब्रह्म' (छा० ३,१४,२), इत्यादि श्रुतियोंमें ब्रह्मको सविशेष कहा है। **'अस्थूलमनणु'** (बृ० ३०३, ८, ८)। इत्यादि श्रुतियोंमें निर्विशेष ब्रह्मका प्रतिपादन है। अतः ब्रह्म उभयात्मक है ऐसा प्रतीत होता है।

ब्रह्म किं रूपि वाऽरूपि भवेन्नीरूपमेव।
द्विविध श्रुति सद्भावाद् ब्रह्म स्यादुभयात्मकम्॥
नीरूपमेववेदान्तैः प्रतिपाद्यमपूर्वतः।
रूपंत्वनूद्यते भ्रान्तमुभयत्वं विरुध्यते॥

वेदान्तशास्त्रसे नीरूप ही ब्रह्म प्रतिपिपादयिषित है, क्योंकि वही किसी प्रत्यक्षादि प्रमाणसे गम्य नहीं है। **'जगत् कारणत्वादि रूप विशिष्ट ब्रह्मतो' 'क्षित्यादिकं सकर्तृकम् कार्यत्वात्'**। इत्यादि अनुमानसे ज्ञात हो सकता है इसीलिये उपासनामें यह रूप अनुवादित है न कि उसका रूपवत्त्वके प्रतिपादनमें तात्पर्य है। अनुमान और शास्त्रसे सिद्ध उभयात्मकता सत्य नहीं हो सकती क्योंकि सरूपत्व और

---

१ **भारतीय दर्शन पृ० ५७ बलदेव उपाध्याय।**

नीरूपत्व ये दोनों परस्पर अत्यन्त विरुद्ध हैं, इससे तात्पर्यका विषय न होनेसे सरूपत्वके भ्रान्त होनेपर वस्तुतः 'ब्रह्म' नीरूप ही है।

"**न स्थानतोऽपि परस्योभयलिंगं सर्वत्रहि**" (ब्र० सू० ३, २, ११)

इस ब्रह्मसूत्रमें सविशेष–निर्विशेष–उभयरूपका खण्डन किया गया है। आचार्य शंकरने भी अपने भाष्यमें कहा है :—"**न ह्येकं वस्तु स्वतएवरूपादिविशेषोपेतं तद्विपरीतं चेत्यवधारयितुंशक्यं विरोधात्**" (शा० भा० ३, २, ११) परब्रह्मके स्वतः दो लिंग नहीं होते क्योंकि एक ही वस्तु सम्भवयः रूपादि विशेषसे मुक्त हो और रूपादि विशेषसे रहित हो यह सम्भव नहीं है। पृथिवी आदिके योगसे भी यह सम्भव नहीं है।

न भेदादिति चेन्न प्रत्येकमतद्वचनात् (ब्र० सू० ३, २, १)

प्रत्येक विद्यामें चतुष्पाद आदि आकारके भेदसे उसका भेद है। अतः वह सविशेष यह कथन ठीक नहीं है, श्रुतिमें जलादि रूप उपाधियोंमें अभेदका श्रवण है (क० ३४, ११)।

अपिचैवमेके (३, २, १३)

"**मनसैवेदमाप्तव्यम् नेह नानास्ति किंचन**"। तथा "**भोक्ता भोग्यं प्रेरितारं च मत्वा सर्वं प्रोक्तं त्रिविधं ब्रह्म** (श्वेता० १) इत्यादिसे भोग्य-भोक्ता और नियन्ताके स्वरूपमें सम्पूर्ण प्रपंच ब्रह्म स्वरूप ही है, ऐसा प्रतिपादन भेदकी निन्दा करके किया है।

अरूपवदेवहि तत्प्रधानत्वात् (३, २, १४)

श्रीशंकरने लिखा है कि—"**रूपाद्याकार रहितमेव ब्रह्म अवधारयितव्यं न रूपादिमत्**" (शा० ३, २, १४) अर्थात् रूपादि आकारसे रहित ब्रह्म है ऐसा अवधारण करना चाहिये। क्योंकि श्रुतियोंमें ब्रह्म निराकार ही वर्णित है :— **अस्थूलमनण्वह्रस्वमदीर्घम्** (बृ० ३, ८, ८) **अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययम्** (कठ० ३, १५ मुक्ति० २, ७२) "**आकाशोवैनामनामरूपयोर्निर्वाहिते**" (छा० ८. १४, १) श्रुतिमें आता है कि 'साकार' अनित्य है और 'निराकार' नित्य। तर्क भी है कि जो पदार्थ अवयववाले हैं वे सेव अनित्य हैं, जो अनुमान प्रमाण एवं प्रत्यक्ष प्रमाण दोनोंसे सिद्ध भी हैं। अतः वैकुंठ आदि लोक तथा नारायण-श्रीकृष्ण आदि भी अनित्य हुए उपनिषद्कार यहाँ साकारके भेद करता है। उसका कथन है कि साकार तत्त्व दो प्रकारका है। उपाधिसहित–उपाधिरहित (त्रिपा० २, १) अविद्यासे उत्पन्न समस्त कार्य एवं कारण अविद्यापादमें ही हैं, और कहीं नहीं इसलिये समस्त अविद्योपाधिसे

युक्त साकारतत्त्व अवयवयुक्त ही है। वह अनित्य होगा। उपाधिरहित साकार अर्थात् निरुपाधिक साकारके ३ भेद हैं, ब्रह्मविद्यासाकार, आनन्दसाकार तथा उभयात्मक (ब्रह्मविद्यानन्दात्मक) साकार। यह त्रिविध साकार भी दो प्रकारका होता है नित्य साकार-मुक्तसाकार। नित्य साकार तो आदि अन्तहीन सनातन है।

मुक्तसाकार :—वह है जो उपासना द्वारा मुक्तिको प्राप्त होते हैं, मुक्तपुरुषके आकारका आविर्भाव अखण्ड ज्ञानसे होता है। अर्थात् भगवद्धाममें स्थित मुक्तात्माओंका शरीर प्रज्ञान घन है, मुक्तात्माओंका साकार शरीर भी शाश्वत होता है, परन्तु वह साकार ऐच्छिक होता है (त्रिपा० २, २, ७) अद्वैत, अखण्ड, परिपूर्ण, निरतिशय परमानन्द रूप, शुद्ध, ज्ञानस्वरूप, मुक्त सत्यस्वरूप ब्रह्मका चैतन्य साकारता होनेसे उपाधि हीन साकारका नित्यत्व सिद्ध ही है। इसीलिये निरुपाधिक साकारके निरवयव होनेके कारण उससे कोई महान् होगा यह शंका निवृत्त हो जाती है। सभी उपनिषदोंमें ब्रह्म निरवयव चैतन्य है यही देखा जाता है। विद्याकी प्रधानतासे विद्या साकार, आनन्दकी प्रधानतासे आनन्दसाकार तथा (विद्या-आनन्द) दोनोंकी प्रधानतासे उभयात्मक साकार वह कहा जाता है। यहाँ प्रधानताको ही लेकर भेद है (त्रिपा० २, ८, १०)।

साकार-निराकार ये दो विरोधी नहीं हैं, क्योंकि जैसे सर्वव्यापी निराकार महावायुका और उसीके स्वरूप भूतत्वक् इन्द्रियके अधिष्ठाता महावायु देवताका अभेद है, जैसे पृथ्वी आदिके अधिष्ठाता देवता पृथ्वी रूपी भौतिक शरीर एवं देव शरीर दोनोंसे युक्त हैं, वैसे ही सर्वात्मक परब्रह्ममें साकार और निराकारका भेद होनेपर भी अभेद है कोई विरोध नहीं है। विविध प्रकारकी अनन्त विचित्र शक्तियोंसे सम्पन्न परब्रह्मके स्वरूपका ज्ञान हो जानेपर विरोध नहीं रह जाता। अतः परब्रह्मके परमार्थतः साकार और निराकार दोनों रूप स्वभाव सिद्ध है।

श्रीमद्भागवतमें ब्रह्मके दोनों रूपोंकी महत्ता है। साकारमें वह निराकार है निराकार होता हुआ भी वह साकार हो जाता है। "प्रह्लाद" ने स्तुतिकी कि यदि आप सर्वव्यापक हों, तो स्तम्भसे ही प्रकट होवें। वे प्रकट हुए। प्रसिद्ध भक्त गोपियोंका कथन है कि **"अखिलदेहिनामन्तरात्मधृक्"** (भा० १०, १७, ४) आप तो सम्पूर्ण प्राणियोंकी अन्तरात्मामें निवास करनेवाले हो। इस प्रकारके अद्वैत परमानन्द स्वरूप आदि नारायणके, पलक उठाने और गिरानेसे मूल अविद्याकी उत्पत्ति, स्थिति एवं लय होती है। मूलकारण रूप अव्यक्त और इससे अविद्या तथा सत् शब्दसे वाच्य अविद्यामिश्रित ब्रह्म (जीव) व्यक्त होता है अव्यक्त–महत्, अहङ्कार, तन्मात्रा, भूत उत्पन्न होते हैं (त्रिपा० २, १४) नारायणसे ही अखिल लोक उत्पन्न होते हैं।

नारायणसे देव उत्पन्न होते हैं—**"देवा नारायणांगजा:"** (भाग० २, ५, १५) नारायण ही सब कुछ हैं। उपाधिका नाश हो जानेके कारण ब्रह्मका निर्विशेष रूप अत्यन्त निर्मल होता है। वह अविद्यासे परे है, अत: अत्यन्त शुद्ध है। वह अखण्ड रूप है सर्वत: परिपूर्ण स्वयं प्रकाश एवं सच्चिदानन्द है[1]। विद्या-आनन्द एवं तुरीय नामक तीन पाद शाश्वत हैं, चौथा पाद, अविद्यासे आश्रित है। यद्यपि इस प्रकार पाद कल्पना तो भागवतमें नहीं है, किन्तु जैसा साकार-निराकारका विवेचन यहाँ है ठीक भागवतकारको अभीष्ट है।

सगुण-तटस्थ लक्षण :—वस्तुके अस्थायी, परिवर्तनशील गुणोंका वर्णन जिसके द्वारा किया जाय वह तटस्थ लक्षण है। सगुण ब्रह्मके उभयविध लक्षण उपनिषदोंमें प्राप्त होते हैं।

निर्गुण ब्रह्म :—ब्रह्मका निर्विशेष भाव जिसे किसी विशेषण द्वारा विशेषित नहीं किया जा सकता, किसी चिह्नके द्वारा चिह्नित नहीं किया जा सकता, एवं किसी गुणसे निर्दिष्ट नहीं किया जा सकता, उसे निर्गुण ब्रह्म कहा जाता है। वैसे वस्तुका निर्देश किसी गुणके द्वारा ही हो सकता है, परन्तु ब्रह्म निर्गुण है, तो उसका निर्देश अत्यन्त कठिन है या असम्भव है। अत: वाष्कलि ऋषिके द्वारा ब्रह्मके विषयमें निरन्तर प्रश्न किये जानेपर बाध्व ऋषि मौन लगा गये, अर्थात् प्रश्नका उत्तर दिया; गुणोंके अत्यन्त अभावके कारण ब्रह्मका भावात्मक वर्णन हो नहीं सकता। उसे हम निषेधमुखेन ही जान सकते हैं, कि वह ऐसा नहीं है इसीलिये श्रुति सदा नेति-नेति (यह नहीं, यह नहीं) कहकर उसका परिचय देती है।[2] भागवतमें भी—**"निषेधशेषो जयतादशेषः"** (भा० ८, ३, २४) कहकर निषेधसे जो शेष है, वह ब्रह्म है कहा गया है। केनोपनिषद्‌में उसे निष्प्रपंच लिखा है :—

यद् वाचाऽनभ्युदितं येन वागभ्युद्यते।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते॥" (केनो० १, ५)

जिसे वाणी कह नहीं सकती, पर जिसकी शक्तिसे वाणी बोलती है, उसे ही ब्रह्म जानो, यह नहीं, जिसकी तुम उपासना करते हो। ब्रह्म निरुपाधि है। देश-काल तथा निमित्तरूप उपाधियोंसे वह नितान्त विरहित है। प्रमाणातीत होनेसे वह नितरां अप्रमेय है। चैतन्यात्मक होनेसे ब्रह्म स्वयं विषयी है, अत: वह किसी भी प्राणीके अन्त:करण वृत्ति ज्ञानका विषय कथमपि नहीं हो सकता। इस जगत्‌के समस्त प्रकाश हेतु भूत यही ब्रह्म है। उसीके प्रकाशसे यह सब प्रकाशित होता है।[3]

---

१. त्रिपा० ४, १।
२. बृह० उप० ४, ४, २२
३. कठ० ५, १५।

(ग) ब्रह्म-परमात्मा-भगवान्‌का विचार।

साध्य तत्व :—उपनिषदोंकी अद्‌वैत भावना भागवतमें स्पष्ट परिलक्षित है। स्वयं भगवान्‌ने अपने सम्बन्धमें ब्रह्माजीको जो उपदेश दिया है वह अद्‌वैतपरक माना जाता है—सृष्टिके पूर्व 'मैं' ही था 'मैं केवल था, कोई क्रिया नहीं थी, उस समय कार्यात्मक स्थूल (सत्) नहीं था, और कारणात्मक सूक्ष्मभाव (असत्) नहीं था, यहाँ तक कि इनका कारणभूत प्रधान भी अन्तर्मुख होकर मुझमें लीन था। सृष्टिका यह प्रपंच मैं ही हूँ, और प्रलयमें सब पदार्थोंके लीन हो जानेपर एक मात्र मैं ही अवशिष्ट रहूँगा। इससे स्पष्ट है कि भगवान् निर्गुण भी हैं, सगुण भी हैं, जीव भी हैं, जगत् भी हैं। अद्वयतत्त्व सत्य है, उसी एक अद्वितीय परमार्थको ज्ञानी लोग, ब्रह्म, योगीजन परमात्मा और भक्तगण भगवान्‌के नामसे पुकारते हैं—

"वदन्ति तत्तत्वविदस्तत्वं यज्ज्ञानमद्‌वयम् ।
ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानितिशब्द्‌यते" ॥ (भाग० १, २, ११)

वही जब सत्त्व गुण रूपी उपाधिसे अवच्छिन्न होकर अव्यक्त निराकार रूपसे रहते हैं, तब निर्गुण कहलाते हैं। परमार्थ भूतज्ञान सत्य, विशुद्ध, एक, बाहर, भीतर भेदरहित परिपूर्ण, अन्तर्मुख तथा निर्विकार है वही भगवान् तथा वासुदेव शब्दोंके द्वारा अभिहित होता है।[1] सत्वगुणसे आवृत होनेपर वही निर्गुणब्रह्म, प्रधानतया 'विष्णु, रुद्र, ब्रह्मा तथा पुरुष, चार प्रकारका सगुण रूप धारण करता है। शुद्ध सत्वावच्छिन्न चैतन्यका नाम 'विष्णु' है, रजोमिश्रित सत्वावच्छिन्न चैतन्य 'ब्रह्मा, है तमोमिश्रित सत्वावच्छिन्न चैतन्य, रुद्र, हैं और तुल्य बल रज तमसे मिश्रित सत्वावच्छिन्न चैतन्य 'पुरुष' कहा जाता है ये चारों ब्रह्मके ही सगुण रूप हैं। अतः भागवतके मतमें ब्रह्म ही अभिन्न निमित्तोपादान कारण है। परब्रह्म ही जगत्‌के नित्यादि व्यापारके लिए भिन्न-भिन्न अवतार धारण करते हैं। परमेश्वरका जो अंश प्रकृति तथा प्रकृति जन्य कार्योंका वीक्षण, नियमन आदि करता है, मायासे असम्बद्ध रहते हुए भी मायासे युक्त रहता है, सर्वदा चित् शक्तिसे समन्वित रहता है उसे 'पुरुष' कहते हैं। इस पुरुषसे ही भिन्न-भिन्न अवतारोंका उदय होता है। ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, परब्रह्मके गुणावतार हैं। इसी प्रकार कल्पावतार, युगावतार, मन्वन्तरावतार आदिका वर्णन भागवतमें विस्तारके साथ दिया जाता है।

भगवान् अरूपी होकर भी रूपवान् हैं।[2] भक्तोंकी अभिरुचिके अनुसार वे भिन्न-भिन्न रूप धारण करते हैं। भगवान्‌की शक्तिका नाम माया है भगवान् अचिन्त्य

---

१. भाग० सत्वं विशुद्धं भा० ४, ३, २३। २. भा० ३, २४, ३१।

शक्ति समन्वित हैं, एक होकर भी अनेक हैं। नारदजीने द्वारकापुरीमें एक समयमें ही श्रीकृष्णको समस्त रानियोंके महलोंमें विद्यमान, भिन्न-भिन्न कार्योंमें संलग्न देखा, वह उनकी अचिन्तनीय महिमाका विलास है। जीव और जगत् भगवान्‌के ही रूप हैं।[1]

भगवान् श्रीकृष्ण और उपनिषत् प्रतिपादित ब्रह्म

वृहदारण्यक श्रुतिमें लिखा है कि "ब्रह्म-न स्थूल है, न अणु है, न क्षुद्र है, न विशाल है, न अरुण है, न द्रव है" आदि (वृह० ३, ८, ८) श्रुतियाँ जहाँ निरसन करके थक जाती हैं, वे ब्रह्माके सामने दृष्टिके विषय होकर खड़े हैं—"**यच्छ्रुतयस्त्वयि हि फलन्त्यतन्निरसनेन भवन्निधनाः** (१०, ८७, ४१) उक्त श्लोकमें लिखा है कि श्रुति तुम्हारा प्रतिपादन नहीं कर सकती। ब्रह्माने देखा, अगणित **भगवत्** रूप। सबके सब त्रिकाल।बाधित सत्य हैं, ज्ञानस्वरूप हैं, स्वप्रकाश हैं, अनन्त हैं एवं आनन्दस्वरूप हैं, एक रस हैं इनके अचिन्त्य, अनन्त, माहात्म्यकी उपलब्धि तो उपनिषद् आत्मज्ञानकी दृष्टि रखनेवाले पुरुषोंके लिए भी सम्भव नहीं है :—

सत्यज्ञानानन्तानन्दमात्रैक रसमूर्तयः।
अस्पृष्ट भूरि माहात्म्या अपिह्युपनिषद्दृशाम्॥ (भा० १०, १३, ५४)

ब्रह्माने देखा परब्रह्म सत्य है,[2] ज्ञानस्वरूप है, अनन्तस्वरूप है, वह विज्ञान-रूप है।[3]

जिन परब्रह्मात्मक गोपेशकुमार श्रीकृष्णचन्द्रकी स्वप्रकाश शक्तिसे यह परिदृश्यमान सचराचर विश्व प्रकाशित होता है, उनके नित्य पार्षद गोपशिशुओंको, गोवत्सोंको ब्रह्माने आज एक साथ देखा :—

एवं सकृद्ददर्शाजः परब्रह्मात्मनोऽखिलान्।
यस्य भासा सर्वमिदं विभाति सचराचरम्॥ (भा० १०, १३, ५५)

माया जवनिकाके हटते ही ब्रह्माने देखा—वही वृन्दावन है, वहाँ पहलेकी भाँति अद्वय, अनन्त, ज्ञानस्वरूप, परब्रह्म, अपने गोवत्सोंको ढूँढ़ता फिर रहा है :—

तत्रोद्वहत् पशुपवंश शिशुत्व नाट्ये।
ब्रह्माद्वयम् परमनन्तमगाध बोधम्॥ (भा० १०, १३, ६१)

पश्चात्तापमें लीन ब्रह्माके अन्तःस्तलमें एक श्रुतिने आशाकी किरण जगादी—

---

१. भा० ३, ९, ११। २. सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म तै० २, १, १।
३. विज्ञानमानन्दं ब्रह्म वृ० ३, ९, २८।

यच्चास्येहास्ति यच्च नास्ति—सर्वं तदस्मिन् समाहितम्। (छा० ८, १, ३)

अर्थात् इसपरब्रह्मका जो भी कुछ यहाँ है और जो कुछ भी नहीं है, वह सब सम्यक् प्रकारसे इसीमें स्थित है, ब्रह्माने कहा—गर्भस्थ शिशुके पादक्षेपसे माता रुष्ट नहीं होती[1]। विधाताने इस प्रयासमें सारा वेदज्ञान लगा दिया था कि वह, किसी अंशमें ब्रजेन्द्रनन्दनकी महिमाके क्षुद्रतम अंशको भी स्पर्श कर सकें[2], थककर ब्रजवासियोंकी वन्दना प्रारम्भ कर दी—

अहो भाग्यमहो भाग्यं नन्दगोपव्रजौकसाम्।

यन्मित्रं परमानन्दं पूर्णं ब्रह्म सनातनम्॥ (भा० १०, १४, ३२)

वे कहने लगे—"गोपेन्द्रतनय ! श्रुतियाँ तुम्हारी चरणधूलिकी खोज कर रही हैं, किन्तु वे पा नहीं रही हैं[3]। फिर साक्षात् तुम्हें कैसे पा सकेंगी। पर इन ब्रजवासियोंने तुम्हें पा लिया।

(घ) भागवत प्रतिपाद्य भक्ति और भगवान् तत्त्व

वेदोंके यागों और उपनिषदोंके अरूप ध्यान, धारणके स्थानमें, भागवतमें सर्व-साधारणके लिये उपयोगी, एक नवीन उपासना पद्धति प्रचलित हुई। मृत्तिका, प्रस्तर या धातुसे निर्मित प्रतिमामें, देवताके आविर्भावकी कल्पना करके, उस विग्रहको पाद्य, अर्घ्य, धूप, दीप, गन्ध, पुष्प और नैवेद्य आदिके द्वारा अर्चना करनेकी विधि प्रवर्तित हुई। मूर्ति पूजापर विशेष बल दिया गया :—

लब्धानुग्रह आचार्यात् तेनसंदर्शितागमः।

महापुरुषमभ्यर्चेन्मूर्त्याभिमतयाऽऽत्मनः॥ (भा० ११, ३, ४७)

जो साधक जीवात्माकी हृदयग्रन्थिका शीघ्र छेदन करनेकी इच्छा करते हैं, वे वैदिक और तान्त्रिक विधिके अनुसार अभीष्ट देवताकी पूजा करें। आचार्यसे दीक्षा ग्रहण करके तथा उनके द्वारा प्रदर्शित अर्चना विधिको जानकर अपनी अभिमत मूर्तिके द्वारा परमपुरुषकी पूजा करें। क्रियायोगके विधानके अनुसार देवताका मन्दिर निर्माण, विग्रह स्थापना, पूजा, अर्चना आदि करनेपर साधक भुक्ति-मुक्ति दोनों ही प्राप्त कर कृतार्थ हो सकता है।

---

१. भा० १०, १४, १२।

२. कल्याण पृ० १४८, उपनिषद् अङ्क, वर्ष २३, सं० १।

प्रतिष्टयासार्वभौमं सद्मना भुवनत्रयम् ।
पूजादिना ब्रह्मलोकं त्रिभिर्मत्साम्यतामियात् ॥
मामेव नैरपेक्ष्येण भक्तियोगेन विन्दति ।
भक्ति योगं सलभते एवं यः पूजयेत माम् ॥ (भा० ११, २७, ५२-५३)

अवतारवादकी सूचना वैदिक ग्रन्थोंमें ही दीख पड़ती है, भागवतमें विष्णुके **वामनावतार**का वर्णन अष्टमस्कन्धमें है। **"इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम्"** (ऋ० १, १२, १७-१८) उक्त मन्त्रमें भी विष्णुके ३ पादक्रमोंका वर्णन है[1]।

मत्स्यावतार—शतपथब्राह्मण (१, २, १, २-१०)में मत्स्यावतारका निरूपण है, भागवतमें भी मत्स्यावतारका वर्णन अष्टमस्कन्धके २४वें अध्यायमें है।

कूर्मावतार—कूर्मावतार समुद्रमन्थन प्रसंगमें है। यह भी अष्टमस्कन्धमें है—तैत्तरीय आरण्यक (१, २३, १)में तथा शत० ब्रा० (७, ४, ३, ५)में है।

वाराहावतार—भागवतके तृतीयस्कन्धमें १९वें अध्यायतक है। तै० ब्रा० (१, १, ३, ५) तथा शतपथ ब्रा० (१४, १, २, ११)में निरूपित है।

अवतार क्यों—इसका समाधान भागवतकारके मतसे यह है—भगवान् भक्तोंके प्रति अनुग्रह प्रकट करनेके लिये ही मनुष्य रूपमें अवतीर्ण होते हैं तथा इस प्रकारकी लीलाएं करते हैं जिनका श्रवण और कीर्तन करके जीव सहज ही भगवत्परायण हो सकता है—

अनुग्रहाय भक्तानां मानुषं देहमास्थितः ।
भजते तादृशीः क्रीडा याः श्रुत्वा तत्परो भवेत् ॥ (१०, ३३, ३७)

कुन्तीने भी अपनी स्तुतिमें स्पष्ट कहा है कि—हे कृष्ण ! जो भक्तजन तुम्हारे चरित्रका श्रवण, गान उच्चारण या सदा स्मरण करते हैं तथा दूसरोंके कीर्तन करनेपर जिनको आनन्द प्राप्त होता है, वे शीघ्र ही तुम्हारे चरणारविन्दका दर्शन करनेमें समर्थ होते हैं, जिसके द्वारा शीघ्र उनकी जन्म परम्परा सदाके लिये समाप्त हो जाती है—

श्रृण्वन्ति गायन्ति गृणन्त्यभीक्ष्णशः स्मरन्ति नन्दन्ति तवेहितं जनाः ।
तएवपश्यन्त्यचिरेण तावकं भवप्रवाहोपरमं पदाम्बुजम् ॥
(भा० १, ८, ३६)

---

१. शतपथ ब्रा० १, २, ५; १-७ में भी वामनावतार प्रसंग है।

भागवत की सगुण-निर्गण भक्ति

भक्तिकी चर्चा आते ही शाण्डिल्य मुनिके वाक्योंकी ओर ध्यान जाता है, इन्होंने भक्ति-मीमांसामें लिखा है कि 'ईश्वरमें निरतिशयानुरागका नाम ही भक्ति है[1]।' द्वितीय नारदकी भक्ति है, इसमें भक्तिकी परिभाषा इस प्रकार की गईहै— 'भगवान्‌के प्रति एकनिष्ठ प्रेम ही भक्ति है।' 'भक्ति' अमृतस्वरूपा है। इस भक्तिको प्राप्त करके मनुष्य सिद्ध हो जाता है, अमर हो जाता है और परितृप्त हो जाता है—

"सा त्वस्मिन् परमप्रेमरूपा[2]। अमृतस्वरूपा च[A]
यँल्लब्ध्वा पुमान् सिद्धोभवति, अमृतो भवति, तृप्तोभवति[B]।

ईश्वरमें यह परानुरक्ति किस प्रकार होती है इस सम्बन्धमें विष्णुपुराणमें कहा गया है—

नाथ ! योनि सहस्रेषु येषु येषु व्रजाम्यहम्।
तेषु तेष्वचला भक्तिरच्युतास्तु सदा त्वयि।।[3]

हे नाथ ! मैं कर्मफलके वश होकर जिन-जिन सहस्रों योनियोंमें परिभ्रमण करू̐, उन सभी योनियोंमें तुम्हारे प्रति मेरी सदा निश्चल भक्ति बनी रहे।

भागवतमें प्रह्लादकी नवधा भक्तिका निरूपण हुआ है[1]। इतना ही नहीं भागवतमें ज्ञान और वैराग्ययुक्त भक्तिकी प्रशंसा की गई है। भक्ति ज्ञानके द्वारा ही दीप्त होती है और वैराग्य भीतरसे आत्मप्रकाश करता है—

तच्छ्रद्दधाना मुनयो ज्ञानवैराग्ययुक्तया।
पश्यन्त्यात्मनि चात्मानं भक्त्या श्रुतगृहीतया।। (भा० १, २, १२)

भागवतमें सगुणा-निर्गुणा भक्तिके उदाहरण पर्याप्त रूपमें मिलते हैं। सगुणा-भक्तिके तीन भेद हैं—सात्विक, राजस, तामस।

तामसी भक्ति—दूसरेकी हिंसा करनेके अभिप्रायसे अथवा दम्भवश, मात्सर्यवश या क्रोधवश भेददर्शी लोग जो ईश्वरकी पूजा-सेवा करते हैं वह तामसी भक्ति है।

राजसी भक्ति—विषय-भोग-यश या धनैश्वर्यादिकी कामना करके भेददर्शी लोग, प्रतिमा आदिमें जो ईश्वरकी अर्चना करते हैं वह राजसी भक्ति है।

सात्विकी भक्ति—पापक्षयकी इच्छासे या भगवान्‌के प्रति कर्म-समर्पणके

---

१. शा० भ० सू० २ "सा परानुरक्तिरीश्वरे" : २. नारद भ० सू० २ A, B।
३. विष्णु पुराण १, २०, १६-२०। ४. भा० ७, ५, २३-२४।

उद्देश्यसे अथवा कर्तव्य बुद्धिसे भेददर्शी लोग जो पूजा-सेवा करते हैं, वह सात्विकी भक्ति है[1]।

उपर्युक्त तीनों प्रकारकी भक्ति गौणी भक्ति है, क्योंकि ये तीनों प्रकार ही भेदज्ञान द्वारा तथा स्वभावज प्रवृत्ति द्वारा अनुप्राणित हैं। सात्विकी भक्ति उत्तमा होनेपर भी सर्वोत्तमा नहीं होती। इस भक्तिमें भी मोक्ष आदिकी इच्छा रह सकती है और भेददर्शन भी रह सकता है। मोक्षकी कामना भी जब त्याग दी जाती है और केवल भगवान् ही जब साधककी एकमात्र काम्य वस्तु बन जाते हैं तथा उस अवस्थामें भक्तिको निर्गुणा या अहैतुकी भक्ति अथवा प्रेम कहा जाता है। इस प्रकार भक्तिके ३ भेदोंसे ऊपर ही प्रेमका स्थान आता है।

भागवतमें भक्ति तत्त्व

'भागवत' निगम कल्पतरुका फल है। अतएव प्रत्येक सम्प्रदायका मूल स्रोत बननेका श्रेय भी उसको है। इसमें न केवल रमणीय कथानकोंका ही प्राचुर्य है, अपितु दर्शनशास्त्र भरा पड़ा है। जैसे वेदार्थज्ञानके उपयोगी शिक्षा, कल्प, निरुक्त, व्यकरण, ज्योतिष, तथा छन्द हैं, उसी प्रकार भागवतके गूढार्थज्ञानके लिये दर्शनादि शास्त्रोंका ज्ञान नितान्त अपेक्षित है[2]।

सर्ग-विसर्ग आदिका वर्णन पुराणकोटिमें होनेसे भागवतमें अवान्तर जिज्ञासा निराकरणार्थ ही हैं, उनकी स्वतन्त्ररूपेण प्रधानता अभीष्ट नहीं है। यद्यपि व्यासने १ वेदके ४ भाग किये थे, अन्य शास्त्रोंका भी विस्तार किया था, परन्तु उन्हें बारंबार पश्चात्ताप होता था—

"तथापि बत देह्यों मे ह्यात्मा चैवात्मना विभुः। असंपन्नइवाभाति। (भा० १, ४, ३०)। व्यास स्वयं भगवदीयावतार थे, उनके हृदयमें त्रुटि स्वयं उदित हुई कि भगवत्प्रिय धर्मनिरूपण न करनेके कारण मेरी आत्मामें सन्तोष नहीं है, नारदने आकर व्यासको सान्त्वना देते हुए कहा—

"भवताऽनुदितं प्रायं यशो भगवतोऽमलम्" (भा० १, ५, ८)

अर्थात् आपने भगवान्के पुण्य यश चरित्रोंका ज्ञान नहीं किया। समस्त पुराण, भगवान्के एक अंशको लेकर ज्ञान-विज्ञानकी अवतारणापूर्वक भगवान्की विभूतिका गान करते हैं। महाभारतमें भगवान् कृष्ण ही सब कुछ हैं, पर प्रधान्य नायकका ही होता है, अतः उसमें अर्जुन युधिष्ठिर आदिका ही प्राधान्य है। भागवतमें

---

१. भा० ३, २९, ७-१०। २. श्रेय पत्र पृ० २३२।

सब कुछ भगवान्‌को ही मानकर कहा गया है। अतः **"भगवत इदम् भागवतम्"** नामकरण सिद्ध है। तपस्या शास्त्र-ज्ञान, यज्ञ आदिका यही फल है कि भगवान्‌का गुण वर्णन किया जाय। पर इन यज्ञादिकोंकी प्रक्रिया इतनी क्लिष्ट है कि उसपर साधारणकोटिका व्यक्ति तो चल ही नहीं सकता। थोड़ी-सी असावधानी मनुष्योंको मार्गसे च्युत करादेनेवाली बन जाती है।

दूसरी बात यह है कि इन यज्ञादिकोंके अधिकारी सभी व्यक्ति नहीं हो सकते, वेदके अधिकारी सब ही नहीं होते और यज्ञादि समस्त वेदके द्वारा ही सम्पन्न होते हैं तथा उनका फल भी तभीतक रहता है जबतक पुण्य हैं, अन्तमें—**'क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोके विशन्ति'** पुण्य क्षीण होनेपर वह जीव, पुनः मर्त्यलोकमें आ जाता है। परन्तु भक्तिके लिये देवता, ऋषि, गन्धर्व, यक्ष, मनुष्य, पशु पक्षि, कीट-पतंग सभीका समानाधिकार है तथा इसमें उन्हें अनिर्वचनीय सुख प्राप्त होता है।

भक्तिका प्रभाव—भक्तिका प्रभाव यह है कि भगवान्‌से कुछ भी न माँगना—

न नाकपृष्ठं न च पारमेष्ठ्यं न सार्वभौमं न रसाधिपत्यं।
न योग सिद्धीरपुनर्भवं वा समञ्जस त्वा विरहय्य कांक्षे॥
(भा० ६, ११, २५)

उपर्युक्त कथन वृत्रासुर नामक असुरका है—वह कहता है कि मैं स्वर्ग-परमेष्ठी पद, सार्वभौम-रसाधिपत्यपद नहीं चाहता, न योग सिद्धि चाहता हूँ, न मोक्ष, मैं तो केवल आपको ही चाहता हूँ। साधनरूपा भक्ति तथा साध्यरूपा भक्ति दोनोंका एक साथ दर्शन भागवतमें प्राप्त है। ग्रन्थका प्रारम्भ-मध्य-अन्त भक्तिके द्वारा ही हुआ है।

स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे।
अहैतुक्यप्रतिहता ययाऽऽत्मा संप्रसीदति॥ (भा० १, २, ६)

भगवान् अधोक्षजमें अव्यभिचारिणी भक्ति होना ही परम धर्म है। भक्तिसे ही जीवको निरतिशय आनन्दकी उपलब्धि होती है।

भवे भवे यथा भक्तिः पादस्योस्तव जायते।
तथा कुरुष्व देवेश नाथस्त्वं नो यतः प्रभो॥ (भा० १२, १३, २२)

अर्थात् जन्म-जन्मान्तरमें तुम्हारे चरणोंमें भक्ति बनी रहे, ऐसा हृदय बनाइये क्योंकि आप ही समर्थ हैं। तथा—

नाम संकीर्तनं यस्य सर्व पापप्रणाशनम्॥
प्रणामो दुःखशमनस्तं नमामि हरिं परम्॥ (भा० १२, १३, २३)

केवल जिनका नाम संकीर्तन ही मनुष्योंके पापोंका नाशक है, प्रणाम ही दुःखोंका उच्छेदक है, उन हरि भगवान्‌को नमस्कार है। स्वयं श्रीकृष्णने उद्धवसे कहा—कि उद्धव ! जैसे मेरी भक्ति मुझे सहजमें ही प्राप्त करा देती है, वैसे–योग, ज्ञान, वेदाध्ययन, स्वाध्याय ओर तप भी प्राप्त करानेमें समर्थ नहीं।

ना साधयति मां योगो न सांख्यं धर्म उद्धव।
न स्वाध्यायस्तपस्त्यागो यथा भक्तिर्ममोर्जिता ।। (भा० ११, १४, २०)

तथा—मैं भक्ति द्वारा ही ग्राह्य हूँ—हाँ वह भक्ति श्रद्धासम्पन्न होनी चाहिये। कुत्तेका मांस भक्षण करनेवाले श्वपच भी, मेरी भक्ति द्वारा पवित्रता प्राप्त कर लेते हैं—

भक्त्याहमेकया ग्राह्यः श्रद्धयाऽऽत्मा प्रियःसताम्।
भक्तिः पुनाति मन्निष्ठा श्वपाकानपि सम्भवात् ।। (भा० ११, १४, २१)

भक्ति शून्य धर्मकी विफलता

दया, सत्यादि युक्त धर्मज्ञ मनुष्यको, तप–विद्यान्वित होनेपर भी, भक्तिशून्यको धर्मादि पूर्णरूपेण पवित्र नहीं कर सकते।

धर्मसत्यदयोपेतो विद्यावा तपसान्विता ।
मद्भक्त्यापेतमात्मानं न सम्यक् प्रपुनाति हि ।। (भा० ११, १४, २२)

अन्तःकरणकी शुद्धिके लिये शरीरका पुलकित होना, आनन्दाश्रुप्रवाहित होना आवश्यक है।

कथं विना रोमहर्षं द्रवता चेतसा बिना।
विनाऽऽनन्दाश्रुकलया शुद्ध्येद् भक्त्या विनाऽऽशयः ।।
वाग् गद्गदा द्रवते यस्य चित्तं रुदत्यभीक्ष्णं हसति क्वचिच्च।
विलज्ज उद्गायति नृत्यते च मद्भक्तियुक्तो भुवनं पुनाति ।।

(भा० ११, १४, २४)

अग्निके तपानेपर जैसे सुवर्णमेंसे मल दूर होजाता है, उसी प्रकार मेरे भक्तियोगके द्वारा भी आत्मा, कर्म वासनासे मुक्त होकर मुझ भगवान्‌को प्राप्त हो जाता है[1]। भगवान् भक्तिसे वशमें होते हैं, उन्होंने कहा है कि मैं भक्तोंके आधीन हूँ।

---

१. भा० ११, १४, २५।

अहं भक्त पराधीनो ह्यस्वतन्त्र इव द्विजः ।

तथा—**"साधुभिर्ग्रस्त हृदयो भक्तैर्भक्त जन प्रियः ॥"** (भा० ९, ४, ६३)

अपने भक्तोंका आश्रय कृष्ण ही है, भक्तोंका आश्रय कोई अन्य नहीं हैं। भगवान् कृष्णने कहा है कि—पुत्र, स्त्री, घर-कुटुम्बी, प्राण, धन, लोक, परलोक आदि सबको छोड़कर जो भक्त, मेरी शरणमें आ जाते हैं मैं उन्हें कभी नहीं त्याग सकता—

ये दारागार पुत्राप्तान् प्राणान् वित्तमिमं परम् ।

हित्वा मां शरणं याताः कथं तांस्त्यक्तुमुत्सहे ॥ (भा० ९, ४, ६४)

भगवद्भक्तोंमें यह वैशिष्ट्य है कि वे अपनी साधुतासे ईश्वरको वशीभूत कर लेते हैं। साधु मेरे हृदय हैं, मैं साधुओंका हृदय हूँ, मेरे अतिरिक्त वे कुछ नहीं जानते, मैं उनके अतिरिक्त कुछ नहीं जानता (भा० ९, ४, ६५)। भगवान् तो भक्तोंके पीछे-पीछे चलते हैं। पीछे चलनेका कारण यह है कि वे भक्तोंकी चरणरजसे पवित्र हो जांय। (भा० ११, १४, १६)। यह उक्ति गीतासे भी साम्य रखती है—

भक्त्यात्वनन्यया शक्य अहमेवं विधोऽर्जुन ।

ज्ञातुं दृष्टुं च तत्त्वेन प्रवेष्टुं च परंतप ॥ (गी० ११, ५४)

तुलयाम लवेनापि न स्वर्गं नापुनर्भवम् ।

भगवत्संग संगाय मर्त्यानां किमुताशिषः ॥ (भा० १, १८, १३)

महात्माओंके निमेषमात्रके संगकी तुलना स्वर्ग एवं मोक्ष भी नहीं कर सकते। मर्त्यलोकके सुखोंकी बात ही क्या। कलियुगमें अनेक दोषोंके होनेपर भी एक गुण विशेष है, वह गुण है हरिकीर्तन, जिससे मनुष्य अनायास ही तर जाता है। (भा० १२, ३, ५१)।

सृष्टि

महापुराणोंके लक्षणमें सर्ग-विसर्ग आदिका समन्वय आवश्यक है। भागवतकारने सर्गकी परिभाषा देते हुए लिखा है कि—"ईश्वरकी प्रेरणासे गुणोंमें क्षोभ होकर रूपान्तर होनेसे जो आकाशादि पंचभूत, शब्दादि, तन्मात्राएं, इन्द्रियाँ, अहंकार और महत्तत्त्वकी उत्पत्ति होती है उसको सर्ग कहते हैं।" 'ब्रह्मा' नारायणकी दृष्टिसे प्रेरित होकर सृष्टि रचना करते है। मायापति भगवान्‌के एकसे बहुत होनेकी इच्छा करनेपर अपनी मायासे अपने स्वरूपमें स्वयं प्राप्त काल स्वभावको स्वीकार कर लेते हैं। भगवान्‌की शक्तिसे ही कालने तीनों गुणोंमें क्षोभ उत्पन्न करा दिया, स्वभावने उन्हें रूपान्तर दे दिया और कर्मने

महत्तत्त्वको जन्म दिया। रजोगुण और तमोगुणकी वृद्धिका जो विकार हुआ उससे ज्ञान क्रिया या द्रव्यरूपतक प्रधान विकार हुआ, वह अहंकार कहलाया। अहंकारके—वैकारिक-तैजस-तामस, तीन भेद हुए। यह क्रमसे ज्ञानशक्ति, क्रियाशक्ति और द्रव्यशक्ति प्रधान है—भगवान्‌की शक्तिसे प्रेरित होकर ये तत्त्व एक हैं और कार्यकारणभाव स्वीकार करके उन्होंने व्यष्टि समष्टिरूपब्रह्माण्डकी रचना की है। उस ब्रह्माण्डरूप 'अण्डे'से विराट् पुरुषकी उत्पत्ति हुई[1]। भागवतकारने विराट् पुरुषकी विभूतियोंका भी वर्णन किया है। सृष्टिके क्रमका विस्तार तृतीयस्कन्धमें द्रष्टव्य है[2]। सृष्टिकी उत्पत्तिके सम्बन्धमें वेद, उपनिषद्, दर्शन तथा पुराण, पृथक् विचार प्रस्तुत करते हैं। विशेषतः ३ मुख्य विचार हैं :—१. आरम्भवाद २. विवर्तवाद ३. परिणामवाद।

परिणामवाद—न्याय और वैशेषिक दर्शनोंने इस वादको माना है। मध्वाचार्य, परमात्मासे प्रकृकिो नितान्त भिन्न मानते हैं, वे प्रकृतिको ही जगत्‌का कारण मानते हैं।

रामानुजाचार्य प्रकृति-जीव-ईश्वर तत्त्व मानते हुए भी सबको ब्रह्म कहते हैं। उनके मतसे ब्रह्म ही अंश विशेष प्रकृतिरूपमें परिणत हो जाता है और वही जगत् बनता है।

विवर्तवाद—शंकराचार्य इस वादके पोषक हैं। सत्यवस्तुमें वास्तविक परिवर्तनको परिणाम कहते हैं और अवास्तविक होनेपर भी भ्रमसे दीख पड़नेवाले परिवर्तनको विवर्त कहते हैं। इसी विवर्तको माया कहा गया है, जो वास्तवमें कोई तत्त्व नहीं है। भागवतकारने इन तीनोंका समन्वय किया है—

१—अव्यक्तसे व्यक्त होना, एकसे अनेक होना, निराकारसे साकार होना, सूक्ष्मसे स्थूल होना सृष्टि है। यह परिणाम प्रकृतिका है। भागवतमें अनेक स्थानोंपर माया और प्रकृतिको एकार्थक कहा है। अनेक स्थलोंपर भगवान्‌की ही प्रकृति कहा है। परमाणुओंके संयोगसे भी सृष्टिका उल्लेख मिलता है (भा० ३,११)। भगवान्‌ने जीवोंके लिए बुद्धि, इन्द्रिय, मन और प्राणोंकी सृष्टि की है, इनके द्वारा ये स्वेच्छासे अर्थ, धर्म, काम तथा मोक्ष प्राप्त कर सकते हैं (भा० १०, ८७, २)।

भावकी दृष्टिसे सृष्टिकी उत्पत्ति रमण करनेके लिये है, **"स एकाकी नारमत ततोद्वितीयमसृजत्"** श्रुति भी कहती है। ज्ञानदृष्टिसे भी सृष्टिकी उत्पत्ति बतलाई है। विभिन्न कल्पोंके भेदसे भी सृष्टि वर्णनमें भिन्नता पाई जाती है।

विसर्ग—विराट्से उत्पन्न ब्रह्म द्वारा जो चराचर सृष्टियोंका निर्माण होता है उसे विसर्ग कहते है। प्रकृतिके गुण वैषम्यसे जो विराट् सृष्टि होती है उसे सर्ग कहते हैं तथा विराट्के अण्डमें ब्रह्माके द्वारा जो व्यष्टि-सृष्टि अथवा विविध सृष्टि होती है उसका नाम विसगं है। विसर्ग सृष्टि ब्रह्माकी मानसिक सृष्टि है।

भागवतमें १० प्रकारकी सृष्टिका वर्णन है और इसका कर्ता ब्रह्मा है।[१] इसी स्कंधमें ५ महाभूत, ५ तन्मात्रायें, १० इन्द्रिय ४ अन्त:करण (मन बुद्धि चित्त अहंकार रूपवाला), पच्चीसवांतत्त्व—काम और कुछ इसे पुरुषकी सहकारिणी शक्ति मानते हैं। अत: भगवान् ही पच्चीसवें तत्त्व हैं।

श्रुतियों में महाभारत तथा पुराणोंमें विसर्गका वर्णन आया है। विसर्ग भगवान्के सर्वोत्कृष्ट ज्ञान, सर्वोत्कृष्ट शक्ति और सर्वोत्कृष्ट क्रियाका बोधक है। इस तत्त्वका वर्णन इसलिए हुआ है कि लोग इसके द्वारा आश्रयभूत भगवान्को प्राप्त करलें।

तन्मात्र सर्ग—भौतिक सर्ग

सुवालादि श्रुतिमें सृष्टिका प्रकार लिखा है। प्रकृतिसे महान्—अहंकार, पञ्चतन्मात्रा, एकादश इन्द्रिय, आकाशादि ५ भूत,। इसके विपरीत तैतरीयोपनिषद् ६।२।३ में कहा है **"सदैव सौम्य"** एक ब्रह्म हो था, इसके ईक्षण मात्रसे संकल्पसे सृष्ट का आरम्भ हुआ। **"एकोऽहं बहुस्याम, प्रजाय"** के साथ ही तेजकी सृष्टि हुई। पुन: उस ब्रह्मने तेजसे जलकी सृष्टिकी और पुन: सृष्टिकी इच्छासे उस जलका ईक्षण किया, उससे पृथ्वी की सृष्टि होगई।

इन उपनिषदोंके सृष्टि क्रममें शंका थी कि आकाशकी उत्पत्ति होती है या नहीं। इसके उतरमें सूत्रकारने पक्ष उपस्थापित करते हुए **"न वियदश्रुतेः"** २।३।१ लिखा है। छान्दोग्योप०में आकाशोत्पत्ति नहीं कही गई है। अत: आकाशनित्य है। किन्तु तैत्तरीयने उत्पत्ति लिखी है और सूत्र भी है **"अस्ति तु"** ब्र०सू० २।३।१।

भागवतमें लिखा हैकि भगवान्के वीर्य द्वारा प्रेरित होकर तामसाहंकार विकारको प्राप्त हुआ उससे शब्द तन्मात्राकी उत्पत्ति हुई और इसी शब्द तन्मात्रा से आकाश उत्पन्न हुआ :—

तामसाच्चविकुर्वाणाद्भगवद्वीर्य चोदितात्।
शब्दमात्रमभूत् तस्मान्नभः श्रोत्रं तु शब्दगम्॥ भा० ३।२६।३२

१—भा० ३।१०

"एतस्मादात्मनः आकाशः सम्भूतः" आकाशाद्वायुः वायोरग्निः । अग्नेरापः अद्भ्यः पृथ्वी । तै०उ० २।१।१ इस क्रममें अकाशसे वायु की उत्पत्ति कही है ।

वादनारायण ने भी **"एतेन मातरिश्वा व्याख्यातः"** २।३।८ से वायु की उत्पत्ति सिद्ध की है । श्रीमद्भागवत में यह क्रम वर्णित है—

नभसोऽथ विकुर्वाणादभूत् स्पर्शगुणोऽनिलः । भा० २।५।२६

विकृत आकाशसे स्पर्श गुण युक्त वायुकी उत्पत्ति हुई । वायुसे तेज उत्पन्न हुआ **"तेजोऽतस्तथाह्याह"** ब्र०सू०२।३।१०

इस प्रसंगमें एक शंका होती है कि तेजकी उत्पत्ति ब्रह्मसे है या वायुसे । **"वायो"** में अपादान पंचमी विभक्ति है अतः अनन्तर अर्थ का प्रयोग यहाँ होगा । सूत्रकारने इसे स्पष्ट कर दिया हैकि वायुसे ही तेजकी उत्पत्ति हुई । आनन्तर्य अर्थ गौड़ है । भागवतमें भी वर्णन आता है जिसमें विकृत वायुसे तेजकी उत्पत्ति कही है :—

वायोरपि विकुर्वाणात् कालकर्म स्वभावतः ।
उदपद्यत वै तेजो रूपवत् स्पर्शशब्दवत् ।। भा० २।५।२७

तेज से जल—**"आपः"** ब्र०सू० २।३।१० में अग्निसे जलकी उत्पत्ति कही है । यद्यपि यहाँ भी छान्दोग्यो० से विरोध आकर पड़ता है तथापि मुण्डको० में स्पष्ट हैं है, अग्नि से जल उत्पन्न हुआ—

एतस्माज्जायते प्राणो मनः सर्वेन्द्रियाणि च ।
खं वायु ज्योतिरापः पृथिवी विश्वस्य धारिणी ।। मु०उ० २।१।३

तेज के विकार से रसात्मक जल की उत्पत्ति भागवतकार ने लिखी है—

तेजसस्तु विकुर्वाणादासीदम्भो रसात्मकम् ।
रूपवत् स्पर्शवच्चाम्भो घोषवच्चपरान्वयात् ।। भा० २।५।२८

जलसे पृथ्वी—**"ता अन्नमसृजत"** छा० ६।२।४ तथा **"यत्र क्वच वर्षति तदेव भूयिष्ठ मन्नं भवति"** से जलसे अन्नकी उत्पत्ति कही है यहाँ अन्न शब्द से पृथिवी ही ग्रहण करनी चाहिए अन्न नहीं सूत्रकारने इसलिए **"पृथिव्यधिकाररूप शब्दान्तेरभ्यः"** ब्र० सू० २।३।१२ में पृथ्वी का ही उल्लेख किया है । पृथ्वी में पहिले पौधा ही उत्पन्न होता है बाद में अन्न अतः कोई विरोध नहीं है । भागवतकार ने इन श्रुतियों के विरोध को स्पष्ट कर दिया है—

रसमात्राद्विकुर्वाणादम्भसादैव चोदितात् ।
गन्धमात्रमभूत तस्मात् पृथ्वी प्राणस्तु गन्धगः ॥ भा० ३।२६।४४

इसके अतिरिक्त एकादश स्कन्धमें भी सृष्टिक्रमका वर्णन है । प्रथम ज्ञानमय ब्रह्म था, उसके संकल्प मात्रसे पदार्थोंका उदय हुआ, वह अविभक्त होकर ही तत्व रचना करने लगा और उसने महत्तत्वको उत्पन्न किया और महत्तत्वने विश्वविमोहन कारी अहंकार को उत्पन्न किया । अहंकारके ३ भेद हुए या उसके तीन अवयव हुए—१—सात्विक २—राजस ३—तामस । यह त्र्यवयव विशिष्ट अहंकार ही मन का उपादान कारण है चेतन और जड़ भी है । तामसाहंकार तन्मात्र से स्थूल आकाशादि की उत्पत्ति हुई । राजस अहंकार से १० इन्द्रियाँ उत्पन्न हुईं, सात्विकाहंकार से मन और इन्द्रियाधिष्ठातृ ११ देवता प्रगट हुए ।

गोपालतापनीयोप० में भी सृष्टि का क्रम वर्णित है, उसमें सृष्टि का क्रम वर्णित है, उसमें सृष्टिके पूर्व एक अव्यक्तका ही उल्लेख है । यह अव्यक्त त्रिगुणात्मक शरीर विशिष्ट है, अक्षर=जीव चैतन्य है, व्यक्त=अभिमानी है । इसी अव्यक्त से महान्,[1] महान्से त्रिविध अहंकार इसमें सात्विकाहंकार से इन्द्रियाधिष्ठातृ देवतागण और मन उत्पन्न हुए, राजसाहंकार से ५ कर्मेन्द्रियाँ—वाक् पाणि—पाद—पायु और उपस्थ पाँच ज्ञानेद्रियाँ चक्षु, कर्ण, जिह्वा, नासिका, त्वचा, तामसाहंकार से पाँच और इन तन्मात्राओं शब्द-स्पर्श-रूप-रस-गन्धसे आकाश, वायु-तेज-जल-पृथ्वी पाँच उत्पन्न हुए ।

सुवालोपनिषद्का भी यही सिद्धान्त है । इन पंच भूतोंसे ही जीव चैतन्य आवृत होता है । प्रलय कालमें विलय : इन तत्वोंका विलय प्रलयकालमें विपरीत क्रमसे होता है यथा-पृथ्वी जलमें, जल अग्निमें, अग्नि वायुमें, वायु आकाशमें और आशाश परमात्मामें विलीन हो जाता है । प्रत्येक कार्य अपने उपादानकरणमें ही विलीन होता है ।[2] अनेक श्रुतियोंके सारको भागवतकार ने संक्षेप में बड़े ही अच्छे ढंग से चित्रित किया है भूमि, जल, अग्नि, वायु, आकाश, अहंकार महत्तत्व, प्रकृति, पुरुष, मन, १० इन्द्रिय और उसके विषय समूह एक इन्द्रियोंके अधिष्ठातृदेव और जगत्के कारण रूप हैं वे सब श्री भगवान्के ही अंग हैं । भा० १०।४०।२ भगवान् श्रीकृष्ण ही इस व्यक्त और अव्यक्तात्मक जगत्को उत्पन्न करते हैं—

१—भाग० ३।५।२६।२७ २—विष्णुपुराण अंश ६ अध्याय ४ श्लोक १४-१८

कृष्ण कृष्णमहोयोगिंस्त्वमाद्यः पुरुषः परः
व्यक्ताव्यक्तमिदविश्वं रूपं ते ब्राह्मणाविदुः । (भा० १०, १०, २९)

अन्यत्र भी ऐसा वर्णन है (भा० १०, १४, ५५) **"ब्रह्मैव भाति सदसच्च तयोः परं यत्"** । (भा० ११, ३, ३७)

प्राण और इन्द्रियों सहित मनकी उत्पत्तिके बाद ही आकाश आदि भूतोंकी सृष्टि माननी चाहिये । सार यह है कि बुद्धि, मन और इन्द्रियोंकी उत्पत्ति भी परमेश्वरसे होती है । या यों कह सकते हैं कि जगत्का उपादान और निमित्त कारण एक मात्र ब्रह्म ही है ।

श्रीमद्भागवतका सृष्टि वर्णन इतना रोचक तथा युक्ति-युक्त है, जो वहीं पठनीय है । नारद ब्रह्माके संवाद रूपमें इसे चित्रित किया गया है । नारदने प्रश्नमें संसारका लक्षण, संसारका आधार एवं इसके रचयिता कौन हैं और प्रलय किसमें होता है, आदि प्रश्न भी किये हैं, इन प्रश्नोंके उत्तरमें ब्रह्माने महत्से इन्द्रियोंके अधिष्ठातृ देवोंका निरूपण किया है । भगवान्ने इन्हें अपनी शक्तिसे प्रेरित किया वे मिल गये और उन्होंने आपसमें कार्यकारणभाव स्वीकार करके व्यष्टि-समष्टिरूप पिण्ड और ब्रह्माण्ड दोनोंकी रचना की वह ब्रह्माण्डरूप अण्डा एक सहस्र वर्षतक निर्जीवरूपसे जलमें पड़ा रहा फिर काल, कर्म और स्वभावको स्वीकार करनेवाले भगवान्ने उसे जीवित कर दिया । उस अंडेको फोड़कर उसमेंसे वही विराट् पुरुष निकला जिसकी जंघा, चरण, भुजाएं नेत्र मुख और सिर सहस्रोंकी संख्यामें हैं । उस विराट्में ही समस्त वर्ण एवं समस्त लोक हैं । चरणोंमें पृथ्वी एवं नाभिमें भुवर्लोक और सिरमें स्वर्लोक है ।

विभिन्न तत्त्व उन्हीं विराट्से उत्पन्न हुए । ७ धातुओंसे ७ छन्द निकले । जिह्वासे अमृयमय अन्न उत्पन्न हुआ । नासासे प्राणादि ५ वायु उत्पन्न हुए नेत्रसे दिशायें, कानसे आकाश और शब्द निकले । केश, दाढ़ी, मूंछ और नखोंसे मेघ, बिजली, शिला, एवं लोहा आदि धातुएं प्रकट हुई । उन्हीं भगवान्की नाभि स्थित कमलसे ब्रह्मा और ब्रह्मासे समस्त देव मनुष्यादि उत्पन्न हुए (भा. २, ५, ४२)

तृतीयस्कन्धमें दश प्रकारकी सृष्टिका वर्णन है। इसमें महत्तत्वनामक प्रथमसृष्टि, द्वितीय अहंकारकी (जिसे ५ भूत १० इन्द्रियां होती हैं) तृतीय भूतसर्ग है, इसमें तन्मात्र सर्ग है जो महाभूत उत्पन्न करता है, चतुर्थ सृष्टि इन्द्रियोंकी है यह ज्ञान और क्रिया शक्तिसे सम्पन्न होती है । पंचमसृष्टि—अहंकारसे उत्पन्न देवोंकी है, मन भी इसीमें

है। षष्ठ सृष्टि—अविद्याकी है तम मोह आदि ५ इसीमें हैं जीवोंकी बुद्धिको यही ५ आवरण—विक्षेप करती हैं। ये छः प्राकृत सृष्टियां हैं।

वैकृत सृष्टि : १—इसमें वनस्पति (जो बिना बौर आये ही फलती हैं गूलर, पीपर, बड़ आदि।

२—औषधि फलोंके पक जानेपर जो नष्ट हो जाती हैं धान, गेहूँ, चना आदि।

३—जो किसीका आश्रय लेकर बढ़ती हैं।

४—त्वक्सार—जिनकी छाल कठोर हो जैसे बाँस।

५—वीरुध—जो लता पृथ्वीपर फैलती है—खरबूजा आदि।

६—द्रुम—फूलके स्थान पर फल आते हैं—आम आदि।

इनमें प्रायः ज्ञान शक्ति प्रकट नहीं होती वे भीतर ही भीतर केवल स्पर्शका अनुभव करते हैं तथा इनमेंसे प्रत्येकमें कोई गुण होता है।

आठवीं सृष्टि पशु-पक्षी—पशु-पक्षियोंकी है यह २८ प्रकारकी है इन्हें कालका ज्ञान नहीं होता। तमोगुणकी अधिकताके कारण ये केवल खाना पीना मैथुन करना सोना आदि ही जानते हैं। इन्हें सूंघनेसे वस्तुका ज्ञान हो जाता है। हृदय विचार शक्ति शून्य होता है। इनमें—गौ, बकरा, भैंसा, कृष्णमृग, सूअर, नीलगाय, सस नामकमृग, भेड़ और ऊंट ये द्विशफ पशु हैं (भा. ३, १०, १४) गधा, घोड़ा, खच्चर, गौरमृग, शरभ, चमरी ये एक शफ (खुर) वाले हैं। कुत्ता, गीदड़, भेड़िया, बाघ, बिलाव, खरगोश, साही, सिंह, बंदर, हाथी, कछुआ, गोह, मगर आदि पशु हैं, कंक (बगुला) गिद्ध, बटेर, बाज, भास, भल्लूक, मोर, हंस, सारस, चकवा, कौआ और उल्लू आदि उड़नेवाले जीव पक्षी हैं।

मानव सृष्टि—नवम सृष्टि है। यह एक प्रकार की है। मनुष्य रजोगुण प्रधान कर्मपारायण और दुःखरूप विषयोंमें ही सुख माननेवाले होते हैं।

स्थावर, पशु-पक्षी और मनुष्य ये तीनों प्रकारकी सृष्टियाँ तथा देवसर्ग वैकृतसृष्टि है (भा. ३, १०)

ऋषि सर्ग—सनत्कुमार आदि ऋषियोंका सर्ग (कौमार सर्ग) यह प्राकृत-वैकृत सर्ग दोनों प्रकार का है।

देव सृष्टि—आठ प्रकारकी है। देव-पितर-असुर-गन्धर्व, अप्सरा, यक्ष, राक्षस, सिद्ध, चारण, विद्याधर, भूत, प्रेत, पिशाच और किन्नर किंपुरुष-अश्वमुख।

चतुर्थ सृष्टि—इसके अतिरिक्त भागवतमें चतुर्धा सृष्टिका उल्लेख है 'जरायुज'—जालेसे उत्पन्न–मनुष्य आदि, 'अण्डज'—अण्डेसे उत्पन्न पक्षी आदि, 'स्वेदज' स्वेद (पसीने) से उत्पन्न यूका आदि 'उद्भिज्ज'—पृथ्वी फोड़कर उत्पन्न होनेवाले वृक्ष लता आदि—स्वेदज जीवोंका अन्तर्भाव उद्भिज्जमें किया है **तृतीयशब्दावरोधः संशोकजस्य** (ब्र० सू० ३, १, २१) (छा० उ० ६, ३, १) में जीवोंकी ३ श्रेणियाँ कही गई हैं।

(ख) प्रलय

परमाणुसे लेकर द्विपरार्थ पर्यन्त कालका स्वरूप और एक युगके वर्ष और कल्पके भेदोंका संसारके साथ सम्बन्ध सृष्टि और इनका सर्वथा नष्ट हो जाना प्रलय, है। इस प्रलयके भी भेद हैं। ब्रह्माकी रात्रीको प्रलय कहते हैं। एक हजार चतुर्युगीका ब्रह्माका एक दिन होता है इसको ही कल्प कहते हैं। एक कल्पमें चौदह मनु होते हैं। कल्पके अन्तमें उतने समयतक ही प्रलय भी रहता है।

नैमित्तिक प्रलय—तीनों लोक लीन हो जानेको नैमित्तिक प्रलय कहते हैं। इस अवसरपर विश्वको अपनेमें समेटकर ब्रह्मा और पश्चात् शेषशायी भगवान् नारायण भी शयनकर जाते हैं, प्रा० प०—इस प्रकार रातके बाद और दिनके बाद रात होते-होते जब ब्रह्माजीकी अपने मानसे सौ वर्षकी और मनुष्योंकी दृष्टिमें दो परार्द्धकी आयु समाप्त हो जाती है तब महत्तत्व और अहंकार पंचतन्मात्र ये सातों प्रकृतियाँ अपने कारण मूल प्रकृतिमें लीन हो जाती है।

प्राकृतिक प्रलय[1]—इसी प्रलयका नाम प्राकृतिक प्रलय है। इस प्रलयमें पंचभूतोंके मिश्रणसे बना हुआ ब्रह्माण्ड अपना स्थूलरूप छोड़कर—कारणमें घुल मिल जाता है। प्रलयका समय आनेपर १०० वर्षोंतक पृथ्वीपर मेघ वर्षा नहीं करते, अतः अन्न नहीं होता। प्रजा व्याकुल होकर एक दूसरेको खाने लगती है। सूर्य सबका रस खींच लेते हैं। संवर्तक अग्नि संकर्षणके मुखसे प्रकट होती है। वायु वेगसे बढ़कर वह नीचेके सातों लाकोंको भस्म कर डालता है। सारा संसार एक समुद्रमें लीन-सा दीखता है।

जलप्रलयके पश्चात् 'जल' पृथ्वीके विशेष गुण गन्धको ग्रस लेता है वह पृथ्वी जलरूप बन जाती है। जलके गुण रसको तेज ग्रस लेता है, जल नीरस होकर तेजमें समा जाता है। वायु तेजके गुणरूपको ग्रस लेता है और तेजरूप रहित होकर वायुमें

१—**विपर्ययेण तु क्रमोऽत उपपद्यते च (ब्र० सू० २; ३, १४)**

लीन हो जाता है, अब आकाश वायुके गुण स्पर्शको अपनेमें मिला लेता है और वायु स्पर्शहीन होकर आकाशमें शान्त हो जाता है अतः आकाशके गुण शब्दका तामसाहंकारमें विलय होता है तैजस अहंकारमें इन्द्रियाँ और वैकारिक अहंकारमें इन्द्रियों के अधिष्ठातृ देव विलयको प्राप्त हो जाते हैं। महत्तत्त्व अहंकारको और सत्व आदि गुण महत्तत्वको ग्रस लेते हैं। अव्यक्त प्रकृति गुणोंको ग्रस लेता है तब केवल प्रकृति ही शेष रह जाती है। वही चराचर जगत्‌का मूल कारण है। लोक स्वप्नादि अवस्था, भूत कुछ नहीं रहते। उस अवस्थाका तर्कके द्वारा भी अनुमान नहीं किया जा सकता। उस अव्यक्तको ही जगत्‌का मूलतत्त्व या प्रलय तत्त्व कहते हैं। इस अवस्थाका नाम प्राकृत प्रलय है। प्रकृति और पुरुष दोनोंकी शक्तियां कालके प्रभावसे क्षीण हो जाती हैं, और विवश होकर अपने मूलस्वरूपमें लीन हो जाती हैं।

आत्यन्तिक प्रलय या मोक्ष—बुद्धि, इन्द्रिय और उनके विषयोंके रूपमें उनका अधिष्ठान ज्ञानस्वरूप वस्तु ही भासित हो रहा है, उन सबका तो आदि भी है और अन्त भी, इसलिये वे सब सत्य नहीं हैं। अहंकार भी ब्रह्मसे उत्पन्न होता है, ब्रह्मके अंश जीवके लिये ब्रह्मस्वरूपके साक्षात्कारमें बाधक बन बैठता है। जब जीवके हृदयमें जिज्ञासा होती है तब आत्माकी उपाधि अहंकार नष्ट हो जाता है और उसे अपने स्वरूपका साक्षात्कार हो जाता है, जब जीव विवेक खड्गसे मायामय अहंकारका बंधन काट देता है तब वह अपने एक रस आत्मस्वरूपके साक्षात्कारमें स्थित हो जाता है, आत्माकी यह मायामुक्त वास्तविक स्थिति ही आत्यन्तिक प्रलय होती है। इस प्रलयका कोई समय नहीं है।

नित्यप्रलय—ब्रह्मासे लेकर तिनकेतक जितने प्राणी या पदार्थ हैं सभी हर समय पैदा होते और मरते रहते हैं अर्थात् नित्य रूपसे उत्पत्ति और प्रलय होता ही रहता है। जैसे आकाशमें तारे हर समय चलते ही रहते हैं वैसे ही भगवान्‌के स्वरूपभूत अनादि अनन्तकालके कारण प्राणियोंकी प्रतिक्षण होनेवाली उत्पत्ति और प्रलयका भी पता नहीं चलता। परमात्माके अतिरिक्त जो कुछ स्थावर और जंगमात्मक जगत् दृश्यमान है, उसकी अन्तिम गति प्रलय है।

(३ ग) जीवकर्तृत्ववाद

जीवात्माका कर्तृत्व स्पष्ट रूप से प्रश्नोपनिषद् ४/ ६ में कहा है। जीवात्माका कारण शरीरके साथ अनादि सम्बन्ध है उसीसे जीवको कर्ता माना गया है, स्वरूपसे

वह कर्ता नहीं है। जीवका स्वरूप श्वेता० ६, १२ में निष्क्रिय बतलाया है। शुभ करनेवालेको श्रेष्ठ फल तथा पापकर्म करनेवालेको दुःख भोगना पड़ता है, यह श्रुतियोंमें अनेक स्थलोंपर आया है, यह कथन प्रकृतिको कर्ता माननेसे सिद्ध नहीं होता किसी चेतनको कर्ता मानना पड़ेगा अतः जीवात्मा ही समस्त कर्मोंका कर्ता है।

'कर्ता शास्त्रार्थवत्वात्'' २, ३, ३२ से तथा च तक्षोभयथा २, ३, ३९ तक इसके कर्तृत्वका विचार ब्रह्मसूत्रोंमें है, ब्रह्मसूत्रोंमें इस विचारका आधार तैत्तरीयो० २, ५, १—"**विज्ञानं यज्ञं तनुते कर्माणि तनुतेऽपि च**" का वाक्य तथा "**हन्ता चेन्मन्यते हतम्**" यह कठो०का १, २, १९ वाक्य है। इसका विचार भागवतमें भी किया है :—

शास्त्रेष्वियानेवसुनिश्चितोनृणाम् क्षेमस्यसध्यग् विमृशेतु हेतुः।

आत्मासे पृथक् देहादि अनात्म वस्तुसे आसक्ति हटाकर निर्गुण ब्रह्मस्वरूपमें दृढ़रति करनी चाहिये। स्पष्ट जीवके कल्याणकी बात कही गई है। ३. १९ "**स्वप्ने यथा पश्यतिदेहमीदृशम्**" भागवत १०, १, ४१ आदिसे यह भी सिद्ध है कि जीव स्वप्नमें स्वेच्छापूर्वक विहरण कर सकता है। यह ब्रह्मसूत्र भी स्वीकार करता है :—**विहारोपदेशात्** २, ३, ३४ वृह० उ० ४, ३, १३, २, १, १८ में भी इसकी सम्पुष्टि है। तथा छा० उ० ८, १२, ३ तथा "**सतत्र पर्येति जक्षन्, क्रीडन् रममाणः**" मु० ३०३, १, ४ में भी इस सूत्रका मूल है। एक प्रकारसे यह मुक्त जीवकी क्रीड़ाका निरूपण है। जीव प्राणादि का ग्रहण करता है।[1] यह अन्यमें सम्भव नहीं है' ब्रह्मसूत्रके "उपादानात् २, ३, ३३ सूत्र से इसे स्पष्ट किया है तथा भागवतकारने इन्द्रियों द्वारा वह भोग करता है लिखा है (भा० ११, १३, ३२) यदि जीवात्माका कर्तृत्व सिद्ध न करना होता तो श्रुतिमें संकेत विपरीत होता। जीवात्माको यज्ञोंका कर्ता कहा है।[2]

एते वर्णाः स्वधर्मेण यजन्ति स्व गुरुं हरिम्। (भा० ३, ६, ३४) में कर्मका विस्तार वर्ण द्वारा भी सिद्ध कर दिया है।

जीव स्वतन्त्र है तो इस कार्यमें ही क्या नहीं लगता इसका समाधान भागवतकारने किया है कि वह कर्मानुसार फल भागी होता है :—

(भा० ४, २९, २७)

---

१. वृह० २, १, १८ स यथा महाराजो-परिवर्तते
२. तै० उ० २, ५, १

गुणाभिमानी होनेपर वह सात्विक-तामस-राजस कर्म करता है। जीवात्माको सुख-दुःखादि भोगोंकी प्राप्तिमें कोई निश्चित नियम नहीं है[1], ऐसे ही कर्म करनेमें भी यह नियम नहीं है कि वह अपने हितकारक ही कर्म करे, अहितकारक न करे। प्रारब्धानुसार परमेश्वरके विधानसे जैसे भोगोंका मिलना उचित होता है वैसे भोग मिलते हैं। यदि कहें कि नये कर्मोंके करनेमें वह स्वतन्त्र है, तो कहना पड़ता है कि अनादिकालसे संचित कर्मोंके अनुसार जो जीवात्माका स्वभाव बना हुआ है उसके अधीन है अतः कोई विरोध नहीं है। भगवान्‌के आश्रयसे इसका उद्धार संभव है। जीव सर्वथा हिताचरणमें नहीं लगा रह सकता इसमें एक कारण शक्ति का विपर्यय होना भी है।[2] अन्तःकरणकी इन्द्रियोंकी ओर शरीरकी शक्ति भी कभी अनुकूल हो जाती है और कभी प्रतिकूल हो जाती है, प्रकृतिका कर्तापन तो सिद्ध नहीं है। यदि प्रकृतिको कर्ता मानें तो प्रकृतिमें भोक्तृत्व मानना पड़ेगा। जो कर्मका कर्ता है वही कर्मका भोक्ता है, यही युक्ति संगत है।[3] भागवतमें इसकी स्पष्ट घोषणा इस प्रकार की है :—**"भोक्तृत्वं सुख दुःखानां पुरुषं प्रकृतेः परम्"** (भा० ३, २६, ८) सुख-दुःख आदिके भोक्त्रत्व विषयमें प्रकृतिसे विलक्षण जीव ही कारण है। परन्तु यह जीवात्माका कर्तृत्व स्वरूपसे नहीं है, यदि जीवमें स्वाभाविक कर्तापन मानें तो समाधि अवस्थाका होना सिद्ध नहीं होगा।[4] कर्तृत्व अन्तःकरण आदि सम्बन्धसे है। तक्षा—बढ़ई, वसूली आदि कारणसे अपनी शक्ति द्वारा काष्ठका छेदन करता है और शक्तिसे उसे धारण भी करता है।[5]

विश्वनाथ चक्रवर्तीका कथन है कि कर्मफलदाता परमेश्वर है, (कर्मफल) भोक्तृत्व ईश्वराधीन है। (सा० द० ३, २६, ८) ब्रह्मसूत्र २, ३, ३९ में भी यह कहा है। कौषीतकि, ३, ९ वृह० ३, ७, १५ आदिमें भी इसकी पुष्टिकी गई है। ध्रुवजीने अपने स्तवनमें यह कहा है :—**"योऽन्तः प्रविश्य मम वाचमिमां प्रसुप्ताम्"** (भा० ४, ९, ६) वेद स्तुतिमें भी यह विवेचन है। (भा० १०, ८७, ३०) भागवतमें

१, ब्र० सू० २, ३, ३६ उपलब्धिवदनियमः।

२. २. ब्र० सू० २, ३, ३७ शक्तिविपर्ययात्।

३. क—सां० का० २७ पुरुषोऽस्ति भोक्तृभावात्।

ख—गीता १३, २२ पुरुषः प्रकृतिस्योहि भुक्ते०।

४. ब्र० सू० २, ३, ३८ समाध्यभावाच्च।

५. ब्र० सू० १, ३, ३९ यथाच तक्षोभयथा।

ब्रह्म का अंश भी इसे लिखा है—**एकस्यैव ममांशस्य जीवस्यैव महामते।** (भा० ११, ११, ४) (ब्रह्मसूत्र २, ३, ४१ में भी अंशत्वका निरूपण है।

इसके भी दो भेद हैं स्वरूपांश और विभिन्नांश। स्वरूपांश मत्स्यादि अवतार हैं, ये उससे अभिन्न हैं, जीव विभिन्नांश है। जीव मायावश ही नानाप्रकारके शरीर धारण करता है (भा० २, ९, २)। जीवगण परस्परमें भी भिन्न-भिन्न हैं।

'**कर्मणाजायते जन्तुः कर्मणैवविलीयते**" (भा०१०, २४, १३) में भी विभिन्न भोगोंका निर्देश है।

परतत्व

परतत्वके सम्बन्धमें ब्रह्म सूत्रकारके मतको आचार्योंने किस प्रकार अपने मतवादके अन्तर्गत स्थापित किया है, द्रष्टव्य है। "आचार्य शंकर" की दृष्टिमें ब्रह्म परतत्व है और वह एक है, निर्विशेष है, निर्गुण, निष्क्रिय, निर्विकार तथा सच्चिदानन्द है। परमार्थतः वह निर्गुण ब्रह्महै, व्यावहारिक स्तरपर वह सगुण ब्रह्म या ईश्वर है।

श्रीरामानुजाचार्यका कथन है कि यह जगत्, चित् और अचित्रूप है ऐसे इस जगत्का जन्म, स्थिति और भंगका हेतु केवल पुरुषोत्तम नारायण है, वही अन्तर्यामी स्वरूप है तथा समस्त दोषोंसे शून्य है, अशेष उपादेयताओंसे मुक्त है, अपनेसे भिन्न वस्तुसे विलक्षण स्वरूप है। असंख्यकल्याण गुणोंसे वह पुरुषोत्तम नारायण सदा विशिष्ट रहता है। इन्हें सर्वात्मा, परब्रह्म, परमज्योति, परतत्व और परमात्मा नामोंसे भी अभिहित किया जाता है। अखिल वेदान्तके प्रतिपाद्य यही नारायण हैं।

श्रीमध्वके अनुसार—विष्णु भगवान् ही एकमात्र स्वतन्त्र हैं। वे अनन्त है निर्दोष हैं एवं गुणवान् हैं। कल्याण गुणोंके एकमात्र आधार हैं। वे सर्वशक्तिमान् हैं, स्वराट् हैं, चेतन और अचेतन जगत्के नियामक हैं। आनख—केशाग्र स्वरूप ज्ञानात्मक-सच्चिदानन्द विग्रह हैं और जगत् भेदरहित हैं। उनका देह और देहीसे भेद नहीं है। उनकी लीला, नाम, रूप, गुणमें भी कोई भेद नहीं है। वे सनातन हैं, सर्वनियामक हैं, सर्वप्रभु हैं। ब्रह्मा, महेश और लक्ष्मी आदिके भी ईश्वर हैं।

आचार्य विष्णुके मतानुसार ल्हादिनी एवं संवित्शक्ति (सर्वज्ञता शक्ति) द्वारा आलिंगित सच्चिदानन्द विग्रह ही ईश्वर है। ईश्वरको किसी उपाधिसे युक्त कहना

उचित नहीं है। वे अप्राकृत गुण विशिष्ट हैं, सर्वज्ञ हैं, सर्वशक्तिमान्, सर्वेश्वर, सर्वनियन्ता और सबके उपास्य हैं। वे सम्पूर्ण कर्मोंके फल प्रदाता भी हैं। समस्त कल्याण गुणोंके निधि एवं सच्चिदानन्द वस्तु स्वरूप हैं।

श्रीनिम्बार्काचार्यके अनुसार भगवत्तत्वनिर्दोष है। मोह, तन्द्रा, भ्रम आदि १८ दोष भगवान्के स्वरूपमें नहीं हैं। अशेष कल्याण राशि भगवान्के स्वरूपमें सब कुछ विद्यमान है। वही भगवत्तत्व कृष्णस्वरूप में परमब्रह्म हैं। वेसमस्त सौन्दर्य और माधुर्यके मूल हैं। गोलोकमें चतुर्व्यूह स्वरूप, परव्योम चतुर्व्यूह और अन्यान्य चतुर्व्यूहगण उन्हींके अंग हैं और कृष्णअंगी हैं। वे अपनी स्वरूप शक्ति श्रीवृषभानुजा (राधा) के साथ एवं वृषभानुजाके कार्य व्यूह स्वरूप सहस्त्रों सखियोंसे सेवित, जीवके नित्य आराध्य हैं। वे नित्य हैं एवं उनका विग्रह अप्राकृत है। प्राकृत चक्षुके निकट वे निराकार हैं, अप्राकृत विशिष्ट होनेपर अप्राकृत चक्षुके निकट साकार हैं। वे स्वतन्त्र हैं, सर्व शक्तिमान् हैं, सबके ईश्वर हैं, अविचिन्त्य शक्तिसम्पन्न हैं, ब्रह्मा-शिव आदि देवगण उनकी सदा वन्दना करते हैं।

आचार्य वल्लभके मतानुसार अनन्त गुण परिपूर्ण साकार पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण यशोदाको लालित ही परतत्त्व हैं।

जीवत्व

शंकराचार्य—

अविद्योपाधिक भ्रान्त ब्रह्म ही जीव है। आत्माका जबतक बुद्धिके साथ संयोग होता है, तबतक वह जीव या संसारी कहलाता है। जीव, ब्रह्मका प्रतिबिम्ब है या प्रतिच्छवि है। ब्रह्मका यह प्रतिबिम्ब अविद्या कृत है। परमार्थतः देखा जाय तो जीव नामकी वस्तु है ही नहीं। व्यावहारिक स्तरपर जीवब्रह्मसे भिन्न है और उसका ज्ञातृत्व परिच्छिन्न है वह संख्या में असंख्य है। पारमार्थिक स्तरपर जीव ब्रह्मरूप है निर्गुण निर्विकार है।

श्रीरामानुजाचार्यके अनुसार—जीव ईश्वरका अंश है। जीवात्मा और परमात्माके मध्य विशेषण रूप भाव हैं। जीव नित्य है, अनादि है, अनन्तस्वरूप है, ब्रह्मका परिणाम है, वह ज्ञानस्वरूप है और ज्ञाता है। कर्ता-भोक्ता होता हुआ भी वह परिमाण में अणु है। मुक्त और नित्य युक्त भेदसे वह द्विविध है।

श्रीमध्वाचार्यके अनुसार जीव समुदाय श्रीहरिका अनुचर है। जीव ब्रह्मसे नित्य भिन्न है। जीव अनन्त हैं और उनका परिमाण अणु कहा गया है। वह जीव

तीन प्रकारके हैं। सात्विक-राजसिक और तामसिक। शुद्ध जीव विम्बका ही निरुपाधिक प्रतिविम्बस्वरूप है।

आचार्य विष्णुस्वामीके अनुसार जीव ब्रह्मका अंश है। जीव स्वरूपतः चेतन है, स्वप्रकाश है और समस्तदुःखोंका आधार है। जीवके दो भेद हैं मुक्त और बद्ध। मुक्त जीव अनेक हैं। भगवान्‌की इच्छासे नित्य विग्रह धारण करके मुक्तजीव श्रीभगवान्‌की ही सेवा करते हैं।

श्रीनिम्बार्काचार्यके अनुसार जीव परमात्माका अंश है, या भेदाभेद सम्बन्धयुक्त है। जीव ज्ञानस्वरूप होनेपर भी ज्ञातृस्वरूप है। जीव अणु परिमाण वाला है, चैतन्य है, किन्तु वृहच्चैतन्य परमेश्वरके अधीन है। संख्यामें जीव अनन्त हैं। जीवके तीन भेद हैं। मुक्त-बद्धमुक्त और बद्ध। जो श्रीहरिके पदाश्रित हैं मुक्त हैं, जो पूर्वमें मायाबद्ध थे, साधु या गुरु की कृपासे भगवान्‌की कृपाका लाभ प्राप्त कर चुके हैं, वे बद्धमुक्त हैं और जो भगवान्‌की बहिर्मुखताको स्वीकार कर मायिक भोगमें प्रमत्त हैं, बद्ध कहे गये हैं। मुक्तगण पार्षद और पार्षदानुगत अवस्थामें विविध बद्धमुक्तगण पार्षद और साधक भेदमें बद्ध जीवगण विषयी, विवेकी और मुमुक्षु भेदसे विविध हैं जीव जब बहिर्मुख होता है तभी मायाके बन्धनमें पड़ जाता है भगवान्‌की कृपासे जीव मायासे मुक्त हो जाता है अन्य कोई उपाय नहीं है।

श्रीवल्लभाचार्य के मतानुसार—जीव परब्रह्मके तिरोभूत आनन्दांशका स्वरूप चिदंश हैं। जीव नित्य है, सत्य है, परमाणुमें अणु है, संख्यामें जीव अनन्त हैं उच्च नीच भावापन्न हैं, जीव भोक्ता है, ज्ञाता हैं, आनन्दाँश तिरोभाव निमित्त मायाके वशीभूत है। तिरोभूत आनन्दांशके आविर्भावसे जीव ब्रह्मात्मक हो जाता है।

कृष्णदास कविराजके अनुसार जीव कृष्णका नित्यदास है—

जीवेर स्वरूप हय कृष्णेर नित्यदास
कृष्णेर तटस्था शक्ति भेदाभेद प्रकाश।। (चै०च०म० २० प०)

श्रीवलदेव विद्याभूषणके अनुसार—जीव अणु है, चैतन्य है और नानावस्थापन्न है। जीव परमात्माका अंश है, भगवान्‌का दास है, जीव नित्यमुक्त बद्धमुक्त और बद्ध भेदसे त्रिविध है। जीव ब्रह्मात्मक है, किन्तु स्वयं ब्रह्म नहीं है।

गौडीयवैष्णवाचार्य श्रीकृष्णदासके अनुसार श्रीकृष्ण ही परतत्त्व हैं, उनका गोविन्द यह नाम भी है, वे गोलोकवासी हैं। वे सबके ईश्वर हैं, अंशी हैं, किशोर शेखर हैं, व्रजेन्द्रनन्दन हैं—

कृष्णेर स्वरूपविचार गुन सनातन
अद्वय ज्ञान तत्व व्रजे व्रजेन्द्रनन्दन।
सर्व आदि सर्व अंशी किशोर शेखर
चिदानन्द देह सर्वाभय सर्वेश्वर।
स्वयं भगवान् कृष्ण गोविन्दधर नाम
सर्वेश्वर्य पूर्ण यार गोलोक नित्य धाम।।

(चै०च० मध्य २० परि०)

बलदेव विद्याभूषणके अनुसार निरवद्य, विशुद्धानन्द गुणगण अचिन्त्यानन्त शक्ति सच्चिदानन्द पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण ही परतत्व हैं। वे प्रकृतिका नियमन करते हैं। और जगत्‌की सृष्टि करते हैं, जीवको भक्ति और मुक्तिप्रदान करते हैं। वह केवल भक्तिद्वारा ग्राह्य हैं। श्रीकृष्ण सबके हेतु हैं विज्ञानानन्द स्वरूप हैं; मूर्त्त और विभु हैं अचिन्त्य शक्तिमान् हैं, एवं सर्वज्ञ हैं, प्रभु सुहृद् माधुर्यमय, सन्धिनी, संवित् और ल्हादिनी शक्ति सम्पन्न है। श्रीकृष्णस्वयंरूप हैं और सर्वावतारी हैं। श्रीकृष्णका नाम, रूप, गुण, लीला, धाम और परिकर भी नित्य है, और अभिन्न है।

(घ) जीवात्माका बन्धन—

भागवतमें लिखा है कि जीवात्माका वन्धन अहंकारके कारण होता है :—

अहंकारकृतं बन्धमात्मनोऽर्थ विपर्ययम्। (भा० ११, १३, २८)

तथा अविद्या द्वारा भी बन्धन होता है।[1] अविद्या और अहंकारमें तात्त्विक भेद नहीं है। जो अविद्यासे युक्त है वही बन्धनमें है—**"यो विद्यया युक् स तु नित्य बद्धः"** (११, ११, ७), **मायाधीश, मायावश ईश्वरे जीवे भेद** (चै०च० ६, १६२)

जीवात्मा वास्तवमें शुद्ध परमेश्वरका अंश, जन्म-मरणसे रहित, विज्ञान स्वरूप नित्य अविनाशी है, तथापि वह अनादि परम्परागत अपने कर्मोंके अनुसार मिले हुए स्थावर (वृक्ष, पहाड़ आदि) जंगम (देव-मनुष्य-पशु, पक्षी आदि) शरीरोंके

---

१. वन्धोऽस्याविद्ययाऽनादिः। (भा० ११, ११, ४) तथा "एते चांश कला पुंसः। (भा० १, ३, २८)

आश्रित है[1] उनके साथ सद्रूप हो रहा है" मैं शरीरसे सर्वथा भिन्न हूँ, इससे मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है इस वास्तविक तत्वको नहीं जानता, इस कारण उन-उन शरीरोंके जन्ममरण आदिको लेकर गौण रूपसे जीवात्माका उत्पन्न होना श्रुतिमें कहा गया है। स्थूल-सूक्ष्म और कारण, इन तीन प्रकारके शरीरोंके आश्रित जीवात्माका परमात्मासे उत्पन्न होना और उसमें विलीन होना श्रुतिस्मृतियोंमें जगह-जगह कहा गया है। जीवोंको भगवान् उनके परम्परागत संचितकर्मोंके अनुसार ही अच्छी बुरी योनियोंमें उत्पन्न करते हैं।

श्रीमद्भागवतमें अनेक स्थलोंपर यह कहा गया है कि जीव गुणोंके कारण बन्धनमें पड़ गया है। कर्मके प्रभावसे जीवमें नानात्व आता है, तथा लोकसे लोकान्तरगमन भी सिद्ध होता है।[2] देहयोगसे जन्मादि भाव उसे लग जाते हैं। वस्तुतः देहधारीको कुछ सुख है नहीं। गोकर्णने अपने पिता आत्मदेव ब्राह्मणको देहकी अहन्ता त्यागनेका उपदेश दिया,[3] प्रह्लादने अपने पिता हिरण्यकशिपुको अनित्यताका उपदेश किया[4] एवं अन्य अनेक प्रसंगोंमें शरीरके बन्धन और मुक्तिकी चर्चा की है। एकादशस्कन्धमें स्वयं भगवान्‌ने ही अपने मुखसे कहा है कि—

बद्धो मुक्त इतिव्याख्या गुणतो मे न वस्तुतः
गुणस्य माया मूलत्वान्नमे मोक्षो न बन्धनम्[5]

न मेरा बन्धन है, न मोक्ष। स्वेच्छासे जीवात्मा-परमात्मा, वृक्ष (संसार) पर बैठे हैं, एक उनमेंसे फल खाता है, एक नहीं।[6] अविद्याके कारण ही इसकाबन्धन है—**"यो विद्ययायुक् सतु नित्यबद्धः"**।[7]

जीवका रूप सूक्ष्म भी है—**"मनोमयंसूक्ष्ममुपेत्यरूपम्"** (भा० ११, १२, १७)

मुक्ति

मोक्ष शास्त्रोंकी गणनामें विद्वान् एकमत होकर उपनिषदोंका ही नाम ग्रहण करते हैं। उपनिषद्का अर्थ—ब्रह्मविद्या है। व्युत्पत्ति भी उपनिषद्की इस प्रकार की जाती है उप०समीपसे (प्रत्यगभिन्नरूपसे) ब्रह्म तत्त्वका साक्षात्कार कराकर,

---

१. ब्र० सू० २, ३; १६
२. भा० ११, १०, १४
३. भाट मा० अ० ८, ७८
४. भा० ७, ५,
५. भा० ११, ११, १-५
६. भा० ११; ११, १७-२४
७. भा० ११, ११, ७

नि०अर्थात् अच्छी प्रकारसे अज्ञान सहित द्वैत प्रपंचका विध्वंस करनेवाली विद्या उपनिषद् है। "**ब्रह्मविद्यासर्वविद्या प्रतिष्ठाम्**" ऐसा मुण्डक श्रुतिमें आता है[1] अर्थात् ब्रह्मविद्या सर्वविद्याओंकी प्रतिष्ठा है। ब्रह्मविद्याके बिना योगादि अन्य विद्यायें पूर्णतया सफल नहीं हो सकतीं। गीतामें भी ब्रह्मविद्याको राजविद्या शब्दमें अभिहित किया है। परमात्माको जानकर ही मुमुक्षु, मृत्युका अतिक्रमण करता है "**तमेवविदित्वातिमृत्युमेति नान्यः पन्थाः विद्यतेऽयनाय** (श्वेता० ३, ८) तथा यह भी प्रमाणित है कि परमात्मा देवको जानकर ही समस्त बन्धनोंसे मुक्ति मिलती है—"**ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्व पाशैः**"[2] गीतामें स्पष्ट आता है कि ज्ञानरूपी नौकासे समस्त पापरूप समुद्रको तू तर जायगा—"**सर्वं ज्ञानप्लवेनैववृजिनंसन्तरिष्यसि**"[3] अतः ब्रह्मविद्या ही मोक्षका श्रेष्ठ साधन है।

ब्रह्म क्या है—"**वृहत्वात् वृंहणत्वाच्च ब्रह्म आत्मतिगीयते**"। सबसे महान् होनेसे तथा शरीरादि अनात्म पदार्थोंको सत्ता स्फूर्ति देनेवाला होनेसे ब्रह्म ही आत्मरूपसे कहा जाता है। श्रुतिमें लिखा है कि—शरीरादि समस्त भूतोंमें स्वप्रकाश एक अद्वितीय ब्रह्म ही आत्मरूपसे विराजमान है, वह विद्यासे आच्छन्न होनेके कारण गूढ़ है अर्थात् सबजीव उसे नहीं जानते—

एकोदेवः सर्वभूतेषु गूढः सर्वंव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा।
कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिशासः साक्षीचेताकेवलो निर्गुणश्च। (श्वे० ६, ११)

अधिष्ठान ब्रह्म ही सत्य है, सनातन है, वह तवल निर्गुण है अर्थात् गुणातीत दृश्य प्रपंचसे अतीत निर्विशेष चिन्मात्र है। इसे—"**वाचारम्भणं विकारोनामधेयं-मृत्तिकेत्येवसत्यम्**" श्रुति द्वारा भी कहा गया है।

ब्रह्मविद्या—"**अहंब्रह्मास्मि**" मैं परिपूर्ण ब्रह्म हूँ ऐसी अखण्ड ब्रह्माकार वृत्तिका नाम ब्रह्मविद्या है, यही विद्या अविद्याका नाश कर मुमुक्षुको मुक्त कर देती है।

जीवात्माकी मुक्ति

जीवात्माकी मुक्तिके सम्बन्धमें एक प्रश्न होता है कि ब्रह्मज्ञान द्वारा समस्त कर्मोंका नाश हो जाता है, ब्रह्मप्राप्तिरूप फल भी प्राप्त हो जाता है, तो फिर देवयान

---

१. मुण्डको० १, १, १, २. श्वेता० ६, १३

३. गीता ४, ३६

आदि मार्गसे ब्रह्मलोकमें जाकर परमात्माको प्राप्त करनेकी बात क्यों कही गई है। श्रीमद्भागवतमें अनेक प्रसंगोंमें यह विधान है, कि अमुक कर्म करनेसे अमुक लोककी प्राप्ति होती है। ध्रुवका विष्णुलोक गमन एवं **"सत्रं स्वर्गायलोकाय सहस्र सममासत"** द्वारा शौनकादिका स्वर्ग प्राप्तिका प्रयास, आदि वर्णन उपलब्ध हैं। वस्तुतः ज्ञानी पुरुषके संकल्पके अनुसार दोनों प्रकारकी स्थिति होनेसे कोई विरोध नहीं है।[१] छान्दोग्योप० में **अथ खलु क्रतुमयः पुरुषः............तथेतः प्रेत्य भवति"** (३, १४, १) में लिखा है कि यह पुरुष निश्चय ही संकलपमय है, इस लोकमें पुरुष जैसे संकलपवाला होता है वैसा ही देहत्यागके पश्चात् यहाँसे परलोकमें जानेपर भी होता है। नारदके मुखसे यह बात भागवतकारने स्पष्ट कहलाई है कि वे एक दासीके पुत्र थे और संकल्पसे ब्रह्माके पुत्र बन गये।[२] राजा भरतको हरिणयोनिमें जाना पड़ा और पुनः दृढ़ संकल्पके कारण वे ब्राह्मणकी योनिमें गये। इस शरीरसे ही आपने राजा रहूगणको भवाटवीका उपदेश दिया।[३] संकल्पसे ही उपासना विशेष द्वारा विभिन्न कामनाओंकी पूर्तिका उल्लेख द्वितीयस्कंधमें प्राप्त होता है जिसमें **"विद्याकामस्तु गिरिशम्"** विद्या कामनावाला शिवको भजे, अन्य कामनावाला अदितिको भजे, लिखा है।[४]

जो ज्ञानी पुरुष किसी लोकमें जानेकी इच्छा न करके यहीं मुक्ति चाहता है, वह यहीं तत्काल ब्रह्म सायुज्यको प्राप्त हो जाता है। जैसे परीक्षितको भूतलपर ही मुक्ति प्राप्त हुई, लोकान्तर गमन नहीं करना पड़ा, परन्तु जो ब्रह्मलोक दर्शनकी इच्छा रखकर साधनमें प्रवृत्त होता है या जिसका वहाँ जानेका संकल्प है, वह देवयान मार्गसे वहां जाकर ही ब्रह्मको प्राप्त होता है। इस प्रकार साधकके संकल्पके अनुसार दोनों प्रकारकी गति मान लेनेसे कोई विरोध नहीं है।[५] श्रीबलदेवविद्याभूषणने इस सूत्रकी व्याख्यामें दो प्रकारकी उपासना कही है। देवयान मार्ग द्वारा ब्रह्मलोकमें जानेके लिये सूक्ष्म शरीर धारण करना पड़ता है, ऐसा भागवतमें वर्णन है। भागवतमें धुन्धकारी, पृथु, विद्याधर सर्प आदिका विमानमें बैठकर स्वर्गादि जानेका वर्णन है। प्रश्नोपनिषद्में लिखा है कि मुख्य प्राणवायु, उदान वायुमें स्थिति होता है, मन इन्द्रियोंसे युक्त जीवात्माको उसके संकल्पके अनुसार ले जाता है।[६] छान्दोग्यमें अर्चि अभिमानी देवतादिको प्राप्त होना कहा है।[७] वृहदारण्यकमें लिखा है कि— जो कामना रहित, निष्काम, पूर्णकाम तथा केवल परमात्माको ही चाहनेवाला

---

१. ब्र० सू० ३, ३, २८ **छन्दत उभयथाविरोधात्** २. भा० १, ५
३. भा० ५, ८, ९ ४. भा० २, ३
५. ब्र० सू० ३, ३, २९ **गतेरर्थवत्वम् उभयथान्यथाहिविरोधः** ६. प्र० उ० ३, १०
७. छा० उ० ५, १०, १, २

है उसके प्राण ऊपरके लाकोंको नहीं जाते । वह ब्रह्म होकर यहीं ब्रह्मको प्राप्त हो जाता है ।[१]

जीवात्माकी मुक्ति

ब्रह्मसूत्र ३, ३, ३० **"उपपन्नस्तल्लक्षणार्थोपलब्धेर्लोकवत्"** में इसकी पुष्टि की है । श्रीमद्‌भागवतमें जहाँ ब्रह्मलोक प्राप्तिका वर्णन है वहाँ यह ज्ञातव्य हैं कि वे देवयान आदि मार्गसे ही जाते हैं । यह नियम नहीं है कि उपासना करनेवाले ही उस मार्गसे जाते हैं ।[२] यदि मार्गका वर्णन नहीं भी हो तो अन्य श्रुति प्रामाणसे ज्ञेय है कि गमन किसी न किसी मार्गसे ही होगा । रात्रि और दक्षिणायन कालमें भी विद्वान्‌की इस ऊर्ध्व गतिमें कोई वाधा नहीं आती । ब्रह्मलोक जानेके दो मार्ग हैं—**"एते सृती ते नृप वेदगीते"** भागवत वाक्य द्वारा सद्योमुक्ति—क्रममुक्तिका समर्थन किया है।[३] वैसे उपनिषदोंमें इसके अर्चि मार्ग,[A] उत्तरायण मार्ग कहीं देवयान मार्ग नाम आते हैं । मार्गमें कहीं नाना देवताओंके लोकोंका वर्णन आता है ।[४] कहीं दिन पक्ष, मास, अयन और संवत्सरका वर्णन आता है । **"ज्योतिर्मयो वायुमुपेत्य काले"** से उसका ज्योतिर्मय रूपमें जानेका निरूपण है ।[५]

"वैश्वानरं याति विहायसा गतः
सुषुम्णया ब्रह्मपथेन शोचिषा" ।
विधूत कल्कोऽथ हरेरुदस्तात्
प्रयाति चक्रं नृप शैशुमारम् ॥

(भा० २, २, २४)

इससे आकाश मार्गमें सुषुम्णा नामक सूर्य रश्मिके द्वारा ब्रह्मलोक गमनका उल्लेख है । ब्रह्म सूत्रमें प्रसिद्ध एक ही मार्गका नाम 'अर्चि' कहा है **"अर्चिरादिना तत्प्रथितेः"**[६] अर्चिसे दिनको शुक्लपक्षको, शुक्लपक्षसे उत्तरायणके छः महीनोंको, और

---

१. बृ० उ० ४, ४, ६ **"योऽकामोनिष्काम-ब्रह्मात्त्येति**

२. ब्र० सू० ३, ३, ३१ **अनियमः**   ३A भा० १, ६, २६ **वांच्छितस्तूत्तरायणः ।**

३. भा० २, २, १९-३२   ४. गरुड़ पुराण सारोद्धार १३ अ

५. भा० २, २, २८   ६. ब्र० सू० ४, ३, १

छः महीनोंसे संवत्सरको, संवत्सरसे सूर्यको उससे चन्द्रमाको और चन्द्रमासे विद्युत्को वहाँसे अमानव पुरुष इन जीवोंको ब्रह्मके पास पहुँचा देता है, यह देवयान मार्ग है।[१] वृहदा० में भी वायुका वर्णन है। वायु उसे मार्ग देता है उस रास्ते वह ऊपर चढ़ता है।[२] एक श्रुतिमें यह भी लिखा है कि वह देवयान मार्गको प्राप्त कर अग्निलोकमें आता है फिर वायुलोक, सूर्यलोक, वरुणलोक, इन्द्रलोक तथा प्रजापतिलोकमें होता हुआ ब्रह्मलोकमें पहुँचता है।[३] अर्चि आदि मार्गमें जो अर्चि, अहः, पक्ष, अयन, संवत्सर वायु और विद्युत बतलाये हैं वे जड़ हैं या चेतन ? उत्तर यह है कि श्रुतिमें उनके अभिमानी देवोंका वर्णन है। मुक्त जीव सब प्रकारके बन्धनोंसे रहित हो जाता है :—

मुक्तः प्रतिज्ञानात् (ब्र० सू० ४, ४, २)

सूत्रसे उसकी सम्पुष्टि होती है। जैमिनिका मत है कि मुक्तात्माका स्वरूप परब्रह्म परमात्माके सदृश दिव्यगुणोंसे सम्पन्न होता है।[५] आचार्य औडुलौमिका विचार है कि 'मुक्तजीव' चेतनमात्र स्वरूपसे अवस्थित हो जाता है।[६] वह अभिन्न रूपसे भी रहता है।[७] मुक्तात्माके भावानुसार तीनों प्रकारसे स्थिति सम्भव है तो भागवतकारका सामीप्यादि वर्णन भी सुसंगत है।

मुक्तजीव—संकल्पमात्रसे भोग भोगता है, उसके लिये शरीर आवश्यक नहीं है।[८] वादरायण ने जैमिनिका मत इसके विरोध में उपस्थित किया है।[९] दोनों प्रकारकी स्थिति प्रमाणित मानी है, शरीरके अभावमें स्वप्नकी भाँति भोगोंका उपयोग होता है। जीवात्माका दीपककी भाँति सभी शरीरोंमें प्रवेश सम्भव है।[१०] छान्दोग्यो० में भी एकका ही अनेक रूप होना लिखा है।[११] इन सूत्रोंसे उपनिषद् वाक्योंसे श्रीमद्भागवतके अनेक रूप सिद्ध हो जाते है। १५ सहस्र १०८ रानियोंके साथ उनका एक साथ रमणसिद्ध हो जाता है, एवं प्रत्येकके १०-१० पुत्र और एक-

---

१. छा० उ० ५, १०, १-२ २. बृह० उ० ५, १०, १ ३. कौ० उ० १, ३

४. ब्र० सू० ४, ३, ४, ५. (क) मु० उ० ३, १, ३ ६. ब्र० सू० ४, ४, ६

७. ब्र० सू० ४, ४, ४, (ख) ब्र० सू० ४, ४, ५

८. ब्र० सू० ४, ४, १० अभावं वादरिराह ह्येवम्

९. ब्र०सू० ४, ४, ११ भावं जैमिनिः १०. ब्र० सू० ४, ४, १५

११. छा० उ० ७, २६, २

एक कन्याके रूपमें प्रगट होना तथा एक साथ ही जनक और श्रुतदेवके घरमें पूजन प्राप्त करना प्रमाणित है। सौभरि ऋषिके द्वारा संकल्पोंकी सिद्धिके लिये काय-परिवर्तन, वामनरूप एवं अनेक कलावतारोंका विवेचन प्रमाणित हो जाता है। मुक्तजीव इन रूप आकृति धारणमें स्वतन्त्र है तो श्रीकृष्णका अनेक रूपोंमें (ग्वाल, रास आदिमें) व्रजमें प्रवेश करना प्रमाणित सिद्ध हो जाता है। श्रीकृष्ण तो मुक्तोंको भी ध्येय हैं। भागवतमें पाँच प्रकारकी मुक्तियोंका उल्लेख स्पष्ट मिलता है—[1] सालोक्य, सार्ष्टि, सामीप्य, सारूप्य, और सायुज्य

सालोक्य—भगवान्‌के नित्य धाममें रहना सालोक्य है,

सार्ष्टि—भगवान्‌के समान ऐश्वर्य प्राप्त कर लेना सार्ष्टि है।

सामीप्य—भगवान्‌के समीप रहना ही सामीप्य है।

सारूप्य—भगवान्‌के समान रूप प्राप्त कर लेना सारूप्य है।

सायुज्य—भगवान्‌के चरणोंमें समा जाना सायुज्य है।

यह मुक्ति भजन द्वारा ही प्राप्त होती है, साथ ही अज्ञान कल्पित कर्तापन-भोक्तापन आदि भावोंके परित्याग द्वारा वास्तविक स्वरूप परमात्मामें स्थिर होना भी मुक्ति है, इसे कैवल्य मुक्ति भी कहा जाता है। भागवतकारने आत्यन्तिक प्रलयको भी मोक्ष कहा है, किन्तु मुक्तिका स्वरूप अविद्या नाश ही है, और इसका भक्तकी दृष्टिमें कोई महत्त्व नहीं है, भक्त केवल भक्ति ही चाहता है मुक्ति नहीं—'**अतो वराक्या मुक्तेर्वा कावार्तेत्यर्थः**। (क्र० स० १०, १४,८)

सुबोधिनीकारने मुक्तिका लक्षण यह दिया :—"**निष्प्रपंचानां स्वरूपलाभो मुक्तिः**"। (सु० २, १०, २) द्वितीयस्कन्धमें सद्योमुक्ति और क्रममुक्तिका भी वर्णन है। श्रीधर स्वामीने द्वितीयाध्यायके इक्कीसवें श्लोक पर्यन्त सद्यो मुक्तिका निरूपण माना है।

वीरराघवने इसका खण्डन किया है—"**सद्योमुक्तिस्तावदप्रमाणिके**........ **सद्योमुक्तेरभावात्**" (भा० वै० चं० २, २, २२)

आचार्यवल्लभने सद्योमुक्तिके उत्तम-मध्यम दो भेद किये हैं—**एवं सद्योमुक्ति द्विधानिरूपिता-उत्तम-मध्यमभेदात्**। इस विवेचनमें श्रीधरस्वामीने ब्रह्मलोक जानेवाले प्राणियोंकी तीन गति लिखी हैं—(भा० २, २, २८)

---

१. भा० २, २, ६ २. "**मुक्तिर्हित्वाऽन्यथा रूपं स्वरूपेण व्यवस्थितिः**।"

१—पुण्योत्कर्षसे गये 'जीव' कल्पान्तरमें पुण्य-तारतम्यसे अधिकारी बनते हैं।

२—हिरण्यगर्भादिकी उपासनाके बलसे जीव ब्रह्माके साथ मुक्त होते हैं।

३—भगवदुपासक स्वेच्छासे ब्रह्माण्डका भेदन कर वैष्णव पदपर जाते हैं। टीकाकारोंने मुक्तिका निरूपण करते हुए भी भक्तिको ही प्राधान्य दिया है।

ज्ञानी पुरुषोंकी 'मुक्ति' अन्तःकरणका अत्यन्त विलय होनेके बाद आत्माका केवल रूपमें स्थितिका नाम है, किन्तु भक्तोंकी मुक्ति इष्टदेवताकी नित्यलीलामें प्रवेश होना है, इसको वल्लभाचार्य भी परम मुक्ति कहते हैं। विलयरूपा मुक्तिको भक्त नहीं चाहते और नित्यलीला प्रवेशरूपा मुक्ति-भक्तिका फल है।[1]

मधुसूदन सरस्वतीने भक्तिको अन्तिम प्राप्य कहा है। वे मुक्ति प्राप्तिको भक्तिका फल नहीं मानते। भक्ति स्वयं फलरूपा है। जीवशक्ति ब्रह्मकी शक्तिसे हीन है, जब मुक्तात्मा ब्रह्मको प्राप्त कर लेता है, इस आवर्तमें नहीं आता है। मुक्तिमें जीव संसारसे छूट जाता है, जीवपूर्ण स्वतन्त्र हो जाता है, वह स्थूल शरीर धारण करे या न करे। सूक्ष्म शरीर उसका सदा ही रहता है, कहीं भी आने जानेकी क्षमता स्वाभाविक रूपसे उसमें आ जाती है, मर्त्यलोकमें आनेपर भी उसे कोई बंधन नहीं है, वह कार्य ब्रह्म या कारण ब्रह्म किसीके निकट रह सकता है। ब्रह्मके अधीन रहता हुआ भी आठों सिद्धियोंका उपयोग कर सकता है। पंचभूतोंके ऊपर वह विजय प्राप्त करता है, भगवान्‌की लीला विभूति और नित्य विभूतिमें वह कहीं भी रहनेका अधिकारी है।

ब्रह्मसूत्रमें नित्य विभूतिका उल्लेख नहीं है, फिर भी यह तो मानना ही पड़ेगा कि कार्य-ब्रह्मपर्यन्त अवस्थित लीला, विभूतिकी है, परब्रह्मका सामीप्य नित्यविभूतिकी बात है।

श्रीमद्भागवतमें नित्यविभूतिका भव्य वर्णन है, नित्य विभूतिमें ही मुक्तिके अनेक भेद प्रभेदके वैविध्यके कारण किये हैं। सालोक्य, सार्ष्टि, सामीप्य, सारूप्य और भेद इसमें प्रसिद्ध हैं, परन्तु किसी भी मुक्तिमें 'जीव' ब्रह्म नहीं बन पाता। जीवात्मा ब्रह्मके समान ऐश्वर्यमात्र प्राप्त करता है। सायज्य नामक मुक्ति सर्वश्रेष्ठ है किन्तु इसमें भी भागवत पार्षदोंको श्रीवत्स एवं कौस्तुभ मणिकी उपमा नहीं होती,

---

१. भक्तिके लक्षण-कल्याण भक्ति अंक पृष्ठ २५५

श्रीश्रीवत्स और कौस्तुभ मणि केवल भगवान्में ही रहते हैं, ब्रह्मसूत्र जीवको संसारसे मुक्ति दिलाकर कार्य ब्रह्मसे परे परब्रह्मके चरणोंमें प्राप्त करानेमें समर्थ हैं।

(क) कर्म-ज्ञान-भक्तिका सामान्य विचार

पाश्चात्य विद्वानोंने यह सिद्ध किया है कि ज्ञान और कर्ममें अन्तर है और यह अन्तर यज्ञ और अध्याय विचारधाराओंके परस्पर दूर होनेके कारण ही है।[१]

मैक्डानलने कहा कि—"उपनिषद् यद्यपि ब्राह्मण ग्रन्थोंके ही भाग हैं तथापि उनके द्वारा एक नये ही धर्मका प्रतिपादन हुआ है। यह नया धर्म वैदिक कर्मकाण्ड या व्यवहारके सर्वथा विरुद्ध है। परन्तु इन दोनों मनीषियोंका कथन भ्रान्त है क्योंकि एक ही ग्रन्थमें पूर्वापर विरोध कैसे सम्भव है।

वैदिक कर्मकाण्डकी फलश्रुति है कि इन कर्मोंके आचरणसे स्वर्गकी प्राप्ति होती है। उपनिषदोंने इसका कहीं खण्डन नहीं किया अपितु उपनिषदोंमें इसका समर्थन है—"**तद्येह वे तदिष्टापूर्ते कृतमित्युपासते ते चान्द्रमसमेव लोकमभिजायते**"। (प्रश्नो १, ९) जो लोग यज्ञ करते हैं, वाणी कूप तडागादिका निर्माण कराते हैं, बगीचा लगवाते हैं, वे चन्द्रलोकको प्राप्त होते हैं, (चन्द्रलोक स्वर्गलोकका ही भेद है)

मुण्डकोप० में लिखा है कि जो अग्निहोत्र कर्म करता है, उसे वे आहुतियाँ सूर्यकी रश्मियोंके साथ मिलकर वहाँ ले जाती हैं, जहाँ देवताओंका एक पति सबसे ऊपर विराजता है।[२] इसमें यह भी लिखा है कि वैदिक कर्मकाण्ड सच्चा अर्थात् अव्यय फलप्रद है। "**तदेतत् सत्यं मन्त्रेषु कर्माणि कवयो यान्यपश्यन्**"[३]

प्रथमतः मन्त्र प्रकट हुए, मन्त्रोंके साथ वैदिक कर्म करनेकी विधियाँ ब्राह्मण ग्रन्थोंमें समाविष्ट हुईं। ब्राह्मण ग्रन्थ वेदोंके ही अंग हैं और अपौरुषेय वेदमन्त्रोंसे ही निकले हैं। महर्षि आपस्तम्बने स्पष्ट कहा है :—'**मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्**'[४]

वैदिक कर्म और औपनिषद ज्ञानके बीच परस्पर विरोध केवल आधुनिक पण्डितोंकी कल्पना है। उपनिषदोंने कितने ही स्थलोंमें वैदिक मन्त्र भागसे प्रमाण

---

१. डा० बिंटरनिज हिस्ट्री आफ लिटरेचर पृ० २३१
२. मुण्डको० १, २, ५
३. मुण्डको० १, २, १
४. यज्ञपरिभाषासूत्र

उद्धृत किये हैं, यह कहकर जैसे "**तदेतद् ऋचाभ्युक्तम्**" अथवा "**तदेष श्लोकः**," अर्थात् ऋक्में ऐसा कहा है, अथवा वेदमन्त्र ऐसा ही है ।

कठोपनिषद्में ब्रह्मज्ञान देनेके पूर्व यमराजने नचिकेताको वैदिक यज्ञोंको करनेकी दीक्षा दी थी, जिनसे स्वर्गकी प्राप्ति होती है । इससे यह स्पष्ट है कि उपनिषद् वैदिक यज्ञों द्वारा स्वर्ग प्राप्तिकी घोषणा करते हैं । यद्यपि उपनिषदोंका लक्ष्य स्वर्ग नहीं है, मोक्ष है, परन्तु वे विधान करते हैं—

"**देव पितृकार्याभ्यां न प्रमदितव्यम्**" (तै० उ० १, ११, २)

देवों और पितरोंके लिये यज्ञ करनेमें कभी प्रमाद न करना मुण्डकोप० में कहा है कि—यह ब्रह्मविद्या उन्हींसे कहे जिन्होंने विधिपूर्वक शिरोव्रत (वैदिक यज्ञ) सम्पन्न किया हो । "**तेषामेवेतां ब्रह्मविद्यां वदेत शिरोव्रतं विधिवद्यैस्तु चीर्णम्**"

(मु० ३, २, १०)

ब्रह्मविद्याका अधिकार वैदिक कर्मका विधिपूर्वक पालन करनेसे ही प्राप्त होता है । इसमें यह प्रश्न उपस्थित होता है कि जो स्वर्ग न चाहकर मोक्ष चाहता है, वह क्या करे, कर्म या ज्ञान ? इसका समाधान बृहदारण्यकने किया है ।वहाँ लिखा है कि ब्राह्मण लोग वेदाध्ययन तथा कामना रहित यज्ञ-दान और तपसे उस (ब्रह्म) को जाननेकी इच्छा करते हैं । इससे अनाशनेन (कामनारहित) पद विशेष अर्थपूर्ण है । इसका अर्थ है कि यज्ञादि कर्म जब आसक्ति सहित किये जाते हैं, तब उनसे स्वर्गलाभ होता है और जब आसक्तिरहित किये जाते हैं तब काम क्रोधादिसे मुक्त होकर कर्ताका चित्त शुद्ध हो जाता है । इस उपनिषद्का सार गीतामें वेदव्यासने दो श्लोकोंमें प्रस्तुत किया है :—यज्ञ, दान, तप, आदि कर्म त्याज्य नहीं हैं, अवश्य करणीय हैं क्योंकि वे मनीषियोंको पावन करते है, इन कर्मोंको भी आसक्ति और फलेच्छाको छोड़करकरना चाहिये, यही मेरा निश्चित उत्तम मत है । "**यज्ञ दान तपः कर्म न त्याज्यं कार्यमेवतत्**"[१]

उपनिषद्के अनाशनेन पदको ही गीताके "**संग त्यक्त्वा फलानि च**" शब्दोंने विशद किया है । "**प्लवा ह्येते अदृढा यज्ञरूपा**" (मु० १, २, ७)

---

१ गीता १८, ५, ६

में जो १८ यज्ञसाधनरूप नौकाओंका अदृढत्व है, वह यज्ञोंकी निष्प्रयोजनता सिद्ध नहीं करता, बल्कि पूर्वोक्त मन्त्रोंमें कि यह कहा है कि यज्ञ करनेसे स्वर्ग मिलता है।

वैदिक कर्मकाण्ड आत्मसंयमकी शक्तिको बढ़ाता है, मनुष्य शरीर भी है और शरीरी जीव भी। वह जबतक अपने शरीरको योग्य नहीं बना लेता, तबतक वह आध्यात्मिक उत्कर्षका अधिकारी नहीं होता, सत्कर्म कराना ही वैदिक कर्मकाण्डका उद्देश्य है। ईशोपनिषद्में कहा है कि मोक्षके लिये—अविद्या और विद्या दोनों ही आवश्यक हैं। श्रीरामानुजाचार्यने विद्यासे ज्ञान अर्थ और अविद्यासे शास्त्रोक्त कर्म ग्रहण किया है।[1] एक साधनाका तात्विक अंग है और दूसरा व्यावहारिक। शास्त्रोक्त कर्मोंके करनेसे चित्त शुद्ध होता है और तब ब्रह्मविद्या श्रवण करनेसे फलवती होती है

ब्रह्मसूत्रोंमें भगवान् वादरायणने इसकी पुष्टि की है—**सर्वापेक्षा च यज्ञादि श्रुतेरश्ववत्**। (ब्र० सू० ३. ४, २६) अर्थात् परम ज्ञानके लिये वेदोक्त कर्मोका आचरण वैसे ही आवश्यक है, जैसे एक स्थानसे दूसरे स्थानको जानेके लिये घो की सवारी आवश्यक है। घो के साथ जीन और लगामकी भी आवश्यकता होती है। उसी प्रकार परम ज्ञानकी प्राप्तिमें केवल वेदानुवचनसे ही काम नहीं चलता बल्कि वेदोक्तकर्म करनेकी भी आवश्यकता पड़ती है।[2]

आचार्यवल्लभने यहाँ लिखा है कि सर्वेषां—**'कर्म-ज्ञान—भक्तीनां पुरुषोत्तम-ज्ञानोत्पत्तौ''**[3] **'यज्ञादि'** शब्दमें आये आदि पदसे शम-दम आदि कर्म तथा भगवद्धर्मरूप शरण—गमनादि कर्मोका संग्रह है।[4] मर्यादामार्गमें तो निःसन्देह कर्मकी अपेक्षा है। श्रीमद्भागवतमें एकादशस्कन्धमें लिखा है कि मुमुक्षु भक्तको कर्मकी अपेक्षा निश्चित है :—**"योगास्त्रयोमयाप्रोक्ता"** इससे कर्म-ज्ञान और भक्ति बतलाकर—

"निर्विण्णानां ज्ञागयोगः कर्मयोगस्तु कामिनाम्"

ननिर्विण्णोनातिसक्तो भक्तियोगोऽस्यसिद्धिदः ॥

---

१. क्रल्याण साधनांक-वैदिक कर्म और ज्ञान पृ० ३३१ २. श्रीभाष्य ३, ४,२६

३. १—अणुभाष्य ३, ४, २५ ४. सप्रकाशाणुभाष्य ३, ४, २५

लिखा है। यहाँ योग शब्दसे पुरुषार्थ प्राप्ति उपाय एवं ज्ञान शब्दसे "**सर्वभूतेषुयेनैकम्**" "**कैवल्यं सात्विकं ज्ञानम्**" इत्यादि वाक्योक्त सात्विक ज्ञान ही कहा गया है। कर्मशब्दसे पूर्व काण्डोक्त अग्निहोत्रादि लक्षण विहित कर्मका ही कथन है।

भक्ति शब्दसे—गोपालतापनीयोक्त, गीतोक्त, एवं भागवतोक्त भगवद्विषयक स्नेह कहा जाता है। अतएव ये तीनों अपने प्रकरणोक्त साधनसहित मार्ग शब्दसे व्यवहृत किये जाते हैं।[1] अतः ज्ञान स्वरूपमें सबकी अपेक्षा सिद्ध होती है। अश्वके दृष्टान्तमें यह तथ्य है कि जैसे गमनागमनके लिये अश्व अपेक्षित नहीं है ऐसे ही कर्मोंकी आवश्यकता भी इष्ट प्राप्तिपर्यन्त है भागवतमें भी कहा है :—

वेदोक्तमेवकुर्वाणो निःसंगोर्ऽपितमीश्वरे
नैष्कर्म्यं लभते सिद्धिं रोचनार्था फलश्रुतिः[2]

शम-दमादि ज्ञानके साधन है, यज्ञके साधन नहीं। कारण यहहैकि यदि यज्ञादिके द्वारा ही विद्याकी सिद्धि हो सके तो शम दमादि निष्प्रयोजन हैं। इसके समाधानमें सूत्रकारने अगले सूत्रमें स्पष्ट किया है :—"**शमदमाद्युपेतः स्यात् तथापि तु तद्विधेस्तदंगतया तेषामवश्यानुष्ठेयत्वात्** । (ब्र० सू० ३, ४, २६)

श्रुतिके विधानसे यज्ञादि बहिरंग साधन एवं शम दमादि अन्तरंग साधन कहकर दोनोंकी आवश्यकता है।

अग्निहोत्रं च दर्शश्च पौर्णमासश्च पूर्ववत्
चातुर्मास्यानि च मुनेराम्नातानि च नैगमैः।
एवं चीर्णेन तपसा मुनिर्धमनि सन्ततः
मां तपोमयमाराध्य ऋषिलोकादुपैतिमाम् ॥
(भा० ११, १८, ८-९)

भक्तिमार्गमें स्वतः ही शम-दमादिके सम्भव हैं अतः आवश्यक नहीं है। **विहितत्वाच्चाश्रमकर्मापि** (३, ४, ३१) इस सूत्रमें स्पष्ट है कि आश्रम कर्म भी परमावश्यक हैं। आचार्यवल्लभने कहा है कि—

"तथा ज्ञानिनामप्यनापदि शिष्टानामेवान्नं भक्षणीयं वितित्वात्
तथाश्रमकर्मापि कर्तव्यमेव नित्यं विहितत्वादित्यर्थः।
(अ० भा० ३, ४, ३१)

---

१. सप्रकाश- अ भा ३, ४, २५ २. भाग० ११, ३, ३६

वेदोक्त वर्णाश्रमधर्म, काम-क्रोधादिको जीतनेकी सामर्थ्य देता है यद्यपि जपमात्रसे ब्रह्म प्राप्ति सम्भव है तथापि वर्णाश्रम धर्म काम-क्रोधादिको जीतनेकी सामर्थ्य देता है यद्यपि जपमात्रसे ब्रह्म प्राप्ति सम्भव है तथापि वर्णाश्रमधर्म ही ब्रह्म प्राप्तिमें अधिक फलप्रद है **अतस्त्वितरज्ज्यायो लिंगाच्च** २, ४, ३९ में स्पष्ट है कि परम ज्ञानकी प्राप्तिके साधनमें बाह्य आचरणके नियमनकी भी उतनी ही आवश्यकता है जितनी अन्तर अभ्यास की। भगवानके श्रवण कीर्तनादि भी साधान्तर होनेके कारण कर्तव्य है। (ब्र० सू० ३, ४, ३३)

आचार्यवल्लभने लिखा है कि—**"भगवद्धर्मा एव सर्वेभ्य उत्तमानि साधनानीत्यर्थः"** (अ० भा० ३, ४,,३४) भगवद्धर्म ही सबसे उत्तम साधन हैं।

श्रीमद्भागवतकी विचारधारामें 'ज्ञान' का अभाव नहीं है। भागवत माहात्म्यमें भक्तिके साथ उसके दो पुत्रोंका भी उल्लेख है—ज्ञान और वैराग्य। वे अत्यन्त वृद्ध हो गये थे, उनके बोध करानेके लिये नारदने अनेक प्रयत्न किये किन्तु उन्हें युवा नहीं बनाया जा सका। तब नारद सनत्कुमारकी शरणमें गये। उनके उपदेशसे श्रीमद्भागवतका सप्ताह यज्ञ प्रारम्भ हुआ फलतः ज्ञान-वैराग्य प्रबुद्ध होकर उस सत्रमें सम्मिलित भी हुए थे। इस कथानकसे यह तो स्पष्ट है कि भागवत वह शास्त्र है जिसे सुनकर ज्ञानका वृद्धत्व भी दूर हुआ अतः यह ज्ञानप्रधान ग्रन्थ है। इसके उपक्रम और उपसंहार भी ज्ञानमें है—**"वदन्ति तत्तत्त्वविदस्तत्त्वंयज्ज्ञानमद्वयम्"**

(भागवत १, २, ११)

तत्त्ववेत्ता लोग अद्वैतज्ञानको ही तत्त्व कहते हैं, यह अद्वितीय तत्त्व ही ब्रह्म परमात्मा या भगवान् शब्दसे कहा जाता है।

उपसंहार—

सर्व वेदान्त सारं यद्ब्रह्मात्मैकत्वलक्षणम्
बस्त्वद्वितीयं तन्निष्ठं कैवल्यैक प्रयोजनम्।

(भागवत १२, १३, १२)

भक्ति और ज्ञान भागवतमें ओतप्रोत हैं, तथापि ज्ञानको माहात्म्यमें ही भक्तिका पुत्र कह दिया है, वस्तुतः भागवत नाम ही, भक्तवृन्दोंसे सम्बन्धित है अतः ज्ञान-वैराग्यके अनेक वृत्तान्त होनेपर भी भक्तिका पद सर्वोत्तम है, आदि और अन्त भक्तिमें ही हैं अतः भागवत पुराण भक्तिका सर्वोच्च ग्रन्थ है। भक्ति और ज्ञान, श्रेय प्राप्तिके दो प्रमुख मार्ग हैं, ये भगवत्प्राप्तिके साधन ही नहीं

अपितु भगवत्रूप ही हैं। भागवतमें ज्ञानयोग-कर्मयोग और भक्तियोगका वर्णन है :—

योगास्त्रयो मया प्रोक्ता नृणां श्रेयोविधित्सया।
ज्ञानं कर्म च भक्तिश्च नोपायोऽन्योऽस्ति कुत्रचित्॥

(श्रीमद्भागवत ११, २०, ६)

भागवतके ज्ञानियोंकी कथा तो प्रसिद्ध है ही, किन्तु गोपियाँ भी ज्ञान शून्य नहीं थीं, अन्यथा वे गोपिका गीतमें कृष्णको अखिलदेहधारियोंका अन्तरात्मा न कहतीं।

न खलु गोपिकानन्दनो भवानखिलदेहिनामन्तरात्म दृक्॥ (भा० १०, ३१, ४)

"अहं ब्रह्म परंधाम ब्रह्माहं परमं पदम्" (भा० १२, ६, ११)

श्लोकमें श्रीधर स्वामी प्रभृति टीकाकारोंने ज्ञानका महत्व स्वीकार किया है।[1] मुक्तिके विषयमें श्रीमद्भागवत समस्त उपनिषद् रूपवेदान्तका सार है। जिसमें ब्रह्म और आत्माके एकत्व (अभेद) रूप अद्वितीय वस्तुका प्रतिपादन है। इस अद्वैत ज्ञानसे कैवल्य मोक्षरूप प्रयोजनको सिद्धि होती है।

पुरंजनोपाख्यानमें जीवके अभेद ज्ञानका निरूपण है।[2] आत्मा ही सब कुछ है।[3] समग्र जगत् स्वप्नकी भाँति असत् स्वरूप है, चेतना रहित एवं महान् दुःख ही दुःखरूप है।[4] यह जगत् अपनी उत्पत्तिसे प्रथम नहीं था और प्रलयके पश्चात् भी न रहेगा, एक रस अद्वितीय परब्रह्म रूप आप में है।[5]

डा० सम्पूर्णानन्दने लिखा है कि वैदिक वाङ्मयमें भक्ति नामकी कोई वस्तु नहीं है।[6] यह कथन अयुक्त है। भक्ति और भाग दोनों शब्द एक ही धातुसे सिद्ध होते हैं। यद्यपि दोनों शब्दोंमें प्रत्यय भिन्न-भिन्न है तथापि उन दोनों प्रत्ययोंका अर्थ भी व्याकरणमें एक ही माना गया है। इससे यह सिद्ध होता है कि भक्ति और भाग शब्द समानार्थक हैं। वैदिक वाङ्मयमें भक्ति शब्दका प्रयोग भी भाग अर्थमें उपलब्ध होता है। (ऋग्वेदसंहिता ८, २७, ११) में '**भक्तये**' यह चतुर्थी विभक्तिका

---

१. भावार्थदीपिका १२, ६, ११। २. भागवत ४, २८, ६२।
३. भा० २, ७, ३८। ४. भागवत १०, १४, २२।
५. भागवत १०, ८७, ३७। ६. कल्याण-भक्तिअंक पृ० १०६।

रूप आया है। भाष्यकारोंने 'सम्भजनाय=लाभाय=अर्थात् विभागके लिये आया है।

ऐतरेयब्राह्मणकी तृतीय पञ्चिकाके २० वें खण्डमें और सप्तम पञ्चिकाके चतुर्थ खण्डमें दैवत ब्राह्मणके तृतीय अध्यायकी २२ वीं कण्डिकामें 'भक्ति' शब्द मिला है। भाष्यकारोंने यहाँ भी भाग अर्थ किया है। वेदार्थ परिचायक ग्रन्थ निरुक्त हैं, यह भी वैदिक वाङ्मयमें गिना जाता है, उसमें भी भक्ति शब्दका व्यवहार हुआ है :—**"तिस्र एव देवता इत्युक्तं पुरस्तात् तासां भक्ति साहचर्यं व्याख्यास्यामः"** तीनों लोकोंके तीन ही मुख्य देवता हैं, अग्नि, वायु और सूर्य। अब उनकी भक्ति और साहचर्यकी व्याख्या करते हैं। भक्तिका अर्थ भाग है। **"अथैतानि अग्नि भक्तीनि, अयं लोकः"** ये सब अग्निकी भक्ति हैं अर्थात् अग्नि देवताके भागमें आये हुए हैं। भक्ति शब्द उस अर्थमें नहीं मिलता जिस अर्थमें आजकल प्रसिद्ध हैं। **"यस्यदेवे परा भक्ति"** (श्वेता० उप० ६, २३) इसमें भक्ति शब्दका श्रद्धा या प्रेम ही अर्थ है। वैदिक परम्परानुसार यह होता है कि 'भाग करो" अर्थात् अपना उनके अधिकारमें होना या उनका अंश होना समझो। भाग रूप अर्थका बतानेवाला भक्ति शब्द भाग बननेके कारणरूप प्रेममें चला गया और भक्ति शब्दका अर्थ भगवान्का प्रेम हो ही गया। उस प्रेमको प्राप्त करनेके लिये उसके साधन, श्रवण, कीर्तन आदिकी आवश्यकता है। इसलिये प्रेमके साधनोंमें भी भक्ति शब्द चला गया और यों भक्ति दो प्रकार की हो गयी—साधन भक्ति और फल रूपा। प्रेम और प्रेमके साधन श्रवणादि अर्थोंमें 'भक्ति' शब्दके दर्शन हमें प्रधानरूपसे सर्वप्रथम भगवद्गीतामें होते हैं। इसी अर्थको लेकर इस शास्त्रके आचार्योंने भक्तिका लक्षण बनाया और पुराणादि द्वारा इस अर्थके अत्यन्त प्रसिद्ध हो जानेके कारण ही व्याकरणके आचार्य पाणिनिने **'भज सेवायाम्'** पढ़कर **'भज'** धातुका अर्थ सेवा ही स्थिर किया, उस सेवासे होनेवाला प्रेम भी भक्ति शब्दका अर्थ प्रधान रूपसे बना रहा।[1]

भक्तिके निरूपण करनेवाले दो सूत्र प्रसिद्ध हैं—१. शाण्डिल्य २. नारद दोनोंमें भक्तिका एक ही लक्षण है। **"सापरानुरक्तिरीश्वरे"** बल्लभाचार्यने उपाय और फल सहित उस लक्षणको और भी स्पष्ट कर दिया :—

":माहात्म्यज्ञानपूर्वस्तु सुदृढः सर्वतोऽधिकः।
स्नेहो भक्तिरिति प्रोक्तस्तया मुक्तिर्न चान्यथा"॥

---

१. कल्याण भक्ति अंक पृ० २५५ म० म० गिरिधर शर्मा

अर्थात् भगवान्का माहात्म्य जानकर उनमें अधिक दृढ़ स्नेह होना ही भक्ति है और उसीसे मुक्ति होती है ।

४ (ख) साधन भक्ति एवं साध्य भक्ति—

शंकराचार्यकी मान्यता है कि केवल ब्रह्मज्ञान द्वारा ही मोक्ष सम्भव है । ब्रह्मज्ञानके लिये यह भी जानना आवश्यक है कि कौन वस्तु नित्य है, कौन अनित्य । इस लोकके एवं परलोकके विषय भोगोंसे वैराग्य करना तथा बाह्येन्द्रिय एवं आभ्यन्तर इन्द्रियोंपर संयम करना, विषयानुभवसे उपराम होना शीत ग्रीष्मादिका सहन करना, समाधि अर्थात् आत्मतत्त्वका मनसे संयोग करना, गुरु और वेदान्त कार्योंमें विश्वास करना, मोक्षकी इच्छा करना । इस ज्ञानकेलिये श्रवण-मन-निदिध्यासन भी आवश्यक हैं । उपासनासे चित्तशुद्धि होती है, यह सगुण और निर्गुण दो भेद वाली है ।

श्रीरामानुजाचार्यके अनुसार—भक्ति ही निरतिशय प्रिय और एकमात्र प्रयोजकीय है । भक्ति युक्त आत्मा द्वारा ही भगवान् वरणीय हैं, एवं लभ्य हैं । वर्णाश्रम धर्म अबलम्बनपूर्वक परम पुरुषकी उपासना ही भक्तियोग कहा गया है । उपासनाके ५ भेद हैं १. अभिगमन—अर्थात् देवताके स्थान, मार्ग आदिका सम्मार्जन करना । लेपनादि करना ।

२. उपादान-गन्ध-पुष्प आदि पूजा साधन सम्पादन करना ।

३. इज्या-विष्णु पूजा करना ।

४. स्वाध्याय—अर्थानुसन्धानपूर्वक मन्त्रजप करना । वैष्णवसूक्त, स्तोत्रादि पाठ करना, नामसंकीर्तन करना तत्व प्रतिपादक शास्त्रका पुनः पुनः अनुशीलन करना ।

५. भगवदनुसन्धान ।

श्रीमध्वाचार्यके अनुसार भक्तिके ३ प्रकार हैं—

१. साधारणी भक्ति　　२. परमा भक्ति　　३. स्वरूप भक्ति ।

१—साधारणी भक्ति—सद्गुरुके निकट शास्त्र-श्रवणपूर्वक जो भक्ति उदित होती है, वह साधारणी भक्ति है ।

२—परमा भक्ति—उपर्युक्त ज्ञानका भगवद्‌दर्शनके पश्चात् जो भक्तिका उदय होता है, वह परमा भक्ति है। कर्म और अभिलाषा आदिसे रहित इसे 'अमला भक्ति' कहा गया है। इस परमा भक्तिके द्वारा ही भगवान्‌का परम प्रसाद लाभ होता है।

३—स्वरूप भक्ति—मोक्षके परे जो जीव स्वरूपमें नित्य भक्ति है, वह स्वरूप भक्ति है। भक्ति द्वारा ही मुक्ति लाभ होता है।

श्रीविष्णुस्वामीके अनुसार—जो सत्स्वरूप, चित्स्वरूप, नित्यस्वरूप है एवं नित्य अचिन्त्यपूर्ण आनन्द ही जिनका एकमात्र विग्रह है, वही परमदेवता है, सद्रूप भजन ही भक्ति है। विष्णुस्वामीने उपास्य, उपासना और उपासकमें नित्यता स्वीकार की है।

"मुक्ता अपि लीलया विग्रहं कृत्वा भगवन्तं भजन्ते"

श्रीनिम्बार्कके अनुसार—श्रद्धा और निष्ठारूप भगवान्‌की भक्तिका आश्रय करणीय है। अनन्यभावसे एकमात्र श्रीकृष्णकी उपासना ही करनी चाहिये क्योंकि वे ब्रह्मा-शिव आदि द्वारा भी वन्दित हैं। उपासना अथवा भक्तिके दो भेद हैं :—

साधनारूपी भक्ति। प्रेमलक्षण उत्तमा भक्ति, श्रवण कीर्तन आदि नवविद्या भक्ति द्वारा प्रेमलक्षण उत्तमा भक्तिका उदय होता है।

श्रीवल्लभाचार्यके अनुसार भक्ति ही श्रेष्ठ साधन है। यह भक्ति साधनरूपा और साध्यरूपा है। साध्यरूपा भक्ति ही प्रेम लक्षणा है। भक्तिमार्गमें भगवान्‌की कृपा ही मुख्य है। भक्तिपथ दो प्रकारकी है, मर्यादा और पुष्टि शास्त्रोक्त वैधी भक्ति है, यही मर्यादा मार्ग है। श्रीकृष्ण और भक्तके अनुग्रह मात्र द्वारा ही जो भक्ति लाभ होता है, वही पुष्टि मार्ग है। यही सर्वश्रेष्ठा भक्ति है।

साधन भक्तिके ६४ भेद

सांसारिक प्रपंच छुड़ानेके अनेक साधन शास्त्रोंमें वर्णित हैं तथापि भक्तिको समस्त साधनोंका मुकुटमणि स्वयं भगवान्‌ने ही कह दिया है :—

संसृतिनि:सृतिहेतवउक्ताः शास्त्रेषु बहुविधायद्यपि
मौलिस्तथापि तेषांस्वयमुक्ता भगवता भक्तिः।[1]

---

१. साधनांक-कल्याण-ले० श्रीदामोदरशास्त्री पृ ७०

भक्तिके दो भेद प्रमुख माने गये हैं साधन और साध्य। इसमें साधन भक्तिके ६४ अंग हैं जिनकी तालिका इस प्रकार है :—

१—गुरुचरणोंका आश्रय २—श्रीकृष्ण मन्त्रदीक्षा ३—गुरु चरण सेवा ४—भक्तों द्वारा परिगृहीतमार्गावलम्बन ५—भागवत धर्म सम्बन्धमें प्रश्न करना। ६—भगवान्के निमित्त भोगत्याग। ७—मथुरा-वृन्दावन आदि भगवद्धामोंमें निवास करना। ८—आवश्यक वस्तु मात्र संग्रह करना। ९—एकादशी तिथिका सम्मान। १०—पीपल आदि वृक्ष सम्मान। ११—कृष्णविमुखोंसे अभाषण। १२—अनधिकारियोंको शिष्य न बनाना। १३—भगवद्भक्ति विरोधी ग्रन्थोंका न देखना। १४—भगवद्भक्त विरोधी कार्योंमें हाथ न डालना। १५—उचित व्यवहारमें अकर्मण्य रहना १६—शोकादि विकारोंसे अभिभूत न होना। १७—अन्य देवोंकी अवज्ञा न करना। १८—किसी जीवको उद्वेग न पहुँचाना। १९—सेवापराध तथा नामापराध से बचना। २०—भगवान् तथा भक्तोंकी निन्दा न सुनना। २१—तिलक-मुद्रा आदि वैष्णव चिन्होंको धारण करना। २२—भगवन्नामाक्षरोंको शरीरपर धारण करना। २३—भववान्को निवेदित की हुई माला धारण करना। २४—विग्रहके सामने प्रेमावेशमें नृत्य करना २५—विग्रहको दण्डवत् प्रणाम करना। २६—विग्रहके दर्शन होनेपर अभ्युत्थान देना। २७—भगवान्की सवारीके पीछे चलना। २८—मन्दिरोंमें जाना। २९—मन्दिर प्रदक्षिणा करना। ३०—श्रीविग्रहका पूजन परिचर्या करना (झाडू लगाना, पंखा झलना, चंदन लगाना आदि) ३१—विग्रहके सामने गान करना। ३२—भगवान्के नामगुण लीला आदिका कीर्तन करना। ३३—इष्टमन्त्रका जाप करना। ३४—भगवान्से प्रार्थना करना। ३५—स्तोत्रोंका पाठ करना। ३६—निवेदित प्रसादका ग्रहण करना। ३७—भगवान्के चरणामृतका पान करना। ३८—भगवान्को चढी धूपगन्ध ग्रहण करना। ३९—पवित्रतासे भगवान्के विग्रहका स्पर्श करना। ४०—श्रीविग्रहका दर्शन करना। ४१—आरतीका दर्शन करना। ४२—उनके नाम गुण, लीला आदिका श्रवण करना। ४३—उनकी कृपाकी वाट जोहते रहना। ४४—भगवान्के श्रीविग्रहकी पूजा करना। ४५—उनका नित्य निरन्तर स्मरण करना। ४६—उनके रूपका ध्यान करना। ४७—अपने द्वारा किये हुए शुभकर्मोंको भगवान्को अर्पित करना। ४८—प्रभुमें दृढ़ विश्वास करना ४९—अपने आत्मा तथा उनसे सम्बन्ध रखनेवाले व्यक्तियों एवं वस्तुओंको भगवान् में अर्पण

करना । ५०—प्रिय वस्तुको भगवान्के चरणोंमें निवेदन करना । ५१—भगवान्की शरणमें जाना । ५२—भगवान्के लिए सारी चेष्टा करना । ५३—तुलसीके वृक्षकी सेवा करना । ५४—भक्ति शास्त्रोंकी चर्चा करना । ५५—भगवद्धाममें प्रीति करना । ५६—वैष्णवोंकी सेवा करना । ५७—भगवान्के उत्सवोंको मनाना । ५८—कार्तिक मासको विशेष आदर देना । ५९—जन्माष्टमी आदि जयन्ती मनाना । ६०—विग्रह सेवामें प्रीति करना । ६१—भागवत शास्त्रका मनन करना । ६२—भक्तोंका संग करना । ६३—नाम कीर्तनका अभ्यास करना । ६४—मथुरा मण्डलका सेवन करना ।

साध्य तत्त्व

श्रीशंकराचार्यके अनुसार ब्रह्मज्ञान ही पुरुषार्थ है । **'तत् त्वम् असि'** प्रभृतिवेद वाक्योंका श्रवण-मनन आदिका ब्रह्मज्ञानका उदय हो तथा स्वरूप क्रमकी उपलब्धिमें **'अहं ब्रह्मास्मि'** इस भावसे ब्रह्मभावसे प्रतिष्ठित होना होता है । सगुण ब्रह्मकी उपासनामें ईश्वरका सायुज्य मिलता है । निर्गुण ब्रह्मवेत्ताको पुनर्जन्म नहीं होता ।

श्रीरामानुजाचार्यके अनुसार—परम व्योमाधिपति लक्ष्मीनाथ श्रीनारायण ही स्वयं भगवान् हैं । साधनावस्थामें कर्मानुग्रहीत भक्तियोग द्वारा भगवान्की तुष्टि करते हुए साध्यावस्थाका लाभ होता है । लक्ष्मीनारायण ही सर्वस्व हैं, ज्ञान सहित ऐकान्तिक दास्यरसात्मक भावसे भगवान्के साक्षात् सेवाका लाभ होता है ।

मध्वाचार्यका कथन है कि—जीवके स्वरूपानुगत धर्मकी अभिव्यक्ति ही मुक्ति है । निर्मला, शुद्धा या अहैतुकी भक्ति तथा जीवका स्वरूपानुगम धर्म ही अभिव्यक्तिका साधन है । विष्णुभगवान्के पादपद्मका लाभ ही जीवकी मुक्ति है । जीवमुक्तिका कारण विष्णुका शुद्ध भजन, नैज सुखानुभूति ही प्रयोजन है ।

श्रीविष्णुस्वामिका मत है कि—मुक्त जीवगण भगवान्की इच्छासे नित्य विग्रह धारण करके तथा नित्य सच्चिदानन्द तनु सविशेष श्रीभगवान्की सेवा करके उन्हींसे परमानन्द लाभ करते हैं ।

आचार्य निम्बादित्यके अनुसार—ब्रह्मके साक्षात्कारका एकमात्र उपाय भक्तिरस है । भक्ति रसके द्वारा जीवका स्वरूप और धर्मका पूर्ण विकास होता है ।

श्रीवल्लभाचार्यके अनुसार—श्रीपुरुषोत्तमकी प्राप्ति ही प्रयोजन है । मर्यादा भक्तिका फल सायुज्यरूप ब्रह्मभाव है । पुष्टि भक्तिका फल है भजनानन्द या प्रेमानन्द लाभ ।

कृष्णे रति गाड हैलेः प्रेम' अभिधान। कृष्ण भक्ति रसेर सेइ स्थायी भाव नाम।
साधनेर फल 'प्रेम' मूल प्रयोजन। सेई प्रेमे पाय जीव आमार सेवन।।
(चै० च० म० २३, २५)

श्रीबलदेव विद्याभूषण-ऐकान्तिक भक्ति ही मोक्षका हेतु है। ऐकान्तिकी कृष्ण सेवा प्राप्ति ही भक्तिका एकमात्र फल है।

भगवान्की उपलब्धिका सुगम उपाय भागवतकारने 'भक्ति' को बतलाया है। महर्षि वेदव्यासने भले ही विपुलकाय महाभारतका निर्माण किया था किन्तु भागवत रचना द्वारा ही उन्हें शान्ति प्राप्त हुई थी। भागवतके श्रवणसे भक्तिके निष्प्राण ज्ञान-वैराग्य पुत्रोंमें प्राण सञ्चार हुआ। अतः भगवान्की प्राप्तिका एकमात्र उपाय भक्ति है। प्रह्लादजी ने स्पष्ट कहा है—भगवान्, चरित्र, बहुज्ञता, दान, तप, आदि से प्रसन्न नहीं होते वे निर्मल भक्तिसे प्रसन्न होते हैं। भक्तिके विना अन्य साधन उपहासमात्र हैं। भागवतके अनुसार भक्ति ही मुक्ति प्राप्तिमें प्रधान साधन है। ज्ञानकर्म भी भक्तिके उदय होनेसे ही सार्थक होते हैं अतः परस्पर साधक हैं, साक्षाद्रूपेण नहीं। कर्मका उपयोग वैराग्य उत्पन्न करनेमें है। जबतक वैराग्यकी उत्पत्ति न हो जाय, तबतक वर्णाश्रमनिहित आचारोंका निष्पादन नितान्त आवश्यक है। कर्मफलोंको भी भगवान्को समर्पण कर देना ही उनके विषदंतको तोड़ना है। श्रेयकी मूल स्रोत रूपिणी भक्तिको छोड़कर केवल बोधकी प्राप्तिके लिये उद्योगशील मानवोंका प्रयत्न उसी प्रकार निष्फल तथा क्लेशोत्पादक है, जिस प्रकार भूसा कूटनेवालोंका यत्न। अतः भक्तिकी उपादेयता मुक्ति विषयमें सर्वश्रेष्ठ है।

प्रेमका रहस्यमय वर्णन व्यासजीने रासपंचाध्यायीमें किया है।

४ (ग) भक्तिके अंगोंका विवेचन

भक्तिके वैचित्र्यके साथ श्रीहरिके प्रकाशका भी वैचित्र्य है, प्रकाश वैचित्र्य न हो तो भक्तिका वैचित्र्य उत्पन्न नहीं होता। उपनिषदोंमें आता है कि वह एक है, बहुरूपमें प्रकाशित होता है। बीजादि प्रकाशक द्रव्यके न्यायकी भाँति ब्रह्मका एकस्वरूप है, किन्तु स्थान (धाम) विशेषके कारण ऐश्वर्य-माधुर्य प्रकाशके वशमें शान्त-दास्य-सख्य-वात्सल्य और मधुर आदि भावका तारतम्य भी देखा जाता है।

परव्योमकी ऐश्वर्य लीला एवं गोलोककी माधुर्य लीला है। श्रीमद्भागवतमें इस रूपमें कहा है—

त्वं भक्तियोग परिभावित हृत्सरोज
आस्से श्रुतेक्षितपथो ननु नाथ पुंसाम्।
यद् यद् धिया त उरुगाय विभावयन्ति
तत्तद्वपुः प्रणयसे सदनुग्रहाय ।। (भा० ३, ९, ११)

भक्तगण जिस-जिस रूपमें उनका ध्यान करते हैं, भावना करते हैं, भगवान् उनपर अनुग्रह करनेके लिये वैसा शरीर बना लेते हैं।

नर्काहिचि न्मत्पराः शान्त रूपे
नक्ष्यन्ति नो मेऽनिमिषो लेढि हेतिः।
येषामहं प्रिय आत्मा सुतश्च
सखा गुरुः सुहृदो देवमिष्टम् ।। (भा० ३, २५, ३८)

जिनका एकमात्रमें ही प्रिय, आत्मा, पुत्र, मित्र, गुरुसुहृद् इष्टदेव हूँ, ऐसे भक्त शान्त वैकुण्ठमें पहुँचकर, दिव्य भोगोंसे रहित नहीं होते, न उन्हें काल चक्र ग्रसता है। **"गोप्यस्तपः किमचरन्"** (भा०, १०, ४४, १३) गोपियोंने कौनसी तपस्या की थी, जो नेत्रोंके कोनोंसे नित्य निरन्तर इनकी रूप माधुरीका पान करती रहती हैं। इनका 'रूप' लावण्यका सार है। संसारमें उनसे बढ़कर रूप और किसीका नहीं है, वह भी सजानेसे नहीं, स्वतः सिद्ध है।

भक्तके भेदसे रति भेद ५ प्रकार का है, और ५ प्रकारकी रतिभेदसे कृष्ण-भक्तिरसके भी पाँच भेद हैं "शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य, मधुर रस नाम। **कृष्णभक्तिरस मध्ये ए पंच प्रधान।**" (चै० च० म० १९, १८३)

१—**शान्त भक्त**—नवयोगीश्वर, सनक सनन्दन आदि।

२—**दास्य भक्त**—अनेक सेवक।

३—**सख्य भक्त**—श्रीदामा, अर्जुन, भीम।

४—**वात्सल्य**—यशोदानन्द।

५—**मधुररस**—व्रजकी गोपिका, महिषीगण, लक्ष्मी आदि।

यह ब्रह्मसूत्र के :—**"स्थान विशेषात् प्रकाशादिवत्"** (३, २, ३५) सूत्रसे सिद्ध होता है। प्रकाश तारतम्यका स्थानतारतम्य, इस सूत्रसे अगले सूत्र **"उपपत्तेश्च"** (३, २, ३६) से भी सिद्ध होता है।

भक्तोंकी इच्छासे रूप धारण करनेका उल्लेख **"भक्तेच्छोपात्तरूपाय परमात्मन् नमोऽस्तते"** (भा० १०, ५९, २५) तथा **"ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्"** (गी० ४, ११) वाक्यसे प्रमाणित है।

भक्तियोगका लक्षण भागवतकारने इस प्रकार दिया है—

मद्गुण श्रुति मात्रेण मयि सर्व गुहाशये
मनोगतिरविच्छन्ना यथा गंगाम्भसोऽम्बुधौ।
लक्षणं भक्तियोगस्य निर्गुणस्य ह्युदाहृतम्
अहैतुक्य व्यवहिता या भक्तिः पुरुषोत्तमे।

(भा० ३, २९, ११-१२)

मनकी अविच्छिन्न गतिका भगवान्‌में भगवद्गुण श्रवण मात्रसे लग जाना ही उत्तम भक्ति योग है। ब्रह्मसूत्रोंके मध्य **"साम्पराये तर्तव्याभात्तथा ह्यन्ये"** (३, ३, २८) में इस प्रेम भक्तिका उल्लेख है। श्रीबलदेव विद्याभूषणने अपने गोविन्द भाष्यमें इसकी व्युत्पति दी है—**"सम्परायो भगवान्, संपरायन्ति तत्वान्यस्मिन्निति तद्विषयकः प्रेमा साम्परायः कथ्यते।**[1]

जो भगवान्‌में प्रेम करता है, उसका बन्धन कभी नहीं होता—

तस्मान्मद्भक्तियुक्तस्य योगिनो वै मदात्मनः
न ज्ञानं न च वैराग्यं प्रायः श्रेयो भवेदिह॥[2]

मुक्तिसे भक्ति श्रेष्ठ है—**"सालोक्यादि चतुष्टयम्"** (भा० ९, ५, ५७) में भगवान्‌ने स्पष्ट कहा है, कि मेरे भक्त ४ प्रकारकी मुक्तिकी कांक्षा भी नहीं करते।

४ प्रकारकी मुक्तिका स्वरूप यह है—

१—**सालोक्य**—भगवान्‌के नित्य धाममें रहना ही सालोक्य है।

२—**सामीप्य**—भगवान्‌के समीप रहना ही सामीप्य है।

३—**सायुज्य**—भगवान्‌के चरणोंमें समा जाना ही सायुज्य है।

४—**सार्ष्टि**—भगवान्‌के समान ऐश्वर्य प्राप्त कर लेना ही सार्ष्टि है।

सारूप्य—'भगवान्‌के समान रूप प्राप्त कर लेना' इसका वर्णन भी प्राप्त होता है। कई स्थलोंपर कैवल्य मुक्तिका भी निरूपण है, कर्तापनका परित्याग कर वास्तविक स्वरूप परमात्मामें स्थिर होना। भागवतकारने आत्यन्तिक प्रलयको भी मोक्ष कहा है, अविद्या नाश भी प्रलय है। किन्तु भक्त केवल भक्ति ही चाहता है, मुक्ति नहीं।

---

१. गो० भाष्य ३, ३, २८।   २. भा० ११, २०, ३१।

मुक्ति तो वराकी (विचारी) है—"**अत्र सर्गो विसर्गश्चेत्यादौ नवम पदार्थ-रूपया मुक्तेरपि पदे आश्रये दशमपदार्थ रूपे त्वयि स दायभमाक् भवति..........अतो वराक्या मुक्तेर्वा का वार्तेत्यर्थः** ।।[१] ज्ञानी पुरुषोंकी मुक्ति, अन्तःकरणका अत्यन्तविलय होनेके बाद आत्माकी केवल रूपमें स्थितिका नाम है। भक्तोंकी मुक्ति इष्टदेवताकी नित्यलीलामें प्रवेश होना है, श्रीवल्लभाचार्यने इसे परम मुक्ति कहा है। भक्त विलयरूपा मुक्तिको नहीं चाहते, और नित्य लीला प्रवेश रूप मुक्ति भक्तिका फल है। मधुसूदन सरस्वतीने भक्तिको अन्तिम प्राप्य कहा है, मुक्ति प्राप्ति भक्तिका फल नहीं अपितु भक्ति स्वयं फल रूपा है। कैवल्य मुक्तिके लिये भागवतके एक श्लोकको उद्धृत किया जाता है—

घटे भिन्ने यथाऽकाश आकाशः स्यात् यथापुरा ।
एवं देहे मृते जीवो ब्रह्म सम्पद्यते पुनः ।।

(भा० १२, ५, ५)

किन्तु ब्रह्ममें लीन हो जानेपर परीक्षितको न तो तक्षकके दन्तप्रवेशकी पीड़ा होती न संसार ही ब्रह्मसे भिन्न दिखलाई देता। "**अहं ब्रह्म परं धाम ब्रह्माहं परमं पदम्**" इसमें षष्ठी तत्पुरुष समास—"**ब्रह्मणः अहं**" रूपमें व्याख्यान किया है।[२] किसीने परमात्म सदृश होना लिखा है।[३] किसीने तादात्म्य प्राप्ति लिखी है।[४]

भक्तोंको कहींसे भय नहीं होता—"**नारायणपराः सर्वे न कुतश्चन बिभ्यति**"। विश्वनाथ चक्रवर्तीका कथन है कि भक्तोंको निर्वाण मोक्ष तो असह्य है :— "**भक्तानां निर्वाण मोक्षः खल्वसह्य एव**" (सा० द० १२, ६, ५) परीक्षितने मुक्तिकी याञ्चा नहीं की थी, भक्ति की थी :—"**पुनश्च भूयात् भगवत्यनन्ते रतिः प्रसंगश्च तदाश्रयेषु**" कृष्ण प्राप्ति ही मुक्तिका फल है, अतः युक्तिसे भक्तिका श्रेष्ठत्व सिद्ध है।

श्रीमद्भागवत एक महापुराण है, तथा इसका प्रधान उद्देश्य नैष्कर्म्य भक्तिका प्रतिपादन है। भागवतके आदि मध्य और अन्तमें भक्तिके वैशिष्ट्यका ही प्रतिपादन हुआ है। ग्रन्थका प्रारम्भ भक्तिकी परिभाषासे हुआ है, और भक्तिसे ही ग्रन्थका उपसंहार हुआ है। मध्यमें भक्तिके परिपाकके लिये अनेक उपाख्यानोंका निरूपण किया गया है। इस ग्रन्थकी सबसे बड़ी विचित्रता यह है, कि इसमें ज्ञान-वैराग्य

---

१. क्रमसन्द १०, १४, ८।
२. भा० च० च० १२, ५, ११।
३. क्र० स० १२. ५. ७।
४. सिद्धान्त प्रदीप १२, ५, ११।

और भक्तिसे युक्त नैष्कर्म्यका आविष्कार किया गया है, तथा भक्ति सहित ज्ञानका निरूपण हुआ है।

भक्तिकी पराकाष्ठा है ज्ञान, और ज्ञानकी पराकाष्ठा है भक्ति, जहाँ भक्तिको ज्ञानसे श्रेष्ठ बताया गया है, वहाँ भक्तिका अर्थ है साधन भक्ति, और जहाँ ज्ञानको भक्तिसे श्रेष्ठ बताया गया है, वहाँ ज्ञानका अर्थ है परोक्ष ज्ञान। पराभक्ति और परमज्ञान दोनों एक ही वस्तु हैं, तथा दोनों ही अन्तरंग भाव हैं।

भक्तिके मुख्य दो भेद हैं, साधन और साध्य भक्ति-निर्गुणा भक्ति है, भागवतकारने इसे अहैतुकी और अप्रतिहता कहा है। शाण्डिल्य भक्ति सूत्रमें उसे ही परानुरक्ति कहा है, और भक्तिरसामृतसिन्धुकारने उसे पराभक्ति कहा है। साधना भक्तिके दो भेद हैं, वैधी और रागानुगा।

साधना भक्तिसे साध्य भक्ति श्रेष्ठ है, एकादशस्कन्धमें ऐसा भाव भागवतकारने स्पष्ट किया है। गीताकारने इसी भक्तिको अनन्य भक्ति कहा है, परन्तु प्रेमा भक्तिका विवेचन जैसा भागवतमें है, वैसा अन्यत्र कहीं नहीं है।

भागवतके अनुसार भक्तिका लक्षण निम्नलिखित है—

"स वै पुंसां परोधर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे।
अहैतुक्य प्रतिहता ययाऽऽत्मा संप्रसीदति।" (भा० १, २, ६)

मनुष्योंके लिये सर्वश्रेष्ठ धर्म वही है, जिससे भगवान् श्रीकृष्णमें भक्ति हो। आचार्य वल्लभने इसकी परिभाषामें कहा है, कि भगवान्में माहात्म्य ज्ञानपूर्वक सुदृढ़ और स्नेह ही भक्ति है, मुक्तिका सरल उपाय इससे बढ़कर अन्य कोई नहीं है—

माहात्म्यज्ञानपूर्वस्तु सुदृढ़ः सर्वतोधिकः।
स्नेहो भक्तिरिति प्रोक्तस्तयामुक्तिर्न चान्यथा॥[1]

भागवतकारने भक्तिका जो स्वरूप प्रस्तुत किया है, उससे हम उसके तीन भाग कर सकते हैं—

१—विशुद्ध भक्ति   २—नवधा भक्ति   ३—प्रेमा भक्ति।

विशुद्ध भक्ति—भागवतके आदि मध्य और अन्तमें भक्तिका ही वैशिष्ट्य

---

१. त० दी० नि० ४६ पृ० १२७।

है। प्रथमस्कन्धके द्वितीयाध्यायमें भागवतकारने भक्तिका स्वरूप बतलाया है, द्वादशस्कन्धमें कहा है कि—

"भवे भवे यथाभक्तिः पादयोस्तवजायते
तथा कुरुष्व देवेश नाथस्त्वं नो यतः प्रभो ॥ (१२, १३, २२)

अर्थात् हे सर्वेश्वर। आप ही हमारे एकमात्र स्वामी हो, आप ऐसी कृपा करें कि हमारी भक्ति आपके चरणोंमें सदा बनी रहे।

नाम संकीर्तनं यस्य सर्वपापप्रणाशनम्।
प्रणामो दुःखशमनस्तं नमामि हरिंपरम् ॥ (१२, १,३ २२)

जिन भगवान्के नामोंका संकीर्तन सम्पूर्णपापोंका नाश करता है, तथा जिनके चरणोंमें प्रणाम करनेसे दुःख शमन होते है, उन्हें मैं नमस्कार करता हूँ।

द्वितीयस्कन्धके प्रथम-द्वितीय तथा तृतीय अध्यायोंका विषय प्रायः भक्तिका ही है। तृतीयस्कन्धमें २५ वें अध्यायमें भक्ति योगकी महिमाका ज्ञान कपिलदेवके मुखसे कहलवाया है। २९ वें अध्यायमें भक्तिका मर्म व्यक्त कराया है। चतुर्थस्कन्धमें ध्रुव भक्त आदिके उपाख्यान हैं, जो एक प्रकारसे भक्तिका क्रियात्मक स्वरूप ही है। स्तोत्रके रूपमें यह भक्तिका क्रियात्मकरूप वर्णित है। षष्ठस्कन्ध-भक्तिका एक प्रकारसे केन्द्र है। नाम भक्ति और उनके फलस्वरूप भक्त अजामिलका एक ज्वलन्त उदाहरण है। 'नारायण' नामोच्चारण मात्रसे महान् पापी अजामिल नरकोंके बन्धनसे मुक्त होकर भगवान्के परम प्रिय पार्षदोंके साथ उनके धाम चला जाता है, इस स्कन्धमें नर-देव-दैत्य सभीपर भगवान्की कृपाका विवरण है।

सप्तमस्कन्ध—में तो भक्त शिरोमणि प्रह्लादका वर्णन है, इतना ही नहीं प्रह्लादके द्वारा नवधा भक्तिके स्वरूपपर विचार किया है। अष्टम-नवम स्कन्धोंमें भी भक्तिका माहात्म्य वर्णित है।

अष्टमस्कन्धमें जिन चरित्रोंका वर्णन है, उनमें भक्तोंकी गाथाएं ही प्रमुख हैं, अनन्यभक्त "देव" समुद्र मंथन द्वारा अमृत सिद्धि प्राप्त करना चाहते हैं, उनको प्रत्येक कष्टमें भगवान् ही स्मरण आते हैं, भक्तोंके लिए वे कच्छप-मोहनी आदि अवतार धारण करते हैं। नवमस्कन्धमें-नवधा भक्तिका उपाख्यान इसमें वर्णित है।

दशमस्कन्धमें तो भगवान् श्रीकृष्णकी लीलाओंका स्कन्ध होनेके कारण साक्षात् भक्तिरूप ही हैं।

एकादशस्कन्धमें—भागवतकारने भक्तिकी पूर्ण व्याख्या की है, स्वयं भगवान् श्रीकृष्णने उद्धवसे कहा है कि—हे उद्धव ! मेरी बढ़ी हुई भक्ति, जिस प्रकार मुझको सहज ही प्राप्त करा सकती है, उस प्रकार न तो योग, न ज्ञान धर्म, न वेदोंका स्वाध्याय, न तप और न दान ही करा सकता है। **"नरोधयति मां योगो न सांख्यं धर्म एव च"** (११, १२, १) मेरी भक्ति कुत्तेका मांस खानेवालेको भी पवित्र कर देती है—**अहोबत श्वपचोतो गरीयान् यज्जिह्वाग्रे वर्तते नाम तुभ्यम्"**। (भा० ३, ३३, ७) में भी यही तथ्य वर्णित है। **"वाग् गद्गदा द्रवतेयस्थचित्तम्"** (भा० ११, १४, २४) श्लोकसे यह कहा है, कि जिसकी वाणी गद्गद् हो गई है, चित्त द्रवित हो गया है, जो कभी रोता है, कभी हंसता है, कभी संकोच छोड़कर ऊँची आवाजसे गाने लगता है, और कभी नाच उठता है, ऐसा मेरा भक्त स्वयं पवित्र है, और वह तीनों लोकोंको पवित्र कर देता है। जिस प्रकार अग्निसे तपाये जानेपर सोना मेलको त्यागकर अपने स्वच्छ स्वरूपको प्राप्त हो जाता है, उसी प्रकार मेरे भक्तियोगके द्वारा आत्मा भी कर्मवासनासे मुक्त होकर मुझ भगवान्को प्राप्त हो जाता है।

नवधा भक्ति—प्रह्लादने विष्णुभगवान्की नवधा भक्ति का गान किया है—

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणम् पादसेवनम्।
अर्चनं वन्दनं दास्यंसख्यमात्मनिवेदनम्॥
इतिपुंसार्पिता विष्णौ भक्तिश्चेभवलक्षणा।
क्रियते भगवत्यद्धातन्मन्येऽधीतमुत्तमम्॥ (भा० ७, ५, २३)

भगवान्के गुण लीला आदिका श्रवण, उन्हींका कीर्तन, स्मरण चरणोंकी सेवा, अर्चा, वन्दना, दास्य, सख्य और आत्मनिवेदन। भगवान्के प्रति समर्पणके भावसे यह नौ प्रकारकी की जाय, तो वही उत्तम है।

यह वैधी या साधना भक्ति भी कही जाती है। यह नवधा भक्ति भी दो प्रकारकी होती है—सकाम-निष्काम, निष्कामवैधी भक्ति ही रागात्मिका भक्ति तक भक्तको ले जाती है। भगवतमें नवधा भक्तिका ध्यानपर विवेचन हुआ है।

१—श्रवण भक्ति—**"श्रीविष्णोः श्रवणे परीक्षिदभवत्"** के अनुसार परीक्षित् श्रवण भक्तिके अधिकारी हैं। **श्रवणं नाम चरित गुणादीनांश्रुतिर्भवेत्** "तथा भागवतमें "यस्तूत्तमश्लोक" में वर्णन है।

२—कीर्तन—श्रीशुकदेवजी, कीर्तन भक्तिके अधिकारी हैं। अजामिल "नाम संकीर्तन" मात्रसे तर गया। चैतन्य महाप्रभुने नाम कीर्तनपक्षको अपनी भक्तिमें बड़ा महत्व दिया है।[1]

श्रीकृष्णके श्रवण-कीर्तन दोनों पवित्र करनेवाले है। वे अपनी कथा सुननेवालोंके हृदयमें आकर स्थित हो जाते हैं, और उनकी अशुभ वासनाओंको नष्ट कर देते हैं, क्योंकि वे सन्तोंके नित्य सुहृदय हैं। **"नामलीला गुणादीना मुच्चैर्भावा नकीर्तनम्"** द्वादशस्कन्धमें भी कीर्तनका महत्त्व वर्णित हैं :—

कलेर्दोषनिधे राजन्नस्ति ह्येकोमहान् गुणः।
कीर्तनादेव कृष्णस्यमुक्तबन्धः परं व्रजेत्॥[2]

अर्थात् कलियुगमें सब दोष ही भरे हैं, परन्तु इसमें एक बड़ा भारी गुण है, कि श्रीकृष्णके कीर्तनसे ही मनुष्य सारे बन्धनोंसे छूट कर परमात्माको प्राप्त कर लेता है।

३—स्मरण भक्ति—एकादशस्कन्धमें कहा है, कि जो पुरुष निरन्तर विषयोंका चिन्तन करता है, उसका चित्त विषयोंमें फंस जाता है, और जो मेरा स्मरण करता है, वह गुणमें विलीन हो जाता है।[3] **"श्रण्वन्गुणन् संस्मरयंश्च चिन्तयन्" (१०, २, ३७)** जो आदमी सेवामें ही चित्त लगाये रहता है, उसे फिर जन्म मृत्यु रूप संसारमें नहीं आना पड़ता। श्रवण-कीर्तन और स्मरण तीनों ही प्रकारके भक्ति साधनोंमें भगवन्नामका विशेष वर्णन है।

४—पादसेवन—ब्रह्मस्तुतिमें कहा गया कि जो आपके चरण कमलोंका लेशपाकर—अनुग्रहीत हैं, वे भक्तजन ही आपकी भक्तिका महत्त्व जान सकते हैं। **"अजानतां त्वत्पदवीमनात्मन्यात्माऽऽत्मना भासि वितत्य मायाम्"।**

---

१. **चैतन्य शिक्षाष्टक। श्लो०—**

चेतोदर्पणमार्जनं भवमहा दावाग्नि निर्वापणं
श्रेयः कैरव चन्द्रिका वितरणं विद्या वधू जीवनं।
आनन्दाम्बुधि वर्धनं प्रतिपदं पूर्णामृत स्वादनं-
सर्वात्म स्नपनं परं विजयते श्रीकृष्ण संकीर्तनम्॥"

२. भा० १२, ३, ५१। ३. भा० ११, १४, २७।

नागपत्नियोंने कृष्णकी चरणधूलिकी वन्दना की है।[१] कृष्णकी पटरानियाँ भगवान्‌के चरण-कमलोंकी सेवा चाहती हैं।[२] यमराजने भी कहा है, कि जिन्होंने भगवत्पादारविन्दका आश्रय नहीं लिया है, उन्हें ही नरकोंमें लाना।[३]

५—अर्चन—**शुद्धि न्यासादिपूर्वाङ्ग कर्मनिर्वाहपूर्वकम्।**
अर्चनं तूपचाराणां स्यान्मन्त्रणोपपादनम्॥

भूतशुद्धि और मातृकान्यास आदि पूर्वांग निर्वाह करके मन्त्रों द्वारा श्रीकृष्णको जो गन्ध पुष्पादि विविध उपचारोंका समर्पण किया जाता है, उसका नाम अर्चन है। सुदामाने कहा—भगवान् श्रीकृष्णके चरणोंका पूजन मनुष्योंके लिये स्वर्ग, मोक्ष, इस लोककी सम्पत्ति तथा पाताल लोकके भोग एवं अणिमादि सब सिद्धियोंका मूल कारण है—

स्वर्गापवर्गयोः पुसां रसायां भुवि सम्पदाम्।
सर्वासामपि सिद्धीनां मूलंतच्चरणार्चनम्॥

(भा० १०, ८१, १९)

समस्त योग सिद्धियोंका मूल भगवान्‌के चरणोंका—अर्चन हैं। अम्बरीषकी अर्चन भक्तिका उल्लेख नवम स्कन्धमें है, षोडशोपचार अर्चनका बाह्यरूप है, मानिसिकोपचारमें बाह्योपचारोंकी आवश्यकता नहीं है।

६—वन्दन—भागवतमें अनेक स्तुतियाँ हैं, जो वन्दन भक्तिमें रखी जा सकती हैं। इसमें भगवान्‌की विनय, स्तोत्रपाठ, प्रार्थना आदि सम्मिलित हैं।

७—दास्य—**दास्यं कर्मार्पणंतस्यकैंकर्यमणिसर्वथा।** भगवान्‌को कर्मोंका अर्पण करना दास्य कहलाता है, तथा सब प्रकारकी सेवाका नाम भी दास्य है। **"दासानुदासो भवितास्मि भूयः"** (भा० ६, ११, २४) वृत्रासुरने दास्य ही माँगा था। शिव और ब्रह्मा, दास्य भक्तिके उदाहरणमें रखे जा सकते हैं।

८—सख्य—**विश्वासो मित्रवृत्तिश्च सख्यं द्विविधमीरितम्।** सख्य के दो भेद हैं, भगवान्‌में अटल विश्वास और उनके साथ मित्रका-सा वर्ताव करना, "जो मनुष्य त्रिभुवनका साम्राज्य वैभव मिलनेपर भी आधे लव अथवा आधेनिमेषके लिए भी उनके ध्यानसे विचलित नहीं होता अर्थात् मनसे हरिचरणोंकी सेवाको नहीं छोड़ता वही वैष्णवोंमें श्रेष्ठ है। (भा० ११, २, ५३)

---

१. भा० १०, १६, ३७। २. भा० १०, ८३, ४१। ५. भा० ६, ३, ३३।

ग्वाल-वालोंकी सख्य भक्ति प्रसिद्ध है, जिसका दशमस्कन्धमें वर्णन है। सुदामा भी भगवान्‌की सख्य भक्तिके उदाहरणमें रखे जा सकते हैं।

९—आत्म निवेदन—मनुष्य जब सब कर्मोंको छोड़कर मुझमें ही आत्माको अर्पण कर मेरे ही आराधनकी इच्छासे सब कुछ करता है, तब वह जीवन्मुक्त होकर मेरे ही सदृश ऐश्वर्यका अधिकारी हो जाता है।

मर्त्यो यदा त्यक्त समस्त कर्मा निवेदितात्मा विचिकीर्षितो मे।
तदामृतत्वं प्रतिपद्यमानो मयात्मभूयाय च कल्पते वै॥

(भा० ११, २९, ३४)

दास्य, सख्य और आत्म निवेदन—

ये तीनों उत्तरोत्तर भगवान्‌की साध्य रूपा भक्तिके साधन हैं। आत्मनिवेदनमें साधन और साध्य एक होजाते हैं। दास्य, सख्य और आत्मनिवेदनको हम भक्तिरसके पोषक मानते हैं, क्योंकि इनका सम्बन्ध मनसे हैं, और इनके आधारसे ही भक्तिरसकी निष्पत्ति होती है। भक्तोंकी जितनी कथाएं है, उनमें शरणागतिका भाव प्रमुख है, वैधी भक्तिका पर्यवसान रागात्मिका भक्तिमें है, और रागात्मिका भक्ति पूर्ण समर्पणके रूपमें परिणत हो जाती है। गोपियोंने वैधी भक्तिका अनुष्ठान किया था, परन्तु उनका हृदय रागात्मिका भक्तिसे भरा हुआ था। भागवतकी चीरहरण लीला और रासलीला इस पूर्ण समर्पणके ही रूप हैं। कृष्ण भगवान्‌को सब भाव अर्पित करनेसे हमारे सब भाव कृष्णमय हो जाते हैं और हमारी वासनाओंसे मुक्ति हो जाती है।

कायेन वाचा मनसेन्द्रियैर्वा बुद्ध्यात्मना वाऽनुसृतस्वभावात्।
करोषि यद्यत् सकलं परस्मै नारायणायेतिसमर्पयेत्तत्॥

(भा० ११, २, ३६)

कुछ आचार्य इस आत्मनिवेदनको शरणागति अथवा प्रपत्ति भी मानते हैं।

वात्सल्य भक्ति—दशमस्कन्धमें वात्सल्य भक्तिका स्वरूप मिलता है। नन्द-यशोदाकी भक्ति वात्सल्यकी परिधिमें रखी जाती है। प्रेमरूपा भक्ति एक होकर ग्यारह प्रकारकी होती हैं—(१) गुण (२) रूप (३) पूजा (४) स्मरण (५) दास्य (६) सख्य (७) कान्ता (८) वात्सल्य (९) आत्मनिवेदन (१०) तन्मयता (११) परमविरहासक्ति। ये सभी ब्रजगोपियोंमें थीं। सभी भक्तोंमें कोई न कोई

आसक्ति अवश्य रहती है। नारद, शुकदेव, सूत, शौनक, परीक्षित पृथु, जनमेजय आदि 'गुणमाहात्म्यासक्ति' भक्त हैं। कुछ ऋषि और व्रजनारियां रूपासक्ति हैं, राजा पृथु-अम्बरीष-भरत आदि दास्यासक्ति भक्त हैं। अर्जुन, उद्धव, श्रीदामा, सुदामादि सख्यासक्ति हैं। अष्टपटरानियाँ कान्तासक्ति भक्त हैं। कश्यप-अदिति, सुतपा, पृश्नि, मनु, शतरूपा, नन्दयशोदा, वसुदेव-देवकी आदि वात्सल्यासक्ति भक्त हैं। राजा अंबरीष, राजाबलि, राजा शिवि आदि आत्मनिवेदनासक्ति भक्त हैं। शुक, सनकादिक ज्ञानीगण अथवा कौण्डिन्य, सुतीक्ष्ण आदि प्रेमी मुनिगण तन्मयतासक्ति भक्त हैं, तथा उद्धव, अर्जुन व्रजनारीगण आदि परम विरहासक्तिभक्त हैं।

अध्याय ५ भक्तियोग एवं ज्ञानयोगका स्वरूप विचार

विद्वानोंका कथन है कि परम ब्रह्मका अद्वैत सिद्धान्त कभी भी भक्तिके अनुरूप नहीं हो सकता, क्योंकि भक्तिमें दो की अर्थात् भक्त और भगवान्की अपेक्षा है। **"सोऽहम्" या "अहं ब्रह्मास्मि" या 'अयमात्मा ब्रह्म' या तत्वमसि** का सिद्धान्त मैं तुम्हारा हूँ, के मतके साथ कभी मेल नहीं खाता। शंकर संप्रदायके प्रसिद्ध विद्वान् मधुसूदन सरस्वतीने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'हरिभक्ति रसायन' में लिखा है कि **'तस्यैवाहं'** मैं उसका हूँ **"सह्येवाहं"** 'वह मैं हूं' ये सब धारणायें वास्तवमें आत्माके भगवान्के प्रति समर्पणके ही विभिन्न पक्ष हैं।

तस्यैवाहं ममैवासौ सएवाहमिति त्रिधा।
भगवच्छरणार्थित्वं साधनाभ्यास पाकतः॥

भगवान्में मिल जाना या यों कहा जाय, कि परमात्मा तथा जीवात्माकी आत्मज्ञानयुक्त एकरूपता सायुज्यके विभिन्न रूपोंका सबसे ऊँचा शिखर है। श्रीशंकराचार्य भी इस प्रकारके सिद्धान्तमें कोई विरोधाभास नहीं देखते थे। उक्त तथ्यकी पुष्टि उनके 'भज गोविन्दम्' और उनके प्रबोध सुधाकर तथा आचार्य षट्पदीमें अच्छी प्रकारसे प्रकट होती है :—

"अविनयमपनय विष्णो दमय मनः शमय विषय मृगतृष्णाम्।
भूत दयां विस्तारय तारय संसारसागरतः॥
नारायण करुणामय शरणं करवाणि तावकौ चरणौ।

हे विष्णु! मेरे अभिमानको दूर करो। मरे मनका दमन या निग्रह करो,

तथा विषयभोगोंकी मृग तृष्णाको शान्त करो। मेरी करुणाको व्यापक बनाओ और इस संसार सागरसे मुझे पार करो।

हे नारायण ! तुम दया और करुणाके धाम हो। मैं तुम्हारे चरणोंकीशरण लेता हूँ। इन पंक्तियोंसे स्पष्ट है कि इस प्रकार आन्तरिक शुद्धता, बाहरीकरुणा और भगवान्‌के प्रति पूर्ण आत्मसमर्पण साथ-साथ चलते हैं। पदकी दृष्टिसे यह अन्तिम पंक्ति वैष्णव मतके निम्नलिखित मन्त्रद्वयका पूर्वरूप है। **'श्रीमन्नारायणस्य चरणौ शरणं प्रपद्ये' 'श्रीमन्नारायणाय नमः'।**

ब्रह्मके अनन्त, सच्चिदानन्द, नाम रूपसे अपरिच्छिन्न होनेकी धारणाका, ईश्वरकी सृष्टि, स्थिति तथा प्रलयकर्ता होनेकी अथवा उसके अनेक अनादि पवित्र नामों और रूपोंवाला होनेकी धारणासे वास्तवमें कोई संघर्ष नहीं है। ईश्वर जगत्‌का उपादान तथा निमित्तकारण दोनों ही है।

'अभिन्ननिमित्तोपादानाम्' ईश्वरका एक पक्ष यह जगत् है। **'आत्मानं स्वयमकुरुत' 'विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थितो जगत्'** (गीता १०, ४२) वह अन्तर्यामी रूपसे जगत्‌का नियन्ता है। साथ ही वह जगदतीत भी है।

शंकरके अनुसार मृत्युके उपरान्त मुक्ति (क्रम मुक्ति जीवित रहते हुए मुक्ति जीवन्मुक्ति तथा "अभी और यहीं मुक्ति" (सद्यो मुक्ति) इन सबका किया गया समन्वय पथ प्रदर्शक बन सकता है। विशिष्टाद्वैतके अनुयायी जीवित रहते हुए, मुक्ति तथा 'अभी और यहीं' मुक्तिको अस्वीकार करते हैं,[१] परन्तु गीता तथा उपनिषदोंमें इन अनुभूतियोंकी पुष्टिकी गई है—**'अथ मर्त्योऽमृतो भवति। अत्र ब्रह्म समश्नुते।** (कठो० २, ३, १४) **'प्रतिषेधादिति चेन्नशारीरात्' 'स्पष्टोह्येकेषाम्' स्मर्यते च** (ब्र० सू० ४, २, १२-१४) **न तस्य प्राणा ह्युत्क्रामन्ति। अत्रैव समवलीयन्ते** वृह० ४, ४, ६)

कर्म-ध्यान-भक्ति और ज्ञानका संगम इस प्रकार श्रीशंकराचार्यकी भक्तिके स्वरूपका सार एक है। उनका मत है कि परम ब्रह्म या निर्गुण ब्रह्म तथा सगुण ब्रह्ममें अभिन्नता है। सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य और सायुज्य तथा दूसरी ओर

---

१. कल्याण-उपासनांक—केवलाद्वैतमें भक्तिका स्वरूप श्री के० एस० रामस्वामी शास्त्री पृष्ठ १६३

कैवल्यमें भी कोई आवश्यक विरोध नहीं है, ये मुक्तिके विभिन्न प्रकार हैं न कि स्तर। कुछ श्रुतियाँ परम साम्यकी पुष्टि करती हैं, "**निरंजनः परमं साम्यमुपैति**" और कुछ जीवात्मा, तथा परमात्माकी अभिन्नता प्रतिपादन करती हैं। श्रीशंकरने हमें केवल अनन्त, अनादि तथा नामरूप, और उपाधियोंसे अपरिच्छिन्न निर्गुण ब्रह्मकी धारणाका वर्णन करनेवाले भाष्य तथा प्रकरण ग्रन्थ ही नहीं दिये हैं। उन्होंने नाम, रूप तथा सविशेष सगुण ब्रह्मकी स्तुति, और लीलासे सम्बन्धित अनेक कविताओंकी रचना की है। इन विभिन्न धारणाओंमें हमें विभिन्न स्तरोंकी कल्पनाको समाविष्ट नहीं करना चाहिये। जब शैव, विष्णुका, और वैष्णव, शिवका, और शक्तिका गुणगान नहीं करते, तब शंकरके साहित्यमें इन धारणाओंके विपरीत सगुण साकार ब्रह्मके इन समस्त रूपोंको देखा जा सकता है।

यक्षयज्ञ प्रसंगमें भागवतमें श्रीविष्णुने कहा है—

अहं ब्रह्मा च शर्वश्च जगतः कारणं परम्।
आत्मेश्वर उपद्रष्टा स्वयं दृगविशेषणः॥

द्वादशस्कन्ध (१२, १०, २२) में भगवान् शिवने कहा है—

"न ते मय्यच्युतेऽजे च भिदामण्वपि चक्षते।

शंकरने सरस्वती-लक्ष्मी-उमामें घटा चढ़ाकर वर्णनकी भावना नहीं की—

आत्मामायां समाविश्य सोऽहं गुणमयीं द्विज।
सृजन् रक्षन् हरन् विश्वं दध्रे संज्ञाक्रियोचितम्॥

(भा० ४, ७, ५१)

कालिदास, जो शंकराचार्यजीके थोड़े ही कालके पूर्व पुरुष हैं कहते हैं—
एकैवमूर्तिर्विभिदे त्रिधासा। सामान्यमेषां प्रथमावरत्वम्॥ (कुमारसम्भव ७, ४४) शिवानन्द लहरीमें शंकरने स्पष्ट किया है कि भक्तिमें भी विभिन्न पक्ष (स्तर) नहीं हैं। वे कहते हैं—"**चेतो धूत्तिरुपेत्य तिष्ठति सदा स भक्तिरित्युच्यते।**" सत्य तो यह है, कि आत्मा तथा परमात्माकी एकात्मकताकी अनुभूति स्वयंमें भगवान्‌की देन है।

तथाप्यनूग्रहादेव तरुणेन्दुशिखामणे !
अद्वैत वासना पुसांमाविर्भवति नान्यथा॥ (शिवार्कमणिदीपिका)

भागवतमें व्यासकी शिक्षा भी यही है। वास्तवमें श्रीव्यास तथा शुकदेव कर्मयोग, ध्यानयोग, भक्तियोग, प्रपत्तियोग और ज्ञानयोगके संगमके सर्वोत्तम प्रमाण हैं—

> **आत्मारामाश्च मुनयो निर्ग्रन्था अप्युरुक्रमे।**
> **कुर्वन्त्यहैतुकी 'भक्तिमित्थम्भूतगुणो हरिः॥** (भा० १, ७, १०)
> **तथा प्रायेण मुनयो राजन् निवृत्ता विधिषेधतः।**
> **नैर्गुण्यस्था रमन्ते स्म गुणानुकथने हरेः॥** (भा० २, १, ७)

हरिके गुणानुवादमें सब रमण करते हैं, चाहें वे निर्गुण भक्त ही क्यों न हों। भागवत भक्तिका वैशिष्ट्य इसलिये भी है कि इसमें उपनिषदोंकी भक्ति ही अवतरित हुई है।

भक्ति

तैत्तरीयोपनिषद्में कहा गया है कि वह परमात्मा ही रसस्वरूप है, यदि हृदयाकाशमें वह आनन्दस्वरूप न होता तो कौन चेष्टा करता? कौन प्राण कार्य करता? **"रसोवै सः रसं ह्येवायं लब्ध्वा आनन्दीभवति"** वेदोंके संहिताभागमें जो भक्तिका बीज निहित है, वह उपनिषद् युगमें आकर पल्लवित हुआ है, और वही आगे पुराणोंमें आकर पुष्पित एवं सुरभित हुआ है, विशेषतः श्रीमद्भागवतमें वह प्रतिफलित हुआ है।

वेद—उपनिषदोंमें गूढ़ तत्त्वराशिको पुराणोंमें विस्तृत रूपसे नानाप्रकारके आख्यानोंकी सहायतासे प्रकाशित किया है—

> **वेदेभ्य उद्धृत्य समस्तधर्मान् यो यं पुराणेषु जगाद देवः।**
> **व्यासस्वरूपेण जगद्धिताय वन्दे तमेनं कमलासमेतम्॥**[2]

भागवतमें भक्तियोग—

भागवतपुराणमें कर्मयोग-ज्ञानयोग और भक्तियोग इन तीनों विषयोंकी चर्चा होनेपर भी भक्तियोगके ऊपर विशेष बल दिया है, भक्तिमार्गका अनुसरण ब्राह्मण, शूद्र, नर-नारी सभी सहजरूपमें कर सकते हैं।

> **मार्गास्त्रयो मे विख्याता मोक्षप्राप्तौ नगाधिप।**
> **कर्मयोगो ज्ञानयोगो भक्तियोगश्च सत्तम॥**[3]

---

१. तै० उ० २, ७, १। २. पद्मपुराण क्रियायोग १, ३।
३. देवीभागवत ७, ३७, २-३।

देवी भगवतीने कहा है कि—हे नगेन्द्र । मोक्षप्राप्तिके लिये कर्मयोग-ज्ञानयोग भक्तियोग ये तीनों ही मार्ग विख्यात हैं, इन तीनों प्रकारके योगोंमें भक्तियोग ही अनायास प्राप्त होनेवाला है, क्योंकि इस योगमें शरीरको पीड़ा पहुँचाकर केवल मन द्वारा ही लक्ष्य प्राप्त कर लिया जाता है ।

भगवान् कृष्णने उद्धवसे कहा है—

"यत् कर्मभिर्यत् तपसा ज्ञानवैराग्यतश्च यत् ।
योगेन दान धर्मेण श्रेयोभिरितरैरपि ।
सर्वं मद्भक्ति योगेन मद्भक्तो लभतेऽजसा ।। (भा० ११, २०, ३२)

अर्थात् कर्म, तपस्या, ज्ञान, वैराग्य, योग, दान, धर्म तथा तीर्थयात्रा, व्रत आदि अन्य साधनों द्वारा जो प्राप्त होता है, मेरा भक्त भक्तियोगके द्वारा वह सब अनायास प्राप्त कर लेता है ।

भागवत शास्त्रमें भक्तिमार्ग सबके लिये खोलकर, पूर्ण गणतान्त्रिक धर्मप्रचार किया है ।[1] ईश्वरकी ऐकान्तिक भक्ति द्वारा चाण्डाल भी भगवान्को प्राप्त कर सकता है । जिसकी जिह्वापर तुम्हारा नाम रहता है; वह चाण्डाल होनेपर भी श्रेष्ठ हो जाता है । जो तुम्हारा नाम लेता है, उसने तपस्या करली है, अग्निमें हवन कर लिया है, तीर्थमें स्नान कर लिया है, वे ही आर्य है, (सदाचारी) हैं, और उन्होंने ही यथार्थमें वेदाध्ययन किया है—

अहो बतश्वपचोऽतो गरीयान् यज्जिह्वाग्रे वर्तते नामतुभ्यम् ।
तेपुस्तपस्ते जुहुवुः सस्नुरार्या ब्रह्मानूचुर्नाम गृणन्ति ये ते ।।

(भा० ३, ३३, ७)

वेदने जिसे नेति नेति, तथा **"यतो वाचोनिवर्तन्ते अप्राप्यमनसा सह"** कहकर जिसपर तत्त्वको इन्द्रिय-मन बुद्धिके परे रखा । भागवतने उसी दुर्ज्ञेय चरमतत्त्वको भक्तिमार्गकी साधना द्वारा इन्द्रियोंके गोचरीभूत कर दिया है, भागवतके भगवान् केवल ज्ञेय ब्रह्म नहीं हैं, जीव जगत्के मूलकारण और अधिष्ठान मात्र ही नहीं हैं, अपितु वे उपास्य हैं, परमेश्वर होते हुए भी करुणावरुणालय पतितपावन शरणागत दीन और आर्तजनोंके परित्रायक हैं । इसमें यह भाव है कि—ज्ञानमार्गमें निर्गुण ब्रह्मकी उपासना अक्षर अव्यक्तकी आराधना देहाभिमानी जीवके लिये अत्यन्त

---

१. पुराणोंमें भक्ति—ले० रासमोहन चक्रवर्ती, कल्याण-भक्ति अंक पृ० ५४ ।

कष्टसाध्य है, जब तक देहात्मबोध दूर नहीं होजाता निर्गुण ब्रह्ममें स्थिति प्राप्त नहीं होती । भक्तियोगमें सगुण ईश्वरकी उपासना साधारण जीवके लिये साध्य है ।

साधूनामप्रमत्तानां भक्तानां भक्तवत्सल ।
उपकर्तानिराकारस्तदाकारेण जायते ।। (अग्नि पु०)

उक्ति भागवतमें अक्षरशः उपलब्ध है ।

मद्गुणश्रुतिमात्रेण मयि सर्वगुहामये
मनोगतिरविच्छिन्ना यथा गंगाम्भसोम्बुधौ ।
लक्षणं भक्तियोगस्य निर्गुणस्य ह्युदाहृतम्
अहैतुक्यव्यवहिता याभक्तिः पुरुषोत्तमे ।।
(भा० ३, २६, ११, ११)

समुद्रमें प्रवाहित गंगाके विमल जलधाराके समान मनोगति, मेरे गुण श्रवण मात्रसे फलानुसन्धान रहित तथा भेद दर्शन विहीन होकर सर्वान्तर्यामी मुझ पुरुषोत्तममें अविच्छिन्नभावसे निहित होती है, वह मनोगत रूपा भक्ति ही निर्गुण भक्तियोगका स्वरूप है ।

प्रेम भक्ति—अहैतुकी निष्कामभक्ति ही प्रेम है । इसको प्राप्त करनेपर साधक भगवत्सेवा छोड़कर और कुछ भी नहीं चाहता, यहाँतक कि मुक्तिकी भी प्रार्थना नहीं करता :—

सालोक्य सार्ष्टि सामीप्य सारूप्यैकत्वमप्युत ।
दीयमानं न गृह्णन्ति बिना मत्सेवनं जनाः ।। (भा० ३, २६, १३)

जिनको इस प्रकारकी निर्गुणा भक्ति प्राप्त हो जाती है, उनको सार्ष्टि, सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य तथा सायुज्य ये पाँच प्रकारकी मुक्ति भी प्रिय नहीं लगतीं । जब साधक भक्तिके इस उच्चतर सोपानमें आरोहण करता है, तब वह सर्वभूतोंके साथ एकात्मताका अनुभव करता है, भगवान् ही सब जीवोंके आत्मस्वरूप होकर विराजमान हैं, अतएव वह साधक अपना पराया, शत्रु, मित्र आदि किसी प्रकारका भेदभाव किसीके साथ नहीं रखता । भागवतमें ऐसे भक्तका लक्षण दिया है—

सर्वभूतेषु यः पश्येद् भगवद्भावमात्मनः।
भूतानि भगवत्यात्मन्येष भागवतोत्तमः॥ (भा० ११, २, ४५)

और भी—जिसका धन आदिके विषयमें अपने परायेका भेदभाव नहीं है, समस्त भूतोंमें जिसका समानभाव है, जिसकी इन्द्रियाँ और मन संमत हैं, वही श्रेष्ठ भागवत है :—

न यस्य स्वः परइतिचितेष्वात्मनि वाभिदा।
सर्वभूतसमः शान्तः स वै भागवतोत्तमः॥ (भा० ११, २, ५२)

भक्तिका प्रथम अवयव शुद्ध सहज रति है, और निर्मल स्फटिक मणिके सदृश वृत्तियोंसे रहित चित्तका ग्रहीता ग्रहण अथवा ग्राह्य रूपोंके द्वारा उपरञ्जित होकर उन्हींके आकार रूपमें भासित होना समापत्ति ही भक्तिका चरम अवयव है।[1] यद्यपि भक्ति शब्द **'भज् सेवायाम्'** धातुसे निष्पन्नहोता है, परन्तु इसका अर्थ केवल सेवा ही नहीं है। किसी राजाकी सेवामें समान रूपसे लगे व्यक्तियोंको भक्त नहीं कहा जा सकता, उनमें एक भक्त दूसरा अभक्त भी हो सकता है। आराध्यके ज्ञानका नाम भी भक्ति नहीं है, क्योंकि नमस्कार करना भक्तिका लक्षण है, किन्तु किसीको भय या बलके कारण भी नमस्कार किया जा सकता है। ऐसे व्यक्तिकी भी भक्त संज्ञा हो जायगी अतः इस लोक और परलोकमें नैराश्यपूर्वक मनको आराध्यमें लगाना ही भक्ति है।[2] शाण्डिल्य संहितामें भी ऐसा उल्लेख है—

सर्वात्मना निमित्तैव स्नेह धारानुकारिणी।
वृत्तिः प्रेम परिव्यक्तः भक्तिर्माहात्म्य बोधना॥ (शा० सं०)

काव्यके लक्षण निरूपणके साथ भक्तिको भाव माना गया है,[3] क्योंकि भक्ति सामान्य जनोंकी प्रतीतिका विषय नहीं बन सकता। फल भक्तिरूप उत्कृष्ट इस दशामें ऐक्य हो जाता है, द्वैत नहीं रहता यही भक्तकी मुक्ति कही जाती है। **"भजनीयेन अद्वितीयमिदं कृत्सनय तत्स्वरूपत्वात्"** (शा० सू०) नारद भक्तिसूत्रमें स्वयं फल रूपताका निरूपण है :—

---

१. पा० यो० द० १, ४१।   २. भक्ति चन्द्रिका।

३. काव्यप्रकाश ४, ३५ रतिर्देवादि विषया व्यभिचारी तथोज्झितः भावः प्रोक्तः—।

स्वयं फल रूपतेति ब्रह्मकुमाराः ॥ (३०) तस्मात् सैव ग्राह्या मुमुक्षुभिः ॥ (३३)

भक्तिकी रसरूपतामें प्रायः सभी तत्वज्ञ एकमत हैं। कुछ लोग इसे समाधि जन्य ब्रह्मानन्द सदृश अथवा उससे भी बढकर मानते हैं—**सात्वस्मिन् परमप्रेमरूपा** [1] [2] **अमृत सरूपा च १३१,** शाण्डिल्यने **"सापरानुरक्तिरीश्वरे" "तत् संस्थस्यामृतत्वोपदेशात्"** 'भक्ति' मनके उल्लास विशेषका नाम है। **"भक्तिर्मनस उल्लास विशेषः** [2]**"** परमात्मामें परम प्रेमका नाम ही भक्तिके पर्यायवाची शब्द अमृत, रस अथवा राग शब्द द्वारा कहते हैं। समाधि सुखके सदृश भक्ति सुखकी परमानन्द रूप होनेसे स्वतन्त्र पुरुषार्थ हैं :—**'समाधि सुखत्वेन भक्ति सुखस्यापि स्वतन्त्र पुरुषार्थत्वात् भक्तियोगः पुरुषार्थः परमानन्द रूपत्वादिति निर्विवादम्।'"** [3]

ब्रह्मानन्दको परार्द्ध गुना करके रखा जाय तथा दूसरी ओर भक्ति सुखके सागरका परमाणु, तो भी इसकी तुलना ब्रह्मानन्द नहीं कर सकता।

ब्रह्मानन्दो भवेदेष चेत् परार्द्ध गुणी कृतः।
नैति भक्ति सुखाम्भोधेः परमाणु तुलामपि ॥ [4]

श्रीमद्भागवतमें उक्त सभी शास्त्रोंका निचोड़ भक्तवर ध्रुवके एक श्लोकमें देखा जा सकता है—ध्रुवने कहा कि—हे नाथ ! आपके चरण-कमलोंका ध्यान करनेसे और आपके भक्तोंके पवित्र चरित्र सुननेसे प्राणियोंको जो आनन्द प्राप्त होता है, वह निजानन्दरूप ब्रह्ममें भी नहीं मिल सकता। फिर जिन्हें कालकी तलवार काट डालती है, उन स्वर्गीय विमानोंसे गिरनेवाले पुरुषोंको तो वह सुख मिल ही कैसे सकता है। [5] नारायण तीर्थने स्पष्ट लिखा है :—

भगवान् विष्णु अथवा भगवान् शंकरके चरणकमलोंके मकरन्दकी मन्दाकिनीमें अवगाहन करनेवाले मनका उल्लास ही 'राग' 'भाव' अथवा 'प्रेम शब्दसे कहा जाता है·······मोक्षको भी पराजित करनेवाला रस रूप रति नामक स्थायी भाव ही फल भक्ति है। [6]

काव्यजगत्में आनन्दवर्धनाचार्यका नाम सर्वविदित है, इन्होंने अपने ग्रन्थ ध्वन्यालोकमें स्पष्ट लिखा है कि—कवियोंकी अभिनवरस दृष्टि तथा विद्वानोंकी

---

१. नारद भक्तिसूत्र ३। २. भक्ति मीमांसा सूत्र। ३. भक्तिरसायनम्। ४. भक्तिरसामृत सिन्धु ५. भागवत ४, ९, १०। ६. नारायणतीर्थ (भक्ति-अंक) पृ० २४७।

ज्ञान दृष्टि इन दोनोंमें मुझे वह सुख नहीं मिला, जो क्षीरोदधिशायी भगवान् विष्णुकी भक्तिमें प्राप्त हुआ—

या व्यापारवती रसान् रसयितुं काचित् कवीनां नवा
दृष्टिर्या परिनिष्ठतार्थविषयोन्मेषा च वैपश्चिती।
ते द्वे अप्यवलम्ब्यविश्वमनिशं निर्वर्णयन्तो वयम्
श्रान्ता नैव च लब्धमब्धिशयन ! त्वद् भक्ति तुल्यंसुखम् ॥[१]

श्रवण-कीर्तन आदि नवधा भक्तिमें तथा-महत् सेवा, दयापात्रता, श्रद्धा हरिगुण श्रुति, रतिके अंकुरकी उत्पत्ति, स्वरूपका अधिगम, प्रेमवृद्धि, आनन्दका स्फुरण, भगवद्धर्ममें निष्ठा, भगवद्धर्म गुणशीलता, प्रेमकी पराकाष्ठा, ये भक्तिकी भूमिकायें हैं, इन भक्ति भूमिकाओं[२] तथा ललितादि प्रेमा भक्तिके प्रादुर्भावमें नाम जप ही मूलकारण है।

भगवन्नाम परम आश्रय है यह वेदोंसे भी सिद्ध है। "**गृणीमसि त्वेष रुद्रस्य नाम**"[३] इसमें रुद्रके नाम लेनेका उल्लेख है तथा—"**पतत्ते अद्यशिपिविष्ट नाम।**" इसमें कहा है कि हे अन्तर्यामी ! मैं अल्प प्राणी, नामकी शक्ति जानता हुआ आपके श्रेष्ठ नामका तथा आपके गुणोंका कीर्तन करता हूँ। धर्मादिपुरुषार्थोंके एकमात्रस्वामी लक्ष्मीपति परम कृपालु परमात्मा हमारे हृदय देशमें बैठे हैं, और हम फिर भी दीन बने हैं यह कैसी विडम्बना है—

मया बारं बारं जठर भरणाय प्रतिदिशं
प्रयातेन व्यर्थी कृत महह जन्मैव सकलम्।
हृदिस्थोऽपि श्रीमानखिल पुरुषार्थैकनिलयो
दयोदारस्वामी न च गरुडगामी परिचितः ॥[५]

आदित्य पुराणमें ठीक लिखा है कि—"दीन-दुःखी मनुष्यभी तुम्हारे नामकीर्तन रूप सुधा रसके पानसे पुष्ट होकर, दीनता त्याग, दिव्यलाकोंमें चला जाता है।

---

१. ध्वन्यालोक उद्योत ३, पृ० ३६२
२. भक्तिचन्द्रिका०
३. ऋ० म० २ सू० ३३
४. ऋ० अ०५
५. वैष्णवकण्ठाभरण।

त्वन्नामकीर्तन सुधारस पानपीनो, दीनोऽपि दैन्यमपहाय दिवं प्रयाति ।
पश्चादुपैतिपरमंपदमीशते वै, तद् भाग्य योग्य करणं कुरु मामपीश ॥[1]

स्वयं श्रीकृष्णने भक्तिकी महत्ताका उद्घोष उद्धवसे किया है :—हे उद्धव ! जैसे धधकती हुई आग लकड़ियोंके बड़े ढेरको भी जलाकर खाक कर देती है, वैसे ही मेरी भक्ति भी समस्त पाप राशिको पूर्णतया जला डालती है।

यथाग्निः सुसमृद्धार्चिः करोत्येधांसि भस्मसात् ।
तथा मद्विषया भक्तिरुद्धवैनांसि कृत्स्नशः ॥
(भा० ११, १४, १९)

(क) ज्ञानमार्गका अन्तरंगवर्ग (श्रवण-मनन-निदिध्यासन)

श्रवण :—ज्ञान मार्गमें श्रवणको प्रथम स्थान दिया है। ज्ञान स्वयं उद्भूत
वस्तु नहीं है, वह श्रवण द्वारा ही विकसित होता है। गुरुकी महिमा **"समित्पाणिः**
श्रोत्रियं ब्रह्म निष्ठम्" से वेदान्ती स्वीकार कर चुके हैं। ज्ञान-श्रवणके लिये वर्षोंतक
गुरुकी साधना करनी पड़ती थी, तब गुरु उसे संसार रूपी अनलसे मुक्त करानेमें
समर्थ तत्त्वज्ञानका उपदेश देते थे। श्रवणमें श्रोत्रेन्द्रियका प्राधान्यत्व है। अन्धा व्यक्ति,
पंगु व्यक्ति भी श्रोत्रेन्द्रियके ठीक होनेपर तत्वज्ञान श्रवणका अधिकारी है। श्रवणमें
समस्त विषयोंकी ओरसे इन्द्रियोंके व्यापारपर नियन्त्रण होता है। ज्ञाता और ज्ञेयमें
एकत्वकी ओर ले जानेवाला श्रवण ही है। भारतीय वाङ्मयमें श्रवणको विशिष्ट
महत्त्व दिया गया है। गूढ़ ज्ञानके लिये प्रथम शास्त्रोंका श्रवण ही उपादेय माना
गया है। योग शास्त्रमें भी इसकी महत्ताका वर्णन किया गया है। समाधि प्राप्त
करनेके लिये प्रथम सोपान 'श्रवण' ही है।

मनन :—शास्त्रोंका श्रवण महत्त्वपूर्ण तभी है, जब इनका सम्बन्ध मनकी
'मनन' वृत्तिसे किया जाय। श्रवणके समय सम्भव है, मनकी वृत्ति क्वचिद् अन्यत्र
भी लग सके अतः 'मनन' क्रियाके द्वारा श्रुत विषयकी आवृत्ति की जाती है, और
उससे ज्ञानकी पुष्टि हो जाती है। केवल 'श्रवण' स्मृतिके पटलसे धुल सकता है,
किन्तु जिसका मनन हो जाता है, वह कभी विस्मृति पथकी ओर अग्रसर नहीं होता।
मुनि शब्दका आविष्कार मननकी प्रक्रियासे सम्बन्धित है, मन्त्र शब्दके मूलमें निःसंदेह
'मनन' बैठा है। मन्त्र गोप्य वस्तु है, मनन भी गोप्य है, श्रवण श्रोत्रेन्द्रियसे सम्बन्धित
हैं, मननका सम्बन्ध मनसे है, जो समस्त इन्द्रियोंका नायक है।

---

१. आदित्यपुराण।

निदिध्यासन—श्रुत विषयका मनन हो जानेपर जो विषयाववोध परिपक्व होता है, वह निदिध्यासनके फलस्वरूप है। महर्षि याज्ञवल्क्यने अपनी शिक्षामें लिखा है कि गुरुके द्वारा शास्त्रका श्रवण करके स्वयं मनन करना और मनन किये विषयमें अवगाहन करना पूर्ण ज्ञान प्राप्तिका साधन है :—

श्रवणं तु गुरोः पूर्वं मननं तदनन्तरम्।
निदिध्यासनमित्येतत् पूर्णबोधस्य कारणम्॥ (या० स्मृ०)

श्रवण-मनन और निदिध्यासन तीनोंकी उपयोगिता सांख्य योगादि शास्त्रोंने स्वीकारकी है। अभीष्टसे एकाकार करानेमें ये तीनों ही समर्थ हैं। भक्ति मार्गका त्रिवर्ग-श्रवण-कीर्तन-स्मरण ज्ञान मार्गमें श्रवण कीर्तन स्मरण का है। द्वादशस्कन्धमें श्रवण गायन और स्मरणका महत्त्व घोषित करते हुए कहा है—

नामान्यनन्तस्य यशोऽङ्कितानि।
यच्छृण्वन्ति गायन्ति गृणन्ति साधवः॥
(भा० १२, १२, ५१)

साधु भगवान्‌के नामोंका श्रवण-गायन और स्मरण करते हैं। गुणानुवाद श्रवणमें सदा अविस्मृति रहे, भक्तकी यही कामना है। (भा० १२, १२, ५३) सूतने श्रीमद्भागवतका श्रवण, परीक्षितको जब शुकदेवने सप्ताह सुनाया तब किया था (भा० १२, १२, ५६) नवधा भक्तिमें राजा परीक्षित् तो श्रवण भक्तिके उदाहरण बन गये—'**श्रीविष्णोः श्रवणे परीक्षिदभवत् वैयासकिः कीर्तने**' श्रीमद्भागवतके श्रवण करने और सुनानेका बड़ा माहात्म्य है (भा० १२, १२, ५८) द्वादशी अथवा एकादशीमें भागवत श्रवण अत्यन्त फलदायी है (भा० १२, १२, ५९) भगवान् श्रीकृष्णने श्रेयः प्राप्तिके साधन तीन कहे हैं—ज्ञान-कर्म और भक्ति। (भा० ११, २०, ६) तीनोंमें श्रवणकी सत्ता है। भगवान्‌की पटरानी एवं रानी भी उनके चरित्रोंका श्रवण ही चाहती हैं "**ब्रूह्यंग शौरेः कथाम्**" (भा० १०, ९०, २४) वे हंससे कहती हैं कि—"तुम्हारा स्वागत है, अब श्रीकृष्णकी महिमा या कथा हमें सुनावें। भगवान्‌की ज्येष्ठा श्रेष्ठा पट्टराज्ञी रुक्मिणीको भगवान्‌की प्राप्ति उनके चरित्र श्रवणके द्वारा ही हुई, जैसा कि उसने स्वयं पत्रिकामें लिखा—'**श्रुत्वा गुणान् भुवन सुन्दर शृण्वतां ते**' (भा० १०, ५२, ३७) भगवान्‌के चरित्र श्रवणका तत्काल फल यह है कि अंगका ताप दूर हो जाता है **निर्विश्य कर्ण विवरैर्हरतोंग तापम्**" (भा० १०, ५२, ३७) यही गोपिकाओंका मत था, वे कहती थीं कि आपकी कथा सुननेवाला अपने मृत देहमें अमृतको प्राप्तकर लेता है :—

'तव कथा मृतं तप्त जीवनम्' इतना ही नहीं वह तो सुनने मात्रसे मंगलदायी है **श्रवण मंगलम्'** (भा० १०, ३१, ८) श्रवणेन्द्रिय सदा आपकी कथामें लगे, कुवेरके पुत्र नलकूबर-मणिग्रीवने प्रार्थनाकी (भा० १०, १०, ३८) भक्तवर अंबरीष भी यही चाहता था—**'श्रुतिं चकाराच्युत सत्कथोदये'** (भा० ६, ४, १८) में स्पष्ट है।

भक्तवर वाणासुरने एक सहस्र कान भगवान् शिवकी कथा श्रवणके हेतु माँगे थे, परन्तु शिवने कुरूपताकी रक्षाके लिये उसे भुजा देदीं थीं। विष्णु भक्तोंका माहात्म्य भी श्रवण करनेसे बन्धनोंको काटनेमें समर्थ है (भा० ६, १७, ४०) तो स्वयं भगवान्की महिमा श्रवणका तो फल अधिक होगा ही। भागवत चरित्रोंके श्रवणसे नरकोंका तो भय ही नहीं है, (भा० ६, २, ४७) भगवान् शुकदेवने राजासे भागवत प्रारम्भके समय ही कह दिया था कि जिन भगवान्का श्रवण कल्मषोंका नाशक है, उनके चरित्रोंका श्रवण मैं कराऊँगा (भा० २, ४, १५) ऐसा श्रवण नहीं है जो कर्णेन्द्रिय तृप्त करे, अपितु श्रवण तो ऐसा हो जो भगवान्की कथामें अधिकाधिक रतिको बढ़ाये :—(भा० १, २, ८) भगवान् श्रीकृष्ण भी प्रेमसे श्रवण करनेवाले व्यक्तिके हृदयमें प्रविष्ट हो जाते हैं, और उसके समस्त अमंगलोंका नाश करते हैं—

श्रृण्वतां स्वकथां कृष्णः पुण्य श्रवण कीर्तनः।
हृद्यन्तः स्थो ह्यभद्राणि विधुनोति सुहृत् सताम् ॥
(भा० १, २, १७)

भागवत श्रवण करनेवालेको कुछ भी अप्राप्य नहीं है। **'एतां यो नियततया श्रृणोति भक्त्या'** (भा० मा० ६, १०३) कलियुगमें श्रीमद्भागवत सप्ताह श्रवणका फल सर्वातिशायी स्वीकार किया है।

श्रवणके साथ कीर्तनमें बीजरूपमें अवस्थित 'स्मरण' है और इसी कारण जो सिद्धि, ज्ञानमार्गके कठिन प्रयासमें स्थित होती है, भक्तिमार्गके श्रवण-कीर्तनसे वह सुलभ है।

भक्ति मार्गमें भव तरनेके ये उपाय ज्ञानमार्गके उपायोंसे निःसन्देह सरल है एवं सर्वजन लभ्य हैं।

कीर्तन

शाश्वत सुखके साधनोंमें कीर्तनका नाम सर्वोपरि है। प्रायः यह कहा जाता

है, कि यह पौराणिक सूझमात्र हैं, और मध्यकालीन भक्तोंका एक मात्र संबल होनेसे बाद का है, परन्तु बात ऐसी नहीं है ।

वेदोंमें कीर्तन—के स्रोत हैं । "**भद्रं कर्णेभिः शृणुयामदेवाः**"[1] मन्त्रमें स्पष्ट है कि कानोंसे कल्याणकारी भगवान्के नामोंको सुनें । नाम श्रवण, बिना कीर्तनके कथमपि सम्भव है ही नहीं, अतः कीर्तनका मूल हम इस ऋचामें देख सकते हैं ।

अथर्ववेदका "**चन्द्रं श्लोकं श्रूयासम्**"[2] अर्थात् कल्याणकारी भगवान्के यशको सुनें भी कीर्तनकी पुष्टि कर रहा है । वेदके एक अन्य मन्त्रमें आता है कि हम उस भगवान्की स्तुति करें, जिससे यह सारी सृष्टि उत्पन्न हुई है— "**तुष्टुवाम य इमा जजान**" तथा हम उस सच्चे भगवान्की स्तुति करें, झूठे विषय आदि पदार्थोंकी नहीं— '**सत्यमिद्वा तं वयमिन्द्रं स्तवाम नानृतम्**"[4] इसमें 'स्तव' शब्दका अर्थ कीर्तन है ।[5] **स्तुतिर्नाम गुण कथनम्** ।[6]

गुणोंके कथन (कीर्तन) का नाम स्तुति है, ऐसा मधुसूदन सरस्वतीका अभिप्राय है । '**मर्ता अमर्त्यस्य ते भूरि नाम मनामहे**" (ऋ० ८, १, १५) हे प्रभो ! मरनेवाले हम लोग, अमर आपके नामका कीर्तन करते रहें । इस मन्त्रके व्याख्यानमें प्रसिद्ध सायणाचार्यने 'मनामहे' पदका अर्थ उच्चारण किया है । उच्चारण और कीर्तनके भेद संभव नहीं हैं । क्योंकि इसकी परिभाषा विद्वानोंको यही अभीष्ट है :— "**संकीर्तनं नाम भगवद् गुण कर्मनाम्नां स्वयमुच्चारणम्**"[7] अर्थात् भगवान्के गुण, कर्म और नामोंका स्वयं उच्चारण ही संकीतन है । जिस भगवान्की महिमाका गान हिमालय आदि पर्वत और नदियोंके साथ समुद्र कर रहा है—हम उस मुखस्वरूप परमात्माकी स्तुतिपूर्वक विशेष भक्ति करें । विद्वानोंने अपने अनुभवसे यह निश्चय कर लिया है कि संकीर्तन ही तप, वेदाध्ययन उत्तम यज्ञ, दान आदिका अविनाशी फल है ।[8] शास्त्र श्रवणका फल कीर्तन है ।[9] गीतामें इसे जपयज्ञ कहा है "**यज्ञानां जप यज्ञोस्मि**"[10] इसकी टीकामें मधुसूदन

---

१. ऋग्वेद १, ८६, ८—सामवेद उ० २१, १, २ । २. अथर्ववेद १६, २, ४ ।

३. ऋग्वेद ८, ८५, ६ । ४. ऋग्वेद ८, ५१, १२ ।

५ कल्याण साधनांक—श्रीभागवतानन्दजी पृ० ४० । ६. महिम्न स्तोत्र टीका ।

७. वीरमित्रोदय । ८. भाग० १, ५, २२ ९. भा० ७, ५, २३ ।

१०. गीता १०, २५ ।

सरस्वतीका कथन द्रष्टव्य है, उनका कथन हैं, कि इस जपयज्ञमें हिंसा आदि दोष नहीं हैं, अतः यह भगवन्नाम जपयज्ञ, अत्यन्त शुद्धि करनेवाला है, यह 'यज्ञ' मेरी ही विभूति है । जन्म और जन्मके हेतु पापका नाश करनेके कारण इसे जप कहा गया :है—

जकारो जन्मविच्छेदः पकारः पापनाशकः
तस्माज्जपइतिप्रोक्तो जन्मपाप विनाशकः ।[1]

श्रद्धा सहित यदि भगवान्‌का नाम सुखसे निकल जाय, तो जीव भवसागरसे अनायास ही पार हो जाता हैं :—

मधुर मधुरमेतन्मंगलं मंगलानां, सकल निगम वल्ली सत्फलं चित्स्वरूपम् ।
सकृदपि परिगीतं श्रद्धया हेलया वा, भृगुवर नरमात्रं तारयेत् कृष्ण नाम ।।[2]

"वेदानां सामवेदोऽस्मि"[3] इस भगवद्गीताके वाक्यपर विचार करनेसे कीर्तनकी विशेषता सिद्ध होती है । वेदोंमें मैं सामवेद हूँ । सामवेदके मन्त्रोंसे मेरा उच्चस्वरसे कीर्तन करना चाहिये । स्तोत्र संज्ञा ऊँचे स्वरसे गायनके कारण ही है । **'गीतीषु सामाख्या'**[4] मीमांसा दर्शन इसका प्रमाण है, इसके भाष्यमें लिखा है कि—**विशिष्टा काचित् गीतिः सामेत्युच्यते प्रगीतेहि मन्त्रवाक्ये साम शब्दमभियुक्ता उपदिशन्ति ।**[5] इस कारण ही भागवतमें **"गायन्ति यं सामगाः"** सामवेदी जिसका गान करते हैं, लिखा है ।[6] संकीर्तनसे सम्पूर्ण सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं । **"यत्र संकीर्तनेनैव सर्वः स्वार्थोऽभिलभ्यते"**[7] ।

बुद्धिमान् लोग, कीर्तन प्रधान यज्ञोंके द्वारा भगवान्‌का भजन करते हैं । विष्णुपुराणमें भी—**"कलौ संकीर्त्य केशवम्"** कलियुगमें भगवान्‌के नाम संकीर्तनका आदेश दिया है । यही भाव भागवतके—**कलौ तद्धरिकीर्तनात्** में आया है ।[8] शुकदेवजीने राजा परीक्षितसे कथा प्रारम्भके समय ही कह दिया है कि—**योगिनां नृप निर्णीतं हरेर्नामानुकीर्तनम्** ।।[10] इससे यह सिद्ध है कि कीर्तन ही भव तापसे बचानेका साधन है ।

---

१. अग्निपुराण । २ बृ० नारद पु० प्रभासखण्ड । ३. गीता १०, २२ ।
४. मीमांसादर्शन २, १, ३६ । ५. शांकर भाष्य २, १, ३६ ।
६ भाग० १२, १३, १ । ७. भाग० ११. ५. ३६-३७ ।
८. विष्णु पु० ६, २, १७ । ९. भाग १२, ३. ५१ । १०. भाग० २, १, ११ ।

सायणाचार्यने एक भाष्यमें स्पष्ट कीर्तनका उल्लेख किया है—**महस्ते विष्णो सुमतिं भजामहे"** विष्णुका नाम जानकर कीर्तन करो ।[१] सायणसे अतिरिक्त अन्य भाष्यकारोंने भी इस मन्त्रमें कीर्तनकी चर्चा की है । प्रसिद्ध अद्वैतवादी आचार्य शंकरने भक्तिकी श्रेष्ठता स्वीकार करते हुए लिखा है कि—**मोक्ष कारण सामग्र्यां भक्तिरेव गरीयसी"**[२] इस भक्तिका अङ्ग कीर्तन है, इसे आचार्य शंकरने विष्णु सहस्र नाम भाष्य में स्पष्ट किया है :—**श्रद्धा भक्त्योरभावेऽपि भगवन्नामसंकीर्तनं समस्तं दुरितं नाशयतीत्युक्तम्, किमुत श्रद्धा भक्ति पूर्वकम्** ।[३]

'ओम्' परमात्माका सन्निहित नाम है, इस नामके लेनेसे वे उसी प्रकार प्रसन्न होते हैं, जैसे प्रिय नाम लेनेसे लोग प्रसन्न होते हैं—

"ओमित्येतदक्षरं परमात्मनोऽभिधायकं नैदिष्ठम्.......सप्रसीदति प्रियनाम ग्रहण इवलोक:: ।"[४]

संकीर्तनसे भगवान् शीघ्र प्रकट होते हैं, नारदभक्तिसूत्रमें कहा है—**संकीर्त्यमानः शीघ्रमेवाविर्भवति अनुभावयति च भक्तान्** ।[५] नाम कीर्तनके फलमें विश्वास करना चाहिये ।[६] इसमें अतिशयोक्ति नहीं है ।[७] संकीर्तन ध्वनि सुनकर जो नृत्य करते हैं, उनकी चरण रजसे पृथिवी शीघ्र पवित्र हो जाती है ।[८] कलियुगमें हरिनामसे बढ़कर और कुछ नहीं है ।[९] कृष्ण यह दो वर्ण मोक्षमन्दिरके द्वार हैं ।[१०] सभी पुराणोंमें नाम संकीर्तनकी महिमा व्याप्त है ।

भक्तिमार्गका अन्तरंग साधन कीर्तन

भक्तिकी भूमिकामें शौनक महर्षिके प्रश्नोंकी ओर ध्यान देना आवश्यक है । शौनकने सूतजीसे प्रश्न किया, कि इस घोर कलियुगके प्राप्त होनेसे जीवोंकी वृत्ति असुर स्वभाववाली हो गई है, इस वृत्तिका सुधार करनेवाला एवं श्रीकृष्ण भगवान्की

---

१. सायण भाष्य १, १५५; ३ । २. विवेक चूडामणि ३२ ।

३. विष्णु सहस्रनाम शांकर भाष्य १४ । ४. छान्दोग्यो० शा० भा० १, १, १ ।

५. ना० भ० सू० ८० । ६. ब्रह्मसंहिता ।

७. विष्णु धर्म । ८. बृ० नारद पु० ।

९. नारद पु० ३८, १२७ । १०. पण्डितराज जगन्नाथ 'वज्रं पाप महीभृतां' ।

प्राप्ति करानेवाला साधन कौन सा है ? "सूतने नारदके द्वारा इसका उत्तर दिलाते हुए, यह कहा है कि" सत्ययुग, त्रेता तथा द्वापर इन तीनों युगोंमें तो ज्ञान तथा वैराग्य भी मुक्तिके साधन माने जाते थे, परन्तु कलियुगमें तो ब्रह्म सायुज्यकारिणी केवल भक्ति ही है :—'**कलौ तु केवलं भक्तिर्ब्रह्म सायुज्यकारिणी ।**"[1] नारदकी स्पष्ट घोषणा है कि—कलिके सदृश कोई युग नहीं है, इस युगमें तुझे हे भक्ति ! घर-घरमें स्थापित करूँगा। नारदने यह भी कहा कि पापी भी निर्भय होकर श्रीकृष्णके मन्दिरमें जायेंगे ।[2] महोत्सव शब्दके द्वारा नारदका संकेत संकीर्तन, झूला, होरी, वसन्त, आरती, स्तुति आदिसे है । नारदने यह प्रतिज्ञा मात्र ही नहीं की, अपितु स्वयंमें भक्ति प्रतिपादक ग्रन्थ भी लिखे—नारदपांचरात्र, नारद सूत्र आदि । ये शास्त्र आज भी वैष्णवोंके द्वारा सम्मान्य हैं । संकीर्तनके सम्बन्धमें नारदका स्पष्ट कथन है—

यत्फलं नास्तितपस्सा न योगेन समाधिना ।
तत्फलं प्राप्यते सम्यक् कलौ केशव कीर्तनात् ।। (भा० मा० १, ६७)

जो फल न तपसे प्राप्त होता है, न योग-समाधिसे वह कलियुगमें केवल केशवके कीर्तन द्वारा ही प्राप्त होता है । श्रीमद्भागवतके प्रारम्भमें कीर्तनका ही उपदेश है, मध्य तथा अवसानमें भी कीर्तनकी महिमाका गान है—

तस्माद्भारत सर्वात्मा भगवान् हरिरीश्वरः ।
श्रोतव्यः कीर्तितव्यश्च स्मर्तव्यश्चेच्छताऽभयम् ।। (भा० २, १, ५)

शुकदेवने राजा परीक्षितसे कहा :—हे भारत ! संसार भयसे निर्भय चाह रखनेवाले सज्जनको उचित है कि भगवान् श्रीहरिकी कथाका श्रवण, नामका कीर्तन तथा रूपका स्मरण करता रहे । केवल शुकदेवका ही यह मत नहीं अपितु शुकदेवजी अन्य महर्षियोंका मत भी सुनाते हैं—हे राजन् ! जिन्हें संसारसे वैराग्य हो गया है, जो अकुतोभय पदवीकी चाहना रखनेवाले हैं, ऐसे योगियोंका निर्णय है कि सतत श्रीहरिनामसंकीर्तन करना चाहिये ।[3] कपिलदेवकी माता देवहूतिकी उक्ति है कि वे चाण्डाल भी धन्य हैं, जिनकी जिह्वापर भगवन्नाम रहता है ।[4]

उपाख्यानोंमें भक्त अजामिलका उपाख्यान कीर्तन महिमाका ही है । यमदूतोंके घोर रूपको देखकर मरणासन्न अजामिलने नारायणका नाम लिया और विष्णुपार्षदोंने

---

१. भा० मा० २, १३ । २. भा० मा० २, १४-१५ । ३. भा० २, १, १० ।
४. भा० ३, ३३, ६, ५ ।

सोचा कि यह हमारे स्वामीको बुला रहा है, वे तुरन्त वहाँ आ गये और यमदूतोंको वहाँसे मार भगाया (भा० ६, १, ३०) नामोच्चारणसे करोड़ों जन्मके पाप दूर हो जाते हैं, उन्होंने कहा कि, इस अजामिलने विवश होकर ही नारायणका नाम लिया है, किन्तु अब यह परम शुद्ध है (भा० ६, २, ७) इस प्रसंगमें यह भी कहा कि—"जो चोर हो मदिरा पीनेवाला हो मित्र द्रोही हो ब्रह्महत्यारा हो, गुरुतल्पगामी हो, स्त्री, राज तथा गोघाती हो, इनमें भी बढ़कर अन्य नाना प्रकारके पातकोंका करनेवाला हो, उन सभी पापियोंको पाप निवृत्तिका यही एकमात्र उपाय है कि भगवान्‌का कीर्तन करे, (भा० ६, २, ९-१०) व्रत आदि विभिन्न कर्मोंसे पापी वैसा पवित्र नहीं होता, जैसा कि उत्तमश्लोक भगवान्‌के नाम कीर्तन द्वारा पावन हो जाता है, यह समस्त ब्रह्मवादियोंका मत है—"**गुणानुवादः खलु सत्त्वभावनः**" (भा० ६, २, ११-१२) चंचलचित्त बुरे मार्गकी और ही दौड़ता रहता है, उसे सन्मार्गपर लानेका एकमात्र उपाय है, भगवान्‌का कीर्तन—

सांकेत्यं पारिहास्यं वा स्तोभं हेलनमेव वा ।
वैकुण्ठ नामग्रहणमशेषाघहरं विदुः ॥
पतितः स्खलितो भग्नः संदृष्टस्तप्तआहतः ।
हरिरित्यवशेनाह पुमान्नार्हति यातनाम् ॥

यह संकीर्तन, चाहे जानकर किया गया हो या बिना जाने कियागया हो, पापोंका नाश उसी प्रकार कर देता है, जैसे अग्नि काष्ठको जला देती है, (भा० ६, २, १४-१८) यमने कहाकि—इस लोकमें पुरुषोंके लिये सर्वश्रेष्ठ धर्म यही माना गया है कि नाम संकीर्तनके द्वारा भक्तियोगकी साधना करे ।

एतावानेव लोकेऽस्मिन् पुसां धर्मः परः स्मृतः
भक्तियोगो भगवति तन्नाम ग्रहणादिभिः ।
नामोच्चारणमाहात्म्यं हरेः पश्यत पुत्रकाः
अजामिलोऽपि येनैव मृत्युपाशादमुच्यत ॥ (भा० ६, ३, २२, ३३)

त्रिवर्ग

तस्मात् संकीर्तनं विष्णोर्जगन्मंगलमंहसाम् । (भा० ६, ३, ३१)

जिसने जिह्वा पाकर भी यदि भगवान्‌के नामका उच्चारण न किया तो वह मोक्षधामको प्राप्त करनेवाली सीढ़ीको प्राप्त करके भी उसपर न चढ़नेवाले मनुष्यके

समान दुर्मति है, अपने प्रवचनके अन्तमें भी शुकदेवने एकादश स्कन्धमें कहा कि—गुणज्ञ तथा सारग्राही आर्य पुरुष तो कलियुग का ही गुणगान करते हैं, जिस युगमें केवल भगवन्नाम संकीर्तन द्वारा ही मनुष्य अपने सर्व प्रकारके स्वार्थोंकी सिद्धि प्राप्त कर सकते हैं—

"यत्र संकीर्तनेनैव सर्वः स्वार्थोऽभिलभ्यते ।।" (भा० ११, ५, ३६)

"शृण्वन्तः कीर्तयन्तश्च तरिष्यन्त्यञ्जसातमः ।।" (भा० ११, ६, २४)

श्रीमद्भागवतके द्वादश स्कन्धमें १३ अध्याय हैं, इसके १२ वें अध्यायमें भी कहा है कि—अनन्य भावसे भगवान्‌का कीर्तन करना चाहिये, नादमें समाजानेकी पद्धति उपनिषत्‌कालसे ही प्रचालित थी, कीर्तनमें भी स्वशून्यत्व अवस्था हो जाती है, और इन्द्रियोंपर संयम भी इस साधन द्वारा सहज सम्भाव्य है । तेरहवें अध्यायमें कहा है कि जिन भगवान्‌का नाम संकीर्तन सम्पूर्ण पापोंका नाश करनेवाला है, उन्हें नमस्कार है :—

नाम संकीर्तनं यस्य सर्वपापप्रणाशनम् ।
प्रणामोदुःख शमनस्तं नमामि हरिं परम् ।। (भा० १२, १३, २३)

नवयोगीश्वरोंमेंसे "करभाजन" नामक योगीने निमिसे कहा कि—कलियुगमें हरिकीर्तनसे बढ़कर और कोई लाभ नहीं है। क्योंकि नाम संकीर्तनसे संसारका बन्धन छूट जाता है और परम शान्ति प्राप्त होती है ।[1] जो भगवान्‌का नाम लेते हैं, वे फिर संसारमें नहीं आते । श्रवण कीर्तनके अलौकिक आनन्दको प्राप्त कर चित्तकी वृत्ति अपने ध्येयका सर्वदा स्मरण करती है । अतः **"श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणम्"** इस श्लोकमें श्रवण-कीर्तनके पश्चात् स्मरणको रखा है । तादात्म्य अनुभूति इस स्मरणका ही परिणाम है । गोपियोंका स्मरण दशम स्कन्धमें दृष्टव्य है, जब भगवान् गाय चराने वृन्दावनमें पधारते हैं, उनका एक-एक क्षण युगोंसे भी कठिन हो जाता है । स्मरणावस्थामें साधक सांसारिक अवस्थाको विस्मृत कर बैठता है । अतः तीनोंका वैशिष्ट्य ज्ञान मार्मकी साधना पद्धतिसे मेल खानेसे और भी बढ़ जाता है ।

---

१. भा० ११, ५, ३७ ।

श्रीमद्भागवत महापुराणका प्रधान उद्देश्य नैष्कर्म्य भक्तिका प्रतिपादन है। पुराणोंके दस लक्षण सर्ग-विसर्ग-स्थान-पोषण ऊति-मन्वन्तर-ईशानुकथा-निरोध-मुक्ति और आश्रयका विवेचन इसमें सम्यक् प्रतिपादित है। मुख्य विवेच्य आश्रय तत्त्व है, उसीके सन्दर्भमें सर्गादि ९ का विवेचन है। सगुण साकार रूप आश्रयका निरूपण दशमस्कन्धमें तथा निर्गुण निराकार आश्रयका निरूपण द्वादशस्कन्धमें हुआ है। ब्रह्मके आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक तीनों रूपोंकी व्याख्या भागवतमें की गई है अथवा ब्रह्मसूत्रके ब्रह्म, गीताके पुरुषोत्तम और भागवतके श्रीकृष्ण भेद शून्य हैं।[1] ईश्वर, जीव, जगत् और माया सभीकी व्याख्या भागवतमें वर्णित है। इस महापुराणमें दर्शनोंके प्रमुख विवेच्य आरम्भवाद, विवर्तवाद और परिणामवाद तीनोंकी संगति इसमें उपलब्ध है। भागवतके आदि मध्य-अन्तमें भक्तिका ही वैशिष्ट्य है, स्पष्ट ही भागवतकार भक्तिके उत्कर्षको दिखाकर मनुष्यकी चित्तवृत्तिको उस ओर ले जानेमें सफल हुआ है। पराभक्ति और परमज्ञान दोनोंका एकत्व भागवतकारने सिद्ध किया है, जो अध्यात्म क्षेत्रमें उसकी विशिष्ट देन मानी जा सकती है, कारण यह है कि भक्तिकी पराकाष्ठा ज्ञान है, और ज्ञानकी पराकाष्ठा भक्ति है, अतः दोनोंकी पराकाष्ठा अवस्थामें दोनोंका ऐक्य सिद्ध है। अन्य शास्त्र जो अध्यात्म क्षेत्रमें आते हैं, या तो ज्ञानका वर्णन करते हैं, या केवल भक्तिका किन्तु भागवतकारने इस द्वन्द्वको समाप्त कर एक क्रान्ती की है। माहात्म्यमें ही भक्तिको ज्ञान-वैराग्यकी माता घोषित किया है, जो उसके क्रान्तिकारी चरणका द्योतक है। साथ ही यह भी स्पष्ट है कि प्रेम लक्षणाभक्तिका जैसा सुन्दर स्पष्ट विवेचन श्रीमद्भागवत में है, वैसा न भगवद्गीतामें है, न शाण्डिल्य भक्ति सूत्रादि ग्रन्थों में।

भक्ति सहित ज्ञानका निरूपण करके भागवतकारने भारतीय आध्यात्मिक क्षेत्रके पथिकोंको एक दिव्य चक्षुः प्रदान की है, जो सर्वदा उस तत्त्वका दर्शन कराकर अमृतत्वकी ओर प्रेषित करती रहेगी।

श्रीमद्भागवत भक्ति और ज्ञानका प्रतिपादन करनेवाला आध्यात्मिक ग्रन्थ है, इसके आंशिक सिद्धान्तोंको वैष्णव सम्प्रदायोंने ग्रहण किया है। आचार्य रामानुजके ग्रन्थोंमें भागवतका प्रभाव देखा जा सकता है। वीरराधवाचार्य नामक इसी सम्प्रदायके विद्वान् टीकाकारने अपनी भागवतचन्द्रचन्द्रिका टीकामें इसे पंचम वेद कहकर सम्मान दिया है। भागवतको ब्रह्मसूत्रोंकी व्याख्या लिखा है।

---

१. भा० १, २, ११।

निम्बार्क सम्प्रदायमें प्रेमलक्षणा भक्तिकी प्रमुखता है, जो भागवतकारकी देंन है। मध्वाचार्यने अपने ग्रन्थ 'भागवततात्पर्यनिर्णय' में सर्व प्रथम भागवतके रहस्योंका उद्भावन किया, इनके अनुयायी आचार्य विजयध्वजकी पदरत्नावली टीका भागवतकी टीकाओंमें अपना विशिष्ट स्थान रखती है।

चैतन्य महाप्रभुके संप्रदायमें जितने भी भक्तिपरक ग्रन्थ लिखे गये, सबका मूल श्रीमद्भागवत ही है।

शुद्धाद्वैत संप्रदायाचार्य वल्लभ सम्प्रदायका प्रेरणा स्रोत भागवत महापुराण है। प्रस्थान चतुष्टयीमें सर्वप्रथम आचार्य वल्लभने श्रीमद्भागवतको स्थान देकर इसके आध्यात्मिक महत्त्वको आगे बढ़ाया, समझाया। उन्होंने स्वयं भारतमें भ्रमण करके इसका प्रचार और प्रसार किया था। वैष्णव धर्ममें प्रेम और शृङ्गारका शास्त्रीय ढंगसे समावेश करनेवाला ग्रन्थ श्रीमद्भागवत पुराण है। भागवतसे प्रेरणा लेकर व्रजभाषामें सबसे अधिक प्राणवान् साहित्यकी सर्जना वल्लभ सम्प्रदायके कवियोंने की। तेलगुका कृष्णपरक भक्ति साहित्य भागवत साहित्य ही है।[1]

मलयालमके एलुत्तच्छनका 'भागवतम्', कन्नडके प्रसन्नवेंकटदासका दशम पद्यानुवाद, महाराष्ट्रमें कवीश्वरका एकादशस्कन्ध, गुजराती नरसिंह मेहताके पद, उड़ियामें पंचसखा साहित्य, असमियामें शंकरदेवका भागवतपुराण, बंगलामें मालाधर वसुका भागवतानुवाद प्रसिद्ध ग्रन्थोंमें गिने जाते हैं। इस प्रकार भागवतका आध्यात्मिक प्रभाव न केवल संस्कृत साहित्य तक ही सीमित रहा, अपितु विभिन्न प्रान्तीय भाषाओंमें अथवा भारतकी आत्मामें घुल-मिल गया और अपनी अमिट छाप छोड़ गया, जो शताब्दियोंसे ज्योंकी त्यों सुरक्षित चली आ रही है।

भागवतकी इस विशेषताका मुख्य कारण यही है कि उसमें जिस दर्शन और भक्तिके सिद्धान्तोंका प्रतिपादन हुआ है, वे समन्वयात्मक हैं, तथा मौलिक हैं। यह भी कहा जा सकता है कि सम्पूर्ण भक्ति आन्दोलनकी पृष्ठभूमिमें एकमात्र भागवत पुराण ही वैष्णवोंका प्रेरणा स्रोत रहा है। भारतवर्षकी आध्यात्मिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक एकतामें भागवत पुराणका योगदान जितना श्लाघनीय रहा है, उतना अन्य किसी एक ग्रन्थका नहीं।

अर्थोऽयं ब्रह्मसूत्राणां का विवेचन—

पाराशर्य मुनिः पुराणनिचयं वेदार्थ सारान्वितम्

स्त्री शूद्रप्रतिबोधनाय च विदां वेदान्त शास्त्रं मुदे।

---

१. भागवतदर्शन-हरिवंशलाल पृ० भूमिका ङ।

श्रीगीतावचसां विधाय विवृतिं ज्ञान प्रदीप प्रभा
लोकैर्लोकमतिं समुज्ज्वल रुचि लोके कृतार्थां दधौ ।।
वेदं प्रमथ्य जलधिं मति मन्दरेण
कृष्णावतार ! भवता किलभारताख्या ।
येनोदहारि जनतापहरा सुधावै
तं सर्व वैदिक गुरुं मुनिमानताः स्मः ।।
वेदान्तसूत्र महिमा किमु वर्णनीया
मुक्त्यानिरीश्वर मतानि निरस्य सम्यक् ।
संस्थाप्य सेश्वर मतं श्रुतिभिः कृता य-
ल्लोका हरेर्भजनतः सुख मुक्ति भाजः ।।[1]

ब्रह्मसूत्रके रचयिता वेदव्यास हैं, इन्हींका एक नाम बादरायण है, अतः इन्हें बादरायणसूत्र भी कहा जाता है। ब्रह्मसूत्र रचनाके सम्बन्धमें एक आख्यायिका स्कन्दपुराणमें आती है :—[2]

द्वापर युगमें जब वेद समूह समाप्त प्राय हो गया था, तब चार्वाक, बौद्ध, कपिल प्रभृतिने वेद वाक्योंका अपनी मतिके अनुसार अर्थ करके लोकको परमार्थके मार्गसे च्युत करनेका प्रयास किया। इस अनर्थको देखकर देवगण हरिकी शरणमें गये और इस अनर्थ निवारणकी प्रार्थनाकी, तब भगवान्ने कृष्णद्वैपायनके रूपमें अवतार लिया। व्यासने दुष्ट मत निराकरणके लिये चतुरध्यायी ब्रह्मसूत्र या उत्तरमीमांसाका आविष्कार किया। वेदान्तसूत्रके और भी कई नाम हैं—१. ब्रह्मसूत्र, शारीरक सूत्र, व्याससूत्र, बादरायणसूत्र, उत्तरमीमांसा एवं वेदान्तदर्शन। चैतन्य महाप्रभुको 'वेदान्त सूत्रनाम प्रिय था, जैसा कि उन्होंने स्वयं लिखा है :—

प्रभूकहे, वेदान्तसूत्र ईश्वरवचन, व्यासरूपे कैल ताहा श्रीनारायण।

भ्रमप्रमाद विप्रलिप्सा करुणापाटव, ईश्वरेरवाक्ये नाहि दोष एई सब।

(चै० च० आदि ६, १०६-१०६)

भगवद्गीतामें भी ऐसा लिखा है :—"**वेदान्तकृद्वेदविदेव चाहम्**" (गीता १५, १५) वेदान्त शब्दका अर्थ है, वेदका अन्त—चरमसिद्धान्त।

---

१. वेदान्तसूत्र भक्तिरूपसिद्धान्तों-सारस्वती गौडीय मिशन प्रतिष्ठान (बंगला)

२. स्कन्दपुराण।

श्रीश्रीलप्रभुपादने महाप्रभुके उक्त वाक्यकी व्याख्यामें लिखा है कि''''वेदान्त शब्दकी व्याख्यामें हेमेन्द्र कोषकारका मत यह है—ब्राह्मणोंके सहित उपनिषत् अंश ही वेदान्त या वेदावशिष्ट या वेदशेष भाग है, अर्थात् वेदसमूहका ही अन्त वेदान्त हैं। वेदका चरमोद्देश्य जिस शास्त्रमें प्रदर्शित हुआ है, उसे ही वेदान्त कहते हैं।

वेदान्त सूत्र प्रस्थानत्रयमें 'न्यायप्रस्थान' के नामसे भी पुकारा गया है। उपनिषद्, श्रुतिप्रस्थानमें एवं गीताभारत-पुराणादि स्मृतिप्रस्थानके गिने जाते हैं। वेदका अर्थ—वेदान्तमें वेद शब्द प्रथम आया है; यह शब्द विद् धातुसे बना है। यह कर्मवाच्य धातु है, इससे अल् प्रत्यय होकर वेद शब्द निष्पन्न होता है। विद् धातुके अन्य अर्थ भी हैं—

वेत्ति वेद विदि ज्ञाने वित्तेविदि विचारणे
विद्यते विदि सत्तायां लाभेविन्दति विन्दते।

साधारणतः विद् धातुका अर्थ ज्ञान या अनुभव "**वेदयति धर्मं ब्रह्म च वेदः**" अर्थात् जो शास्त्र-धर्म और ब्रह्म तत्त्वको बताता है, उसे वेद कहते हैं। श्रीजीवगोस्वामीने भी वेद शब्दपर विचार करते हुए लिखा है :—"**यश्चानादित्वात् स्वयमेव सिद्धः स एव निखिलैतिह्य मूलरूपो महावाक्यसमुदायः शब्दोऽत्रगृह्यते-स च शास्त्रमेव, तच्चवेद एव**। फलतः शब्दमय शास्त्रावतार ही वेद है। वेदके दो भाग हैं—एक अंशका नाम है, "संहिता" तथा दूसरेका नाम है ब्राह्मण। 'वेद' साधारणतः छन्दोमय है। छन्दोमय श्लोकको ही मन्त्र कहते हैं, तथा मन्त्रकी समष्टिका नाम सूक्त है। सूक्तोंकी समष्टिको ही संहिता कहा गया है। वेदके 'ब्राह्मण' भागमें यज्ञादिके मन्त्र तथा नियमोंका उल्लेख है, ब्राह्मण ग्रन्थ प्रायः गद्यलिखित हैं। इसके अतिरिक्त वेदके एक भागको 'आरण्यक' भी कहते हैं। वेदके चतुर्थ शेष अंशका नाम 'उपनिषद्' श्रुति या वेदान्त कहा जाता है। उपनिषदोंको वेदान्त कहनेका तात्पर्य यही है कि इसमें वेदका चरम सिद्धान्त निरूपित है।

उपनिषद् शब्दका अर्थ भी यही है :—"**ब्रह्मणः उपसमीपे निषीदति अनया इत्युपनिषद्**"[1] अर्थात् जिस शास्त्रके साहाय्यसे साधक, मुक्त होनेके लिये, भगवान्‌के समीपमें उपस्थित होनेमें समर्थ हो, उसे ही उपनिषद् कहते हैं।

---

१. सर्ब्बसंवादिनी-तत्त्वसन्दर्भ।

उपनिषद्—शब्द, उप उपसर्ग पूर्वक 'षद्लृ' धातुसे क्विप्‌प्रत्यय होकर निष्पन्न होता है। "**उपस्थितवात् ब्रह्मविद्यां निश्चयेन तन्निष्ठतया ये द्रष्टानुश्रविक विषयवितृष्णः सन्तः तेषां संसार बीजयस्यसद् विशरणकर्त्री शिथिलयित्री अवसादयित्री विनाशयित्री ब्रह्मनयत्रीति**"[1] वेद समुदाय श्रीनारायणके ही प्रश्वासोंसे उत्पन्न हुआ है। अतः वेदको अपौरुषेय कहा जाता है।

छान्दोग्य उपनिषद्‌में ऐसा लिखा है :—"**एतस्यवामहतो भूतस्य निःश्वसित-मेतद् यद् ऋग्वेदः**" स्वयं भगवान् श्रीकृष्णके शक्त्यावेश अवतार श्रीकृष्णद्वैपायन वेद-व्यासने वेद और वेदसार उपनिषदोंके तात्पर्यको लेकर ही ब्रह्मसूत्र या वेदान्त सूत्रकी रचना की है। सूत्रका तात्पर्य यह है :—

अल्पाक्षरमसन्दिग्धं सारवद्विश्वतो मुखम्।
अस्तोभमनवद्यं च सूत्रं सूत्रविदो विदुः॥[2]

श्रीधर स्वामीने ब्रह्मसूत्रकी व्याख्या इस प्रकार की है–"**ब्रह्म सूत्र्यते सूच्यते एभिरिति ब्रह्मसूत्राणि**" सांख्य–पातञ्जल, न्याय, वैशेषिक और पूर्व मीमांसा प्रभृति सकल ग्रन्थ, 'सूत्रकार'में ही ग्रथित हैं। श्रीवेदव्यासने अपने ब्रह्मसूत्र निर्माणमें अन्य ऋषियोंके मतोंको भी उद्धृत किया है। जिनके नाम इस प्रकार हैं—आत्रेय, आश्मरथ्य, औडुलोमि, कार्ष्णाजिनि, काशकृत्स्न, जैमिनि, वादरि। इससे यह सिद्ध होता है कि वेदव्याससे पूर्व ये महर्षि ब्रह्मसूत्रोंकी आलोचना कर चुके थे। श्रीवेदव्यास रचित इन्हीं ब्रह्मसूत्रोंको सम्पूर्ण आचार्योंने प्रामाणिक ग्रन्थके रूपमें स्वीकार किया है। इसे उत्तरमीमांसा तथा दर्शनशास्त्र भी कहा जाता है। दर्शन शब्दका अर्थ है, देखना, प्रत्यक्ष करना, अवलोकन करना, और साधन द्वारा वस्तुका साक्षात्कार करना, इसे ही दर्शन कहा जाता है। **फलतः** जिस शास्त्रके द्वारा परमेश्वरका साक्षात्कार या अनुभव करें, उसे दर्शन शास्त्र कहते हैं। इस दर्शनकी कथा उपनिषदोंमें प्राप्त होती है, "**आत्मा वा अरे दृष्टव्यः**"। इस तत्वज्ञान वा तत्त्वदर्शनका एकमात्र उपाय श्रीभगवान्‌की कृपा ही समझना चाहिये।[3]

वेदान्तसूत्रका अर्थज्ञान, परम कठिन है। विभिन्न लोकमें इसके विभिन्न अर्थकी सम्भावनाको देखकर श्रीनारद महर्षिकी प्रेरणासे, महर्षि वेदव्यासने ही इसका प्रथम भाष्य वनाया, यह भाष्य ही श्रीमद्भागवत पुराणके नामसे विख्यात है। यह बात गरुड़पुराण आदिसे भी स्पष्ट है—

---

१. चैतन्य चरितामृत आदि लीला-२ य परि० टीका-प्रभुपाद।
२. क—स्कन्द पुराण। ३. यमेवैष वृणुते तेन लभ्यः, कठो० २, २३।

"भाष्योऽयं ब्रह्मसूत्राणां भारतार्थ विनिर्णयः।"
गायत्री भाष्य रूपोऽसौ वेदार्थपरिवृंहितः॥

श्रीमहाप्रभु एवं उनके अनुयायी गौडीयवैष्णवगण भी इसको ही प्रमाण मानते हैं। वेदान्तका अकृत्रिम भाष्य भागवत है, ऐसा उनका निर्णय है।

कालान्तरमें वेदान्तसूत्रके अनेक भाष्य हुए हैं। श्रीरामानुज, श्रीमध्व, श्रीविष्णुस्वामी और निम्बादित्य प्रमुख सात्वत वैष्णवाचार्योंके भाष्य तो अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। श्रीरामानुजके भाष्यका नाम 'श्रीभाष्य' है। इन्होंने विशिष्टाद्वैत मतवादका प्रचार अपने भाष्य द्वारा किया। "चित् और अचित् विशिष्ट ब्रह्मका एकत्व ही विशिष्ट अद्वैततत्व है, श्रीरामानुजके पश्चात् उनके परवर्ती शिष्योंने भी भाष्योंकी टिप्पणी की है।

श्रीमध्वाचार्यकृत भाष्यके तीन भाष्योंका परिचय मिलता है— १. ब्रह्मसूत्रभाष्य, अनुव्यानम्, अनुभाष्यम्। श्रीवेदव्यासने मध्वको प्रत्यक्ष दर्शन दिया था, और इन्हें भाष्यकी प्रेरणा दी थी। इनके मतमें जीव और ईश्वरमें भेद है। तथा जीव और जीवमें भी भेद है। ईश्वर और जड़में भी भेद है। श्रीमध्वाचार्यके परवर्ती अनुयायी आचार्योंने विपुल रचना द्वारा केवल द्वैतवादका खण्डन किया है।

श्रीविष्णुस्वामी रचित भाष्यका नाम "सर्वज्ञसूक्ति' है, इन्होंने शुद्धाद्वैतवादका प्रचार किया। श्रीवल्लभाचार्यने इसी मतका प्रतिपादन व प्रसार किया था। श्रीश्रीधरस्वामी इसी मतके प्रसिद्ध आचार्य हुए हैं। श्रीधरस्वामीको "केवलाद्वैतवादका" मानना भ्रम है। भक्तिरक्षक श्रीधरस्वामिपाद श्रीनृसिंहके सेवक थे। श्रीधरस्वामीकी कृतिकी प्रामाणिकताके सम्बन्धमें एक आख्यायिका आती है, कि एक बार श्रीधरस्वामीने अपनी कृति विश्वनाथके मन्दिरमें काशीमें रखी तो श्रीविश्वनाथके हस्ताक्षर इस प्रतिपर मिले जिसमें निम्न श्लोक लिखा था—

अहं वेद्मि शुकोवेत्ति व्यासोवेत्ति वा नवा।
श्रीधरः सकलं वेत्ति श्रीनृसिंहप्रसादतः॥

श्रीधरकी भावार्थ दीपिका टीका, तथा गीताकी टीका सर्वजगप्रसिद्ध है। श्रीचैतन्य तो श्रीधरके बड़े ही भक्त थे। एकबार श्रीवल्लभाचार्यसे उनका संवाद हुआ, तो वल्लभने श्रीधरके खंडनकी बात कही थी चैतन्यने कहा जो श्रीधरको नहीं मानता, उसे हम वैश्यासे अधिक नहीं मानते :—प्रभुयसकहे—"**स्वामी ना माने येई जन वेश्यारामतरे भावे करिये मनन**" (चै० च० अन्त्य ७, १०९-१११) "श्रीचैतन्यने ऐसा शब्द कहा यह कहना उन जैसे आचार्यके अनुरूप नहीं है।" प्रक्षिप्त हो सकता है।

श्रीनिम्बार्काचार्यने भेदाभेदका प्रचार किया। इनके भाष्यका नाम "वेदान्त पारिजात सौरभ" है, इनके मतानुसार ब्रह्म, जीव और जगत् स्वरूपतः और धर्मतः भिन्न-भिन्न हैं। यह भेद और अभेद समभावसे सत्य, नित्य और अविरुद्ध है।

पूर्वोक्त वैष्णवाचार्य चतुष्टयके अतिरिक्त श्रीशंकर आचार्यका 'शारीरक भाष्य' नामसे एक भाष्य है। आजकल भारतमें इसका प्रचलन ही सर्वाधिक है। इनके मतवादका नाम "केवलाद्‌वैतवाद है।" इनके द्वारा विवर्तवाद मायावाद, अनिर्वाच्यवाद, निर्विशेषवाद प्रभृति नामोंका प्रचार किया गया। इनके मतानुसार एकमात्र सत्य बस ब्रह्म ही है। 'ब्रह्म' निर्गुण, निर्विशेष और निष्क्रिय है। जीव और जगत् ब्रह्मका ही विवर्तमात्र है। इनके सम्बन्धमें यह श्लोक प्रसिद्ध है—

"श्लोकार्द्धेनप्रवक्ष्यामि यदुक्तं ग्रन्थकोटिभिः।
ब्रह्मसत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापरः॥

श्रीचैतन्यमहाप्रभुने श्रीसार्वभौमके लिये यह कहा था—

जीवेरनिस्तार लागिसूत्र कैलन्यास।
मायावादि भाष्य श्रुतिते हय सर्व नाश॥

परिनामवाद व्यास सूत्रेर सम्मत।
अचिन्त्य शक्ति ईश्वर जगद्रूपे परिणत॥

मनियैछे अविकृते प्रसवे हेमभार।
आमद्रूपहय ईश्वर तद् अविकार॥

आर ये ये किछू कहै सकलेई कल्पना
स्वतः प्रमान वेद वाक्ये नाकरिये लछना।

आचार्येर दोष नाहि ईश्वर आज्ञा हईल
अतएव कल्पना करि नास्तिक-शास्त्र कैल॥

पद्‌मपुराणमें भी ऐसा निर्देश है कि आचार्य शंकरको ईश्वरने ही प्रेरणा दी थी, कि मनुष्योंको मुझसे विमुख करो, जिससे यह सृष्टि उत्तरोत्तर बढ़े—

स्वागमैः कल्पितैस्त्वं च जनान् मद्विमुखान् कुरु।
मांच गोपय येनस्यात् सृष्टिरेषोत्तरोत्तरा"॥[1]

---

१. पद्‌मपुराण उत्तरखण्ड सहस्रनाम कथन ६२ अ० ३१ श्लो०।

मायावादमसच्छास्त्रं प्रच्छन्नं बौद्धमुच्यते
मयैव विहितं देवि कलौ ब्राह्मण मूर्तिना ।।[1]

× × × ×

जीवतत्त्व शक्ति कृष्ण तत्व शक्तिमान्
गीता विष्णु पुराणादि ताहाते प्रमान ।। (चै० च०)

चैतन्य यह भी स्वीकार करते हैं, कि शंकर शिवरूप थे, और भगवान् श्रीकृष्णकी आज्ञासे अवतरित हुए थे, शंकर स्वयं परमवैष्णव थे। यमुनाष्टक, गोविन्दाष्टक, गोपीगण महिमा, कृष्णलीला विष्णु सहस्रनामभाष्य तथा गीता टीकासे भी इनका परम वैष्णवत्व स्वतः सिद्ध है, किन्तु उनके भाष्य पठनको श्रीचैतन्यने सर्वनाश करनेवाला माना क्योंकि वे यह मानते थे कि आचार्यशंकर प्रच्छन्न बौद्ध थे।

---

१. चै० चरि० मध्य ६, १६६।१८२।

वेदान्त दर्शन (ब्रह्म सूत्र) के प्रधान विषयों की सूची

प्रथम पाद—में यह सिद्ध किया है कि ब्रह्म ही जगत् का अभिन्न निमित्त उपादान कारण है, जड़ प्रकृति नहीं। आनन्दमय शब्द परमात्माका वाचक है आकाश, प्राण, गायत्री, ज्योति नामसे परब्रह्मका वर्णन है।

द्वितीय पाद—में परब्रह्मकी उपास्यता सिद्ध करते हुए जीवात्माकी उपास्यताका निराकरण किया है। परमात्मा सबके हृदयमें रहता है किन्तु सुख दुःखोंका भोग नहीं करता। हृदयमें जीवात्मा और परमात्मा दोनों ही रहते हैं। अदृश्य भी ब्रह्म है प्रकृति या जीव नहीं। सर्व व्यापी परमात्माको देशविशेषसे सम्बद्ध बतलानेका रहस्य भी लिखा है।

तृतीय पाद—में लिखा है कि पृथिवी और द्युलोकका आधार ब्रह्म ही भूमा है। दहराकाशब्रह्म है। अंगुष्ठमात्र पुरुष ब्रह्मरूप है ब्रह्मविद्यामें देवताओंका भी अधिकार है, वेदविद्यामें शूद्रका अधिकार नहीं है।

चतुर्थ पाद—में सांख्यके अव्यक्त शब्दकी व्याख्या और उसको शरीर वाचकत्व सिद्ध किया है। वेदोक्त प्रकृति स्वतंत्र नहीं है, सांख्योक्त २५ तत्वोंका वर्णन श्रुतिमें है, इस मान्यताका खंडन। ब्रह्मकी अभिन्न निमित्तोपादान कारणताका निरूपण।

द्वितीयाध्याय

प्रथम पाद—में सांख्योक्त प्रधानको जगत्का कारणत्व माननेका खंडन, ब्रह्म और जगत्का एकत्व प्रतिपादन, जगत्की रचनाका क्रम, संकल्प मात्रसे सृष्टिका कथन, जीवों और उनके कर्मोंकी अनादि सत्ताका प्रतिपादन है।

द्वितीय पाद में—सांख्योक्त प्रधान कारणवादका खंडन, वेशेषिकोंके परमाणु-कारणवादका निराकरण, बौद्ध मतका खण्डन, जैन और पाशुपतमतका खण्डन, पांचरात्र आगमकी प्रामणिकताका कथन है।

तृतीय पाद में—सृष्टि वर्णन। आकाश, वायु, तेज, जल, पृथिवीकी उत्पत्तिसे ब्रह्म ही कारण है। प्रलय क्रमका कथन इन्द्रियोंकी उत्पत्तिमें क्रम विशेषका अभाव प्रतिपादन जीवके जन्म-मृत्यु वर्णनकी औपचारिकता तथा जीवात्माकी नित्यता अन्तःकरण सम्बन्धसे विषयोंके अनुभवका प्रतिपादन है। जीवात्माका कर्तापन शरीर सम्बन्ध से है। जीवात्मा, ईश्वरका अंश है। जीव और ब्रह्मके अंशांशिभावको औपाधिक माननेमें संभावित दोषोंका उल्लेख है।

चतुर्थ पाद—परमात्मासे इन्द्रियोंकी उत्पत्तिका कथन। 'इन्द्रिय' हैं ज्योति तत्वोंका अधिष्ठाता ब्रह्म और शरीरका अधिष्ठाता नित्य जीवात्मा है। ब्रह्मसे ही नाम रूपकी रचनाका कथन।

तृतीय अध्याय

प्रथम पाद—जीवका सूक्ष्म तत्त्वसहित देहान्तर गमन। जलमें सभी तत्वोंके संमिश्रणका कथन। जीव स्वर्गमें कर्म संस्कारोंको साथ लेकर लौटता है, नरकयातना स्वेदज जीवोंका उद्भिज्जमें अन्तर्भाव। स्वर्गसे लौटे हुए जीवका आकाश, वायु, धूम, मेघ, धान, जो आदिमें स्थित होते हुए गर्भमें आना वर्णित है।

द्वितीय पाद—स्वप्न मायामात्र और शुभाशुभका सूचक है। जीवका अनादि बन्धन और मोक्ष भी परमात्मासे है। जीवके दिव्य गुणोंका तिरोभाव देहके सम्बन्धसे है। सुषुप्तिमें जीवकी नाडियोंमें स्थिति, मूर्च्छाकालमें अधूरी सुषुप्तावस्था, परमात्माका किसी भी ध्यान दोषसे लिप्त न होना, परमेश्वरका निर्गुण निर्विशेष एवं सगुण सविशेष लक्षण युक्त होना, परमात्माका अपनी शक्तियोंसे अभेद और भेद शरीर आदिके सम्बन्धसे जीवोंके परस्पर भेद, कर्मफलदाता ईश्वर है कम नहीं वर्णित है।

तृतीय पाद—वेदान्त वर्णित ब्रह्मविद्याओंकी एकता। ब्रह्मके 'आनन्द' आदि धर्मोंका अन्यत्र अध्याहार, ब्रह्मविद्याके फल वर्णनमें हानि, ब्रह्मलोक जाने वालोंका देवयान मार्गसे गमन, ब्रह्मविद्यासे मुक्ति होती है कर्मसे नहीं। नास्तिकमत खण्डन। यज्ञांग सम्बन्ध उपासनाओंमें समुच्चयका खण्डन है।

चतुर्थ पाद—ज्ञानसे ही परम पुरुषार्थकी सिद्धि। विद्या कर्मका अंग है इस जैमिनिके मतका उल्लेख। उपनिषद् वर्णित कथाऐं विद्याका ही अंग है, ज्ञानीको आश्रम कर्म अनुष्ठान आवश्यक है। भागवत धर्मकी महत्ता, ब्रह्मविद्याका सभी आश्रमों में अधिकार। 'मुक्ति' इस जन्ममें या जन्मान्तरमें होती है इसका अनियम प्रतिपादन है।

चतुर्थ अध्याय

प्रथम पाद—ब्रह्मविद्याका निरन्तर अभ्यास, आसन पर बैठकर उपासनाका विधान, प्रारम्भ कार्यका नियत समय तक रहना। ज्ञानीके लिये विहित कर्मोंका विधान। प्रारम्भका भोगसे नाश होने पर ज्ञानीको ब्रह्मकी प्राप्ति।

द्वितीय पाद—उत्क्रमण कालमें जीवकी स्थिति, अज्ञानी जीवकी परब्रह्ममें स्थिति। सूक्ष्म शरीरका वर्णन। जीवका सुषुम्णानाडी द्वारा निष्क्रमण, सूर्य रश्मिमें स्थित होना। योगीके काल विशेषका नियम।

तृतीय पाद—ब्रह्मलोकमें जानेके लिये अर्चि आदि मार्गका कथन। ब्रह्मलोकमें कार्यं ब्रह्म, परब्रह्मकी प्राप्ति विचार। प्रतीकोपासना।

चतुर्थ पाद—इसमें विशुद्ध आत्म स्वरूपकी प्राप्ति। विभिन्न विचार। उपासकों के शरीरका विचार। इच्छानुसार शरीर धारणका प्रतिपादन। मुक्तात्माको निर्विकार ब्रह्मरूप फलकी प्राप्ति। ब्रह्मलोकसे पुनरावृति नहीं होती इसका प्रतिपादन है।

उप० (क) "अर्थोऽयं ब्रह्मसूत्राणां" का विवेचन

श्रीमद्भागवत ब्रह्मसूत्रका अकृत्रिम भाष्य है। वेद अपने तीन काण्डोंके लिये प्रसिद्ध है, जिन्हें-ज्ञानकाण्ड-कर्मकाण्ड-उपासनाकाण्ड कहते हैं। ज्ञानकाण्डमें ब्रह्मतत्व का प्राधान्यतः विवेचन है। ज्ञानकाण्डका सिद्धान्त ब्रह्मसूत्रोंमें अल्पाक्षरोंमें समुदिद्ष्ट है, जब ब्रह्मसूत्रोंकी कदर्थना प्रतीत हुई तब व्यासने उसके भाष्यका प्रकाश किया। सम्बन्ध-प्रयोजन और अभिधेयके तीन विषय भागवतमें दृष्टिगोचर हैं, मूल वाच्य तत्त्व सम्बन्ध है, मूल प्राप्त तत्व—प्रयोजन है। प्रयोजन प्राप्ति अन्य कर्तव्य तत्वका निर्धारण ही अभिधेय है।

ब्रह्मसूत्रोंके प्रथमसूत्र[१] **"जन्माद्यस्ययतः"** की व्याख्यामें बलदेव विद्याभूषणने कृष्णको सूत्रोंका प्रतिपाद्य लिखा है, भागवतमें पारमार्थिक वस्तुको प्रतिपाद्यत्व माना है **'वेद्यं वास्तवमत्र वस्तु शिवदम्"**[२] परम तत्त्व अद्वय एवं अखण्ड-ज्ञानके नामसे अभिहित किया है परन्तु वह त्रिविध रूपसे प्रकाशित है-**ब्रह्म-परमात्मा-भगवान्**।

वदन्ति तात्वविदस्तात्वं यज्ज्ञानमद्वयम्
ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते॥ भा. १/२/११

यह अखण्ड तत्वका त्रिविध प्रकाश ही कृष्ण है, एवं यही भागवतका मुख्य प्रतिपाद्य है। ब्रह्म सूत्रोंका यथारूपमें भागवतमें बहुधा उल्लेख भी उनके स्पष्ट प्रभावका द्योतक है, शब्दतः साम्य एवं अर्थतः साम्य पूर्वाध्यायमें लिखा गया है। **'अर्थोऽयं ब्रह्मसूत्राणाम्'**[३] भागवतके लिये ही लिखा गया है, अन्य पुराणोंके लिये ऐसा कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं है, और न किसी अन्य पुराणके बारेमें किसी आचार्य ने ही कोई प्रमाण दिया है। ब्रह्मसूत्र के–**'साम्पराये'** शब्दका अर्थ प्रेम है[४] भागवतमें **'मयिनिर्बद्धहृदया'** में लिखा है कि प्रीति-भक्ति ही भगवान्को वश करनेमें समर्थ

---

१. **ब्रह्मसूत्र** १,१,२

२. **भाग०** १,१,२

३. **गरुड़पुराण**

४. **ब्रह्मसूत्र** ३,३,२८

है। ब्रह्मसूत्र ३,२ में अभिधेय आलोचनाके उपक्रममें बलदेवने कृष्ण विषयक अनुराग के हेतु रूप भक्ति (साधन भक्ति) का प्राधान्य स्वीकार किया है।[२] भागवतमें **"स्मरन्तः स्मारयन्तश्च"** में साधनभक्तिसे प्रेम भक्तिके उदयकी ओर निर्देश किया है।[३] भागवतमें ब्रह्मसूत्र प्रभावका स्पष्ट निर्देश भी प्राप्त है—[४] **सर्ववेदान्त सारं हि श्रीमद्भागवतमिष्यते** ।। इससे भागवतका ब्रह्म सूत्रोंका भाष्य कहना उचित ही है।

उपसंहार (ख)

श्रीमद्भागवतका उत्तरवर्ती संस्कृत साहित्य पर प्रभाव

विश्वके समस्त धार्मिक वाङ्मयमें भारतवर्षके वाङ्मयका विशिष्ट स्थान है। मानव मात्रके कल्याणकी कामना ही नहीं अपितु चींटीमें जगत्के कल्याणका चिन्तन भारतीय साहित्यकी विशेषता है, ऐसे साहित्यमें श्रीमद्भागवत पुराणका नाम सर्वोपरि है। शताब्दियोंसे इस रस भरे, तत्त्वभरे पुराण रत्नने अज्ञानान्ध जीवोंको मार्ग दिखलाया और संसार अनलसे दग्धोंकी शुष्क हृत् कलिकाको सरल बनानेका प्रयास किया है। दर्शनके चिन्तकोंने भागवतके ब्रह्म-जीव-जगत्की विवेचना पद्धतिको अंगीकार किया और उनके अनुयायियोंने अपने गौरवपूर्ण ग्रन्थोंमें उसे समलंकृत कर स्वयंको गौरवान्वित बनाया। एक बल्लभ सम्प्रदायको ही देखें तो भागवतसे अनुप्राणित शतशः ग्रन्थ हैं, गौडीय सम्प्रदायके तो विभिन्न रसमय काव्यग्रन्थ जिनमें नाटक-चम्पू महाकाव्य आदि है भागवतसे अनुप्राणित किंवा आश्रित हैं। चम्पुओंमें गोपाल चम्पूने तो देशमें अत्यधिक ख्याति भी प्राप्तकी है इस प्रकार श्रीमद्भागवतने हमारे धर्म, दर्शन, साहित्यके सम्पूर्ण क्षेत्रोंको अपने तत्वरूप अमृतसे परिपूर्णकर दिया है, जिनके कण प्रसादसे मानव मानस हंस तृप्तिका अनुभवकर रहा है और सर्वदा करता रहेगा। यदि भागवतसे प्रभावित ग्रन्थों का परिचय दिया जाय तो निःसन्देह एक अन्य शोध ग्रन्थ ही निर्मित हो जायगा अतः यहाँ तो केवल उससे प्रभावित ग्रन्थोंकी तालिका देना ही पर्याप्त समझा है। सहज ही भागवतका वैशिष्ट्य इससे लक्षित हो सकेगा।

श्रीमद्भागवतका उल्लेख जिन ग्रन्थोंमें मिलता है

अग्निपुराण, अद्वैतानन्द सागर, अष्टाविंशति तत्व (रघुनन्दन), अहल्या

---

१. भागवत ६,४,६६

२. गोविन्द भाष्य ३,२

३. भागवत ११,३,३२

४. भागवत १२,१३,१२

कामधेनु (केशवदास) आचार रत्न (मनीराम दीक्षित), आन्हिक शेखर (नागोजि भट्ट) उत्तर गीता भाष्य (गौडपाद), कलिधर्म प्रकरण, काल दिनकर, कालनिर्णय (माधवाचार्य) कालनिर्णयदीपिका, कालनिर्णय विवरण-नृसिंहाचार्य, कूर्मपुराण, क्षीरनिधि, क्षेमेन्द्रप्रकाश, गरुड़पुराण, गीताभाष्य-अभिनवगुप्त, पूर्ण प्रज्ञदर्पण-श्रीमाधवाचार्य, प्रबोध सुधाकर-श्रीशंकराचार्य, प्रयोग पारिजात, ब्रह्मवैवर्तपुराण, भक्ति प्रकाश-वाचस्पति मिश्र, भक्तिसूत्र-शाण्डिल्य, भोजन प्रकरण, मत्स्यपुराण, मथुरा सेतु, महाराजीय, माठर वृत्ति (सांख्यकारिकाकी) रामतापिनी व्याख्या (नारायण), (आनन्दवन), ललित टीका (भास्कर राज), वराहपुराण, वामनपुराण, वासुदेवसहस्रनाम भाष्य-श्रीशङ्कराचार्य, विधान पारिजात-अनन्त भट्ट, विष्णु पुराण, विष्णुसहस्र नाम भाष्य-श्रीशङ्कराचार्य, वेदान्त तत्त्व सार-श्रीरामानुजाचार्य, व्यवहार मयूख-नीलकण्ठभट्ट, व्रत खण्ड-हेमाद्रि, शिवतत्व विवेक-अप्पय दीक्षित, शिवपुराण, श्राद्ध-मयूख-नीलकण्ठभट्ट, सम्वत्सर प्रदीप, संस्कारकौस्तुभ-अनन्तदेव, सच्चरित मीमांसा, सदाचार वृहस्पति व्याख्या, सार संग्रह-रामानुज, स्कन्दपुराण, स्मृति कौस्तुभ, स्मृत्यर्थ सागर,

श्रीमद्भागवतके टीकाकारोंके नाम

अन्वय-अप्पजी पंडित, अन्वय-बुक्कनपण्डित, अन्वय-वेंकट कृष्ण, अन्वय-बोधिनी कवि चूड़ामणिचक्रवर्ती (१५८० शाके), अमृत तरंगिणी-ज्ञानपूर्ण यति, अमृत तरंगिणी लक्ष्मीधर, आत्मप्रिया-नारायण **आन्ध्रा टीका**, एकादशस्कन्धसार-ब्रह्मानन्द भारती, एकादशस्कन्धसारसंग्रह-विष्णुपुरी, कृष्णपदी-राघवानन्द मुनि, कृष्णवल्लभ-आनन्द चट्टोपाध्याय, केरल भाष्य व्याख्या, क्रमसन्दर्भ-जीवगोस्वामी, क्रीडपत्रराज-केशव भट्ट, गणदीपिका-कृष्णदास, चित्सुखी-चित्सुखाचार्य, चूर्णिका-माधव, चूर्णिका तात्पर्य-माधव, चैतन्य चन्द्रिका, चैतन्यमत चन्द्रिका-श्रीनाथ पण्डित, चैतन्य मत मञ्जूषा,-श्रीनाथचक्रवर्ती, जय मंगला-श्रीनिवासाचार्य, जयोल्लास निधि-अप्सरा दीक्षित, टीकाकार संग्रह-उत्तम बोध यति, तत्त्वदीपिका-श्रीनिवास सूरी, तत्वप्रदीपिका, तत्वप्रदीपिका-नारायणयति, तत्वबोधिनी, तत्वबोधिनी-तात्पर्य टिप्पणी-जनार्दनभट्ट (माधव), तामिल टीका, तोषिण सार शङ्करनारायण शास्त्री, दीपिका सार संग्रह-काशीनाथ, तोषिणी सार, दुर्घट भावेदीपिका-सत्याभिनव तीर्थ (माध्व) **द्राविण टीका**-न्याय मञ्जरी-(श्रुति गीता व्याख्या), पदयोजना (वल्लभीय) बालकृष्ण-दीक्षित, पद योजना भवदास या भागवतदास, पदरत्नावली-विजयध्वज (माध्व), पदार्थ सरस, पथत्रयी व्याख्या-सदानन्द विद्वान्-परमहंस प्रिया-बोपदेव, प्रकाश-श्रीनिवास, प्रतिपदार्थ प्रकाशिका-शोभनाद्रि प्रबोधिनी, प्रहर्षणी, प्रेम मञ्जरी-

रामकृष्ण मिश्र, बालप्रबोधिनी (वल्लभ)-गिरिधर, वृहत्क्रमसन्दर्भ (गौड़ीय)-श्रीवृन्दावन, भक्तमनोरंजिनी-भागवतप्रसादआचार्य, भक्तरामा, बेंकटाचार्य, भक्तिदीपिका, जातवेद, भक्तिमती, भगवल्लीलाचिन्तामणि, भगवत्प्रसादसार-श्री हरिसूरि, भागवत कौमुदी, रामकृष्ण, भागवतगूढ़ार्थ दीपिका- धनपति सूरि, भागवत गूढार्थ रहस्य- भागवतानन्द गोस्वामी, भागवतचन्द्र चन्द्रिका (रामानुजीव)-वीरराघव भागवत टिप्पणी (गौड़ीय)-लोकनाथ चतुर्वेदी, भागवत तत्वसार (गौड़ीय)- राधा-मोहन शर्मा गोस्वामी, भागवततात्पर्यचद्रिका-बेंकटकृष्णमाधव, दीपिका-नृसिंह माधव, भागवत तात्पर्य निर्णय-श्री माधवाचार्य, भागवत तात्पर्यनिर्णयटिप्पणी-यदुपति आचार्य (माध्व) भागवतपुराण प्रकाश-प्रियादास, भागवत पुराणार्क प्रभा-हरिमानशुक्ला, भागवत मञ्जरी-गौतम कुलचन्द्रशर्मा (मुद्रित), भागवत लीला कल्पद्रुम (भागवत प्रथम श्लोक व्याख्या) ,भागवत विवरण, भागवत विवृति-यदुपति आचार्य (माधव), भागवतव्यख्या लेश- गोपाल चक्रवर्ती, भागवतसार-गोविन्दविद्या-विनोद, भागवत सारोद्धार-जयतीर्थ अवधूत, भागवतपिद्य व्याख्या शतक-बंशीधर शर्मा, भागवतार्थतत्व दीपिका-कौण्डिन्यभाष्यकार, सूरि, भागवतार्थ दीपिका-चक्रपाणि, भागवतार्थ रत्नमाला, भावनामुकुर-शुकमुनि, भावप्रकाशिका-नरसिंहाचार्य, भाव-प्रकाशिनी-रामनारायणमिश्र (भाव भावविभाविका गौड़ीय) भाव भाविका-रामनारायण मिश्र, भावार्थदीपिका-श्रीधरस्वामी, भावार्थदीपिका (क्रीडटिप्पणी)-ब्रह्मानन्दकिंकर, भावार्थ दीपिका टीका-चैतन्यवन, भावार्थ दीपिका दीपनी (गौड़ीय)-श्री राधारमण गोस्वामी, भावार्थदीपिकाप्रकाश-काशीनाथ उपाध्याय, भावार्थ-दीपिका भाव-शिवरमण, भावार्थदीपिका स्नेहपूरिणी-केशवदास, भावार्थ प्रदीपिका वा (श्रीधरोक्तावशिष्टार्थ) (१०, ११० स्क०), मुनिप्रकाश-वेदगर्भनारायण (माधव) (भागवत तात्पर्य टीकार्थ संग्रह) मुनिभावप्रकाशिका-कृष्णशुक, यादुपत्य विवृति-सत्यधर्मतीर्थ (माध्व), रसमञ्जरी, रासक्रीड़ाव्याख्या रासञ्चाध्यायीप्रकाश-पीताम्बर, वासना भाष्य (क्रमसन्दर्भे (१, १, १) उल्लेख, विद्वत्कामधेनु-(क्रमसन्दर्भे (१, १, १) उल्लेख, विवरण मणिमंजूषा, विवृति प्रकाश (वल्ल०)-विट्ठलदीक्षित, विशुद्धरसदीपिका-किशोरप्रसाद, विषमपदटीका, बुधरंजिनी-वासुदेव, वैष्णव तोषिणी (गौड़ीय)-श्रीबलदेवविद्याभूषण, बोधसुधा- विद्यासागरमुनि, बोधिनीसार, शुकतात्पर्य रत्नावली-वीरराघव, शुकपक्षीया (रामानुजीय)-सुदर्शनसूरि, शुकभावप्रकाशिका-सुन्दरराजसूरि, शुकहृदया-श्रीक्रमसन्दर्भे (१, १, १) उल्लेख, शुकहृदयरंजिनी-नरसिंह-सूरि, श्रुतिश्रुतिचंद्रिका-वैकट. संक्षिप्त श्रीवैष्णवतोषिणी (गौड़ीय)-जीवगोस्वामीपाद-श्रीवृन्दावन सज्जनहित-बेंकटादि, समर्थप्रकाशिका-शंकर, सम्वन्धयोक्ति (श्रीक्रमसन्दर्भे उद्धृत १, १, १, । १, १२, ३६-३१) सरला (रामानुजीय)-योगीरामानुजाचार्य,

सर्वार्थ प्रकाशिका, सर्वोपकारिणी, सारसंग्रह-ब्रह्मानन्द भारती,सारार्थदर्शिनी (गौड़ीय)-श्रीलविश्वनाथचक्रवर्ती, सिद्धान्तप्रदीप (निम्बार्कीय)-शुकदेवदास, सिद्धान्तार्थदीपिका-वैष्णवशरण, सुबोधिनी-वल्लभाचार्य, सुबोधिनी प्रकाश (वल्लभीय)-पुरुषोत्तम, हनुमद्भाष्य-क्रमसन्दर्भ (१, १, १) (उल्लेख)।

श्रीमद्भागवतके टीकाकारोंके नाम

(जिनके नाम हैं पर टीकाओंके नाम नहीं मिलते)

अप्पयदीक्षित (११ स्कन्ध), एकनाथ, कविकर्णपूरगोस्वामी, कृष्णभट्ट, कौरसाधू, चक्रचूड़ामणि जनार्दनभट्ट, जयराम, नारायण भट्ट निकुंजविलासी, नीलकण्ठमूरि, पुण्यारण्य (श्रीतत्वसन्दर्भ), भेदवादिनि, मधुसूदनआचार्य, महेश्वरतीर्थ, रामनारायण, वनमाली, वनमाली भट्ट, वामन, वासुदेव भट्ट, विजय तीर्थ, विष्णुस्वामी वेदनारायण, ब्रजभूषण, शंकरनारायणस्वामी, शिगराचार्य, श्रीनिवासाचार्य, सत्याभिनवतीर्थ।

श्रीमद्भागवतके सम्बन्धमें निबंधादि

अनुक्रमः—वोपदेव, आनन्दवृन्दावनचम्पू-कविकर्णपूरगोस्वामी, उद्धवसन्देश-श्रीरूपगोस्वामीपाद, कैवल्यदीपिका-हेमाद्रि, गोपालचम्पू-श्रीजीवगोस्वामीपाद, गोविन्द मंगल-दुःखी श्यामदास (गौड़ भाषा), जयोल्लासनिधि-अप्पयदीक्षित, तत्व सन्दर्भ-जीवगोस्वामीपाद, तन्त्रभागवतम्, दुर्जनमुखचपेटिका-रामाश्रय, परमात्म-सन्दर्भः-श्रीजीवगोस्वामीपाद, पाखण्डध्वंसनभास्कर-विश्वनाथसिंह देवराज, प्रीति सन्दर्भः-श्रीजीवगोस्वामीपाद, भक्तितरंगिणी-वैद्यनाथपायगुण्डि, भक्तिभागवतम्-अनन्तदेव, भक्तिरत्नावली-श्रीविष्णुपुरी, भक्तसन्दर्भः, भगवत्सन्दर्भः-श्रीजीव-गोस्वामीपाद, भगवान्नामकौमुदी, श्रीलक्ष्मीधर, भागवत कथा, भागवतकथासंग्रह (दशम)-केशवशर्मन्, भागवतचम्पू- अभिनवकालिदास, भागवत- तत्वदीपिका-श्रीवल्लभदीक्षित, भागवततत्वभास्करः-शिवप्रकाशसिंह, भागवतनिर्णय-सिद्धान्त-दामोदर, भागवत पुराणतत्वसंग्रह-रामानन्दतीर्थ, भागवत पुराण प्रसंग दृष्टावली, भागवत पुराण प्रामाण्यम्-विश्वेश्वरनाथ, भागवतपुराण मञ्जरी-रामानन्द- तीर्थ, भागवतपुराणस्वरूप शंकानिरासः-पुरुषोत्तममहाराज, भागवत पुराणाशयः-रामनन्दतीर्थ, भागवतभूषणम्-गोपालाचार्य, भागवत रहस्यम्, वृन्दावनगोस्वामी, भागवतवादितोषिणी भागवत विचारः- धरणीधरः, भागवतविचारः-शशिभूषण चक्रवर्ती,भागवत व्यवस्था (भागवत और देवी भागवत में विचार)-काशीराम केशवराम, भागवतशंका निवारणमंजरी-शिव-सहाय, भागवतशंकानिरासवादः-

पुरुषोत्तम, भागवतशरणम्, भागवतसंग्रहः, भागवत सन्दर्भ-श्रीजीवगोस्वामी, भागवतसार समुच्चयः,भागवत विजयवादः-रामकृष्ण, भागवतार्क मरीचिमाला, श्रीलभक्ति विनोदठाकुर।

निवन्ध और पद्यानुवाद

भागवतोत्पलः, मंगलार्थशतकम्-रामनारायण, मुक्ताफलम्-वोपदेव, मुक्ति-रत्नम्-कृष्णानन्द, विद्वद्विनोदिनी- अनूप नारायण तर्कशिरोमणि, श्रीकृष्णप्रेमतरंगिणी-श्रीरघुनाथ भागवताचार्य (गौड़ भाषा), श्रीकृष्ण मंगल-श्रीमाधवाचार्य (गौड़भाषा), श्रीकृष्णलीलास्तवः—श्रीसनातनगोस्वामीपाद, श्रीकृष्णविजय-श्रीमाताधर वसु (गौड़ भाषा), श्रीकृष्ण सन्दर्भः-श्रीजीवगोस्वामीपाद, संक्षेप भागवतामृतम्-श्रीरूप-गोस्वामीपाद, सिद्धान्त दर्पणम्-श्रीवलदेव विद्याभूषण, हरिचरित्रम्, हरिभक्ति तरंगिणी-केशव पंचानन भट्टाचार्य, हरिभक्तिमंजरी-वनमाली भट्ट, हरिलीला-वोपदेव, हरिलीला व्याख्या-हेमाद्रि, हरिलीला विवेक- मधुसूदन सरस्वती।

उपर्युक्त भागवतानुप्राणित साहित्यके अवलोकनसे यह निश्चत है कि श्रीमद्भागवतने संस्कृत साहित्यके भण्डारकी अनुपम वृद्धिकी है यदि इस साहित्य से संयुक्त ग्रन्थोंकी गणनाकी जाय तो सहस्रशः ग्रन्थों की तालिका निर्मित होगी। अतः श्रीमद्भागवत महापुराणने भारतवर्षकी अनुपमेय संस्कृत ज्ञान राशिको जो योगदान दिया है वह चिरस्थायी है तथा सर्वदा रसिकों, तत्वज्ञानों एवं काव्यरस-प्रेमियोंको यह ग्रन्थ, अपना अमृत रस प्रदान करता रहेगा। संस्कृतके भव्य भवनमें झांकने पर भागवतके जगमगाते शीतल प्रकाशकी किरणोंसे द्रष्टा अपनी चक्षुओंको आल्हादित करता रहेगा और अपने संतप्त मस्तिष्कमें अलौकिक शान्तिका अनुभवकरता रहेगा।

सहायक-ग्रन्थ-तालिका

प्रसिद्ध उपनिषद्

ईश
ऐतरेय
कठ
तैत्तरीय
छान्दोग्य
प्रश्न
वृहदारण्यक
मुण्डक
माण्डूक्य
श्वेताश्वतर
अल्पज्ञात उपनिषद्
वृहवृच्
सौभाग्य लक्ष्मी
कौषीतकि
वासुदेव
नारदपरिव्राजक
रामपूर्व तापनीय
गोपलपूर्व तापनीय
गोपालोत्तर तापनीय
नृसिंह पूर्व तापनीय
नृसिंह उत्तर तापनीय
त्रिपाद्विभूति नारायण
मुक्तक
राधिकातापनीय
राधा
ब्रह्मविन्दु

अल्पज्ञात उपनिषद्

नारायण
कृष्ण
कैवल्य
रुद्र हृदय
नील रुद्र
गर्भ
वज्र सूचिका
सुवाला
महोपनिषद्
बाष्कलमन्त्रोपनिषद्
१०८ उपनिषद् भूमिका

पुराण ग्रन्थ	**लेखक**
विष्णु पुराण	वेदव्यास
श्रीमद्भागवत	,,
मत्स्य पुराण	,,
पद्मपुराण	,,
ब्रह्मवैवर्तपुराण	,,
भविष्य पुराण	,,
अग्नि पुराण	,,
स्कन्द पुराण	,,
देवी भागवत	,,

भागवत टीका :—

भावार्थ दीपिका	श्रीधर स्वामी
भागवत चन्द्रिका	वीरराघवाचार्य
शुकपक्षीया	सुदर्शनसूरि
तात्पर्य निर्णय	श्रीमध्वाचार्य
पदरत्नावली	विजयध्वजाचार्य
सुबोधिनी	वल्लभाचार्य
सिद्धान्तप्रदीप	शुकसुधी
भक्तिहृदयरंजिनी	भगवत्प्रसाद
बालप्रबोधिनी	गो० गिरधरलाल
सारार्थ दर्शिनी	विश्वनाथ चक्रवर्ती
भागवत दीपिका दीपनी	राधारमण दास
क्रमसन्दर्भ	जीवगोस्वामी
अष्टादश पुराण दर्पण	ज्वालाप्रसाद
पुराण विमर्श	वलदेवउपाध्याय
पुराण तत्व समीक्षा	श्रीकृष्णमणि त्रिपाठी
भागवत दर्शन	डा० हरवंशलाल
भागवतके वैष्णवटीकाकारोंकी टीकाओंका विश्लेषणात्मक अध्ययन	डा० वासुदेवकृष्ण चतुर्वेदी
आद्यश्लोक व्याख्या	राधामोहन तर्क वाचस्पति

लघु भागवतामृत	रूपगोस्वामी
भगवद्गीता	वेदव्यास
महाभारत	वेदव्यास
पराशर स्मृति	पराशर
भगवत्सन्दर्भ	जी०
परमात्मसन्दर्भ	जी०
विष्णु सहस्रनाम	
शतपथ ब्राह्मण	
भक्ति चन्द्रिका	
भक्ति रसामृत सिन्धु	श्रीरूप०
भक्तिरसायनम	हरिसूरि
नारद भक्तिसूत्र	
भक्तिमीमांसासूत्र	
शिवार्कमणि दीपिका	

ब्रह्मसूत्र एवं वेदान्त ग्रन्थ

ब्रह्मसूत्र	वेदव्यास
श्रीभाष्य	आ० रामानुज
मध्वभाष्य	माध्वाचार्य
शारीरक भाष्य	आ० शंकर
अणु भाष्य	आ० बल्लभ
वेदान्त पारिजात	आ० निम्बार्क
गोविन्द भाष्य	आ० बलदेव विद्या भूषण
भागवतानुसारि	अज्ञात नाम, हस्तलिखित
ब्रह्मसूत्र भाष्य	
ब्रह्मसूत्र भाष्यरत्न प्रभा	
ब्रह्मसूत्र शांकर भाष्य	हनुमानदास षट् शास्त्री
भामती	वाचस्पति
तत्वटीका	
पंचपदिका	
पंचपदिका विवरण	
अद्वैतपंचरत्न टीका	

सिद्धान्तविचार   मधुसूदन सरस्वती

सप्रकाश अणुभाष्य   आ०वल्लभ

जयतीर्थटीका

प्रभुपाद विवृति

वासुदेवाध्यात्म

ब्रह्मसूत्र समालोचन   डा० रामकृष्णाचार्य

ब्रह्म सूत्रके वैष्णव भाष्योंका

तुलनात्मक अध्ययन   डा० रामकृष्णाचार्य

कोष ग्रन्थ-

अमरकोष

हेमचन्द्र कोष

शब्दरत्नावली कोष

शब्दकल्पद्रुम

अंग्रेजी

इन्डियन हिस्ट्री क्वाटर्ली

एशियाटिक रिसर्चेज

वसुमल्लिक लेक्चर   कलकत्ता

इन्ट्रोडक्सन टू वेदान्त   श्रीविश्वेश्वरानन्द

लेक्चर्स आन वेदान्त

लिटरेरी हिस्ट्री आफ इण्डिया

सिक्स सिस्टम आफ इण्डियन फिलासफी

क्रोनोली आफ एँन्सिट इण्डिया

जीवात्मन इन् दी ब्रह्मन् सूत्र

दी मैस्टिक फिलासफी आफ दी उपनिषद्

फिलासफी आफ दी उपनिषद्स्   पाल डायसन

इज गुड नोलेज   प्रो० जी० आर्य

Dogmas of the Budhism   ह्यम

Theogus of the Heodus

दी ब्रह्म सूत्राज् आफ बादरायण   बेलबेलकर

कल्याण   उपासना

,,   भक्ति अंक

,,   साधनांक

कल्याण	हिन्दूसंस्कृति अंक
,,	उपनिषद् अंक
,,	भागवत अंक
,,	मानव अंक
,,	वेदान्त अंक
श्रेय गंगा पुरातत्वांक	भागवतांक
अन्य सन्दर्भ ग्रन्थ	
अष्टाध्यायी	पाणिनि
महाभाष्य	पतंजलि
गीता रहस्य का इतिहास	बलदेव उपाध्याय
अच्युत	गोपीनाथ कविराज
न्याय दर्शन	गौतम
अलवेरुनी का भागवत	
ऋग्वेद पर ऐतिहासिक दृष्टि	
उत्तर गीता	
चैतन्य शिक्षाष्टक	
कुमारसम्भव	कालिदास
काव्य प्रकाश	मम्मटाचार्य
ध्वन्यालोक	आनन्दवर्द्धनाचार्य
भक्ति चन्द्रिका	
ऋग्वेद	
वैष्णव कंठाभरण	

आनन्द कानन प्रेस